॥ श्रीः ॥

भारतसार-भाषा ।

अठारहों पर्व.

(महर्षि वेदव्यास विरचित महाभारतका
संक्षिप्तसार हिन्दी भाषान्तर ।)

मुरादाबादनिवासी विद्यावारिधि पण्डित ज्वालाप्रसादजीके
सोदर लघुभ्राता पण्डित कन्हैयालाल मिश्र विरचित ।

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " स्टीम् प्रेस,

कल्याण-बम्बई.

संवत् १९८७, शके १८५२.

मुद्रक और प्रकाशक-
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
मालिक-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, कल्याण-बंबई.

प्रस्तावना।

प्रिय पाठकगण !

आज हम एक परम दुर्लभ भेंट लेकर आपके समक्ष उपस्थित हुए हैं आशा है--आप उसको सादर स्वीकार करके कृतार्थ होंगे।

वह आजकी भेंट 'भाषा भारतसार' है, जिसमें संपूर्ण महाभारतके सभी उपाख्यानोंकी मर्मकथा पर्वोंके क्रमसे पूर्णतया वर्णित है, भारतवर्षमें भारतकी कथा परम पुण्यप्रद और इतिहासरूपसे विख्यात है, यदि द्वापरके अन्त और कलिके आरम्भकालका लिखा हुआ कोई इतिहास इस समय उपलब्ध होता है तो वह भारतही है, इसको भगवान् श्रीवेदव्यासजी महाराजने उपाख्यानों सहित एक लक्ष श्लोकोंमें निर्माण किया है और वह मर्यादा बाँधदी है कि, जो भारतमें विद्यमान है वह अन्यत्र भी मिल सकता है, किन्तु जो भारतमें नहीं है वह कहीं नहीं मिल सकता। पर यह ग्रंथ बडे विस्तारमें होनेके कारण सर्व साधारणके उपयोगमें यथायोग्य नहीं आता, यद्यपि दो तीन भाषानुवाद इस ग्रंथके दिखाई देतेहैं किन्तु हम किसी अंशमेंभी उनको पूर्ण और उपयोगी नहीं समझते। उनमें कोई तो केवल वार्तिकमात्र है, जिसमें भाव मात्र है श्लोकोंके साथ मिलान नहीं है, कोई केवल नकल मात्र है और आनुमानिक टीका है, क्योंकि उनके भाषान्तरकर्त्ता स्वयं संस्कृताभ्यासी नहीं, कोई उपहारी अनुवाद है और जिसका अर्थ यह है कि ग्रंथ किसी प्रकार नकल उडाकर पूरा हो जाय और उसमें गुरुस्थल, मर्मस्थल, शंकितस्थलका उद्घाटन हो या न हो इससे कुछ प्रयोजन नहीं,इसी कारण पाठक पाठिकाओंको इन अनुवादोंसे जैसा चाहिये वैसा लाभ इस समय तक नहीं हुआ है. हमारी इच्छा है कि, यदि समय मिला तो हम इस अभावके दूर करनेकी चेष्टा करेंगे।

परन्तु इससमय जिस भारतकी भूमिका आपके सम्मुख है यह संक्षिप्त महाभारत है, या यों कहिये कि यह महाभारतका सार है, भगवान् कृष्णद्वैपायन श्रीवेदव्यासजी महाराजने भारतकी कथामात्रका सार लेकर इस ग्रंथको प्रणयन किया है और यह विश्वास दिलाया है कि इस सारग्रंथके देखनेसे महाभारतकी कथाका संपूर्ण रहस्य अवगत हो जाता है. यद्यपि यह ग्रंथ भी संस्कृत है और इस समय तक इसका भी श्लोकार्थरूप अनुवाद नहीं हुआ था और पाठकगण भावार्थरूप भारतसार और स्वर्गीय सबलसिंह चौहानके भारतको पढकर ही अपनी इच्छा पूर्ण किया करतेथे, परन्तु आर्षानुवादरूप महाभारत इससमय तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ था. इस ग्रंथमें लगभग एकसौ पांच अध्याय हैं. जिसका क्रम इस प्रकार है-आदि पर्व ११ अध्याय, सभापर्व ७ अध्याय, वनपर्व २४ अध्याय, विराटपर्व ११ अध्याय, उद्योगपर्व ५ अध्याय, भीष्मपर्व ३ अध्याय, द्रोणपर्व ५ अध्याय, कर्णपर्व ३ अध्याय, शल्यपर्व १ अध्याय, गदापर्व ५ अध्याय. स्त्रीपर्व और सौप्तिकपर्व १ अध्याय, शान्तिपर्व १ अध्याय, अनुशासनपर्व २ अध्याय, अश्वमेधपर्व-आश्रमवासिपर्व १६ अध्याय, मौसलपर्व २ अध्याय, स्वर्गारोहणपर्व ८ अध्याय। इस भाँति इस ग्रंथमें अठारहों पर्वका अध्यायक्रम है और महाभारतकी संक्षेपरूपसे कौरव पाण्डव सम्बन्धिनी इसमें सम्पूर्ण कथा विद्यमान है। हमने प्रथम भारत सम्बन्धमें इस ग्रंथका अनुवाद करना

उपयोगी समझा और पाठकगण भली भाँति इसको समझ सकें इस कारण इसकी भाषा बहुत सरल रक्खीगई है तथा स्थलानुकूल कहीं कहीं दोहे, चौपाई, सोरठे, छन्द सवैया और पद्यभी इस ग्रन्थमें सम्मिलित कियेगये हैं और प्रमाणके लिये अध्यायके आदि अन्तका श्लोक लिखकर संपूर्ण अध्यायके श्लोकांकभी डाल दियेहैं,जिससे सोनेमें सुगन्धवाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ हो गई है. विशेष प्रशंसा करना श्लाघामात्र है, किन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि—यथासंभव श्लोकका कोई पद छोडा नहीं गया है, यह बात ग्रंथके अवलोकन करनेसे स्वयंही विदित होजायगी।

इस भारतसारमें कितनीही ऐसी विचित्र कथा हैं, जो बृहत् महाभारतमेंभी नहीं हैं और जिनकी ख्याति दूसरे ग्रंथोंमें पाईजाती है. वास्तवमें यह कथा भारतीय कथाकी पोषक है और मनन करने योग्यहै, इसी कारण हमने इस ग्रंथका अनुवाद कर समस्त पाठक जनोंके लाभार्थ अपने परम सहायक जगद्विख्यात सेठजी श्रीमान् खेमराज श्रीकृष्णदासजी अध्यक्ष श्रीवेंकटेश्वर-स्टीम् यन्त्रालय—मुम्बई को सब प्रकारके स्वत्व सहित समर्पण कर दिया है आशा है, सज्जन महात्मा पुरुष इस ग्रंथको अवलोकन कर बहुत प्रसन्न होंगे।

अन्तमें अपने परम मित्र मुरादाबादनिवासी बाबू जगन्नाथप्रसादजी ठाकुर और डाक्टर घासीरामजी स्वर्णकारको भी आन्तरिक धन्यवाद देताहूँ-जो कि ग्रंथ लिखनेमें समय समय पर अनेक भाँतिसे मेरा उत्साह बढाते रहे हैं. अलीगढ निवासी बाबू मदनलालजी शर्माने भी इस ग्रंथके संकलन-कार्यमें विशेष सहायता की है, अतएव उनको भी हार्दिक धन्यवाद है यदि पाठक गणोंको इससे कुछभी लाभ पहुँचा तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूँगा इति।

समर्पणपत्र।

अशेष दयादाक्षिण्यादिगुणसम्पन्न राजेन्द्रकुलभूषण वैश्यकुलकमलदिवाकर पीलीभीतनगरस्थ श्रीलश्रीयुक्त-राजाललताप्रसादजी रायबहादुर कोमलकरकमलेषु।

महोदय! हिन्दूधर्ममें आपका जैसा विश्वास और अटल भक्ति है, वैसी और किसीमें दिखाई नहीं देती। आपकी समान विशुद्ध हृदय उदार और पुण्यशील पुरुष इस भारतवर्षमें मिलना अत्यन्त दुर्लभ है, आप वैष्णवधर्मके रक्षक तथा स्तंभ स्वरूप हैं। हरद्वार इत्यादि पुण्यक्षेत्रोंमें श्रीमान्ने अनेक लोकोपकारी कार्य करके सर्वसाधारणका जो उपकार किया है, वह किसीसे छिपा नहीं है तथा मातृभाषा देवनागरीमेंभी आपका प्रगाढ अनुराग है. इन सब अलौकिक गुणोंको देखकर मैं अपना यह 'भाषाभारतसार' नामक ग्रंथ श्रीमान्के कोमल करपल्लवमें सादर समर्पण करता हूँ-आशा है, श्रीमान् उदारतापूर्वक इस भेंटको स्वीकार कर मुझको उत्साहित करेंगे। इति।

विनीत निवेदक-
पण्डित कन्हैयालाल मिश्र,
मोहल्ला-दीनदारपुरा.
मुरादाबाद यू० पी०

श्रीगणेशाय नमः ।

भाषाभारतसारानुक्रमणिका ।

अध्याय.	विषय.	पृष्ठांक.
	शान्तिपर्व १३.	
७७	पांडवोंके पूछनेपर महात्मा भीष्मदेवका ज्ञान वर्णनकरना	३४६
	अनुशासनपर्व १४.	
७८	धर्मानुसार प्रजाका पालन करते हुए महाराज युधिष्ठिरका भीम नकुल सहदेव और अर्जुन समेत राज्य पालन करना	३४९
७९	कौरवोंके अन्यायोपार्जित द्रव्यका नाश होना	३५५
	अश्वमेधपर्व १५.	
८०	गोत्रहत्याकी निवृत्तिके लिये महाराज युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ करना और श्रीव्यासजीका आना	३५८
८१	यज्ञमण्डपसे अनुशाल्वका यज्ञीय घोडा चुराना	३६६
८२	अर्जुनसे नीलध्वजका परास्त होना	३७२
८३	उद्दालक ऋषिके कथाप्रसंगमें अर्जुनके संग सौभरि ऋषिका पूरा वृत्तान्त वर्णन	३७५
८४	अर्जुनके द्वारा सुधन्वाका मारा जाना	३८०
८५	सुरथसे अर्जुनका युद्ध होना और बभ्रुवाहनसे अर्जुनका समागम	३८३
८६	बभ्रुवाहन और अर्जुनके संग्राममें अर्जुनकी सेनाका भंग होना	३८६
८७	बभ्रुवाहनके द्वारा संग्राममें वृषकेतुका शिर काटना	३९१
८८	बभ्रुवाहनके हाथसे अर्जुनका मारा जाना और फिर श्रीकृष्णका उनको जिलाना	३९५
८९	श्रीकृष्णके सहित अर्जुनका ब्राह्मण रूप बनाकर महाराज मोरध्वजकी परीक्षा करना	४००
९०	महाराज चन्द्रहासके कथाप्रसंगमें देवर्षि नारदजीका अर्जुनके प्रति चरित्र वर्णन	४०७
९१	भगवान् श्रीहरिमें चन्द्रहासकी भक्तिका होना और नर दुर्लभ विद्याका ग्रहण होना	४१२
९२	चन्द्रहासकी प्रत्यक्ष महिमा औरदेवदुर्लभ ब्राह्मणकी भक्ति कथन	४१४
९३	विषया और चन्द्रहासका प्रेमपूर्वक विवाह होना	४२१
९४	दुष्टबुद्धि मंत्रीकी मृत्यु और फिर चन्द्रहासका उसको जिलाना तथा भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन देना	४२६
९५	युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें भगवान् श्रीकृष्णका स्वयं काम करना और नौलेकी कथा	४३२
	आश्रमवासिपर्व १६.	
९५	दो ब्राह्मणोंकी कथाप्रसंगसे कलिप्रवेश वृत्तान्त कथन	४३७
	मौसलपर्व १७.	
९६	श्रीकृष्णकी अभिलाषानुसार विप्रशापसे उत्पन्न यदुकुलका नाश होना	४४७
९७	उद्धव कृष्ण संवाद, बलदेवजीका शरीर त्याग, यादवोंका मदिरा पीकर उन्मत्त होना और आपसमें लड मरना तथा श्रीकृष्णके तलुएमें व्याधका बाण मारना,योगेश्वर भगवान् शरीर श्रीकृष्णका त्यागकर गोलोकको प्रस्थान करना	४४४

इति विषयानुक्रमणिका ।



॥ श्रीः ॥

भारतसार-भाषा।

श्रीकृष्णाय नमः।

आदिपर्व १.

प्रथमोऽध्यायः १.

मंगलाचरण।

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
तुम तनुकी झाईं परे, श्याम हरित द्युति होय॥
हे व्रज जीवन नन्दनँदन, राधावर गोपाल।
नाथ कृपा करि भक्तके, हरहु कठिन उरशाल॥
श्रीगणपति शंकर उमा, चरणकमल उरलाय।
श्रीयुत भारतसारकी, टीका लिखत बनाय॥
श्रीमद्वेदव्यासको, पुनि प्रणवों कर जोर।
पूर्ण कीजिये कृपा करि, मञ्जु मनोरथ मोर॥
नरनारायण भारती, कृपा करहिं सुखदान।
कुरु पांडव इतिहास कछु, जगहित करों बखान॥
वासुदेव श्रीकृष्ण प्रभु, दीजै यह वरदान।
आदर पावहि ग्रंथ यह, दायक जग कल्यान॥
जेहि केहि विधि हरियश कहे, कटत सकल भ्रमजाल।
ताते भाषा करि कहत, मिश्र कन्हैयालाल॥

प्रथमोऽध्यायः।

श्रीकृष्णस्य पदाम्बुजं मलहरं नत्वाहमादौ मुहुः
सारासारविवेकिनां रतिविदं पाखण्डमूलोच्छिदम्॥

संसारामयभेषजं कृतमखैर्ध्येयं परैराश्रितं
कुर्वे भारतसारशोधनमतः प्रीयान्मुकुन्दः प्रभुः ॥ १ ॥
प्रथमे भारतश्रुत्याः फलं जन्मेजयं प्रति।
व्यासस्यागमनं तत्र हस्तिनापुर उत्तमे ॥ २ ॥

सबसे प्रथम पापोंके दूर करनेवाले, सार असारके विवेकवालोंको भक्तिके देनेवाले, पाखण्डको जडसे ही उखाड (नाश) देनेवाले, संसाररूपी रोगकी महौषधी, यज्ञ करनेवालोंको ध्यान करने योग्य, परमगतिको प्राप्त हुए जनोंके भी आश्रयदाता भगवान् श्रीकृष्णजीके चरणकमलोंको नमस्कार करके भारतसारको लिखताहूँ। इसके द्वारा प्रभु भगवान् मुकुंद प्रसन्न होवें ॥ १॥ इस प्रथम अध्यायमें हस्तिनापुरमें श्रीवेदव्यासजीका शुभागमन और जन्मेजयके प्रति भारतश्रवणका फलकथन यह कथा होगी ॥ २ ॥ महाराज जन्मेजयका श्रीवेदव्यासजीको सत्कारपूर्वक आसन दे कुशल प्रश्न करना, और फिर भवितव्य (होनहार) पूछनेपर कहना कि आप हमारी बात नहीं मानेंगे, इससे आपको कष्ट होगा॥ ३॥ आपके शरीरमें मेरे वचन और श्रीनारद-जीके वचनोंको नहीं माननेके कारण कुष्ठ रोग होगा, ऐसाही भवितव्यहै और ऐसा होनेपर आपको मेरा स्मरण करना चाहिये ॥ ४॥ श्रीवेदव्यासजीके चले जानेपर होनहारके वशीभूत होनेसे महाराज जन्मेजयका कन्यापर आसक्त होना, और फिर शरीरमें कुष्ठ होनेपर श्रीवेदव्यासजीको स्मरण करना और उनका आना होगा ॥ ५ ॥ वेदके जाननेवाले बहुश्रुत ब्राह्मणोंके लिये जो सुवर्णसे सींग मढवाकर एकसौ गायें दान करताहै और वह जो नित्य भारतकी पवित्र कथा सुनता है, उसको भी उस गौदाताके समान ही फल मिलजाता है॥ १ ॥ श्रीवेदव्यासजीके होठरूपी दोनेसे निकला हुआ विस्तृत पुण्यरूप पवित्र पापहारी और कल्याणका करनेहारा यह भारतका आख्यान जो वाणीसे कहते अथवा मनन करते हैं, उनको फिर पुष्करमें स्नान करनेकी आवश्यकता क्या है ? ॥ २ ॥ श्रीवेदव्यासजी महा-

राजके वचन निर्मल कमल हैं. वह श्रीमद्भगवद्गीताके अर्थकी उग्र गंधसे सुवासित हैं, अनेक प्रकारके आख्यान उस कमलकी केशर हैं, हरिकथाके सम्बोधनसे बोधित हैं, लोकमें सज्जनरूपी भौंरे आनन्दसे उसको नित्य पान किया करते हैं। इस प्रकार यह भारतरूपी कमल कलिमलको विनाश करके कल्याणके निमित्त विकास कररहा है ॥ ३ ॥ ब्राह्मणोंकी गोष्ठी दुर्लभ है, गंगाजीका स्नान दुर्लभ है, भगवान् विष्णुकी भक्ति दुर्लभ है और इसी प्रकारसे भारतकी कथा दुर्लभ है ॥ ४ ॥ नारायण, नरोत्तम, नर, देवी सरस्वती और श्रीव्यासजीको प्रणाम करके जयउच्चारण अर्थात् पुराणादिका पाठ करना चाहिये ॥ ५ ॥ श्रीपराशरजीके पुत्र सत्यवतीके हृदयको आनंद देनेवाले श्रीव्यासजी महाराजकी जयहो । जिनके मुखकमलसे निकले वाणीरूप अमृतको (सारा) जगत् पान करता है ॥ ६ ॥ कुरुकुलके उत्पन्नकर्त्ता महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी महाराज जन्मेजयको देखनेके निमित्त हस्तिनापुरमें आनकर उपस्थित हुए ॥ ७ ॥ उस जगह गंगाजीका मनोहर किनारा देखकर महामुनि श्रीव्यासजी बैठगये, तब उनसे मिलनेके निमित्त महाराज जन्मेजय आये ॥ ८ ॥ और मस्तक झुकाकर उनके चरणोंमें नमस्कार करके विनती करी कि हे ब्रह्मन् ! आज आपका दर्शन मिलनेसे मेरा जन्म सफल हुआ ॥ ९ ॥ हे स्वामिन् ! आज मैं कृतार्थ और धन्य हुआ तथा मेरा राज भी धन्य है। अब आपका शुभागमन यहाँ किस लिये हुआ है ? सो आज्ञा कीजिये ॥ १० ॥ इस भाँति कहकर महाराज जन्मेजय कृष्णद्वैपायन श्रीवेदव्यासजीके समीप बैठगये, इसी बीचमें श्रीव्यासजी उठकर उनके सारे राज्यको देखने लगे ॥ ११ ॥ देखा कि-तीन योजन अर्थात् बारह कोसतक लम्बी चौडी सभा है, जिसमें करोडों तरुण (नौजवान) क्षत्री शूर अस्त्र शस्त्रोंकी विद्यामें कुशल (चतुर) महाराज जन्मेजयके निकट बैठेहुए हैं और महाराज जन्मेजय रत्नसिंहासन पर विराजमान हुए सुधर्मा सभाके बीच देवराज इन्द्रकी तरह शोभा पारहे हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ इस प्रकार महाराज जन्मेजयको देखकर श्रीवेद-

व्यासजी मनमें प्रसन्न होकर इसतरह वचन कहने लगे। श्रीव्यासजी बोले-हे महाराज ! आप अत्यन्त साधु हैं इस समय त्रिभुवनमें आपकी तरह शूर, वीर, साधु, दाता, धर्मात्मा दूसरा कोई भी नहीं है ॥ १४ ॥ राजा जन्मेजयने कहा-हे ब्राह्मणोत्तम ! आप साक्षात् भगवान् विष्णुके रूप हैं। हे स्वामिन्! इन कौरव और पांडवोंका नाश किस तरह हुआ ? ॥१५॥ इन कौरव और पाण्डवोंकी बराबरी कर सके,ऐसा कोई नहीं था ? कारण कि, पाण्डव सत्यवादी अर्थात् सत्य बोलनेवाले योधा, महाबली और पराक्रमी थे। सो उन लोगोंने राज त्यागकर किस लिये वनमें गमन किया ? ॥१६॥ व्यासजीने कहा-हे महाराज जन्मेजय!कौरव और पांडव अपने मद(घमंड)से हृदयमें बहुत ही गर्वित हो गये थे, इसीसे उन्होंने हमारी बात नहीं मानी और इसी कारण उनको महादुःख भोगना पडा ॥ १७ ॥ हे पुरुषोत्तम ! मुझको आपके राज्यमें भी उत्पातों (उपद्रवों) का होना दिखाई देरहा है, यदि आप मेरी बात माने, तो उसको अभी आपसे कहदूं ॥ १८ ॥ क्योंकि आपके दुःखसे हमको भी दुःखी होना पडेगा; इसी लिये मैं आयाहूँ यदि आप अपनी भलाई चाहें, तो मेरी बात मानलीजिये ॥ १९ ॥ भगवान् कृष्णद्वैपायन श्रीवेदव्यासजीकी यह बात सुन, हाथ जोड चरणोंमें मस्तक झुकाय महाराज जन्मेजयने विनय सहित कहा ॥ २० ॥ राजा बोले-हे मुनिसत्तम ! मैं आपकी कहीहुई सब बातें करूंगा, हे तात ! जिस उपायके करनेसे मेरे राज्यमें उपद्रव नहीं होने पावें, आप कृपापूर्वक वह उपाय बताइये ॥ २१ ॥ श्रीव्यासजीने कहा-हे वत्स ! हे नृपोत्तम ! होनकि वशीभूत होकर छः मासके ही भीतर भीतर आपका शरीर बिगड जावेगा ॥ २२ ॥ महाराज जन्मेजयने कहा-हे देव ! मुझे दुःख होनेकी बात आपको किस तरह मालूम हो गई ? यह सत्यसत्य बताइये। और वह दुःख कैसे तथा किसका संग करनेपर उत्पन्न होगा ? हे प्रभो ! यह सब बातें आप मुझसे अनुग्रह करके वर्णन कीजिये ॥ २३ ॥ श्रीव्यासजीने कहा-हे महाराज जन्मेजय ! उत्तर दिशासे एक घोडा आवेगा, सो आप उसको कभी मत

लेना और यदि लेभी लो, तो उसकी पीठपर सवार होकर वनमें मत जाना ॥ २४ ॥ और यदि वनमें भी जाओ तो शूकरके देहसे जो सर्वांग सुन्दरी स्त्री प्रकट होवे, उसको ग्रहण मत करना और यदि कदाचित् उसको ग्रहण भी करलो, तो उसकी बात तो कदापि ही न मानना ॥ २५ ॥ और यदि उसकी बात भी मानलो, तो उसके साथ श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ तो कदापि मत करना और हे राजन् ! यदि कदाचित् यज्ञ भी आरम्भ करदो, तो उसमें छोटे ब्राह्मणों (बालकों) को तो कदापि निमन्त्रित न करना ॥ २६ ॥ और यदि कदाचित् छोटे ब्राह्मणोंकी वरणी भी करो, तो फिर पीछे क्रोध मत करना ॥ हे राजन् ! यह सब बातें मैंने सत्य ही कही हैं, यह होन-हार सब होकर रहेगा ॥ २७ ॥ यद्यपि मैंने सब बातें आपसे खोल-कर कहदी हैं किन्तु तथापि होनीके वशीभूत होकर आप मेरी बात नहीं मानेंगे और इसलिये नाश होगा जो हो जिस समय आपको दुःख उपस्थित हो; तब आप मुझको स्मरण करना ॥ २८ ॥ उस काल मैं शीघ्र ही आनकर आपका दुःख दूर करूंगा। इस तरह उत्तम वचनोंके द्वारा महाराज जन्मेजयको समझा बुझाकर महामुनि श्रीवेदव्यासजीने अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥ २९ ॥ फिर किसी समय महाराज जन्मेजय अपने हस्तिनापुरमें सुखपूर्वक राज्यसिंहासन पर बैठेहुए थे; इसी समय एक घोडोंका बेचनेवाला व्यापारी आया ॥ ३० ॥ उस महा-वेगवान् सर्वांगसुन्दर घोडेको देखकर महाराज जन्मेजय उसके रूपसे मोहित होकर उसको ले (खरीद) लिया ॥ ३१ ॥ फिर उस अद्भुत घोडेपर सवार होकर किसी समय महाराज जन्मेजय वनान्तरमें गये, उसी समय महारा-जको वहाँ एक शूकर दिखाई दिया ॥ ३२ ॥ तब महाराजने उस शूकरको अपने आगे करके एकही बाणसे उसका प्राण नाश किया, तब उसके देहसे एक अत्यन्त सुन्दरी और यौवनवती कन्या निकली ॥ ३३ ॥ उसको देख-कर महाराज जन्मेजयने पूँछा हे सुन्दरमुखवाली ! आप कौन हैं ? अप्सरा हैं ? किन्नरी हैं ? देवी हैं ? अथवा किसी ऋषीकी कन्या हैं ? ॥ ३४ ॥

आपकी समान सुन्दर रूप मैंने किसीमें भी नहीं देखा। महाराज जन्मेजयके इस तरह पूछनेपर उस अप्सराने उत्तर दिया—हे देव! मैं कुमारी ऋषिकी कन्या हूँ। अपने पिताका वचन मान उन्हींके उपदेशानुसार वर मिलनेकी इच्छासे आपके देशमें आगई हूँ ॥ ३५ ॥ राजाने कहा—हे कल्याणी! आपके पिताकी क्या आज्ञा है? सो सत्य सत्य बताइये ॥ ३६ ॥ अप्सराने उत्तर दिया—हे महाराज! मेरे पिताने कहा था कि, जम्बूद्वीपके मध्यमें एक हस्तिनापुर नामवाला उत्तम नगर है, वहाँके राजा जन्मेजय तेरे पति होंगे ॥ ३७॥ इस कारण मैं भी आपसे पूछना चाहतीहूँ कि, उत्तम रूपयुक्त आप कौन हैं? तब राजाने उत्तरमें कहा कि, वह राजा जन्मेजय मैं ही हूँ घोडेपर सवार होकर इस वनमें आयाहूँ ॥ ३८ ॥ यह सुनकर उस कन्याने कहा—यदि आप दो बातोंकी मुझसे प्रतिज्ञा करें तो मैं आपको पति बनाऊँ। एक तो मुझे पटरानी बनाइये और दूसरी बात यह है कि, आप मेरे साथ अश्वमेध यज्ञ कीजिये। महाराज जन्मेजयने उस कन्याकी यह बातें मानकर उस कन्याके साथ गान्धर्व विवाह किया ॥ ३९ ॥ इसके पीछे वे दोनों स्त्री पुरुष घोडेपर सवार होकर अपने घर चले आये; फिर (क्रमशः) और सब रानियोंको छोडकर महाराज जन्मेजय इसी स्त्रीमें आसक्त होगये अर्थात् सब तरहसे उसके वशीभूत होगये ॥ ४० ॥ इस प्रकार कुछ दिन बीत जानेपर एक दिन उस कन्याने कहा—हे स्वामिन्! आपने जो मुझको दो वर दियेथे; सो अब इनको सफल कीजिये अर्थात् आपने मुझको पटरानी तो बनालिया; किन्तु अब मेरे संग अश्वमेध यज्ञ और कीजिये ॥ ४१ ॥ उसकी यह बात सुनकर महाराज जन्मेजयने अश्वमेध यज्ञका आरम्भ कर दिया और इस काल महाराजाकी आज्ञासे वेदके जाननेवाले (छोटे छोटे) ब्राह्मण आनकर उपस्थित हुए ॥४२॥ अनन्तर आचार्य और ऋत्विज सब कोई राजमन्दिरमें आगये तब महाराज और महारानीने सामने बैठकर होम करना प्रारंभ किया ॥ ४३ ॥ फिर जिस समय एक पहर बीतकर दूसरा पहर वर्त्तमान हुआ तब ब्राह्मणोंकी आज्ञासे महाराज जन्मेजयने अपने हाथमें (यज्ञीय)

घोडेके उपस्थको पकडा ॥ ४४ ॥ जो कि फूला हुआ और बढा हुआ था, यह देख रानीके रूपसे मोहित हो वे सब छोटे ब्राह्मण हँसने लगे॥४५॥ जब आहुति पडनेमें देर हुई तब यज्ञीय अग्निने कुपित होकर उस सब हवि (साकल्य) को भोजन करलिया और पीछे राजाका घर तथा हाथी घोडे (इत्यादिके सहित संपूर्ण हस्तिनापुरको) जलाडाला ॥ ४६ ॥ तब रानी अत्यंत लज्जित हुई और राजा जन्मेजयने भी क्रोधपूर्वक हाथमें तलवार लेकर उन अठारह उत्तम ब्राह्मणोंका वध करडाला और होमके कुंडमें डाल-दिया तदनन्तर अग्निदेवताके कुपित होनेसे सारा मण्डप भस्म होगया और यह सब दशा देखकर वह कन्या (मोहिनी) भी अन्तर्धान होगई ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ तब तो उस कर्मके फलसे महाराज जन्मेजय अपने हृदयमें महा-व्याकुल हुए और पछता पछताकर कहनेलगे कि, हाय ! मैंने कैसा खोटा काम किया ॥ ४९ ॥ तब इसके पहले महाराजने जो कुछ पुण्यसंचय कियाथा, वह सब नष्ट होगया । (इस तरह अनेक भांतिसे चिंता करतेहुए अठारह ब्राह्मणोंकी हत्या करनेसे) महाराज जन्मेजयके देहमें गजचर्म नामक कोढकी उत्पत्ति होगई जिसके द्वारा देह गलना प्रारंभ होगया ॥ ५० ॥ दोनों होंठ, नाक, भौंए, दोनों कान और सारा बदन गलने लगा । फिर पैरोंसे लेकर मस्तकतक संपूर्ण अंग चर्म (खाल) से हीन होगया ॥ ५१ ॥

मज्जामांसस्य पिण्डश्च दौर्गन्ध्यमभवद्वपुः ।
तदा संस्मारितस्तेन राज्ञा व्यासः समागतः ॥ ५२ ॥

(अधिक क्या कहाजाय जब) मज्जामांसका पिंड देह दुर्गन्धमय होगया अर्थात् सारे शरीरसे दुर्गन्ध निकलनेलगी, तब महाराज जन्मेजयने श्रीवेदव्या-सजीको याद किया और उनके याद करतेही वे आनकर उपस्थित हुए॥५२॥

इति श्रीभारतसारे आदिपर्वणि कन्हैयालालमिश्रमुरादाबादनिवासिकृत-भाषाटीकायां व्यासागमो नाम प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

ब्रह्महत्यानिवृत्तिश्च नृपकुष्ठविनाशनम् ।
वैशम्पायनविप्रस्य द्वितीये प्राप्तिरुच्यते ॥ १ ॥

इस दूसरे अध्यायमें ब्रह्महत्याका दूर होजाना, राजा जन्मेजयके कोढका नाश और राजाके निकट ब्राह्मण वैशम्पायनजीका आना यह कथा वर्णन कीजायगी ॥ १ ॥

व्यास उवाच ।

त्वं पापी च दुराचारी तवास्यं न विलोकये ।
यन्मया कथितं पूर्वं तत्त्वया न कृतं वचः ॥ १ ॥

श्रीव्यासजीने महाराज जन्मेजयसे कहा कि, हे राजन् ! तू पापी और दुराचारी है, तेरा मुख देखना ठीक नहीं. क्योंकि मैंने कुछ बातें तुझसे पूर्वमें कहीं थीं वह तैंने नहीं करीं ॥ १ ॥ महाराज जन्मेजयने कहा—हे देव ! मैं मूढ दुष्ट और दुर्बुद्धियुक्त हूँ. मैंने पापसे प्रेरित हो गुरुदेवके वचनोंको उल्लंघन पूर्वक क्रोधके फंदेमें बँधकर अठारह ब्राह्मणोंकी हत्याकर डालीहै ॥२॥ हे तात ! अब बहुत कहनेका क्या प्रयोजन है? इस कुष्ठरूपी घोर रौरव नरकसे मेरा उद्धार कीजिये । महाराज व्यासजीने यह सुनकर कहा कि; नीले रंगमें अठारह वस्त्र रंगवायकर ॥ ३ ॥ उन वस्त्रोंका अन्तरपट करके अर्थात् उन वस्त्रोंके भीतर बैठकर नित्य (प्रतिदिन) महाभारतको तत्त्वतः श्रवण कीजिये तो उन महाभारतके अठारहों पर्व सुनलेनेपर आपकी यह अठारहों हत्या अवश्य नाश होजायँगी इसमें सन्देह नहीं और यदि आप पूर्वकी तरह इस समय भी हमारी बातको सच्चा नहीं मानेंगे तो आपके पापका नाश नहीं होगा ॥ ४ ॥ उस हत्याके नष्टहोनेका यही लक्षण है कि, एक एक पर्वके सुनलेनेपर एक एक वस्त्रका रंग नष्टहोकर निर्मल (सफेद) होता चलाजायगा, अतएव हे महाराज ! आप (एकाग्रमनसे) संपूर्ण महाभारतको सुनलीजिये ॥ ५॥ किसी तरहका आक्षेप न कीजिये, सब सत्यही

मानिये। इस प्रकार भगवान् श्रीवेदव्यासजीकी बात सुननेपर उनके ही मुखारविन्दसे राजा महाभारतके पर्व सुननेलगे। उन पर्वोंका वर्णन करते करते श्रीव्यासजी बोले ॥ ६ ॥ हे महाराज जन्मेजय! शोभायमान कुरुक्षेत्रके बीच कौरव पांडवोंके महादारुण संग्राममें बलवान् भीमसेनने जिन हाथियोंको आसमानमें बगेला (फेंका) था वे इस समयतकभी आसमानमें भ्रम रहेहैं। महाराज जन्मेजयने श्रीव्यासजीके इस प्रकार वचन सुनकर ॥ ७ ॥ शिरको कंपायमान किया अर्थात् शिर हिलाकर उनकी इस बातको सत्य नहीं माना, तब श्रीव्यासजीने तत्काल आकाशमें पवनको रोककर॥८॥हस्तिनापुरमें महाराजके समीपही उन हाथियोंको गिराया तब तो महाराज जन्मेजयको महान् अचंभा हुआ और उनकी बात सच्ची मानकर कहनेलगे॥९॥ जन्मेजय बोले—हे ब्रह्मन्! मैं मूर्ख और अभिमानी हूँ किन्तु अब आपकी शरणमें (आनकर) प्राप्त हुआहूँ। राजाके इस भाँति कहनेपर व्यासजी स्थिर होकर यह कहने लगे ॥ १०॥ श्रीव्यासजीने कहा—हे महाराज! जो कि, आपने हमारी बात नहीं मानी इस कारण आपके शरीरसे एक हत्या दूर नहीं होगी उसको नाश करनेकेलिये आप हमारे साथ बदरिकाश्रमको चलिये ॥ ११ ॥ अनन्तर महाराज जन्मेजय तथा श्रीवेदव्यासजी दोनों बदरिकाश्रमको गये वहाँ पहुँचनेपर व्यासजीने ब्राह्मणोंके आगे निवेदन किया ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले—हे सब ब्राह्मणों! आप मेरी बात सुनिये, यह पवित्र चन्द्रवंशोत्पन्न महाराज जन्मेजय हैं ॥ १३ ॥ और यह सर्वलोक विख्यात महाराज परीक्षितके पुत्र हैं, इनकी सत्रह[1] हत्या तो दूर होचुकी हैं, किन्तु एक हत्या अभी बाकी रहगई है उसको आपलोग नष्ट करदीजिये। भगवान् श्रीवेदव्यासजीके वचन सुनकर उन ब्राह्मणोंने उस हत्याको नष्ट कर दिया ॥ १४ ॥ उन ब्राह्मणोंसे उस हत्याको तिल तिल प्रमाण ग्रहण (दूर) किया किन्तु उसका चिह्न वस्त्रमें थोडा रह गया तब व्यासजी और

१ सत्रह वस्त्र तो सफेद होगये थे किन्तु एक वस्त्रका रंग नहीं गया--अत एव नीलेरंगके कपडेमें हत्या वास करती है, इस लिये पण्डितजन नीलेरंगके वस्त्र कभी धारण न करें।

राजा दोनों हस्तिनापुरमें लौट आये ॥ १५ ॥ फिर व्यासजीने आनकर उन महाराज जन्मेजयको राज्य सिंहासनपर बैठालदिया। तब महराजने ब्राह्मणोंको बहुत कुछ दानकिया ॥ १६ ॥ अनन्तर व्यासजीने महाराजका पट्टाभिषेक (राज्याभिषेक) करके अपने हाथसे तिलक किया और कहा—आपका जो कुछ पूर्वसंचित द्रव्य अर्थात् धन, धान्य, हाथी, घोडे, ॥ १७ ॥ रत्न भण्डार और सुवर्णमयगृह (घर) है यह सब पदार्थ ब्राह्मणोंको दान कियाकरो और प्रतिदिन महाभारतका पूरा पाठ करलेनेपर भोजन किया करो ॥ १८ ॥ इस प्रकार महाराज जन्मेजयको आज्ञा देकर परमज्ञानी श्रीवेदव्यासजीने अपने स्थानको प्रस्थान किया और राजा पृथ्वी (राज्य) का पालन करनेलगे ॥ १९ ॥ उसी दिनसे महाराज जन्मेजय प्रतिदिन महाभारतका पाठ करके दशवें दिन उसके पूर्णहोनेपर भोजन कियाकरतेथे ॥ २० ॥ नित्य ऐसा करनेपर उनको महाकष्ट होने लगा, तब उस कष्टके दूर करनेको उन्होंने श्रीवेदव्यासजीसे प्रार्थना करी ॥ २१ ॥ व्यासजीने अपने शिष्योंसे कहा कि, महाराज जन्मेजय महाभारतका पाठ पूरा करनेपर दशवें दिन भोजन किया करतेहैं, ऐसा होनेसे उनको बडा ही क्लेश होरहाहै (अतएव जिससे महाराज नित्य भोजन कियाकरें हम शीघ्रही ऐसा उपायकरे देतेहैं। शिष्योंसे इस भाँति कहकर) श्रीवेदव्यासजीने महाभारतमेंसे उसका सार अंश निकालकर '**भारतसार**' नामक ग्रंथ रचा और उसको ब्राह्मणश्रेष्ठ अपने शिष्य वैशम्पायन मुनिके द्वारा हस्तिनापुरको भेजदिया ॥ २२ ॥ महाराज जन्मेजयका कष्ट दूर करनेको व्यासजीके भेजेहुए मुनिवर वैशम्पायनजी तत्काल हस्तिनापुरमें आनकर प्राप्त हुए। महाराजने उनको देखते ही एकाएक सिंहासनसे उठकर अर्घ्य पाद्य दिया ॥ २३ ॥ और फिर हाथ जोडकर अत्यन्त विनती करतेहुए कहनेलगे। राजा बोले—हे द्विजोत्तम! आज मैं धन्य और कृतकृत्य (कृतार्थ) हूँ तथा मेरा राज्य भी धन्य है॥२४॥अब जो भगवान् वेदव्यासजीने नित्य पाठ करनेके लिये महाभारतका सार संग्रह (भारतसार)

आपके द्वारा भेजाहै हे प्रभो ! वह आप सब ही मुझसे वर्णन कीजिये॥२५॥ महाराज जन्मेजयके इस प्रकार कहनेपर मुनिवर वैशम्पायनजीने कहा–हे राजेन्द्र ! मैं आपसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआहूँ,अब आप भक्ति और श्रद्धाके सहित यह 'भारतसार' श्रवण कीजिये, इसके सुनलेनेपर आप सारे पापोंसे छूटजायँगे इसमें सन्देह नहीं ॥ २६॥ राजा जन्मेजयने कहा–हे मुनिसत्तम ! मैं आपके कहेहुए अठारहों पर्वके सारको आदि मध्य तथा अन्ततक एकाग्र चित्तसे सुनूँगा । अत एव आप कृपापूर्वक वर्णन कीजिये ॥ २७ ॥ वैशम्पायनजीने कहा–हे राजन् ! महाभारतका एक पद पाठ करनेपर और श्रीमहादेवजीका दर्शन और भगवान् विष्णुका स्मरण करनेपर मनुष्यके सारे पाप छूटजाया करतेहैं ॥ २८ ॥

जन्मेजय उवाच ।

मे पूर्वजांस्त्वां पृच्छामि पाण्डवान्पाण्डुनन्दनान् ।
ते वीराः कथमुत्पन्ना ब्रूहि मे ऋषिसत्तम ॥ २९ ॥

जन्मेजय बोले, हे मुनिसत्तम ! मैं प्रथम अपने पूर्वपुरुषोंके विषयमें ही आपसे पूंछताहूँ कि, पांडुके पुत्र शूरवीर पाँचों पाण्डवोंकी उत्पत्ति किस प्रकारसे हुई ? सो आप मेरेप्रति वर्णन कीजिये ॥ २९ ॥

इति श्रीभारतसारे हस्तिनापुरे वैशंपायनप्रवेशो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

तृतीये शपनं धेनोरजमस्तकभेदनम्[1] ।
त्रिपुरासुरपंचत्वमन्यच्चापीह वर्ण्यते ॥ १ ॥

इस तीसरे अध्यायमें श्रीपार्वतीको कामधेनुका शाप मिलना और श्रीमहादेवजीके द्वारा ब्रह्माजीका पाँचवा शिर कटना तथा त्रिपुरासुरका वध, यह तथा और भी (उत्तमोत्तम) कथाओंका वर्ण कियाजायगा ॥

वैशम्पायन उवाच ।

पुरा कैलासशिखरे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥
सिंहासने चोपविष्टौ रेमतुः स्म यथासुखम् ॥ १ ॥

१ तृतीयेजातमोधेनोः इति पाठान्तरम् ।

वैशम्पायनजीने कहा—हे महाराज ! पूर्वकालमें कैलास नामक मनोहर पर्वतमें सिंहासनपर विराजमान हुए (परमेश्वर) श्रीमहादेवजी और पार्वतीजी सुखपूर्वक रमण कर रहे थे ॥ १ ॥ उसी अवसरमें वहाँ पाँच बैलोंको संग लियेहुए कामधेनु गाय आई उस कामधेनुको देखकर पार्वतीने हँसकर कहा ॥ २ ॥ पार्वती बोलीं—अहो ! देखो, कामधेनुका कैसा आश्चर्यकारक साहस है कि, जो गाय देवताओंसे वन्दित (पूजित) है उसके पाँच भर्त्ता (पति) दिखाई देरहेहैं ॥ ३ ॥ पार्वतीजीकी ऐसी बात सुनकर कामधेनुने उनको शाप दिया ॥ ४ ॥ कामधेनु बोली—अहो पार्वती ! मनुष्यशरीर धारण करनेपर तुम भी पाँच भर्त्तावाली होगी यह मेरी बात ही सत्य ही सत्य जानना, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५॥ कामधेनुके इस शापको सुनकर पार्वती दुःखसे अत्यन्त पीडित हुई और श्रीमहादेवजीसे बोलीं, हे नाथ! यह क्या होगा? ॥६॥हेप्रभो!यह शाप किस प्रकारसे छूटेगा? इसका उपाय कीजिये। तब श्रीमहादेवजी मनमें बहुत कुछ सोच विचार कर ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ ७ ॥ अनन्तर नन्दीगणसहित शाप दूर करनेके निमित्त श्रीमहादेवजीको आयाहुआ देखकर सारे देवता उठे और उनकी पूजा करी ॥ ८ ॥ इसके पीछे फिर ब्रह्माजीने भी उनकी पूजा करी और पाँचों मुखोंसे ॐकार मन्त्रके द्वारा श्रीमहादेवजीकी स्तुति करनेलगे ॥ ९ ॥ उसकाल ब्रह्माजीके एक मुखसे गधेकी तरह आवाज निकली उस शिरको दुर्विनीत जानकर ब्रह्माजीके ही अर्थ अर्थात् उनकी ही सुन्दरता सम्पादन करनेके लिये ॥ १० ॥ श्रीमहादेवजीने उनका वह पाँचवा शिर अपने हाथसे तोड (काट) डाला किन्तु ब्रह्माजीका वह कटा हुआ शिर पृथ्वीपर नहीं गिरा; वरन् महादेवजीके हाथसे ही चिपट गया ॥ ११ ॥ तब उस ब्रह्महत्याके डरसे घबरायेहुए श्रीमहादेवजी अपने घर आये; तब पार्वतीजीने उनके हाथमें ब्रह्माजीका पाँचवा शिर चिपटाहुआ देखकर ॥ १२ ॥ गौरी पीठ फेर उनसे बोलीं-आप मेरे घरमें मत आइये क्योंकि आपने ब्रह्महत्या की है। गौरीके इस

प्रकार अपमान (निरादर) करनेपर श्रीमहादेवजी अपने घरको छोड ॥ १३ ॥ मृत्युलोकमें चले आये और अलग अलग तीर्थोंमें घूमने लगे फिर एक समय किसी ब्राह्मणके घर (एक ब्राह्मणीको) श्रीमहादेवजीने गाय दुहते देखा ॥ १४ ॥ तब उस ब्राह्मणने बछडेके भलीभांति विना चौंखे बीचमें ही उसको खेंचकर बाँधदिया और ऐसा करनेपर उस बछडेने सींगडी लगाकर ब्राह्मणको (पृथ्वीपर) पटकदिया अर्थात् मारडाला ॥ १५ ॥ उस ब्राह्मणके मार डालनेपर जब वह बछडा अपनी माताके निकट दूध पीने गया तब गायने उसको नहीं चौंखाया और उसका निवारण करके कहा कि, तैंने इस ब्राह्मणको क्यों मारडाला? ब्रह्मघातके दोषको कोई भी नहीं मिटा सकताहै ॥ १६ ॥ बालककी हत्या करनेपर एक युगपर्यंत नरकका भोग करना होताहै, स्त्रीकी हत्या करनेपर वह तीन युगमें दूर हुआ करतीहै, गोहत्या पाँच युग और आत्महत्या (खुदकुशी) कल्पा-न्ततक रहा करतीहै और ब्रह्महत्या अर्थात् ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला मनुष्य तो सर्वकाल ही रौरव नामक नरक भोगता रहताहै॥ १७॥ मइयाकी यह बातें सुनकर बछडेने कहा—हे माता ! यह दारुण ब्रह्महत्या मुझको नहीं छूसकेगी, मैं (अभी) उत्तम तीर्थोंमें जाकर इस हत्याके धोने (नष्ट-करने) का उपाय करताहूं ॥ १८ ॥ अनन्तर आकाशमें जातेहुए श्रीम-हादेवजीने उस गाय और बछडेकी यह सब बातें सुनी। तब फिर ब्राह्म-णके शरीरसे हत्या निकलकर उस बछडेपर दौडी ॥ १९ ॥ उसको देख वह बछडा शीघ्रतासहित भागताहुआ वाराणसी (काशीपुरी) को गया और उस महानगरीमें प्राणत्याग करके रुद्रलोकको प्राप्त हुआ ॥ २० ॥ वहाँ मन्दाकिनी गंगाका जल पीनेसे वह बछडा पापरहित हो गया इसी बीचमें श्रीमहादेवजी काशीमें आपहुँचे तब उनके हाथसे भी ब्रह्माजीका वह शिर गंगाजीमें गिर गया और बाहर जायकर स्थित हुआ, उस दिनसे श्रीमहादेवजी वाराणसी (काशी) में ही वास करने लगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ वैशम्पायनजी बोले, हे महाराज! जिस समय श्रीमहादेवजीने वाराणसीपुरीमें

निवास किया, तब वह हत्या काशीके बाहार ही स्थित रही और ईश्वर श्रीमहादेवजी ब्रह्माजीके शिरको गिराहुआ देखकर बहुत ही संतुष्ट हुए ॥ २३ ॥ फिर जब श्रीमहादेवजी काशीपुरीको छोडकर कैलास जानेके लिये बाहर निकले तब वह दारुण ब्रह्महत्या फिर रुद्रके शरीरसे आ चिपटी तबसे श्रीमहादेवजी उस हत्यासे अपने आपही डरते रहतेहैं ॥ २४ ॥ और वाराणसीसे बाहर न निकलकर मुक्तिपुरीमें ही स्थित रहतेहैं। फिर (किसी समय) त्रिपुरनामक दैत्यने उत्पन्न होकर तीनों लोकको पीडित (दुःखी) किया ॥ २५ ॥ उस काल सारे देवता चिन्ता करनेलगे कि, यह दुष्ट कैसे मरेगा ? तब ब्रह्माजीने कहा, कि इसकी मृत्यु श्रीमहादेवजीके हाथसे होगी ॥ २६ ॥ ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर सब देवताओंने गौरी श्रीपार्वतीजीसे जाकर पूछा कि, हे देवेश्वरी ! श्रीमहादेवजी कहाँ हैं ? उनकी यह बात सुनकर पार्वती बोली कि, हे देवताओं ! साक्षात् श्रीमहादेवजी (ब्रह्महत्या दूर करनेके निमित्त) मृत्युलोकके प्रत्येक तीर्थमें भ्रमण करनेको चलेगयेहैं (आपलोग उनको वहीं जाकर खोजिये) ॥ २७ ॥ पार्वतीजीके ऐसा कहनेपर सारे देवता उनको पृथ्वीपर आकर ढूँढतेहुए फिरनेलगे। फिर जब भगवान् विष्णुने देवोत्तम श्रीमहादेवजीको काशीमें देखा ॥ २८ ॥ तब सारे देवताओंने शिर झुकायकर उनको प्रणाम किया और उनके धोरे खडे होगये। यह देखकर श्रीमहादेवजीने कहा, हे देवताओं ! आपलोग किस लिये आये हैं ? ॥ २९ ॥ देवता बोले—हे महेश्वर ! इस समय त्रिपुरासुरने समस्त तीनों लोकको जीतलिया है, इसी लिये हम सब आये हैं अत एव अब आप अपने स्थान (कैलास) को चलिये ॥ ३० ॥ सब देवताओंके ऐसा कहनेपर श्रीमहादेवजीने विष्णुसे कहा, हे जनार्दन ! मैं ब्रह्महत्यासे डर रहाहूँ इस लिये कैलासको नहीं जाऊंगा, यह कहकर श्रीमहादेवजीने पहिली सब कथा भगवान् श्रीहरिसे कह सुनाई ॥ ३१ ॥ यह सुनाकर महादेवजीने फिर कहा, हे भगवन् जनार्दन ! यदि मेरी हत्या चलीजाय तो मैं हत्यासे छूटकर कैलासमें चला जाऊंगा ॥ ३२ ॥ वैशम्पायनजीने कहा, हे महाराज ! भगवान् श्रीहरि श्रीम-

हादेवजीके कल्याणार्थ शीघ्र हत्यास्थानमें जाकर कहनेलगे। वासुदेवने कहा, हे हत्या ! तू श्रीमहादेवजीके अंगको छोडदे और (उसके बदलेमें) मुझसे वर माँगले, जो तू माँगेगी मैं तुझको वही दूँगा यदि ऐसा न करूं अर्थात् तेरी इच्छानुसार तुझको वर न दूं तो मुझको पाप लगे ॥ ३३ ॥ भगवान् वासुदेवके ऐसा कहनेपर हत्या बोली—हे प्रभो ! आप मुझको मनुष्य, हाथी, घोडे, राजा, भैंसें और ऊंट इत्यादि अठारह अक्षौहिणी सेनाका रक्त दीजिये अर्थात् मैं अठारह अक्षौहिणी सेनाका खून पीना चाहतीहूँ ॥ ३४ ॥ श्रीहरिने उत्तर दिया, हे हत्या ! द्वापरयुगके बीचमें जिस समय चन्द्रवंशी राजा लोग पृथ्वीपर उत्पन्न होंगे,उस समय मैं तुझको इच्छानुसार रक्त पिलाऊंगा॥

केशवस्य वचः श्रुत्वा हत्यामुक्तः शिवः स्वयम् ॥
शीघ्रमागत्य वै स्वर्गे शिवेन त्रिपुरो हतः ॥ ३६ ॥

भगवान् केशवकी यह बात सुनकर हत्याने श्रीमहादेवजीको छोडदिया तब हत्यासे रहित होकर वे शीघ्र ही स्वर्गको गये और वहाँ जाकर उन्होंने त्रिपुरनामक दैत्यका वध किया ॥ ३६ ॥

इति श्रीभारतसारे आदिपर्वणि शिवहत्यामुक्तिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

चतुर्थे वासनामुक्तः शिवो गाङ्गेयजन्म च ।
इति दाशस्य कन्यायां व्यासोत्पत्तिश्च वर्ण्यते ॥ १ ॥

इस चतुर्थ अध्यायमें ' श्रीमहादेवजीका प्रायश्चित्तसे मुक्त होजाना, भीष्मजीका जन्म होना और कैवर्त्तकी कन्याके गर्भसे श्रीव्यासजीका उत्पन्न होना ' इन सब कथाओंका वर्णन कियाजायगा ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

स्वेस्वे स्थाने गता देवाः स्वस्थाने तु गतो हरिः ॥
ब्रह्मणा कथितं रुद्र त्वया हत्याविनाशनम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले, हे महाराज जन्मेजय ! त्रिपुरासुरके मारेजाने पर

सारे देवता और विष्णुजी अपने २ स्थानको चले गये। तब ब्रह्माजीने श्रीमहादेवजीसे कहा कि, हे रुद्र ! अब आपको इस हत्याके नष्ट होनेका ॥ १ ॥ प्रयत्न (उपाय) करना चाहिये, क्योंकि इसके नष्ट होनेपर ही आपका कल्याण होगा। अत एव जहां देवेश्वर भगवान् मधुसूदन निवास करतेहैं वहाँ चलिये ॥ २ ॥ अनन्तर भगवान् विष्णुजीके उद्देश्यसे निकलकर ब्रह्मा और महादेवजी वैकुंठमें विष्णुके पास जा पहुँचे। तब शिवजीने कहा, हे देवेश्वर ! मैंने मूढताके वश होकर बडा ही दारुण काम करडालाहै ॥ ३ ॥ हे देव ! अब आप अनुग्रह करके इसके प्रायश्चित्तकी विधि बताइये। महादेवजीके इस प्रकार कहनेपर श्रीभगवान् बोले—हे शंकर ! आप अतिथि (संन्यासी) का रूप धारण करके पृथ्वीपर विचरतेहुए बारह वर्षतक तीर्थयात्रा कीजिये ॥ ४ ॥ और ब्रह्माजीके कपाल (खोपडी) को हाथमें रखकर उसमें प्रतिदिन भोजन कियाकीजिये, इस तरह करतेहुए जब आप गौतमी नदीके तटपर पहुँचेंगे, तब शुद्ध होजायँगे ॥ ५ ॥ जहाँ सीतेश अर्थात् सीतापति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराज विराजमान हैं वहीं आप पवित्र होवेंगे और फिर आगे मैं भी द्वापरमें उस हत्याकी (उसकी इच्छानुसार) रुधिर प्रदान करूंगा ॥ ६ ॥ अनन्तर भगवान् विष्णुके यह वचन सुनकर श्रीमहादेवजीने वैसा ही काम किया इसी कारण गोदावरीके किनारेपर श्रीमहादेवजी 'कपालेश' नामसे त्रिलोकमें प्रसिद्ध हुए ॥ ७ ॥ अनन्तर गोदावरी नदीमें स्नान करते ही श्रीमहादेवजीके हाथसे चिपटाहुआ ब्रह्माजीका कपाल नीचे गिरपडा ॥ ८ ॥ यदि सिंहराशिपर बृहस्पति और कुंभ राशिपर सूर्य स्थित हों इस प्रकारके उत्तम योगमें जो मनुष्य गोदावरीकी यात्रा करके उसमें स्नान करताहै वह सारे पापोंसे छूटजाताहै इसमें संशय नहीं ॥ ९ ॥ ब्रह्मा और विष्णुके प्रसाद (कृपा) से श्रीमहादेवजी जिस तीर्थमें पापोंसे छूटकर पवित्र हुए वह तीर्थ स्वर्ग, मर्त्य और रसातलमें भी दुर्लभ है, ऐसा मैं मानताहूँ ॥ १० ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीहरिने महादेवजीसे कहा, हे शंकर ! आप पृथ्वीतलपर पाँच देह धारण करके (महाराज पांडुके घर)

जन्म लीजिये और हे पार्वती ! आप भी महाराज द्रुपदके यहाँ उसकी पुत्री होकर उत्पन्न हूजिये ॥ ११ ॥ इस प्रकार भगवान् विष्णुके कहनेपर उनकी प्रेरणासे श्रीमहादेवजी अपने स्थान कैलासमें चले आये, तब ब्रह्माजीने कोपको उत्पन्न करके श्रीमहादेवजीके घरको भेज दिया ॥ १२ ॥ अनन्तर वह कोप धीरे धीरे गंगा, गौरी और महादेव इन तीनों जनोंके शरीरमें आ घुसा । इस कारण इन तीनोंके बीच आपसमें कलह अर्थात् लडाई झगडा होने लगा ॥ १३ ॥ तब पिनाकी श्रीमहादेवजी इस प्रकार कोपमें भरगये जैसे अग्नि घीकी आहुति पडनेपर जलतीहै और फिर क्रोधसहित उन्होंने गंगा और पार्वतीसे कहा ॥ १४॥ हे गंगे ! तू पृथ्वीमें जाकर शन्तनुकी भार्या हो जावे और हे गौरी ! तू जाकर महाराज द्रुपदकी पुत्री होजा ॥ १५ ॥ अपने भर्ता (पति)के इस प्रकार वचन सुनकर उन दोनोंने अपने मस्तकमें कराघात किया अर्थात् अपना अपना शिर पीटा और फिर कलहसे निवृत्त होकर गौरीने श्रीमहादेवजीसे कहा ॥ १६ ॥ गौरी बोली—हे देवदेवेश ! जिस जिस स्थानमें आप निवास करेंगे उसी उसी स्थानमें मैं भी रहूँगी और जिस स्थानमें मेरा अवतार (जन्म) हो आप भी उसी स्थानमें जन्म लेकर मेरे कलेवर (देह) को भोग करें ॥ १७ ॥ पृथ्वीमें एक अंशके द्वारा मेरा जन्म होगा और आप पाँच अंशमें जन्म ग्रहण कीजिये तो मैं आपके साथ पृथ्वीपर समानभावसे सुख, दुःख अथवा राज्यको भोगूँगी ॥ १८ ॥ पार्वतीजीके इस प्रकार कहनेपर श्रीमहादेवजीने गंगासे कहा, हे गंगे ! तू भी पृथ्वीपर मनुष्यरूप धारणकर हस्तिनापुरमें मेरे अंश शन्तनुको वरले अर्थात् उनको अपना पति स्वीकार कर ॥ १९ ॥ श्रीमहादेवजीके इस प्रकार वचन सुनकर गंगाने मानवीरूप धारण किया और फिर वह अपनी इच्छानुसार विचरनेवाली कामिनी गंगाके तटपर आनकर प्राप्तहुई ॥ २० ॥ इसी बीचमें चन्द्रवंशीय शन्तनुराजा जो कि आठ वसुमें एक वसुका स्वरूप और मनुष्योंमें शिवका रूप है, द्वापरयुगके बीच हस्तिनापुरमें उत्पन्न हुए वे महाराज शन्तनु अपने मन्त्री इत्यादिके सहित शिकार खेलनेके लिये गंगाके किनारेपर आनकर

उपस्थित हुए ॥ २१ ॥ २२ ॥ वहां गंगानदी सुन्दर स्त्रीका रूप धारण किये-हुए विराजमान थी तब महाराज शन्तनु गंगाको देखकर मोहित होगये ॥ २३ ॥ और फिर उसके रूपसे मोहित हुए शन्तनु उसके पास जाकर पूछनेलगे। शन्तनुने कहा—हे सुन्दरी ! तुम कौन हो ? किसकी भार्या हो? और किसकी पुत्री हो ? सो मुझे बताइये ॥ २४ ॥

चौपाई।

शन्तनु मोहे देखत नारी। तब गङ्गासन कह्यो विचारी।
कौन रूप वन हेतु हौ काहा। कहो सत्य सो हमहीपाँहा॥

गंगाने उत्तर दिया, मैं गंगा हूँ श्रीमहादेवजीके शापसे पृथ्वीतलपर आई हूँ। हिमाचलकी पुत्री हूँ और हे राजन् ! उत्तम वर मिलनेकी अभिलाषा कररही हूँ ॥ २५ ॥ महाराज शन्तनुने गंगाके यह वचन सुनकर कहा; हे गंगे ! मैं सारे राजाओंमें श्रेष्ठ और भूमण्डलपर एक ही राजा अर्थात् सार्व-भौम राजा हूँ, तुम मुझको अपना पति बनाओ ॥ २६ ॥ गंगा बोलीं—हे महाराज! साधु साधु अर्थात् बहुत अच्छा,जिस समयतक आप मेरी बातका पालन करेंगे, तबतक मैं कामचारिणी आपकी भार्या होकर रहूँगी ॥२७॥ इतनी कथा सुनकर महाराज जन्मेजयने पूछा कि यह शन्तनुराजा कौन हैं ? और किसके पुत्र हैं ? सो कहिये। वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! चन्द्रवंशीय राजा दुष्कृतके प्रतीप नामसे विख्यात पुत्र हुए इनके पुत्र शन्तनु हुए॥ २८ ॥ महाराज प्रतीपके वही शन्तनुराजा पुत्र हैं कि जिनकी भार्या गंगा हुई। अनन्तर महाराज शन्तनु गंगाकी प्रतिज्ञा स्वीकार करके उनको अपने घर ले आये ॥ २९ ॥ और घर आकर कहा 'यदि मैं तुम्हारी बात न मानूँ तो तुम (निःसन्देह) अपने स्थानको प्रस्थान करजाना' यह कह-कर महाराजने अपने घरमें उसके साथ विवाह करलिया ॥ ३० ॥ फिर महाराज शन्तनु समयानुसार उसके साथ आनन्दपूर्वक विहार करने लगे। तब समयप्राप्त होनेपर महाराजके आठ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ किन्तु जो जो पुत्र उत्पन्न हो उस उसको ही कामलोभी राजा शन्तनु गंगाके

कहनेसे नदीके प्रवाहमें डालदेवे ॥ ३२॥ इस प्रकार पुत्रोंको बहाते बहाते वृद्धावस्था उपस्थित होनेपर महाराजके आठवाँ पुत्र हुआ। तब उसको शन्तनुने नदीमें न डाला (वरन् छिपा रक्खा) यह देखकर गंगा बोली हे राजन् ! मैंने पूर्वमें आपसे जो प्रतिज्ञा कराली थी अब आप उसका पालन क्यों नहीं करते ? अतएव अब मैं शापके ऋणसे उऋण होकर अपने स्थान (घर) को चली जाऊंगी ॥ ३३ ॥

चौपाई ।

अष्टम गर्भहि भा संचारा। तब शन्तनु विनती अनुसारा।
सात पुत्रके नाशे प्राना। यहि सुतकर मोकों दै दाना॥
हँसिकै गंगा तब यह कही। इतने दिन तुमरे सँग रही।
वाचा झूँठ आज भइ आनी। हम हैं गंगा कहत बखानी॥
अष्टम राजा आप बचाया। यह कनिष्ठ जों अष्टम आया।
गंगापुत्र गोद नृप दीना। स्वर्गहि लोक गमन तब कीना।

हे महाराज! आपका यह पुत्र अष्टवसुमें अष्टम वसुका रूप है यह तीनों लोकमें गाङ्गेय नामसे प्रसिद्ध अजय तथा देवता और दैत्योंका जीतनेवाला होगा॥ ३४ ॥ और यह विक्रमशाली पुत्र मेराही नाम ग्रहण करेगा अर्थात् गाङ्गेय नामसे (सारे संसारमें) प्रसिद्ध होगा। यह बातें कहकर गंगा अपने स्थान कैलासको चलीगई ॥ ३५॥ इसके उपरान्त राजकुमार गाङ्गेय तीनों लोकमें विख्यात हुए और इधर महाराज शन्तनु भी बहुत दिनों पर्यंत भार्याहीन रहे ॥ ३६॥ फिर बुद्धिमान् भीष्मने अपने पिताको भार्याहीन देखकर हरिदास कैवर्त्तकी मत्स्यगंधानामवाली कन्यासे अपने पिताका विवाह करादिया ॥ ३७ ॥ यह सुनकर जन्मेजयने पूछा हे स्वामिन् ! उस हरिदास कैवर्त (मल्लाह) की कन्यासे महाराज शन्तनुका विवाह कैसे हुआ? हे द्विजोत्तम ! इस बातका मुझको बडाही सन्देह है अत एव आप मेरे इस सारे सन्देहको छेदन (शमन) करदीजिये ॥ ३८ ॥ वैशम्पायनजी बोले हे जन्मेजय ! सुधन्वा नामवाला एक राजा था वह किसी समय देशान्तर

(विदेश) को गया पीछे घरमें उसकी सुशीला नामवाली भार्या ऋतुमती हुई ॥ ३९ ॥ तब उसने अपने दासीको अपने प्रिय पतिके पास भेजा और वह सिकरीका रूप धरकर तुरन्त उसके पतिके पास गई ॥ ४० ॥ तब राजाने एक दोनेमें वीर्य निकालकर उस सिकरीरूपधारिणी दासीको देदिया वह उसको लेकर जैसेही चली की मार्गमें उसको एक और सिकरी मिलगई और उन दोनोंमें लडाई होनेलगी ॥ ४१ ॥ तब वह वीर्यका दौना उसके हाथसे छूटकर गंगाजीमें जापडा और उसको एक मछली निगलगई तथा मच्छसे सहवास करनेपर उसके द्वारा कन्याका गर्भ धारण करतीहुई॥४२॥ फिर उस मच्छीको मछली मारनेवाले धीवरने पकडकर उसका पेट चीरा तब उसमेंसे एक परम सुन्दरी कन्या निकली[1] (जिसको वह हरिदास नामक धविर पालने लगा) इस प्रकार पालन करते करते वह कन्या पन्द्रह वर्षकी होगई ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! वह कन्या उस कैवर्त्तके यहाँ रहतीहुई गंगाजीमें नाव चलायाकरती थी फिर किसी दिन प्रातःसमय पराशरमुनि आनकर प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ अनन्तर उस सुन्दरी कन्याको नाव चलाता हुआ देखकर ऋषिने कहा—हे बाले ! तुम इस नावको यहाँ ले आओ हम उसपार जाना चाहतेहैं ॥ ४५ ॥ मत्स्यगंधाने मुनिके इस प्रकार वचन सुन कर नावमें बैठालकर मुनिको पार उतारा फिर जब नावपर बैठकर तपस्वी पराशरजी गंगाके बीचमें आये ॥ ४६ ॥ तब उसका मुख तथा शरीरकी सुन्दरता देखकर पराशरजी मोहित होगये और उसके साथ कामचेष्टा रची अर्थात् रमण करनेकी इच्छा करतेहुए वह बोले॥४७॥ हे सुन्दरी !तुम्हारे मुखपर यह दो कमल हैं ? वा मत्स्य हैं ? अथवा कामदेवके बाण हैं ? या खंजन जातिके दो पक्षी हैं ? किंवा नेत्र हैं ? (फिर कुचाओंको निहारकर कहने लगे) क्या यह शिवकी दो मूर्ति हैं ? या सुवर्णके कलशे हैं? अथवा कोई और वस्तु हैं? वा तुम्हारे कुच हैं? और यह वस्त्र हैं ? अथवा बिजली,

१ पेट चीरनेसे वह मछली मरगई यह आद्रिका नामवाली अप्सरा थी जो कि ब्रह्माजीके शापसे यहाँ मछलीका रूप धारण करके रहतीथी अब मरनेपर फिर ब्रह्मलोकको प्राप्त हुई ।

या तारे हैं ? और हे सुरतिकी प्रीतिको जानने योग्य ! ये क्या पदार्थ हैं ? सो मुझे सत्यही सत्य बतादे क्यों कि मैं (इससमय) कामदेवके वशीभूत होरहाहूँ ॥४८॥ इसप्रकार कह उसके रूपसे मोहित हुए मुनिवर पराशरजी बार बार उसके शरीरको छूने लगे किन्तु वह कन्या ऐसा करनेको वारंवार मना करने लगी ॥ ४९ ॥ मत्स्यगंधा बोली । हे स्वामिन् ! आप मुझसे कामचेष्टा न कीजिये क्योंकि गंगाके किनारेपर खडे हुए मनुष्य चारों ओरसे देखरहे हैं तब मुनिने कन्याकी यह बात सुनकर उसकी लज्जा रखनेके लिये अपनी तपस्याके प्रभावसे अंधकार उत्पन्न करदिया जिससे सूर्य आच्छादित होगये और दिन तथा रात एकसी होगई तब उन दोनोंने परस्पर सहवास किया और उस मत्स्यगन्धाने उन ऋषिके प्रभावसे तत्काल गर्भ धारण किया ॥ ५० ॥ ५१ ॥

दोहा—यौवनवंत भई सुता, अरु सुगंध तनुसान ।
दशों दिशा अँधियार भा, कन्या दिय रति दान ॥

तब फिर श्री गंगाजीके सुन्दर तटपर वेदव्यासजीने जन्म ग्रहण किया और पराशरजीने अपना संग करनेके कारण उस कन्याका नाम योजन-गन्धा रक्खा ॥ ५२ ॥ ऐसा करके ब्राह्मण पराशर मुनिने अपने स्थानको प्रस्थान किया तब योजनगन्धाने रूप और उदारता इत्यादि गुणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न किया ॥ ५३ ॥ जो यह कि कमंडलु और जटाधारण किये वेदव्यासनामक (मुनि) पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए जो कि अपनी माताको नम-स्कार करके उसी समय तपस्याके निमित्त वनको जाने लगे ॥ ५४ ॥

वनान्तरं यदा यास्यंस्तदा मात्रा निवारितः ॥ ५५ ॥

उनको वनान्तरमें जाताहुआ देखकर मइया सत्यवतीने निवारण (मना) किया ॥ ५५ ॥

इति श्रीभारतसारे आदिपर्वणि भाषायां व्यासोत्पत्तिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

१ प्रथम यह मछलीके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण मत्स्यगन्धा और सत्य बोलनेके कारण सत्यवती नामसे प्रसिद्ध हुईथी ।

पंचमोऽध्यायः ५.

पञ्चमे व्यासनिर्याणं वने चित्रविचित्रयोः ।
निधनं धार्त्तराष्ट्राणां जन्महेतुश्च कथ्यते ॥ १ ॥

इस पाँचवें अध्यायमें श्रीवेदव्यासजीका वनको जाना, चित्र विचित्रकी उत्पत्ति, तथा नाश और धृतराष्ट्र इत्यादिके जन्मका कारण इतनी कथाएँ वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥

व्यास उवाच ।

किमिदं क्रियते मातर्मुञ्च मां मा निषेधय ।
यदा यदा समायाति दुःखं ते वसुधातले ॥
तदातदाहं स्मर्त्तव्यो ह्यागमिष्यामि निश्चितम् ॥ १ ॥

व्यासजीने कहा–हे मइया ! आप यह बाधा क्यों देरहीहैं ? और क्यों निषेध कर रही हैं अतएव निषेध न करके आप मुझको आज्ञा दीजिये। आपको पृथ्वीतलपर जब जब दुःख (विपद) उपस्थित हो तब तब मुझको याद करना तो मैं आनकर आपकी उस विपदको अवश्य दूर करूंगा॥ १ ॥ देखो जो पत्ते, जल और फलादि पदार्थोंके भोजन करनेवाले थे वे विश्वामित्र और पराशर इत्यादि मुनिजनभी नारीके सुन्दर मुखारविन्दको निहार कर मोहित होगये फिर जो आदमी घृतशर्करा युक्त तथा दूध दही इत्यादि भोजन करतेहैं वे अपनी इंद्रियोंको किसप्रकार रोकसकते हैं ? यह जगत् दंभस्वरूप है ॥ २ ॥ यद्यपि इस भूमिपर मतवाले हाथीके मस्तकको भेदन करनेवाले शूर (पराक्रमी) मनुष्य विद्यमान हैं और बहुत सारे आदमी महाबलवान् प्रचंड सिंहके जीतनेको भी समर्थ हैं किन्तु तथापि हम ऐसे शूर वीरोंके सन्मुख दृढतापूर्वक कहतेहैं कि कामदेवके गर्वको खर्व करने (तोडने) में विरलेही मनुष्य समर्थ होसकतेहैं अर्थात् लाखों करोडों मनुष्योंमें भी कोई विरलाही निकलेगा जो कामको जीत सके ॥ ३ ॥ इस प्रकार (अपनी मातासे) कहकर श्रीवेदव्यासजी शीघ्रतासहित रेवानदीके मनोहर

तटपर चलेगये । और उस कन्याके घर लौट आनेपर फिर दूसरी बार विवाह नाहिं किया ॥ ४ ॥ फिर किसी दिन योजनगन्धाकी गन्धसे मोहित होकर गाँगेय (भीष्मजी) गंगातटपर उसके निकट गये और उस कन्यासे पूछा हे सुन्दरी ! आप किसकी पुत्री हैं ? ॥५॥ उनके इस प्रकार पूछनेपर उस कन्याने भीष्मजीको उत्तर दिया कि मैं हरिदास (कैवर्त्त) की कन्या हूँ और जो कि मैं मछलीके पेटसे जन्मी हूँ इस कारण मेरा नाम मत्स्यगन्धा है ॥६॥उस कन्याकी यह बात सुनकर भीष्मजी हरिदासके पास गये,किन्तु कैवर्त्तजातिके लोग दुष्ट होतेहैं और भीष्मजी राजाओंमें श्रेष्ठ थे जो हो इन्होंने हरिदाससे अपने पिताके लिये उस कन्याको माँगा॥७॥हरिदास बोला—हेराजन् ! मैं आपके पिताके लिये तो कन्या नहीं देसकता किन्तु हाँ आपके लिये(अवश्य) दे सकताहूँ क्योंकि आपका पुत्र राजा होगा और उनका पुत्र राजा न होकर (सामान्य)शागीरदार होगा॥८॥हरिदास कैवर्त्तके इस प्रकार कहनेपर राजसत्तम महात्मा भीष्मजीने (उसी समय) कामके वेगको दमन करनेवाला ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया अर्थात् ब्रह्मचारी होगये ॥९॥ तब उस कैवर्त्तने इनको वह कन्या देदी और भीष्मजी उसको लेकर अपने घर चले आये तब महाराज शन्तनुने अपने घरमें ही उस बालासे विवाह करलिया ॥ १० ॥ उस कन्याके गर्भसे चित्र विचित्र नामवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए। तब इसीबीचमें महाराज शन्तनु मृत्युको प्राप्त होगये ॥ ११ ॥ अनन्तर महात्मा भीष्मजी मइयाकी तरुण अवस्था देखकर पृथ्वीपर कुशासन बिछायकर शयन करते, तथा अपनी मइयाको दिन रात वेद शास्त्र और पुराणोंकी कथा सुनाते रहते किन्तु यह चित्र विचित्र दोनों जने भीष्मजी तथा अपनी मातापर दुर्बुद्धि हुए ॥ १२ ॥ और मनमें विचारनेलगे कि हमारी माता सदैव भीष्मके घरमें ही क्यों स्थित रहतीहै ? अथवा उनके घरमें क्यों जागाकरतीहै ? और यह दोनों जने सूनें घरमें क्या करते रहतेहैं ? ॥ १३ ॥ तब किसी दिन रातमें यह चित्र विचित्र भीष्मको देखनेके लिये उनके घर गये और वहाँ घरके झरोखों द्वारा भीष्मको देखने लगे ॥१४॥ वहाँ देखा कि मातृभक्त भीष्मजी

सदाचारमें निरत हैं अर्थात् ब्रह्मचर्यव्रत धारण कियेहुए माताको शास्त्र सुनायरहे हैं यह देखकर वे दोनों भाई तापित और लज्जित हुए ॥ १५ ॥ तब वे पापाचारी अपनेको धिक्कारते हुए परस्पर कहनेलगे कि हम दोनोंजनेही पापके भागी हुएहैं अतएव अब इस पापसे छुटकारा मिलनेका उपाय शोचना चाहिये ॥ १६ ॥ इसके पीछे सवेरा होतेही उन दोनोंने धर्मात्मा भीष्मजीसे विज्ञप्ति (सूचना) करी कि हे तात ! हमारी आपके प्रति ऐसी पापबुद्धि हो गयी थी अब इस पापसे हमारा छुटकारा कैसे होगा ?॥ १७॥ भीष्मजीने कहा हे भाइयो ! जो आदमी माताकी हत्या करतेहैं और जो हजारों ब्रह्महत्या किया करतेहैं इन दोनोंको समान जानना चाहिये (इनके लिये यही प्रायश्चित्त है कि) वे वनमें जाय शमीकाष्ठ अथवा सूखे पीपलकी खखोडलमें बैठकर अपने शरीरको यदि भस्म करडाले ॥ १८ ॥ तवही वे शुद्ध हो सकतेहैं अन्यथा उनके शुद्ध होनेकी संभावना नहीं, फिर उनके इस प्रकार कहनेपर चित्र विचित्रने मनमें विचार किया ॥ १९॥ और उन्होंने उसी विधिके अनुसार महावनमें जाकर प्राण त्याग किया । तब उनके मरजानेपर नरसिंह महात्मा भीष्मजी शोकसे महान् पीडित हुए ॥ २० ॥ और तिस कर्मसे उन्होंने कामदेवकी बडी भर्त्सना (निन्दा) करी और सोचा कि अव राज्यका धारण (पालन) करनेवाला कोई भी पुत्र नहीं रहा ॥२१॥ तब धर्ममें तत्पर रहनेवाले महात्मा भीष्मजी नित्य (इस बातकी) चिन्ता करने लगे तब उनकी माताने कहा कि मेरे एक प्रथमके पुत्र हैं ॥ २२ ॥ जिनका नाम वेदव्यास है और जो महातेजस्वी सदा रेवानदीके तटपर स्थित रहते हैं । हे वत्स ! वे मुझसे कहगये हैं कि,विपत्तिके समय मुझको याद करना ॥२३॥ मैं तेरे स्मरण करतेही अवश्य आऊँगा और तेरी विपत्ति दूर करूँगा यह सुनकर भीष्मजीने कहा हे माता ! अब आप शीघ्रही उन मुनिको स्मरण कीजिये ॥ २४ ॥ भीष्मजीके यह कहनेपर उनकी माताने तत्काल वेदव्यासजीका स्मरण किया।उन्होंने आकर परमभक्तिपूर्वक माताको प्रणाम किया तब भीष्मजीने उनसे पूछा ॥ २५ ॥ भीष्मजी बोले हे प्रभो !

यह जो सप्तांग राज्य है सो मुझको सुखदायक नहीं है क्योंकि महाराज शन्तनुके विचित्र नामक पुत्र मृत्युको प्राप्त होगये हैं ॥ २६ ॥ इस समय यह राज्य पुत्रहीन है अत एव आप राज्यका धारण (पालन) करनेवाला पुत्र प्रदान कीजिये। भीष्मजीकी यह बात सुनकर श्रीवेदव्यासजीने कहा कि, आम्बिका और अंबालिका नामवालीं जो चित्र विचित्रवीर्यकी रानियाँ हैं ॥ २७ ॥ वे बिलकुल नंगी होकर मेरी दृष्टिके सम्मुख चली आवें। उनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर प्रथम अम्बिका नामवाली रानी आँखोंपर पट्टी बाँधकर व्यासजीके सन्मुख आई ॥२८॥ उसको आयाहुआ देखकर भगवान् श्रीवेदव्यासजीने अपने मस्तकको कम्पायमान किया। फिर हे राजन् ! दूसरी अम्बालिका नामवाली सारे शरीरमें सफेद चन्दन पोतकर आई॥२९॥ उसको देखकर भी व्यासजीने उसी प्रकार मस्तक कंपायमान किया। यह सब बात देखकर भीष्मने व्यासजीसे पूछा ॥ ३० ॥ उनके पूछनेपर श्रीवेदव्यासजीने उत्तर दिया कि हे भीष्म ! जो रानी सारे शरीरमें सफेद चन्दन पोतकर (मेरे सामने) आई है, उसके सर्वांग कोढी पुत्र जन्म लेगा। इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ३१ ॥ और जो रानी आँखोंको बाँधकर आई है उसके गर्भसे अंधा पुत्र जन्मेगा और तिसरी दासी जो भगवान् विष्णुका नाम जपतीहुई आयी है, उसका पुत्र वैष्णव (उत्पन्न) होगा ॥ ३२ ॥

एवमुक्त्वा गते व्यासे पुत्रास्ते च प्रजज्ञिरे ।
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विदुरो धर्मतत्परः ॥
भीष्मेण पालितास्ते चावर्द्धन्त निजवेश्मनि ॥ ३३ ॥

इस प्रकार कहकर श्रीवेदव्यासजी चले गये तब उन रानियोंने पुत्र उत्पन्न किये अर्थात् अम्बिकाके धृतराष्ट्र, अम्बालिकाके पाण्डु और दासीके विदुर इन तीन धर्मपरायण पुत्रोंने जन्म लिया ॥ ३३ ॥ अनन्तर महात्मा भीष्मजीके द्वारा पालेजाते हुए यह तीनों पुत्र अपने घरमें बढने लगे ॥ ३४ ॥

इति श्रीभारतसारे आदिपर्वणि भाषायां व्यासवरप्रदानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

षष्ठे दुर्वाससः कुन्ती लेभे मन्त्रं ततोऽभवत् ।
कर्णश्च कर्णमालस्य पाण्डुशापः स्त्रिया मुनेः ॥ १ ॥

इस छठे अध्यायमें कुन्तीको दुर्वासा मुनिसे मंत्र मिलना कर्णका उत्पन्न होना, कर्णमाल मुनिकी भार्याका पाण्डुकी शाप देना इतनी कथा वर्णन हैं॥ १॥

वैशम्पायन उवाच ।

शृणु राजन्महाबाहो कथां पापहरां शुभाम् ।
ततः कान्तारदेशस्य कुन्ती यादवपुत्रिका ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—हे महाबाहो ! महाराज जन्मेजय ! अब पापोंका नाश करनेवाली अति उत्तम कथा आप सुनिये । कान्तार देशमें यादववंशी एक कुन्तीभोज नामक राजा था जिसके घरमें कुन्ती नामवाली उसकी कन्या थी ॥ १ ॥ उस कुन्तीने साक्षात् महादेव स्वरूप लोकविख्यात श्रीदुर्वासामुनिकी भक्ती करी और स्तुति करके उनको सन्तुष्ट कर लिया ॥ २ ॥ तब मुनिवर दुर्वासाजीने संतुष्ट होकर कहा । हे कल्याणि ! मैं तुझसे प्रसन्न होगयाहूँ इसकारण तुझको एक अति उत्तम मन्त्र प्रदान करताहूँ इस मंत्रके द्वारा तू जिस पतिकी इच्छा करेगी वही आनकर उपस्थित होजायगा ॥ ३॥ इस भाँति मन्त्र देकर दुर्वासा मुनिने अपने स्थानको प्रस्थान किया । फिर सबेरा होतेही कुन्ती शोभायमान नदीके तटपर गई और सूर्यका ध्यान और आराधना करके उस मन्त्रके द्वारा उनको आकर्षण किया अर्थात् अपने पास बुलाया ॥४॥ उसके बुलाते ही भगवान् सूर्य तत्काल आनकर प्राप्त हुए और कुन्तीसे प्यारे वचन कहनेलगे । सूर्यने कहा-हे कुन्ती ! आपने मुझको किसकामके लिये याद किया ? मैं आपको निःसन्देह वरदूंगा ॥५॥ कुन्तीने कहा—हे भगवन्! मुनिवर दुर्वासाजीने मुझको एक वर (मंत्र) दियाथा कि तुझको जिस वर (पति) की अभिलाषा होगी वह तत्काल आनकर उपस्थित होगा सो उस मंत्रकी केवल परीक्षा करनेके लियेही मैंने आपका स्मरण कियाथा ॥ ६ ॥

कुंतीके ऐसा कहनेपर भगवान् सूर्यने कहा। हे सुभ्रु! यदि आपने मुझको बुलाही लियाहै तो अब संभोग प्रदान करो ऐसा होनेसे मैं आपको दाता और धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करूँगा ॥ ७ ॥ कुन्ती बोली—हे देव! आपका तेज अत्यन्त उग्र है सो उसके सहनेको मैं समर्थ नहीं हूँ। तब सूर्यने अल्परश्मि अर्थात् अपने तेजको बहुतही कम करके उसके साथ सहवास किया ॥ ८॥ अनन्तर उसके द्वारा कुन्ती शीघ्रही गर्भवती होगई और कर्ण-नामवाले एक पुत्रको उत्पन्न किया। किन्तु (लोक भयके कारण) उस पुत्रको (सन्दूक) में बन्द करके नदीके किनारे पर रखदिया और फिर वहाँसे अपने घरको लौट आई ॥ ९ ॥ तदनन्तर विकर्त देशके महाराज धृत-राष्ट्रका सेवक उस नदीके तटपर आया और उसने सन्दूक खोलकर वह बच्चा निकाललिया और अपनी रानीको सौंपदिया तब उसकी राधानामवाली रानी इस बालकका पालन पोषण करनेलगी ॥ १० ॥ अनन्तर सामुद्रिक शास्त्र कथित सारे राजलक्षणोंसे युक्त सर्वांगसुन्दर वह बालक अपने घरमें चन्द्रमाकी समान (प्रतिदिन) वृद्धिको प्राप्त होने लगा ॥ ११ ॥ वैशम्पा-यनजीने कहा—हे महाराज! सर्वज्ञानविशारद अर्थात् संपूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता महामतिमान् भीष्मजीने किसी समयमें महाराज शूरसेनको छत्रचामरादि कुछ देकर उनकी पृथानामवाली कन्या पांडुके निमित्त माँगी तब बुद्धिमान् महाराज शूरसेनने अपनी पुत्री पांडुको व्याहदी। प्रथम महाराज शूरसेनने अपनी पृथा कन्या अपने बडे भ्राता महाराज कुन्तिभोजकी गोदीमें बैठा-लदी थी इसी कारण पृथाका दूसरा नाम कुन्ती हुआ है फिर मथुरापुरीमें सारे राजाओंके देखतेहुए उस कुन्तीका विवाह किया और गांधार देशके राजा गान्धारके घर गान्धारी विषकन्या उत्पन्न हुई ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ उस देवी गान्धारीने प्रथम विवाहकी वेदीपरही सौ भर्त्ताओं (पतियों) का विनाश किया फिर पछि यही गान्धारी दीर्घायु धृतराष्ट्रके संग व्याहीगई ॥ १५ ॥ हे कुरूद्वह महाराज जन्मेजय! किसीसमय अत्यन्त बलवान् और मदोन्मत्त महाराज पाण्डु धनुष धारण कियेहुए मृगया (शिकार) के लिये

घोर वनमें विचरण कररहेथे ॥ १६ ॥ उसी वनमें कर्णमाल नामवाले महा-योगी तपस्या कररहेथे उनके कर्णमें क्रीडा करतेहुए पक्षी निवास करतेथे ॥ १७ ॥ वे पक्षी आपसमें इस तरह बातचीत करनेलगे कि यह ब्राह्मण स्त्रीघाती है, क्योंकि घरमें भार्याको इकली छोड यहाँ आकर तप कररहाहै अतएव इसको इस तपस्याका फल प्राप्त नहीं होगा वरन् प्रत्येक महीनेमें एक बालककी हत्याका पाप लगेगा ॥ १८ ॥ उन पक्षियोंकी ऐसी बात चीत सुनकर मुनिने कहा—हे पक्षीन्द्र ! मुझको किस निमित्तसे स्त्रीकी हत्या लगेगी ? मैंने तीर्थयात्रा और तपस्या इत्यादि अनेक पुण्य (पवित्र) कार्य कियेहैं ॥ १९ ॥ पक्षीन्द्रने उत्तर दिया—हे मुनिवर ! जो पुरुष अपनी भार्याको त्यागकर तीर्थयात्रा इत्यादि पुण्य संचय करताहै तो वे संपूर्ण कार्य विफल होतेहैं और उसको नरक मिलताहै ॥ २० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आपकी भार्या मृगी (हिरनी) का रूप बनायेहुए आपके वियोगमें दग्धांग होकर वनमें आपको देखती फिरती है ॥ २१ ॥ पक्षीके इस प्रकार कहनेपर उन मुनि-नेभी (तत्काल) मृगका रूप धारण किया और वनान्तरमें जाकर आदर-पूर्वक अपनी भार्याको देखने (खोजने) लगे ॥ २२ ॥ वहाँ उन्होंने हिरनि-योंके झुंडमें अपनी भार्याको पाया और परस्पर उसी रूपमें उस दोनोंजनोंने सहवास (संभोग) किया ॥ २३ ॥ दैवके संयोगसे महाराज पांडुभी शिकार खेलते हुए उसी बनमें आपहुँचे और वहां उन्होंने मृगोंके झुंडको देखा उसी झुंडमें वह मुनि और मुनिपत्नी (मृगरूपसे) सहवास कररहेथे ॥ २४ ॥ महाराज पांडुने व्याधेकी समान होकर बाणसे उन कामासक्त ब्राह्मण तथ ब्राह्मणी दोनोंकोही मारडाला अनन्तर महाराजने वहाँ जाकर उनको उनके असली रूपमें मराहुवा देखा ॥ २५ ॥ तब तो महाराज पांडु महादुःखी होकर कहने लगे कि हा दैव ! मैंने यह कैसा पापकर्म किया ? (संसारमें) मेरा समान पातकी दूसरा नहीं है इन दोनों स्त्री पुरुषोंकी दुःसह हत्या तो कल्पान्तमें भी नहीं छूटेगी ॥ २६ ॥ इस प्रकार कहकर महादुःख से सन्तप्त हो महाराजने हाथसे धनुष छोडदिया और हाथ जोडकर प्रार्थना करने-

लगे ॥२७॥ हे माता ! जो आपके मनमें इच्छा हो सो ही दंड मुझको दीजिये राजाकी यह बात सुन उन (आहत) स्त्रीपुरुषने कहा । हे राजन् ! स्त्रीके संभोगकालमें ही आपकी भी मृत्यु होगी ॥ २८ ॥

चौपाई ।

शाप देइ मुनि तजा शरीरा । महासोच वश भयोनृप वीरा ।
सोच करै अपुत्रा भयऊ । महा शाप यह मुनिवर दयऊ ।
भीषम निकट कह्यो तिन जाई । ऐसो शाप मुनीश कराई ।
तातें वनमें अब तप करिहैं । जा कारणते जगमें तरिहैं ।

इस प्रकार शाप देकर उन दोनोंने प्राण त्याग दिया और महाराज पाण्डु दुःख व शोकसे महाव्याकुल होकर अपने घरको चले आये ॥ २९ ॥ और उन्होंने शास्त्रकी विधिके अनुसार इस (पापका) प्रायश्चित्त किया । इसके पीछे संभोगकालमें महाराजाने कुन्तीको इस शापकी सारी बात कह-सुनाई ॥ ३० ॥ इस दुःखसे दुःखित होकर वह कुन्ती देवताकी आराधनामें तत्पर हुई । तब बहुत दिन बीतजानेपर किसी समय मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा ऋषि आये तब कुन्तीने पुत्रकी अभिलाषा करके उन मुनिकी पूजा करी ॥ ३१ ॥ दुर्वासाजीने कहा—हे सुन्दरी ! मैं आपकी भक्तिसे परम संतुष्ट हुआ हूँ अतएव वर माँग लीजिये, कुन्ती बोली—हे स्वामिन् ! यदि मेरे प्रति आप संतुष्ट होगये हैं तो मेरे अन्नका पारण कीजिये अर्थात् भोग लगाइये ॥ ३२ ॥ दुर्वासाजीने कहा—हे कल्याणि ! मैं आपके घरमें पारण (भोजन) तब करूंगा जब आप एक दिनके पके चावलोंका भोजन देवें ॥ ३३॥कुन्ती बोली—हे महामुने ! आपने जो कुछ कहा मैं वही सब करूंगी । यह सुनकर मुनिवर दुर्वासाजी अपने स्नान व नित्य नैमित्तिक कर्म करनेके लिये गंगाजीके किनारे पर चले गये ॥ ३४ ॥ उसी अवसरमें कुन्तीने भगवान् रवि (सूर्य) की प्रार्थना करी । तब प्रार्थना करते ही सूर्यने आकर कहा मुझको क्या काम करना होगा ? सो बताओ ॥ ३५ ॥ तब कुन्ती बोली—हे रवि !

आज मैं चावल बोये देती हूँ सो जिस समय पर्यंत यह चावल पकें तबतक आप आकाशमें टिके रहिये। कुन्तीकी यह बात स्वीकार करके सूर्य दो मास पर्यन्त आकाशमें टिकेरहे इसी बीचमें वे चावलभी पककर तैयार होगये ॥ ३६ ॥ तब मुनिवर दुर्वासाजीने कुन्तीके घर आकर उस नवीन अन्नका भोजन किया और फिर प्रसन्न होकर कहा—हे सुन्दरी ! अब आप वर माँगलीजिये ॥ ३७ ॥ कुन्ती बोली—हे ब्रह्मन् ! मेरे घरमें और तो सारी सम्पत्तियाँ विद्यमान हैं किन्तु एकमात्र पुत्र नहीं है । ब्राह्मण दुर्वासा-जीने कहा आप पवित्र होकर सदाचार अर्थात् स्नान दानादिक कर्म कीजिये और फिर मेरे पास आइये तब आपके मनको जो अच्छा लगेगा मैं वही वर प्रदान करूंगा ॥ ३८ ॥ मुनिवर दुर्वासाजीके ऐसा कहनेपर जब कुन्ती स्नान करनेके निमित्त चली गई, तब गान्धारीने छल किया अर्थात् कुन्तीका वेष बनाय दुर्वासा मुनिके पास पहुँची और हाथ जोड कर कहनेलगी कि हे प्रभो! अब मुझको वर प्रदान करदीजिये ॥ ३९ ॥ तब दुर्वासा ऋषिने यह वर दिया हे अनघे ! आपके सौ पुत्र उत्पन्न होंगे । यह सुनकर गांधारी हर्षित होतीहुई अपने घरको चली आई ॥ ४० ॥ फिर पीछे स्नान दानादि करके कुन्तीभी मुनिवर दुर्वासाजीके सामने आकर खडी होगई और बोली—हे महामुने ! स्वामी ! अब मुझको प्रसन्नता पूर्वक वरप्रदान कीजिये॥ ४१॥ यह सुनकर ऋषिने कहा—हे बालिके ! मैं तुझको सौ पुत्र उत्पन्न होनेका वर देचुकाहूँ किन्तु तू उससे भी तृप्त न हुई ?. कुन्ती बोली—हे ब्रह्मन् ! मेरासा रूप बनाकर (कदाचित्) गान्धारी आई होगी और उसीको आपने सौ पुत्र उत्पन्न होनेका वर दिया होगा ॥ ४२ ॥ तब दुर्वासाजी सोच विचार-कर बोले अच्छा तुम्हारे भी पांच पुत्र उत्पन्न होंगे । यह सुनकर कुन्ती बोली—हे भगवन् ! आपने गान्धारीको तो सौ पुत्र प्रदान किये और मुझको पांचही पुत्र देतेहो इसका क्या कारण है ? ॥ ४३ ॥ दुर्वासा ऋषि बोले—हे देवि ! तेरे पांचही पुत्र लडाई ठन जानेपर गान्धारीके सौ पुत्रोंको मारडा-लेंगे क्योंकि उसने बनावटी वेष धारणकरके वर लिया है ॥ ४४ ॥ और

इसके अतिरिक्त फिर तेरेही पुत्र राजा होकर प्रजाका पालन करेंगे इस मेरी बातको बिलकुलही सत्य जानना। वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जन्मेजय! इस प्रकार मुनिवर दुर्वासाजीकी बातें सुनकर उस कुन्तीने अपने पतिकी आज्ञासे ॥ ४५ ॥ धर्म, पवन और इन्द्र इन तीनोंके संयोग द्वारा तीन पुत्रोंको उत्पन्न किया। और पाण्डुकी छोटी रानी माद्रीने कुन्तीसे अश्विनीकुमार देवताका एक मन्त्र सीखकर जपा, उसके प्रभावसे अश्विनीकुमारोंके अंशस्वरूप माद्रीके दो पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया। इस प्रकार कुन्तीके स्मरण करनेपर पांडुके क्षेत्रमें पांच पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। कुन्तीके गर्भसे धर्मके अंश द्वारा युधिष्ठिर और पवनके अंशसे भीमसेन नामक पुत्रने जन्म लिया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

देवेन्द्रतनयो ह्यासीदर्जुनो रूपसुन्दरः।
नकुलः सहदेवश्च दस्रजौ माद्रिपुत्रकौ ॥ ४८ ॥

देवराज इन्द्रके अंशसे रूपमें परम सुन्दर अर्जुन उत्पन्न हुआ और अश्विनीकुमारोंके अंशसे माद्रीके नकुल और सहदेवनामक दो पुत्रोंने जन्मलिया ४८

इति श्रीभारतसारे आदिपर्वणि भाषायां पाण्डवोत्पत्तिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

सप्तमे शतपुत्राणां धृतराष्ट्रस्य जन्म च।
कुरुपाण्डवविद्याप्ती राज्यप्राप्तिश्च कथ्यते ॥ १ ॥

इस सातवें अध्यायमें धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंका उत्पन्न होना, कौरव पांडवोंका विद्या पाना और राज्य मिलना, ये कथाएँ वर्णन करीजाती हैं ॥ १॥

वैशम्पायन उवाच।

एवं पाण्डोर्नृपस्येह पुत्राः पञ्च महौजसः।
कालेकाले प्रसूताश्च ते पुत्राः पाण्डुनन्दनाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—हे महाराज जन्मेजय! इस प्रकार पांडुराजाके समय समयपर पाँच महापराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए ॥१॥ और उधर गान्धा-

रीने भी उसी समय एक अंडा उत्पन्न किया जिसमेंसे सौ पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई इन सौ पुत्रोंको धृतराष्ट्रके जानना चाहिये ॥ २ ॥ उस अंडेके दो भाग हुए उसके प्रथम भागमें एक मात्र राजा दुर्योधन उत्पन्न हुआ और दूसरे भागमें कलिस्वरूप धृतराष्ट्रके अन्यान्य पुत्र जन्मे (तिनके भी अग्रभागसे दुःशासनकी उत्पत्ति हुई) ॥ ३ ॥ वे सब पाले जानेपर (नित्य) चन्द्र-कलाके समान बढनेलगे और सबही बुद्धिमान् महोत्साही दानशील प्रिय-वादी अर्थात् प्यारीबातोंके कहनेवाले ॥ ४ ॥ सारे सुलक्षणोंसे युक्त शूर आलस्यहीन और कामदेवकी समान सुन्दरकांतिवाले गुणानुरागी चतुर नीतिके ज्ञाता और सत्यवादी थे ॥ ५ ॥ तब महाराज पाण्डुने लोकपालोंकी समान महाबलवान् व पराक्रमशाली अर्जुन इत्यादि अपने पाँच पुत्रोंको देखकर अपनेको इन्द्रसेभी अधिक माना ॥ ६ ॥ फिर किसीसमय कामी आदमियोंके कामदेवको बढानेवाली वसन्तऋतु आनकर उपस्थित हुई । तब महाराज पाण्डुने (उस शापकी बात भूल) कामदेवसे पीडित हो माद्रीके संग सहवास किया ॥ ७ ॥

चौपाई ।

माद्री पहँ राजा तब जाई । करि रतिकेलि ज्ञान बिसराई ।
ऋषिहि शाप तब आय तुलाना । पाण्डुनृपति कियो स्वर्ग पयाना ।
गर्भवती माद्री तब भई । पाण्डव नृपति देह तजि दई ।
देखा पाण्डु भयो तनु नाशा । दोउ रानी मिलि रुदन प्रकाशा ।
दाह कर्म राजाकर कीना । गर्भहेतु माद्री रहिलीना ।

फिर जिस ससय ब्राह्मणीके शापसे महाराज पाण्डु मोहद्वारा माद्रीमें आ-सक्त होकर स्वर्गको सिधारगये तब माद्रीने लाचार होकर अपने नकुल सहदेव नामक पुत्र कुन्तीको सौंपे और आप अग्निमें प्रवेश करनेका उद्योग करने लगी अर्थात् पतिके साथ सती होजानेकी इच्छा करी ॥ ८ ॥ क्योंकि जो स्त्री अपने मृत पतिके साथ अग्निमें बैठकर अपने देहको भस्म करडालतीहै वह

सती स्त्री अपने अधम पतिकोभी तारदिया करतीहै ॥ ९ ॥ और अपने मृत पतिके देहपर जितने रुँवें होतेहैं उतनेही वर्षनके वह स्त्री अपने पतिके साथ स्वर्गमें आनन्द भोगती रहतीहै ॥ १० ॥ भर्त्ताके विना शृँगारका आनन्द और इस लोकमें सुख इस प्रकार प्राप्त नहीं होसकते जिस प्रकार तांतके विना उत्तम वीनभी नहीं बज सकती और पहियेके विना उत्तम रथभी नहीं चल सकता ॥ ११ ॥ अतएव पतिके विना सौ पुत्रवाली स्त्रीभी (कदापि) सुखी नहीं होसकती । इसके पीछे ब्राह्मणोंके शापसे आरंभ करके महाराज पाण्डुके मरनेतकका सारा हाल मंत्रीने धृतराष्ट्रको जा सुनाया ॥ १२ ॥ धृतराष्ट्रने यह सब समाचार सुन मंत्रियों और पुरोहितों समेत गंगातटपर जाय ॥ १३॥ यथाविधि महाराज पाण्डुकी सब पारलौकिक क्रिया सम्पन्न करी ॥ १४ ॥ फिर पैदल, हाथी, रथ, घोडे, बहुत सारा धन, वस्त्र, गौ और सबसामग्री सहित शय्या (महाराज पांडुके निमित्त) ब्राह्मणोंको दिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर कुन्ती अपने पुत्र गान्धारीको सौंप हस्तिनापुरमें आई और अपने पतिका दुःख प्रकाशित किया ॥ १६ ॥ तब गांधारी अपनेही पुत्रोंकी तरह उन माद्रीके पुत्रोंका पालन पोषण करने लगी और धृतराष्ट्रने उन पुत्रोंका नामकरण करवाया ॥ १७॥ अर्थात् वेदकथित रीतिसे उनके नाम ब्राह्मणोंके द्वारा धरवाये और भाईके उन पुत्रोंको भाईके स्नेहसेही देखनेलगे ॥ १८ ॥ वे सब बालक काकपक्षधारी अर्थात् कौवेके पंखके समान काले बालोंवाले और सारे गहने पहरे हुए थे वे बूढे पिता धृतराष्ट्रकी प्रेमसे सेवा करनेलगे ॥ १९ ॥ वे पांडव और कौरव दोनोंही आपसमें स्नेह रखते और परस्पर एक दूसरेकी कुशल मनाते थे जिससे कोई इस बातको नहीं समझ सकताथा कि यह पांडुके पुत्र हैं अथवा धृतराष्ट्रके हैं ॥ २० ॥ सब जने एकही जगह सोते और एकही जगह खाते पीते थे तथा सब बालक कभी गेंद और कभी कौडियोंसे खेला करते ॥ २१ ॥ वे सबही आपसमें चौपडसे तथा तांतके बाजोंसे रमते थे अर्थात् खेलाकरते और द्रोणाचार्यजीसे धनुष विद्या सीखते थे ॥ २२ ॥ वे सब ब्राह्मणश्रेष्ठ

द्रोणाचार्यजीसे धनुष विद्या सीखकर उसमें चतुर होगये किन्तु इन सब सीखनेवालोंमें अर्जुन विशेष चतुर हुए और कर्णभी प्रायः अर्जुनके समा- नही चतुर हुआ ॥ २३ ॥ किन्तु दुर्योधन धनुष विद्यामें पारदर्शी (चतुर) नहीं हुआ तब मूर्ख दुर्योधन कर्णको विद्यामें विशेष चतुर देख गुरु द्रोणा- चार्यजीसे बोला कि आप इसको न पढाइये ॥ २४ ॥

दुर्योधनेन दुष्टेन कर्णं मा पाठयेदिति ।
तदा कर्णेन वीरेण शिक्षितं पर्शुरामतः ॥ २५ ॥

जब दुष्ट दुर्योधनने कर्णको पढानेको (द्रोणाचार्यसे) मना किया तब वीर कर्णने परशुरामजीसे जाकर पढा ॥ २५ ॥

इति श्रीभारतसारे आदिपर्वणि भाषायां दुर्वाससो वरप्रदानं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

अष्टमे कर्णसामर्थ्यं नागराजस्य तोषणम् ।
सुयोधनस्य संकष्टान्मोचनं सम्यगुच्यते ॥ १ ॥

इस आठवें अध्यायमें कर्णकी सामर्थ्य, नागराज (वासुकी) का कर्णके प्रति संतुष्ट होना, दुर्योधनका संकटसे छुटकारा इतनी कथा वर्णन हैं ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

धृतराष्ट्रेण राज्ञा वै ज्येष्ठो दुर्योधनः सुतः ।
हस्तिनापुरमध्ये तु राजस्थाने निवासितः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—हे महाराज जनमेजय ! धृतराष्ट्रने अपने जेठे पुत्र दुर्योधनको हस्तिनापुरके राज्यसिंहासनपर बैठालदिया ॥ १ ॥ तब दुर्योधनने (अन्यान्य) सब राजकुमारोंको अपने वशीभूत करलिया और सूर्यपुत्र कर्णकोभी अत्यन्त प्रीतिसे वशीभूत करलिया ॥ २ ॥ एक दिन रातके समय दुर्योधनकी प्रिय स्त्री जो कि भानुमती नामसे प्रसिद्ध और सुन्दरी थी महा- भाग वासुकीने उसको निश्चय करके उसकी इच्छा करी अर्थात् तिससे अनु- राग करनेके अभिलाषी हुए ॥ ३ ॥ अनन्तर वे महाविषधर नागराज प्रति-

दिन पातालसे आगमनपूर्वक दुर्योधनको परास्त करके उस स्त्रीसे सहवास करनेलगे ॥ ४ ॥ तब कर्णने यह भेद जानकर दुर्योधनसे पूछा—हे राजन् ! आपका मुख मलीन क्यों है ? और आप किस दुःखसे पीडित होरहेहैं?॥५॥ दुर्योधनने उत्तर दिया—हे मित्र ! मेरी भार्याको नागराज वासुकी भोगते हैं, उस दुःखसे ही मैं अत्यन्त खिन्न(दुःखित) रहता हूँ—हे कर्ण ! यह दुःख किसीसे कहूँभी कैसे ? ॥ ६ ॥ कर्ण बोला—हे दुर्योधन! आप कुछ चिन्ता न कीजिये और देखिये कि मैं एकही बाणपाशसे उस दुष्टको भूतलशायी करके बाँधलूंगा । इस प्रकार कहकर वीर कर्णने (रात्रिके समय) नागराज वासुकीको बाणपाशसे बाँधलिया ॥ ७ ॥ उस बाणपाशमें बँधनेसे सर्पराजको अत्यन्त दुःख व संकट प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ तब नागराजने कहा—हे कर्ण ! इस भानुमतीने कामसे मोहित होकर ऐसा कुटिल काम किया कि यंत्रमें बिन्दु लिखकर फिर वह गुप्त सिद्धिदायक यंत्रका पात्र भूमिमें गाडदिया ॥ ९ ॥ हे राजेन्द्र ! उस यंत्रका एक बिन्दु मेरे मस्तकपर आगिरा इसी कारण मैं उसके घर आयाकरता हूँ ॥ १०॥ हे नराधिप ! वह यंत्रपात्र भानुमतीकी शय्याके ऊपरी दाहिने पायेके नीचे गडरहाहै सो उसको आप निकाल लीजिये॥ ११॥ यह सुनकर कर्णने उस नागराजका बन्धन खोलदिया और फिर मनुष्यके मोहित करनेवाले उस यंत्रको भूमिसे निकाललिया ॥ १२ ॥ उसी दिनसे सर्पराज वासुकी पातालमें चलेगये और कर्णकी कृपासे राजा दुर्योधनको सुख प्राप्त हुआ ॥ १३॥ जिसदिन कर्णने नागराजको बन्धनसे मुक्त किया था उसी दिन नागराजने कर्णको यह वर दिया कि, हे महाराज ! हम संग्राममें आपकी सहायता किया करेंगे ॥ १४ ॥ इस तरह कहकर नागराजने अपने स्थानको प्रस्थान किया और दुर्योधनने कर्णके प्रति सन्तुष्ट होकर उसको बीस हजार—तीस ग्राम उपहारमें प्रदान किये॥ १५॥ इसके अतिरिक्त हे जनमेजय ! राजा दुर्योधनने प्रीतिपूर्वक आधा लाख धन, तीन लाख हाथी, घोडे, रथ तथा पैदल ऐसी चतुरंगिणी सेनाभी कर्णको दी ॥ १६ ॥ एक समय कर्णने अपने पिता भगवान् सूर्यको भक्तिके द्वारा संतुष्ट करके

यह बात पूछी कि हे तात ! मैं अपनी महतारीको नहीं जानताहूँ कि वह कौन है ? अतएव हे प्रभो ! आप बता दीजिये ॥ १७ ॥

सूर्य उवाच ।

अग्निधौतमिदं वस्त्रं यस्या ह्युपरि धार्यते ।
नो दह्यते च या नारी सा ते माता प्रकीर्त्तिता ॥ १८ ॥

भगवान् सूर्यने उत्तर दिया—हे पुत्र ! यह अग्निधौत वस्त्र अर्थात् अग्निसे जलताहुआ कपडा जिस स्त्रीपर डालाजाय और इस कपडेके तापसे जो स्त्री दग्ध न हो आप उसी स्त्रीको अपनी माता समझलेना ॥ १८ ॥

इति श्रीभारतसारे आदिपर्वणि भाषायां कर्णसामर्थ्यादिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

अन्योन्यं नवमे वैरं कुरुपाण्डवयोस्तथा ।
गरदानेन भीमस्य गङ्गापातनमुच्यते ॥ १ ॥

इस नवम अध्यायमें कौरव पांडवोंके आपसमें वैरकी और भीमसेनको विष देकर कौरवोंको गंगामें डालदेना यह कथा वर्णन की जायगी ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

धृतराष्ट्रसुताः सर्वे पंचैते पाण्डुनन्दनाः ।
षोडशाब्दास्तु संजाता महाबलपराक्रमाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—हे महाराज जनमेजय ! अब धृतराष्ट्रके सब पुत्र और पांडुके पांचों महा बलवान् व पराक्रमी पुत्र सोलहवर्षकी अवस्थाको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ यह सब मल्लविद्या और पिप्पलीविद्यामें रमने लगे अर्थात् वनमें उपरोक्त विद्याओंका अभ्यास करनेलगे। फिर किसी दिन उस वनमेंही भीमसेनने सब कौरवोंको परास्त किया ॥ २ ॥ फिर किसी दिन भीमसेन अर्जुनसे बोले कि हे भइया ! आज मैंने खेल खेलमेंही सौओं कौरवोंको परास्त कियाहै ॥ ३ ॥ फिर सारे कौरवोंको वृक्षसे भूमिपर पटकदिया इस तरह कौरव और पाण्डव आपसमें वैरकरने लगे ॥ ४ ॥ एक वस्तुके अभि-

लाषी बांधव वैरी हुए और सब कौरव महा बलवान् भीमसेनसे द्वेष (वैर) करनेलगे ॥ ५ ॥ कारण कि उस वनमें भीमसेनने अकेलेही सारे कौरवोंको वटके वृक्षसे भूमिपर पटकदिया ऐसा करनेपर किसीका शिर फटगया, किसीके हाथ पैर टूटगये तथा सारे अंगकट फट-गये, जब इस तरहसे सब कौरवोंका निरादर हुआ ॥ ६ ॥ तब एक दिन कर्ण, शकुनी और सौबल इत्यादि एकान्तमें बैठकर मंत्र (सलाह) करनेलगे तब कर्णने दुर्योधनसे कहा ॥ ७ ॥ कि इन महाबली पाण्डवोंसे अपना क्या काम है ? हे राजन् ? देखिये यह पांडुनन्दन महाबलवान् व वीर्यवान् है ॥ ८ ॥ आपके पिता धृतराष्ट्रने उनकोही राज्यअंशका भागी कियाहै अब जिस किसी उपायसे उन पांडुके पुत्रोंको मारडालना चाहिये ॥ ९ ॥ नहीं तो वे आपका राज्यभी छीनलेंगे इसमें सन्देह नहीं । कर्णके इस प्रकार कहनेपर राजा दुर्योधनने कहा ॥ १० ॥ कि भीमको तो अवश्यही मारडालना उचित है इस भाँति कहकर किसी दिन विषमिश्रित मोदक (जहरीले लड्डू) तैयार किये और भोजन करानेके लिये फिर भीमसेनको बुलायागया । भीमसेन उन लड्डुओंको खाकर अत्यन्त तृप्त हुए ॥ ११ ॥ उनके खाजानेपर भीमसेनका शरीर शिथिल हो आया तब भीससेनको पृथ्वीपर गिराहुआ देखकर दुर्योधनादि कौरवोंने उनको उठाय गंगाजीमें डालदिया ॥ १२ ॥ भीमसेनके गिरतेही गंगाकी भीतरी पृथ्वी फटगई और उसमें एक बडा भारी छेद होगया जिसके द्वारा भीमसेन रसातलमें जापहुँचे वहाँ जब सर्पोंने इनको विषसे पीडित देखा तो उन्होंने इनका सारा विष भक्षण करलिया और पांडुनन्दन भीमसेन जीवित होगये ॥ १३ ॥ तब उन नागोंने भीमसेनका अतिथिसत्कार किया और पछि इनको जलसे बाहर निकालकर (हस्तिनापुर) भेजदिया तब भीमसेन ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर आठवें दिन अपने घर आनपहुँचे ॥ १४ ॥

आगते भीमसेने तु सन्तुष्टाः सर्वपाण्डवाः ।
राज्यं चक्रुर्महाभागा विष्णुभक्ता धृतव्रताः ॥ १५ ॥

अनन्तर भीमसेनके आजानेपर सब पांडव अत्यन्त संतुष्ट हुए और फिर वे व्रतधारी विष्णुभक्त महाभाग पांडव धर्मनीतिसे राज्यका पालन करने लगे १५

इति श्रीभारतसारे आदिपर्वणि भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

दशमे पाण्डवावास इन्द्रप्रस्थेऽग्नितो भयम्।
हिडिम्बादर्शनं जन्म भीमसून्वोर्निगद्यते ॥ १ ॥

इस दशवें अध्यायमें पाण्डवोंका इन्द्रप्रस्थमें वास, युधिष्ठिरके यशकी वृद्धि, हिडम्बनामवाले असुरकी मृत्यु और भीमके दो पुत्रोंकी उत्पत्ति इन कथाओंका वर्णन कियाजाताहै ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि पाण्डवानां च कीर्त्तनम् ।
यः शृणोति नरो भक्त्या राजसूयफलं लभेत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—हे महाराज जन्मेजय ! अब हम आपसे पाण्डवोंकी कथाका वर्णन करतेहैं जो आदमी भक्तिसहित इस कथाको सुनताहै उसको राजसूययज्ञका फल मिलजाता है ॥ १ ॥ यह सब कौरव और पाण्डव समुद्र-तक सारे भूमण्डलके अधीश्वर हुए और इधर पांडवोंके दलमें युधिष्ठिर राजा हुए ॥ २ ॥ हे महाराज ! कौरवदलके राजा दुर्योधन हुए किन्तु युधिष्ठिरके राज्यमें प्रजाको बडा सुख हुआ ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर अर्जुन नकुल तथा सह-देव ये चारों भ्राता धनुषधारी और भीमसेन गदा धारी हुए । इसके अति-रिक्त नकुल हयाध्यक्ष अर्थात् अश्वविद्यामें चतुर और सहदेवज्योतिष विद्यामें निपुण हुए ॥ ४ ॥ और धर्मपुत्र युधिष्ठिर सब बातोंमें चतुर हुए । और पृथ्वीका तीसरा भाग युधिष्ठिरको देकर पृथ्वीके दो भाग आप ग्रहण पूर्वक कौरव और पाण्डव धर्मानुसार अपना अपना राज्य पालन करनेलगे । फिर हे राजन् ! एक दिन मुनिश्रेष्ठ देवर्षि नारदजी ॥ ५ ॥ ६ ॥ स्वर्गसे महाराज युधिष्ठिरके पास आकर कहनेलगे । हे पृथ्वीपते ! आप दुर्योधनपर भरोसा

मत कीजिये ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् धर्मपुत्र युधिष्ठर देवर्षि नारदजीके इस प्रकार वचन सुनकर अत्यन्त सावधानीसे भाइयोंसमेत हस्तिनापुरमें राज्य करनेलगे ॥ ८ ॥ महाराज युधिष्ठरके राज्यमें न कभी अकाल पडा और न कभी पाप हुआ वरन् उनके शासनकालमें गायें बहुत दूधवालीं और पृथ्वी बहुत अनाज-वाली हुई ॥ ९॥ भक्ष्य भोज्य सम्पन्न होनेके कारण सर्वत्र मनुष्य सुखी थे। आधि,व्याधि और बुढापे इत्यादिसे कोई आदमी दुःखी नहीं था॥ १०॥इसके पीछे पांडव और अपने पुत्रोंकी अद्भुत कलह देखकर भेदबुद्धियुक्त धृतराष्ट्रने अपने प्रधान वैरोचनसे कहा ॥ ११ ॥ हे वैरोचन ! आप इन्द्रप्रस्थपुरीको जाइये और वहां पांडवोंके निवासार्थ अद्भुत मन्दिर तैयार कराइये ॥१२॥ वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! इस प्रकार आज्ञा पानेपर मन्त्री ज्योंही बाहर निकला उसी समय उस वैरोचनको दुर्योधन मिलगये ॥१३॥ उसको देखकर दुर्योधनने पूछा—हे मन्त्रिवर ! आप कहाँको जारहे हैं ?सो कहिये। वैरोचनने उत्तर दिया कि मुझको धृतराष्ट्रने शोभायमान इन्द्रप्रस्थको भेजा है ॥ १४ ॥ मैं पांडवोंके रहनेको घरोंकी रचना करूंगा उसके यह वचन सुनकर राजा दुर्योधनने कहा ॥ १५ ॥ दुर्योधन बोला—हे मन्त्र-शास्त्रविशारद महाबुद्धिमान् वैरोचन ! जिनको कोई आदमीभी नहीं जान-सके आप इस प्रकारके घर बनाइये ॥ १६ ॥ आप इन्द्रप्रस्थमें लाक्षामय अत्यन्त विस्तृत मनोहर घर बनवाइये । उनमें निवासकरतेहुए पाण्डवोंको हम जलाडालेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १७ ॥ मन्त्री वैरोचन 'ऐसाही करूंगा' कहकर विदुरजीके स्थानको चलागया और उनको एकान्तमें दुर्यो-धनकी सारीबात कहसुनाई ॥ १८ ॥ यह हाल सुनकर महात्मा विदुर हाहाकार कर उठे और फिर अत्यन्त प्रिय वचनोंद्वारा वैरोचनसे कहा॥ १९॥ कि आप लाक्षागृहके बडे शिखरके तले (सुरंगाकार) एक छेद करदीजिये जिसके द्वारा (आग लगनेके समय) धर्मात्मा पांडव बचकर निकल जासके ॥ २० ॥ ऐसा काम करनेपर क्या ब्रह्मा क्या विष्णु क्या महादेव क्या सारे देवता और क्या लक्ष्मी इत्यादि देवियाँ सब आपके प्रति सन्तुष्ट होंगे ॥२१॥

अतएव आप बुद्धिमान् हैं मेरी बात मानकर तदनुसार काम करेंगे वैरोचन मन्त्रीने उनकी (विदुरजीकी) यह बातें सुनकर ॥ २२ ॥ घर बनानेकी कामनासे शीघ्र इन्द्रप्रस्थको प्रस्थान किया वहाँ पहुँचकर मन्त्रीने सेवकोंद्वारा बहुत सारे घर बनवाकर तैयार करवादिये ॥ २३ ॥ और फिर पांडवोंके रहनेको जो घर पहले बनायागया था वह घर लाखका निर्माण किया तथा उसके पश्चिमीभागमें दरवाजा रखकर एक पतली शिलाके चारों ओर चूना लगायकर उस दरवाजेको बन्द करदिया गया ॥२४॥ इस प्रकार वहाँ इन्द्रप्रस्थमें घर बनायकर वह मन्त्री फिर हस्तिनापुरमें लौट आया और सब दुर्योधनादिकोंसे कहा ॥ २५ ॥ कि मैं आपकी बातको सिद्ध करके हस्तिनापुरको लौटाहूँ ॥ २६ ॥ उस वैरोचनमन्त्रीकी यह बात सुनकर सब किसीने कहा कि, अब आपने सारा काम सिद्ध करदिया । उसी अवसरमें महाराज धृतराष्ट्रने पांडवोंको ॥ २७ ॥ इन्द्रप्रस्थमें भेजा और बोले कि पांडव तथा कौरवोंमें कभी झगडा नहीं होना चाहिये तब पांडव इन्द्रप्रस्थ जानेके समय विदुरजीके घरको गये ॥ २८॥ तब महात्मा विदुरजीने उनको हितोपदेश किया उस हितोपदेशको (आदरपूर्वक) ग्रहण करके ॥ २९ ॥ पाण्डव मइयाके साथ शोभायमान इन्द्रप्रस्थको चलेगये वहाँ प्रजाके आदर मान करने पर सुखसे निवास करनेलगे ॥ ३० ॥ वहाँ वे पांडुनन्दन प्रतिदिन ब्राह्मणोंको भोजन करानेलगे । फिर किसी दिन महाराज युधिष्ठिरने कौरवोंको ॥ ३१ ॥ भोजन करनेके निमित्त बुलाया । सो वे कौरव महाराज युधिष्ठिरके घर एकमहीनेभरतक टिके रहे और जब वह बिदा होकर चले उस समय वैरोचन मंत्रीको घर जलादेनेकी आज्ञा देगये ॥३२॥ कौरवोंने महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञा पाकर हस्तिनापुरको प्रस्थान किया और नौकर चाकर अन्नदान करनेकी थकावटसे सुस्त होगये । ऐसा अवसर (मौका) देखा ॥३३॥ अनन्तर अत्यन्त व्यग्रहुए देखकर वैरोचनने रातमें चारों ओरसे अग्नि लगादी।उसी दिन संध्याकाल एक भिल्लिनीभी अपने पांच बेटोंको संग लिये वहाँ आन पहुँची ॥ ३४ ॥

चौपाई ।

लाक्षा गृह तब पावक जारा । लागी जाय स्वर्गसो धारा ॥
नगर लोग सब रोदन करहीं । पांडव बिना धीर नहिं धरहीं ॥
हाय युधिष्ठर वृकोदर बीरा । हा कुन्ती लक्ष्मणा शरीरा ॥
हा माद्रीके सुत बल धारी । नगर लोग रोदन कर भारी ॥

किन्तु पांडवोंने उसको घरमें जानेसे रोकदिया । इसी समयमें हे महाराज ! महात्मा विदुरजीने अपने सेवकोंको ॥ ३५ ॥ आग लगनेका समय जानकर पांडवोंके पास भेजदिया और विदुरजीके उन दासोंने जाकर कहदिया कि पश्चिम तरफवाले शिखरके तले एक छोटासा दरवाजा शिलासे ढकरहा है आप उसीके द्वारा इस घरसे बाहर निकल जाइये ॥ ३६ ॥ इसी बीचमें वह घर अग्निसे जलताहुआ दिखाई दिया किन्तु अग्निका इतना प्रकाश होरहाथा कि उसके कारण पाण्डवोंको निकलनेका रास्ता नहीं दीखा ॥ ३७ ॥ तब सहदेवजीसे पूछनेपर उन्होंने दरवाजा बताया किन्तु यह भिल्लिनी अपने पांचों पुत्रों समेत वहीं जलकर भस्म होगई ॥ ३८ ॥ और पांडव लोग तत्काल विदुरजीके कहे और सहदेवजीके दिखाये रास्तेसे बाहर निकल गये ॥ ३९ ॥ अनन्तर महाबलवान् भीमसेनने वैरोचनको अपना घर फूँकते हुए देख कर उसे उठाकर उसी अग्निमें झोंकदिया ॥ ४० ॥ इस प्रकार कार्य करके वे सब पांडव एक अद्भुत वनमें जा पहुँचे और उस वनमें उन्होंने एकचक्रा-नामवाली पुरीको देखा ॥ ४१ ॥ अनन्तर पांडवोंने उस वनमें एक ब्राह्मणीसे घर माँगलिया और उसको अपनाही समझकर वहाँ निवास करनेलगे । फिर किसी दिन महादुःसह बकनामवाला दैत्य ॥ ४२ ॥ उस नगरीमें आनकर नित्य मनुष्योंको भोजन करने लगा तब नगरीके सारे आदमियोंने सलाह करके बकासुरसे निवेदन किया ॥ ४३ ॥ हे असुरराज ! हम सबजने आपको भोजन करनेके लिये वारी वारीसे नित्य एक मनुष्य दिया करेंगे । आप इस तरह वस्तीको उजाड मत कीजिये । तब बकासुरने उन लोगोंकी यह बात

सुनकर उसको मानलिया ॥ ४४ ॥ तबसे हे महाराज ! बकासुर प्रतिदिन एक मनुष्यका भोग लगाया करता और वारी वारीसे पुरीके सारे आदमी एक मनुष्य नगरीके बाहर जाकर उस दैत्यको दिया करें ॥ ४५ ॥ एक दिन उस ब्राह्मणीके पुत्रकी वारी आई कि जिसके घरमें पांडव रहा करते थे तब वह ब्राह्मणी रोतीहुई विलाप करने लगी उसके रोनेकी आवाज भीमसेनने सुनी ॥ ४६ ॥ तब भीमसेन उस ब्राह्मणीके पास गये और पूछा—हे मइया ! तुम क्यों रोरही हो ? मुझसे उसका कारण कहसुनाओ मैं अवश्य ही तुम्हारे दुःखको नष्ट करूंगा ॥ ४७ ॥

चौपाई ।

तबै ब्राह्मणी कहै विचारी । मम दुख कौन सकैगो टारी ॥
नाम बकासुर दैत्य जु आहै । प्रतिदिन सो मानुष बलि चाहै ॥
एकचक्रनगरी कर राजा । मानुष एक खात नित साजा ॥
वर्षपाँच महँ एक घर परै । ता घरको नर भक्षण करै ॥
एक मनुजको चहै अहारा । सो आपद है आज हमारा ॥
मोल लेनकी शक्ती नाहीं । यह चरित्र होवे गृहमाहीं ॥

ब्राह्मणीने उत्तर दिया—हे स्वामी ! उस बकासुरके भोजन करनेको आज मेरे पुत्रकी वारी है और फिर यह मेरा पुत्रभी इकलौताही है ॥ ४८ ॥ उसकी यह बात सुनकर भीमसेनने उसके पुत्रका बचाना अंगीकार किया अनन्तर उसी ब्राह्मणीके पुत्रको खानेके लिये वह बकासुर रात्रिमें आया ४९

चौपाई ।

दोनों हाथ दौरिकर मारा । करी न शंका पवन कुमारा ॥
वृक्ष उखारी एक पुनि लयऊ । जाय असुरके मस्तक हनेऊ ॥
तब हिं बकासुर वृक्ष उखारा । महाक्रोध करि भीमहि मारा ॥
तब फिर मल्लयुद्ध दोउ ठाना । उठ्यो गर्द लोपित भय माना ॥
पीठ उपारि जंघ दियो भारा । धरिग्रीवा तब भूमि पछारा ॥

मुखतें रुधिर धार बहिराना। परा भूमि महँ छाँडेउ प्राना॥
मारि बकासुर भीम भुवारा। सुरन कीन्ह तब जयजयकारा॥

तब महाबलवान् भीमसेनने अनेक भाँति युद्ध करके उस असुरको मार-डाला और उस दैत्यके मारे जानेपर नगरके सारे मनुष्य परम संतुष्ट हुए ॥ ५० ॥ तब सबेरा होतेही उस नगरके सब मनुष्योंने पांडवोंका पूजन किया इसके पीछे जिस स्थानमें हिडम्ब नामवाला दैत्य रहाकरता था, भीमसेन समेत सब पांडव उसके निकटवर्ती वनमें गये ॥ ५१ ॥ वहाँ पहुँचकर इन्होंने रात्रिमें निवास किया फिर किसी समय भीमसेन मृगया (शिकार) के लिये गये वहाँ हिडम्बदैत्यकी कन्या हिडम्बाने जो कि झूलेमें झूलरही थी; झूलनेके लिये बलवान् व बुद्धिमान् भीमसेनको स्वीकार करलिया ॥ ५२ ॥ उसी अवसरमें वहाँ हिडम्ब नामक दैत्य आनकर उपस्थित हुआ जिसको भीमसे-नने बाहुयुद्ध करके तत्काल यमलोक पहुँचा दिया ॥ ५३ ॥

भीमेनोत्पादितौ पुत्रौ बर्बरीकघटोत्कचौ।
हिडिम्बायाञ्च तत्रैव मात्रा सह निवासितौ ॥ ५४ ॥

फिर भीमसेनने (गांधर्वविवाहकी रीत्यनुसार उस हिडिंबासे विवाह किया) और बर्बरीक तथा घटोत्कचनामवाले दो पुत्र उत्पन्न किये वे दोनों पुत्र पिताकी आज्ञानुसार अपनी मइयाकेही पास रहे ॥ ५४ ॥

इति श्रीभारतसारे आदिपर्वणि भाषायां बकवधानन्तरं भीमस्य सुतोत्पत्तिर्नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

एकादशे मत्स्यवेधः पाञ्चाली पञ्चभर्तृका।
कुन्त्या वचनतः साभूत्स प्रसङ्ग इहोच्यते ॥ १ ॥

इस ग्यारहवें अध्यायमें मत्स्यवेध अर्थात् मच्छी बींधना कुन्तीके कहनेसे द्रौपदीका पांच पति स्वीकार करना यह प्रसंग वर्णन कियाजाता है॥ १

वैशम्पायन उवाच ।

ततस्ते पर्वतात्सर्वे प्रस्थिताः पाण्डुनन्दनाः ।
द्रुपदस्य च देशं च पञ्चालं प्रापुरादरात् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! इसके पीछे युधिष्ठिरादि पाण्डुके सब पुत्रोंने उस पर्वतसे प्रस्थान किया और आदरपूर्वक महाराज द्रुपदके पञ्चाल देशमें आनकर प्राप्त हुए ॥ १ ॥ और द्रुपदने जो वहाँ अपने कन्या द्रौपदीके विवाहार्थ मत्स्यवेध (मच्छी बींधने) की प्रतिज्ञा कर रक्खीथी, उसकी बात महात्मा पांडवोंने सुनी ॥ २ ॥ अनन्तर पांडवगण उस कन्यारूपी रत्नकी अभिलाषा किये गुप्तरीतिसे धनुष धारणपूर्वक संन्यासीका रूप बनायेहुए महाराज द्रुपदके मण्डपमें पहुँचे ॥ ३ ॥ उन महाकाय और महावीर पांडवोंको वहांके किसी राजाने नहीं पहिचाना कि यह पांडव हैं और वहाँ कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन इत्यादि भी सब आनकर प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ तदनन्तर कृष्ण इत्यादि सारे यादव और महाबलवान् पृथ्वीके (और भी) सब राजा उपस्थित हुए । तब फिर उस स्थानमें महाराज द्रुपदने एक जलका कुंड बनवाया और उस कुंडके धोरेही एक वज्रसार स्तंभ खडा करवाकर उसपर सोनेका मत्स्य रखदिया ॥ ५ ॥

चौपाई ।

अति विस्तारी कुंड बनाये । तेल कडाहे बीच भराये ॥
ताके तरे हुताशन लागी । जाको देखि वीरता भागी ॥
गाडा खंभ वज्र कर ताहा । ऊपर खंभ मच्छकर आहा ॥
हीरा कनीके नयन बनाये । ताके तरे सो चक्र भ्रमाये ॥
मीन नयनमें वेधहि बाना । सो कन्या पावहि परमाना ॥

(तब महाराज द्रुपदने यह प्रतिज्ञा करी कि) जो मनुष्य इस मच्छको नीचे जलमें देखकर बाणसे बींध डालेगा । उसको अपनी कन्या व्याहदूंगा । यह सुन अनेक राजाओंने उस मत्स्यके बींधनेका उद्योग किया किन्तु कोई

भी सफल मनोरथ नहीं हुआ । वरन् चोट खाखाकर सब पीछे हटगये और अपने अपने स्थानोंपर जा बैठे । तब महाराज द्रुपदने अत्यन्त दुःखी होकर कहा ॥ ६ ॥ द्रुपद बोले कि अब क्या किया जाय और किससे कहाजाय? क्योंकि पांडव तो जलकर मरगये इस समय मुझको ऐसा कोई भी वीर दिखाई नहीं देता जो इस मच्छको बींधसके ॥ ७ ॥ अर्जुनके विना सारी-पृथ्वी वीरोंसे खाली होगई, अथवा अर्जुनके विना सम्पूर्ण क्षत्रीकुल निर्वीर्य होगया । महाराज द्रुपदके इस प्रकार वचन सुनकर अर्जुन तत्काल सभामेंसे उठे ॥ ८ ॥

चौपाई ।

पारथ तब भुज धनुष चढाये । अलख पंच शर गुरुते पाये ॥
मारा बाण क्रोध तब होई । मीन नयनमें बींधेउ सोई ॥
रोहु वेध पारथ तब कीन्हा । हर्षित इन्द्र दुन्दुभी दीन्हा ॥
जय जय जय सब कहहिं पुकारा । द्रुपद सुता जयमाला डारा ॥

उस काल अर्जुनको भगवान् वासुदेवके अतिरिक्त और किसी राजाने भी नहीं पहिचाना । तब सब राजाओंके देखतेहुए अर्जुनने शीघ्रता सहित अपने धनुषको हाथमें लिया और उसपर बाण चढाकर क्षणभरमें मच्छको बींधडाला॥९॥ अनन्तर महाराज द्रुपदने अत्यन्त हर्षित होकर जिसकी सारे राजालोग इच्छा कररहेथे ऐसी अपनी परम सुन्दर कन्या द्रौपदी अर्जुनको प्रदान करदी ॥ १० ॥ यह सब बात देखकर (अन्यान्य) सब राजालोग गुस्सेमें भरगये और उन संन्यासियोंकी निन्दा करतेहुए उनको डराने धम-काने तथा बकवाद करनेलगे ॥ ११ ॥ कि कैसे अचंभेकी बात है, जो हम-लोगोंके देखते देखते इस कन्याको यह योगी लियेजाते हैं इस प्रकार कह-कर वे सब राजा (अस्त्र शस्त्रोंसे सज्जित हो) उठ खडेहुए और परस्पर कह-नेलगे इन योगियोंको प्रहार करके वध करडालो ॥ १२॥ उनकी इस तरह बात चीत सुनकर पवननन्दन भीमसेनने (महाक्रोधित होकर) एक खम्भ

हाथमें उठालिया और उसके द्वारा उन राजाओंको मारनेलगे तब भीमसेनके हाथसे पिटकर वे राजा दशों दिशाओंमें भागनेलगे ॥ १३ ॥ उनमें कोई कोई तो वहीं मरगया कोई कोई हाय ! हाय ! करने लगा अर्थात् हाहाकार करताहुआ भागा । उस दिनसे पाण्डव अत्यन्त प्रसिद्ध होगये इसमें सन्देह नहीं ॥ १४ ॥ हे जनमेजय ! इसके पीछे महाराज द्रुपदने बडी धूमधामसे अर्जुनके साथ द्रौपदीका विवाह कर दिया और पांडवोंका पूजन करके फिर उसी स्थानमें आदरपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका भी पूजन किया ॥ १५॥ और कन्याके दहेजमें उन्होंने हाथी, घोडे, पैदल, रथ, दासी, दास, रत्न, माणिक और मोती तथा बहुतसा सुवर्ण दिया ॥ १६ ॥ इस प्रकार विवाह कार्यके सम्पन्न होजानेपर पांडव अपने घरको चलेगये । किंतु जबतक यह घर पहुँचे तबतक सहदेवजी इनसेभी जलदी घरको गये ॥ १७ ॥ और घर जाकर धर्मात्मा सहदेवजीने अत्यन्त हर्षित मन होकर अपनी मइया (कुन्ती) से कहा हे माता ! आज हम सब भाइयोंको सुलक्षण सम्पन्न कोई उत्तम वस्तु मिली है ॥ १८ ॥ उनकी यह बात सुनकर माता कहनेलगी ॥ १९॥

चौपाई ।

माता कह्यो भलो भयो काजा । पांचों बंधु भोग कर राजा॥
पाछे अर्जुन भेद बताई । विजय नाम अरु कन्या पाई ॥
पुनि कुन्तीतौकरतबखाना । कर्मको लिखा होत नहिं आना॥
वचन हमार न मिथ्या होई । पांचों बन्धु भोग कर सोई ॥

कुन्ती बोली हे पुत्रो ! जो कोई भी उत्तम वस्तु प्राप्तहुई है उसको तुम पांचों भाई आपसमें बांटकर भोग करो यह मेरी बात सुनकर इसीके अनुसार काम करो इतनेहीमें वे चारों भाईभी घर आपहुँचे ॥ २० ॥ और माताकी यह बात सुनकर उनको बडाही अचंभा हुआ । हे महाराज ! इस तरह विवाह सम्पन्न करके राजा द्रुपदसे पूजित (सम्मानित) होकर॥ २१ ॥ वे पांडव सब सेना साथ ले द्रोणाचार्य व भीष्म इत्यादिसे युक्त शोभायमान इन्द्रप्रस्थको चलेगये ॥ २२ ॥

यादवाः कृष्णसहिता गतास्ते द्वारकां प्रति ।
गजाह्वये गताः सर्वे कौरवा भीष्मसंयुताः ॥ २३ ॥

इस ओर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द सब यादवोंसमेत द्वारका पुरीको चलेगये और भीष्मजीके सहित सब कौरवोंने हस्तिनापुरको प्रस्थान किया ॥ २३ ॥

दोहा-गोवर्द्धन गोपालको, ध्यान हृदय महँ आन ।
आदि पर्वको तिलक यह, बहुविधि कियो बखान ॥
पढहिं सुनहि जे प्रेमसों, पावहिं सब मन काम ।
जियत सर्व सुख पायकरि, अन्त जाँय सुरधाम ॥
भगवतकथा विचित्र अति, पढहिं नित्य करि नेम ।
चार पदारथ पावहीं, नित नव मंगल क्षेम ॥
जासु चरित आनन्दनिधि, सकल सुखनके मूल ।
मिश्र कन्हैयालाल पहँ, सदा रहो अनुकूल ॥

इति श्रीभारतसारे आदिपर्वणि मुरादाबादनिवासिपण्डितकन्हैयालालमिश्रकृत-भाषाटीकायां द्रौपदीविवाहो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इति आदिपर्व ॥



भारतसार-भाषा।

श्रीहरिः।

सभापर्व २.

द्वादशोऽध्यायः १२.

दोहा–विधि हरि हर पद वन्दि पुनि, शारद शीश नवाय।
सभापर्वको तिलक अब, बरनूं रुचिर बनाय॥
योगी जन जेहि ध्यावहीं, यश गावत श्रुति चार।
विघ्न नाश प्रभु कीजिये, अपनी ओर निहार॥

श्लोक–द्वादशे खाण्डवादाहो मयदैत्यविमोचनम्।
अर्जुनेन सभा लब्धा धनुस्तदिह वर्ण्यते॥ १॥

इस बारहवें अध्यायमें खाण्डववनका भस्म होना अर्जुनका मयनामवाले दैत्यको बचाना और फिर अर्जुनको सभा तथा धनुषकी प्राप्ति इन कथाओंका वर्णन कियाजायगा॥ १॥

वैशम्पायन उवाच।

एकस्मिन्समये राजन्कृष्णः कमललोचनः।
पाण्डवानां हितार्थाय शक्रप्रस्थं जगाम ह॥ १॥

वशम्पायनजीने कहा–हे महाराज जनमेजय! एक समय कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी पाण्डवोंके हितकी कामनासे हस्तिनापुरको गये॥ १॥ तब श्रीकृष्णचन्द्रजीको आयाहुआ देखकर पाण्डव अत्यन्त हर्षित हुए और कुन्ती, युधिष्ठिर तथा अर्जुनने उनको छातीसे लगायलिया॥ २॥ उसी

तरह भीमसेनने भी श्रीकृष्णको हृदयसे लगाया । इसके पीछे नकुल सहदेवने श्रीकृष्णको प्रणाम किया और फिर भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णनेभी अत्यन्त विनयपूर्वक धर्मराज युधिष्ठिरकी वन्दना करी॥ ३॥अनन्तर श्रीकृष्ण पाण्डवोंके हितकी कामनासे कई महीने वहाँ टिके रहे। एक दिन परवीर-घाती अर्जुन और श्रीकृष्ण ॥ ४ ॥ जहाँ सभामें विराजमान होरहेथे वहाँ अग्निदेवता अजीर्णयुक्त शरीरसे ब्राह्मणका रूप धारण किये आनकर उप-स्थित हुए ॥ ५ ॥ वहाँ आय अग्निदेवताने प्रणाम किया और अत्यन्त दीन-भावसे उनके सामने खडे होगये, तथा अत्यन्त विनयपूर्वक कृष्णार्जुनसे कह-नेलगे ॥ ६ ॥ हे स्वामिन् ! महाराज मरुतने अत्यन्त विस्तारसहित यज्ञ सम्पादन किया था और उन्होंने एक वर्ष पर्यन्त घृतकी पूर्णाहुति प्रदान की थी ॥ ७ ॥ और उन्होंने मुझको दिन रात हाथीकी सूंडके समान अखंड आहुतियाँ प्रदान की थीं जिनसे मेरे (पेटमें) अजीर्ण (बदहजमी) होगई है सो अब आप मुझको बचाइये ॥ ८ ॥ अग्निदेवके इसतरह कहनेपर श्रीकृ-ष्णने उत्तर दिया कि, आपका यह अजीर्ण कैसे जायगा ? और किस प्रकार आपको सुख मिलेगा ? ॥ ९ ॥ अग्निने कहा—हे विष्णो ! यदि मैं इससमय देवराज इन्द्रके खांडववनको जलाकर उसकी अनेक वनस्पतियोंको भोजन करूँ तबहीं मेरा यह अजीर्ण जातारहेगा ॥ १० ॥ अग्निकी यह बात सुन-कर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—हे पार्थ ! हम आप और अग्नि शीघ्र इन्द्रके खांडववनको चलें और वहाँ पहुँचकर तत्कालही अग्निको भोजन कराओ । क्योंकि खाण्डववनको भस्म करके अग्निदेवता सन्तुष्ट होंगे और इनका अजीर्ण जातारहेगा. धर्ममें तत्पर रहनेवाले सब किसीको सबकाही उपकार करना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ इस प्रकार उनकी बात सुनकर अर्जुन श्रीकृष्णके सहित अग्निको साथले इन्द्रके सेवकोंसे रक्षित खांडववनको गये ॥ १३ ॥ तब अग्निभी वहां जाकर उस खाँडववनको जलानेलगे । उस वनको जलताहुआ देख वहाँ रहनेवाले इन्द्रके सेवकोंने ॥ १४ ॥ इन्द्रके

पास जाकर कहा कि, हे स्वामिन् ! किसीके कहनेसे अग्निदेवने आपके खांडववनको जलाडाला है ॥ १५ ॥

दोहा—पावक वनमाँही लगी, सुरपति क्रोध अपार ।
प्रलयकालके मेघ सब, आयउ वैर सँभार ॥

चौपाई ।

वर्षै नीर सबै वन तहाँ । पावक जरै खण्डिवन जहाँ ॥
अन्धकार मेघन घन साजा । अतिही क्रोधवन्त सुरराजा ॥
एक बुन्द जल भेदत माहीं । है निशंक पावक वन खाहीं॥
पशु पक्षी अरु तरुवर जेते । पावक सकल जराये तेते ॥
जीवजन्तु सब करै पुकारा । दानव दैत्य भये जरि छारा ॥

उनकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्रने खाण्डववनमें मेघोंद्वारा वर्षा करनी प्रारम्भ करदी । यह देखकर महावीर अर्जुनने बाणसमूहसे उस वनके ऊपर छप्परसा रोपदिया ॥ १६ ॥ ऐसा करनेपर हे महाराज ! शीघ्रही हुताशन (अग्नि) की रक्षा होगई अर्थात् बादलोंका पानी आगको नहीं बुझासका । अनन्तर अग्निके द्वारा जलतेहुए उस वनमें अर्जुनने मयनामवाले दैत्यको मरनेसे बचाया ॥ १७ ॥ तब दानवने प्रसन्न होकर अर्जुनको एक ऐसी सभा दी जिस सभाके देखनेवाले आदमीको जल और स्थलका भ्रम होता था इसमें सन्देह नहीं ॥ १८॥ फिर देवराज इन्द्र अपनी सारी करतूतको व्यर्थहुआ देखकर भगवान् श्रीकृष्णजीके पैरोंमें आगिरे और कृष्ण तथा अर्जुनकी स्तुति करके स्वर्गको चलेगये ॥ १९ ॥ तब अग्निने अर्जुनको एक गांडीव धनुष और एक अक्षय तरकस (जिसके बाण कभी खाली न हों) समर्पण किया और फिर श्रीकृष्णार्जुनकी आज्ञा मिलनेपर वेभी प्रसन्न हो स्वर्गको सिधारगये ॥ २० ॥ अनन्तर अर्जुनभी श्रीकृष्णके सहित उस सभाको लेकर शीघ्रही इन्द्रप्रस्थको लौट आये और वहाँ आनकर कचहरीके धोरे उस सभाको स्थापित करदिया ॥ २१ ॥

फिर धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञा मिलनेपर भगवान् श्रीकृष्ण भी द्वारका जानेको तैयार हुए उस काल अर्जुनसे कृष्णने कहा ॥ २२ ॥ हे अर्जुन! आप यती (संन्यासी) का रूप बनाकर (द्वारकानगरीमें) सुभद्राको हरनेके लिये आना और समय देखकर रथमें बैठीहुई सुभद्राको हरलेना ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

इति कृष्णमतिं ज्ञात्वा ह्यर्जुनेन तथा कृतम् ॥ २४ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णकी ऐसी मति (सलाह) जानकर अर्जुनने वैसाही काम किया ॥ २४ ॥

इति श्रीभारतसारे सभापर्वणि भाषायां सुभद्राहरणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

त्रयोदशे पाण्डवानां राजसूये महोदयः ।
योगिन्याः सहदेवस्य संग्रामोऽभूत्स कथ्यते ॥ १ ॥

इस तेरहवें अध्यायमें पांडवोंके राजसूययज्ञका परम उत्साह और सहदेव व योगिनीका संग्राम इतनी कथा वर्णन कीजायगी ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्मुनिसत्तमः ।
युधिष्ठिरं समागत्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले कि, हे महाराज जन्मेजय ! एक समय मुनिश्रेष्ठ देवर्षि श्रीनारदजी लोकोंमें विचरतेहुए महाराज युधिष्ठिरके निकट आकर इस प्रकार कहनेलगे ॥ १ ॥ नारदजी बोले—हे महाराज युधिष्ठिर ! आपके पिता कुकर्मके फलसे अर्थात् कर्णमाल नामक ब्राह्मणका वध करनेके कारण उसके पापसे नरकमें पडेहुए हैं ॥ २ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे देव ! जब कि मेरे पिता नरकमें गये हैं तब मेरे जीवित रहनेका क्या फल है ? अतएव जिस किसी उपायसे हो पिताको नरकसे छुडाना चाहिये ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणोत्तम ! आप शीघ्रही उसका उपाय बताइये मैं उसको निःसन्देह करूँगा । नारदजीने उत्तर

दिया—हे महाराज ! आप राजसूयनामवाले महायज्ञका अनुष्ठान कीजिये उसके पुण्यप्रतापद्वारा आप अपने पिताको नरकसे निकाल सकेंगे ॥ ४ ॥ युधिष्ठिरने कहा—हे महामुने ! वह राजसूय यज्ञ किसविधिसे करना चाहिये ? तथा हे मुनीश्वर ! उसमें किस देवताकी पूजा करनी पडती है ? सो भी बतादीजिये ॥ ५ ॥ नारदजीने उत्तर दिया—हे महाराज ! उस यज्ञमें अठासीहजार उत्तमोत्तम ब्राह्मणोंको बुलाना चाहिये और मण्डप बनाकर उसमें सारे राजाओंको बुलायकर बैठालदेना चाहिये ॥ ६ ॥ हे राजन् ! बारह योजन अर्थात् अडतालीस कोशतक लम्बा चौडा सुन्दर मण्डप रसातल (पाताल) में विद्यमान है॥ ७ ॥ और द्रव्य लंकामें विद्यमान है, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी द्वारका पुरीमें स्थित हैं और राजालोग जरासन्धके घर कारागार (जेलखाने) में बन्द होरहे हैं ॥ ८ ॥ यदि यह सब पदार्थ आजाँय और इसके पीछे कामधेनु गाय आनकर उपस्थित होजावे तब आपका राजसूययज्ञ होसकता है।देवर्षि नारदजीकी ऐसी बातोंको सुनकर पाण्डवोंने विचार किया ॥ ९ ॥ कि इस विषयमें क्या करना चाहिये ? क्योंकि काम बहुतही भारी है ॥ १० ॥ अर्जुनने कहा कि लंकापुरीमें जाकर कांचन तो मैं ले आऊँगा । नकुलने कहा (पातालमें जाकर) मण्डप मैं ले आऊँगा ॥ ११ ॥ सहदेवने कहा कृष्णको लेनेके निमित्त (द्वारकापुरीको) मैं चलाजाऊँगा । तब भीमने कहा—हे राजेन्द्र ! जिसके बंधन (जेलखाने) में राजालोग पडेहुए हैं ॥ १२ ॥ मैं उस जरासन्धको मारकर सब राजाओंको बन्धनसे छुडालाऊँगा ॥ १३ ॥ अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने कहा मैं अपने सत्यसे केवल स्मरण करतेही यहां कामधेनुके बुलालूँगा । किन्तु सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीको यहां लेआकर पीछे कार्यारम्भ करनेसे काम ठीक होगा ॥ १४ ॥ अनन्तर ज्योतिर्विद् अर्थात् ज्योतिषविद्याके जाननेवाले सहदेवजीने अतिभव्य (उत्तम) मुहूर्त्तमें चौदशके दिन पश्चिमदिशास्थित द्वारकापुरीके लिये प्रस्थान किया ॥ १५ ॥ परन्तु छठ और चौदशके दिन पश्चिम दिशामें रुद्राणीनामवाली दारुण योगिनी रहाकरती है वह सामने

आई ॥ १६ ॥ उसका मुख काला आँखें लाल लाल और हाथमें उत्तम त्रिशूल लियेहुए वह योगिनी सहदेवजीको देखकर बोले–तुम कहां जाते हो? सो मुझे बताओ ॥ १७ ॥ सहदेवजीने उत्तर दिया–हे पापरहिते! मुझको राजसूययज्ञका कार्य उपस्थित है इसलिये मैं श्रीकृष्णके ले आनेको द्वारका-पुरीमें जारहा हूँ ॥ १८॥ योगिनी बोली–हे महावीर! मैं इस दिशामें आगे स्थित होरही हूँ अतएव यदि आप आगे जानाही चाहते हैं तो मेरे संग युद्ध कीजिये ॥ १९ ॥ सहदेवने उत्तर दिया कि हे योगिनी! मैं पुरुष और तू अबला है फिर मेरा तेरा युद्ध कैसे होसकताहै? सो बता, योगिनीने कहा–हे राजन्! जिस प्रकार पूर्वकालमें भवानी कालिका और शुम्भ दैत्यका युद्ध हुआ था ॥ २० ॥ उसी तरह मेरी आपकी लडाई होगी इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार कहकर वे दोनों जने आपसमें संग्राम करने लगे ॥२१॥ अनन्तर वीरवर सहदेवजीने लडते लडते अर्द्धचन्द्रबाणके द्वारा उसका वस्त्र काट डाला जिससे वह योगिनी वस्त्रहीन (नंगी) हो गयी, यह देखकर सहदेवने युद्धको रोकदिया ॥ २२ ॥ योगिनीने कहा–हे वीर! आप मेरे साथ संग्राम करनेको समर्थ हो (तब फिर पीछे क्यों हटते हो?) सहदेवजीने उत्तर दिया–हे योगिनी! जो लोग नंगी स्त्रीको देखते हैं उनको नरकमें जाना पडता है२३॥ इसी पापके डरसे मैंने युद्धको त्याग दिया है अब तुम नया वस्त्र पहरलो तो फिर युद्ध करना आरम्भ करदिया जायगा ॥ २४ ॥ (अनन्तर दूसरी बार युद्ध आरम्भ होनेपर) उस योगिनीके शरीरसे पृथ्वीपर जितनी रक्तकी बूँदें गिरीं उतनेही उस देवीके समान बल व पराक्रमवाले रूप उत्पन्न होगये॥२५॥ उस समय देवी बोली–हे महावीर! अब आप मेरे युद्धका सञ्चय देखिये और इस धरातलपर नग्नरूप विना कोई भी क्या देखता है?॥ २६ ॥ आप सत्य शूर और दृढव्रत हैं क्योंकि पराई स्त्रीको बहनकी समान मानते हैं अत-एव मैं आपपर प्रसन्न हुई हूँ जो आपके मनको अच्छा लगे मुझसे वही वर मांगलीजिये ॥ २७ ॥ सहदेवजीने कहा–हे देवि! यदि आप (सत्यही) मेरे ऊपर सन्तुष्ट होगई हैं तो मुझको ऐसा उत्तम वर दीजिये जिससे मैं पृथ्वीत-

लपर बहुतसे रूप धारण करनेको समर्थ हूँ ॥ २८ ॥ सहदेवजीके ऐसा कहने-पर देवीने 'तथास्तु' कहा अर्थात् उनकी इच्छानुसार वर देकर देवीने अपने स्थानको प्रस्थान किया और सहदेवजी द्वारकानगरीको चले गये ॥ २९ ॥ वहाँ सहदेवजीने राजड्योढीपर उपस्थित होकर विजयनामवाले द्वारपालसे कहा कि आप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराजसे जाकर यह निवेदन कीजिये कि हस्तिनापुरसे सहदेव आया है ॥ ३० ॥ यह सुनकर द्वारपालने श्रीकृष्णसे जाकर सारा समाचार निवेदन किया तब श्रीकृष्णने द्वारपालको आज्ञा दी कि हे द्वारपाल ! तुम जाकर सहदेवजीसे पूछो कि आप किस-कामके लिये आये हैं ? ॥ ३१ ॥ तब उस द्वारपालने सहदेवजीसे जाकर पूछा कि—हे वीर ! आप किस कार्यके उपस्थित होनेपर यहां आये ? । सहदेवजीने तत्काल उत्तर दिया कि मैं युद्धके निमित्त आया हूँ ॥ ३२ ॥ सहदेवजीके ऐसा कहनेपर द्वारपालने श्रीकृष्णसे जाकर सारा हाल ज्योंका त्यों कह सुनाया । तब श्रीकृष्णजीकी आज्ञानुसार छप्पनकरोड यादव युद्धके निमित्त रणस्थलमें जानेको तैयार होगये और सहदेवजीके साथ उनका संग्राम होनेलगा । उस काल सहदेवजीके शरीर उन यादवोंसेभी अधिक होगये ॥ ३३ ॥ अनन्तर सहदेव और यादवोंमें महा तुमुल (घोर) युद्ध उपस्थित हुआ जिसमें बहुत यादव घायल हुए बहुतसे यमसदनको सिधारे और बहुतसे (जान बचाकर) भाग निकले ॥ ३४ ॥ तब स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने आनकर कहा—हे नरशार्दूल ! मैं युद्धमें आपके सुन्दर पराक्रमसे बहुतही सन्तुष्ट हुआहूँ अतएव (आप अपनी इच्छानुसार) वर माँगलीजिये ॥ ३५ ॥ सहदेवजी बोले—हे प्रभो ! मैं आपके प्रति दो वार संतुष्ट (प्रसन्न) हुआहूँ इस कारण आप मुझसे दो वर मांग लीजिये । सहदेवजीकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण कहनेलगे ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्णने कहा—हे महावीर ! अब आप यादवोंके सङ्ग युद्ध न कीजिये (और दूसरा यह मांगताहूँ कि) आप विना पूछे किसीसे भी ज्योतिषशास्त्र न कहिये ॥ ३७ ॥ फिर सहदेवजीने कहा—हे देव ! यदि आप मेरे प्रति सन्तुष्ट हुए हैं तो मुझको एकही वर दीजिये ।

हम युधिष्ठिरादि पांच भ्राता हैं ॥ ३८ ॥ तिनमें यदि एक भी भइया मृत्युको प्राप्त हो जावे तो आपको भी मरजाना उचित है और हम लोगोंके दुःख उपस्थित होनेपर आपको हमारी सहायता करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ तब श्रीकृष्णने 'ऐसाही होगा' कहकर सहदेवजीको प्रसन्न किया फिर सहदेव व श्रीकृष्ण दोनों हस्तिनापुरमें आनकर उपस्थित होगये ॥ ४० ॥ उसकाल सब पाण्डव आनन्दित होकर आपसमें एक दूसरेसे मिले । फिर यज्ञका सारा सामान लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीकृष्णको दिखाकर (युधिष्ठिरने) कहा कि ॥ ४१ ॥

तद्धै कर्म करिष्यामस्त्वत्प्रसादाच्च माधव ॥ ४२ ॥

हे माधव ! (हमलोग) आपके प्रसादसे यज्ञकार्यको आरंभ करते हैं४२

इति श्रीभारतसारे सभापर्वणि भाषायां कृष्णहस्तिनापुरप्रवेशो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

चतुर्दशे मरुत्सूनोः समरो विजयस्य च ।
धनप्राप्तिर्जरासन्धो हतस्तादिह कथ्यते ॥ १ ॥

इस चौदहवें अध्यायमें पवनकुमार श्रीहनुमान् व अर्जुनका संग्राम होना, धनकी प्राप्ति और जरासन्धका मारा जाना ये कथा वर्णन करी जातीहैं १

जनमेजय उवाच ।

कृष्णेन किं कृतं कार्यं धर्मपुत्रेण किं कृतम् ।
नकुलार्जुनयोः कर्म राजसूये महाध्वरे ॥ १ ॥

महाराज जनमेजयने पूछा-हे मुनिवर ! इस राजसूयनामवाले बडे भारी यज्ञमें श्रीकृष्ण धर्मपुत्रयुधिष्ठिर नकुल और अर्जुन इत्यादिने कौन कौनसा काम किया ? सो आप वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ वैशम्पायनजीने कहा-हे जनमेजय ! श्रीकृष्ण और अर्जुन तो यज्ञके लिये धन लेनेको लंकापुरीमें गये और वे दोनों जने समुद्रके सुन्दर किनारेपर पहुँचे ॥ २ ॥

वहां अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णजीकी आज्ञानुसार हनुमान्‌जीको जीतनेके निमित्त लंकापर्यन्त बाणोंका पुलसा बाँधदिया । उसकाल पर्वताकार रूप धारण करके आकाशमें उडतेहुए हनुमान्‌जी उस पुलपर आगिरे ॥ ३ ॥ किन्तु हनुमान्‌जीके गिरनेपर भी वह पुल नहीं टूटा क्योंकि जिस समय हनुमान्‌जी गिरे तब श्रीकृष्णने चारसौ कोसपर्यन्तफैलाहुआ दूसरा कमठरूप धारण करके जलके भीतर प्रवेशपूर्वक उस पुलको अपनी पीठ-पर रखलिया ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे छल कपट करके उन्होंने कपिराज हनुमान्‌जीको जीतलिया, तबसे महाबलवान् हनुमान्‌जी ॥ ५ ॥ संग्रामके बीच सदैव अर्जुनके ध्वजापर स्थितहुए । इसके पीछे श्रीकृष्ण और अर्जुनको हनुमान्‌जीने लंकापुरीमें पहुँचादिया ॥ ६ ॥ और वहाँसे (इच्छा-नुसार) धन लेकर कृष्णार्जुन हस्तिनापुरमें लौटआये । तब धर्मपुत्रयुधि-ष्ठिर अत्यन्त सन्तुष्ट होकर श्रीकृष्णसे कहनेलगे ॥७॥ कि हे स्वामिन् ! अब आप इस राजसूययज्ञके सम्बन्धमें हमको आज्ञा प्रदान कीजिये । श्रीकृष्णने युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर उत्तर दिया—हे महाराज! प्रथम तो भूमण्डलके सब राजाओंको जीतकर अपने वशमें करलीजिये और फिर सारा सामान इकट्ठा करलेनेपर इस महायज्ञका आरंभ करदीजिये ॥ ८ ॥ भगवान् श्रीह-रिकी यह बात सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुए और पीछे विष्णुतेजसे वर्द्धित अपने सब भाइयोंको दिग्विजय करनेकी आज्ञा प्रदान की ॥ ९ ॥ सृंजयदेशीयक्षत्रियोंकी सेना सहित सहदेवजीको दक्षिण दिशामें चलेजानेकी आज्ञा दी । मत्स्यदेशीयक्षत्रियोंकी सेना सहित नकु-लको पश्चिम दिशामें और केकयदेशकी सेना साथ लेकर सव्यसाची(अर्जुन) को उत्तर दिशामें चलेजानेकी आज्ञा दी और मद्रदेशीय क्षत्रियोंकी सेनाके साथ भीमसेनको पूर्वदिशामें जानेकी आज्ञा प्रदान करी । इन चारोंको भग-वान् श्रीकृष्णने स्नेहदृष्टिसे प्रसन्न करके भेजा ॥ १० ॥ ११ ॥ इन चारों भाइयोंने शीघ्रही बडे बडे वीर व बलवान् सारे राजाओंको जीतलिया और उनसे धन लाकर युधिष्ठिरको दिया ॥ १२ ॥ किन्तु एकमात्र राजा जरा-

सन्धको अजेय सुनकर उसके जीतनेके उपायकी चिन्ता हुई। अनन्तर श्रीकृष्णने सोचा कि प्रथम उद्धवजीने जो उपाय बताया था इस समय वही ठीक जँचताहै ॥ १३ ॥ हे तात जनमेजय ! इस भाँति सोच विचार कर भीम अर्जुन तथा श्रीकृष्ण इन तीनों जनोंने ब्राह्मणका रूप धारण किया और फिर जिस गिरिव्रजमें राजा बृहद्रथका बेटा जरासन्ध निवास करता था वहाँ जा पहुँचे ॥ १४ ॥ और जिस समय गृहस्थ पुरुषोंके घर अतिथि आयाकरतेहैं उस दुपहरके समय ब्राह्मणवेषधारी इन तीनों राजाओंने ब्राह्मणभक्त जरासन्धके समीप पहुँचकर याचना करी ॥ १५ ॥ हे महाराज! हम अतिथि कुछ माँगनेकी इच्छासे आपके घर आनकर उपस्थित हुएहैं ऐसा समझकर हम आपसे जिस वस्तुकी प्रार्थना करैं सो प्रदान करदीजिये ऐसा करनेपर आपका मंगल होगा ॥ १६ ॥ हे महाराज ! देखिये, पूर्वकालमें सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र, रंतिदेव,उञ्छवृत्तिवाले शिबि और बलि,व्याध, कपोत इत्यादि अनेक दाता पुरुष इस पलभरमें नाश होनेवाले देहसे दानरूपी कीर्ति करके इस समयपर्यन्त स्थिर होरहेहैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १७॥ भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर राजा जरासंधने जब इनके स्वर स्वरूप और धनुषकी प्रत्यंचासे चिह्नित हाथोंका पहुँचा देखा तब इन लक्षणोंसे उन तीनोंको क्षत्री निश्चयकरके मनमें सोचा कि मैं कहीं इनको पहले देखचुका हूँ ॥ १८ ॥ यह निःसन्देह क्षत्रिय हैं ब्राह्मणोंका वेष बनाये घूमते फिरतेहैं इसलिये यदि यह मुझसे दुस्त्यज आत्मा भी माँगेंगे तो मैं इनको अवश्य प्रदान करूँगा ॥ १९ ॥ उदारबुद्धि राजा जरासन्धने इस तरह (मनमें विचार कर) कृष्ण अर्जुन और भीमसेनसे कहा हे ब्राह्मणों ! अब आप अपनी कामना बताइये, यदि आप मेरा शिर भी माँगेंगे तो दे दूंगा इसमें सन्देह नहीं करना ॥ २० ॥ भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे राजेन्द्र ! यदि आप देनेकी प्रतिज्ञा करतेहैं तो हमको द्वन्द्वयुद्ध प्रदान कीजिये क्योंकि हमलोग युद्धकी कामनासे ही आपके पास आयेहैं अन्नकी इच्छा हमें नहीं है ॥ २१ ॥ और अब आप यहभी जानलीजिये कि यह

तो कुन्तीके पुत्र भीमसेन हैं, तथा यह इनके भ्राता अर्जुन हैं और इनके मामाका बेटा तथा आपका वैरी मैं श्रीकृष्ण हूँ ॥ २२ ॥ यह जानकर जरासन्ध बडे जोरसे ठट्ठा मारकर हँसा । जरासन्ध बोला—हे कृष्ण ! अर्जुन तो मेरी बराबरीका वीर नहीं हैं और आप मेरे सामनेसे भागही रह चुकेहैं, हाँ भीमसेनसे अवश्य युद्ध करूँगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २३ ॥ यह कहकर जरासंधने भीमसेनको एक महती (बडीभारी) गदा दी और फिर आप भी एक गदा लेकर नगरके बाहर निकला ॥ २४ ॥ अनन्तर यह रणदुर्मद दोनों वीर एक बहुत अच्छी समतल (बराबर) भूमिमें जाकर युद्ध करनेके लिये उठकर खडे होगये और उन वज्रसरीखी गदाओंसे आपसमें एक दूसरेको मारनेलगे ॥ २५ ॥ उस काल ये दोनों जने रणभूमिमें नटोंकी तरह दाहिने बाँये इत्यादि अद्भुतमण्डलोंसे अर्थात् भाँति भाँतिके दाव घातसे लडतेहुए शोभायमान दिखाई देनेलगे ॥ २६ ॥ हे महाराज ! जिस प्रकार दो हाथी दाँतोंसे लडा करतेहैं उसी प्रकार उनके देहोंपर गदाप्रहार होनेपर वज्रपातकी समान चट चट शब्द होनेलगा ॥ २७॥ हे महाराज ! इस तरह संग्राम करतेहुए उनको सत्ताईस दिन बीतगये किन्तु रात्रिकालमें दोनों जने सुहृदकी समान वर्ताव करते थे अर्थात् एकत्र खान पान और शयन करते थे ॥ २८ ॥ फिर किसी दिनरातमें भीमसेनने अपने मामाके पुत्र श्रीकृष्णसे कहा हे माधव ! मैं युद्धमें जरासंधको नहीं जीतसकूँगा॥ २९ यह सुनकर श्रीकृष्णने भीमसेनको ढाढ़स दिया फिर जिस समय अट्ठाइसवें दिन युद्धारंभ हुआ तब भगवान्ने अपनी प्रखर बुद्धिसे भीमसेनको वैरीके मारडालनेका सरल उपाय ॥ ३० ॥ दिखाया अर्थात् अपने कानपर दँतौनकी लकडीको चीरकर दोतरफ बगेलदिया । तब प्रहार करनेवालोंमें चतुर महाबली भीमसेनने श्रीकृष्णका इशारा समझ ॥ ३१ ॥ वैरीके दोनों पैर पकडलिये और फिर उसको भूमिपर डालकर एक पैरको अपने दोनों पैरोंसे दाब लिया और दूसरे पैरको अपने दोनों हाथोंसे पकड कर ॥ ३२॥ गुदासे आरंभकरके मस्तकपर्यन्त जिस प्रकार बहुत बडा मतवाला हाथी पेडके

गुद्देको तोडकर भूमिपर डालदेताहै उसी तरह जरासन्धको चीरकर उसके दोनों टुकडे दो तरफ फेंकादिये, एक एक भागमें इतने चिह्न थे कि एकचरण, ऊरू, वृषण, आधी कमर, आधी पीठ, एक स्तन, कंधा ॥ ३३ ॥ बाहु नेत्र भौंह और कान इन चिह्नोंसे युक्त दोनों भागको प्रजाने देखा। इसभाँति जरासंधको तीनवार भीमसेनने विदीर्ण करके फेंका किन्तु तथापि जब दोनों टुकडे उछलकर फिर जुडगये ॥ ३४ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने यह यत्न किया कि अपने दँतौनको प्रथम चीरा और फिर उसके दोनों टुकडे दो तरफ बगेलकर उसके मध्यमें रेतमयी श्रीमहादेवजीकी मूर्ति स्थापन करी । अनन्तर भीमसेननेभी उसी प्रकार जब जरासन्धके दो टुक करके बीचमें रेतीली रुद्र मूर्तिको स्थापित किया तब राजा जरासन्ध मृत्युके वशीभूतहुआ ॥ ३५ ॥ उस काल मगधेश्वर जरासन्धके मरनेपर बडाही हाहाकार मचगया तब श्रीकृष्ण व अर्जुन दोनों जनोंने मिलकर भीमसेनकी बहुत बडाई करी ॥ ३६ ॥ फिर जरासन्धने अपने यहाँ जिन राजाओंको बन्दी (कैद) कर रक्खाथा उन सबको छुडाया । इन बीस हजार आठसौ राजाओंको जरासन्धने आसानीसे ही युद्धमें जीतकर बँदीकर लियाथा॥ ३७ ॥ कैद भुकतनेके कारण उन सब राजाओंके शरीर व कपडे बहुत मैले होरहे थे, वे सब पहाडकी गुफासे निकल २ कर अपने २ घरोंको चले गये और राजसूययज्ञमें आनेके लिये उन सबको न्योता दियागया ॥ ३८ ॥

ततो हत्वा जरासन्धं भीष्मपार्थजनार्दनाः ।
युधिष्ठिरस्य यज्ञार्थमिन्द्रप्रस्थं समाययुः ॥ ३९ ॥

अनन्तर जरासन्धके मरनेपर भीम, अर्जुन और जनार्दन श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिरका यज्ञ सम्पन्न करनेके निमित्त इन्द्रप्रस्थमें आनकर प्राप्तहुए ३९॥

इति श्रीभारतसारे सभापर्वणि भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

पञ्चदशे माद्रेयेण प्राप्तं मण्डपमुत्तमम् ।
शिशुपालस्य पञ्चत्वं राजसूये निगद्यते ॥ १ ॥

इस पंद्रहवें अध्यायमें नकुलको पातालसे मण्डपकी प्राप्ति और राजसूयके बीचमें शिशुपालके मारेजानेकी कथा वर्णन करीजाती है ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

ततः कृष्णोऽथ नकुलो नागलोकं गतौ तदा ।
दृष्ट्वा नागाननेकांश्च कृतः कोलाहलो महान् ॥ १॥

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय! इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्ण और नकुल नागलोकमें पहुँचे और वहाँ इन्होंने अनन्त नागोंको देखकर बडाही कोलाहल (शोर) मचाया ॥ १ ॥ अनन्तर नागोंने हलाहलविष छोडा जो कि चराचरमें व्याप्त होगया। तब माद्रीके पुत्र नकुलने श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार माध्वस्त्र अर्थात् सहतका अस्त्र चलाया ॥ २॥ और इसके पीछे पिपीलिकास्त्र चलाया जिससे सारे नाग भयभीत हो घबरागये। तब उन नागोंने भगवान् श्रीकृष्णको देखकर प्रणामपूर्वक मण्डप प्रदान करदिया॥ ३॥ उस मण्डपपर कंचनके कमल जडरहेथे तब उस अनेक द्रव्योंसे सुन्दर मण्डपको लेकर श्रीकृष्ण और नकुल प्रसन्नतासहित हस्तिनापुरमें चलेआये॥ ४॥ उस उत्तम मण्डपको देखकर धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिर परमानन्दित हुए और फिर उन्होंने कामधेनुगायको स्मरण किया॥ ५॥ तब धर्मराजयुधिष्ठिरके सत्यसे तत्काल कामधेनु आनकर उपस्थित हुई। वह कामधेनु मनुष्य जिस जिस वस्तुकी कामना करे उसी उसी वस्तुको देनेवाली थी ॥ ६॥ तदनन्तर अत्यन्त उत्सव शान्ति मंगल और यज्ञीय सारे कर्म विधानानुसार सम्पन्न करके महाराजयुधिष्ठिरने इन्द्रप्रस्थमें राजसूयनामकमहायज्ञका आरंभ करदिया ॥ ७॥ उस स्थानमें (युधिष्ठिरके बुलानेपर) अठासीहजार ऋषि आनकर विराजमान हुए। तब महाराजयुधिष्ठिरने यज्ञके मुहूर्त्तमें भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार ऋत्विज ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंको वरण किया। वेदव्यासजी, भरद्वाजजी, सुमन्तुजी, गौतमजी, असितजी॥ ८॥ ९॥ वशिष्ठजी, च्यवनजी, कण्वजी, मैत्रेयजी, कश्यपजी, अच्युत, विश्वामित्रजी, वामदेवजी, सुमतिजी, जैमिनिजी, क्रतुजी, पैलजी, पाराशरजी, गर्गजी और मैं (वैशम्पायन) ॥ १०॥

अथर्वजी, खल्वजी, धौम्यजी, परशुरामजी, आसुरिजी, वीतिहोत्रजी, मधुच्छन्दजी, वीररामजी, अकृतव्रण ॥ ११ ॥ इनके अतिरिक्त महाराज युधिष्ठिरके बुलायेहुए द्रोणाचार्य, भीष्म और कृपाचार्य इत्यादि सब कोई आनकर प्राप्तहुए। अपने पुत्रोंसमेत धृतराष्ट्र और महाबुद्धिमान् विदुरजीभी आनकर उपस्थित होगये ॥ १२ ॥ इनको छोडकर हे जनमेजय ! और भी यज्ञका दर्शन करनेके निमित्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, राजा, रानी तथा प्रजा आनकर उपस्थित हुई ॥ १३ ॥ तब ब्राह्मणोंने देवताओंकी पूजाके लिये सुवर्णके हलसे भूमिको पवित्र करके महाराज युधिष्ठिरको यज्ञदीक्षामें दीक्षित किया ॥ १४ ॥ तदन्तर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तथा इन्द्रादि लोकपाल व अपने गणोंसमेत सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और नाग आये ॥ १५ ॥ फिर मुनि, यक्ष, पक्षी किन्नर और चारणगणभी पांडुपुत्र महाराजयुधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें आनकर प्राप्तहुए ॥ १६ ॥ तब महाभाग धर्मपुत्रयुधिष्ठिरने अमृताभिषेचनके समय यज्ञकरानेवाले सभापति ब्राह्मणोंकी यथायोग्य पूजा करी ॥ १७ ॥ फिर उन्होंने सब किसीसे क्षत्रियोंके पूजनके विषयमें पूछा कि–

चौपाई।

पहिले पूजा काकी कीजै। अक्षत तिलक कौनको दीजै ॥
कौन बडो देवनको ईश। ताहि पूज हम नावें शीश ॥

क्षत्रियोंमें प्रथम किसकी पूजा करनी उचित है ? सो बताओ। महाराजयुधिष्ठिरके ऐसा पूछनेपर सहदेवजीने उत्तर दिया कि हे महाराज ! प्रथम पूजा करनेके लिये भक्तोंके पति अच्युत भगवान् श्रीकृष्णही श्रेष्ठ हैं अतएव आप इनकी ही पूजा कीजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि एकमात्र इनकी पूजा होजानेपर ही सब देवता और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (संसार) की पूजा होजायगी। यह सुनकर महाराज युधिष्ठिरने उसी मण्डपमें भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करी ॥ १९ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णको पूजित होताहुआ देखकर

सारे राजाओंने हाथ जोडकर 'नमो नमः' तथा 'जय ! जय !!' इत्यादि मांगलिक शब्दोंद्वारा उनको नमस्कार किया फिर उनपर फूल बरसाये॥२०॥ सबसे पहिले भगवान् श्रीकृष्णको पूजताहुआ देख पुराना वैरी भगवान्का अपराधी शिशुपाल मृत्यु निकट आजानेके कारण श्रीकृष्णको कुवाच्य कहनेलगा अर्थात् गालियाँ देनेलगा ॥ २१ ॥ शिशुपाल बोला—

चौपाई ।

लखि शिशुपाल क्रोध अति कीना। चर्म कृपाण हाथ गहि लीना॥
गरजि जलद इव गिरा गँभीरा। कहेउ नीच सुनु रे यदुवीरा॥
नहिं जानत निज जाति प्रभावा। सकल सभामें शीश पुजावा॥
रे शठ निपट जातिकर हीना। नाम नगर ते भयो कुलीना॥
सनकादिक ऋषि वृन्दन आगे। रञ्चक कान न कीन अभागे॥
हम बैठे सब विपुल भुवरा। ज्येष्ठ बन्धु कहँ लघुकरि डारा॥
बड आश्चर्य द्विजनके आगे। चरण अहीर धुवावन लागे॥
प्रथम ग्वाल गृह प्रकट अभागा। पुनि यदुवंश कहावन लागा॥
भयो वर्ण संकर जग जाना। सबकर मूढ करत अपमाना॥
सुनि कटुवचन उठे यदुवंशी। राखहि उद्धव आदि प्रशंसी॥
पारथ भीम आदि सब योधा। कहत न कछुक जरेउ उर क्रोधा॥
दोहा—निजमन्दिर लखि आगमन, कछु न कहत तेहि पास।
सोच विविश नृपधर्मसुत, लखि नँदनन्द उदास॥

यह कृष्ण, जो कि वर्णाश्रमसे बहिष्कृत (रहित) समस्त धर्मोंका त्याग करनेवाला चोरवृत्तिवाला और निर्गुणी है, किस प्रकार सबसे पहले पूजाजानेके लायक है ? ॥ २२ ॥ यह पापी, दुराचारी मामाका वध करडालनेवाला, गोपाल कभी और मूढ गायोंका चरानेवाला कृष्ण किस प्रकार सबसे पहले पूजा जानेके लायक है ? ॥ २३ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने उस यज्ञमंडपमें शिशुपालके मुखसे निकलेहुए इस प्रकार (एकसौ) वचन सुन महाक्रोधित हो उसपर सुदर्शन चक्र छोडा ॥ २४ ॥

1371 MS9

चौपाई ।

उत शिशुपाल प्रचारत आवा । बारबार हरिचक्र फिरावा ॥
पाणि सुदर्शन वेष कराला । डरत न कटुक कहत शिशुपाला॥
प्रलय काल जिमि शंकरकेरे । तेहि प्रकार हरिनयन तरेरे ॥
त्यागेउ हरि बहु वार भ्रमाई । करत रमापति शंभु दुहाई ॥
रवि सम तपत सुदर्शन धाये । दनुजन देखि महाभय पाये ॥

दोहा—ताके कंठ सुदर्शन, घूमउ वार हजार ।
शीश काटि प्रभुरुख निरखि, गयो विष्णु आगार ॥

उस सुदर्शनसे तत्कालही शिशुपालका शिर काटकर पृथ्वीपर डाल दिया मरनेके समय उसके शरीरसे एक तेज निकला जो कि भगवान् श्रीकृष्णके शरीरमें प्रवेश करगया ॥ २५ ॥

तस्मिन्पापे हते चैद्ये साधु साध्विति वादिनः ॥
सदःस्थिताश्च ये लोकाः स्तुतिं कृष्णस्य चक्रिरे ॥ २६ ॥

इसभाँति उस पापात्मा शिशुपालके मारेजानेपर सब सभासद साधु साधु कहतेहुए भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करनेलगे ॥ २६ ॥

जय राधावर हलधरसोदर । जयति दयानिधि जय दामोदर ॥
जय जय जय वृन्दावनवासी । लक्ष्मी—पति वैकुण्ठ—निवासी ॥
निज जनहेतु सदा तुम त्राता । मम पति राखिलीन तुम जाता ॥
हलधर सहित जयति जय जोरी । राखेउ लाज दयानिधि मोरी ॥

सोरठा—रही प्रीति उर छाय, यदुपतिकी करणी समुझि ।
दशा न सो कहिजाय, जोरि पाणि विनती करी ॥

इति श्रीभारतसारे सभापर्वणि भाषायां चैद्यवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

षोडशे यज्ञपूर्णार्थमाप्तिर्वायुसुतस्य च ।
विप्रमुख्यस्य मुक्तिश्च पांडुराजस्य वर्ण्यते ॥ १ ॥

इस सोलहवें अध्यायमें यज्ञ सम्पूर्ण होनेके निमित्त पवननन्दन भीमसेनको एक मुनिका प्राप्त होना और महाराज पांडुको मुक्ति मिलना यह कथा वर्णन करीजातीहै ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

ततः प्रवर्त्तिते यज्ञे शिशुपालवधे कृते ।
अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषयस्तत्र संस्थिताः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा--हे महाराज जनमेजय ! शिशुपालका वध होजानेपर फिर यज्ञको प्रवर्तित (आरंभ) कियागया । उस स्थानमें अठासी-हजार ऋषि विराजमान होरहे थे ॥ १ ॥ वह सब यज्ञकी समृद्धि देखकर महाराज युधिष्ठिरसे कहनेलगे । ऋषियोंने कहा—हे भूपाल ! सुनिये, एक वृत्तान्त है, अर्थात् यज्ञमें संपूर्ण राजा लोग आनकर उपस्थित होगयेहैं, पूर्वकालमें जिस प्रकार राजा बलिने यज्ञ कियाथा ॥ २ ॥ इस समय पृथ्वीतलपर वैसाही यज्ञ आपने कियेहैं किन्तु हे महाराज ! इस आपके यज्ञमें एक न्यूनता अवश्य हैं ॥३॥ ऋषियोंके इस प्रकार कहनेपर महाराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे पूछा हे भगवन् ! इस मेरे यज्ञमें किसबातकी कमी है ? सो आप बताइये मैं उसको निःसन्देह (पूर्ण) करूँगा । तब श्रीकृष्णने उनको उत्तर दिया कि, वनमें एक तापस है ॥ ४ ॥ वह यदि आपके यज्ञमें नहीं आवेगा तो आपके यज्ञका फल वृथा है । तब भीमसेन उसको निमन्त्रण देने उसके स्थानमें गये और बोले । हे स्वामिन् ! यज्ञमें चलिये ॥५॥ तापसने कहा—राजसूययज्ञके करनेवाले राजा युधिष्ठिर कौन हैं ? और सुवर्णके सौ पात्र न होनेसे वह यज्ञ कैसे पूरा होसकताहै ? ॥ ६ ॥ युधिष्ठिरके पिता कौन हैं ? उनके पिताके पिता कौन हैं ? और उनके भी पिता कौन हैं? यह आप मुझसे सब कहिये ॥ ७ ॥ भीमसेनने उत्तर दिया हे महामुनि ! युधिष्ठिर धर्मके पुत्र हैं और सत्य उनके दादा हैं और सन्तोषको आप उनका परदादा जानलीजिये ॥ ८ ॥ तापसने कहा कि, मैं संतोषरूपी अमृतसे तृप्त होरहाहूँ अतएव यज्ञमें नहीं जाऊंगा । तब भीमसेन उस ब्राह्मणकी नाना-

भाँतिसे विनती करके उसको यज्ञमण्डपमें लिवायलाये ॥ ९ ॥ उसके आनेपर महाराज युधिष्ठिर उसकी पूजा करनेलगे तब उसने (रोतेहुए) शिरको कम्पायमान किया। यह देखकर युधिष्ठिरने कहा—हे ब्रह्मन्! आप रोतेहुए मस्तकको कम्पायमान क्यों करते हैं? ॥ १० ॥ महाराज युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर उस तापसने उत्तर दिया कि, हे महाराज! इस भूलोकमें कलियुग आनकर प्राप्त होगा जिसके समयमें यवनलोग (मुसलमान म्लेच्छ) राजा होकर गौ और ब्राह्मणोंको पीडा देंगे ॥ ११ ॥ इस समय जो ब्राह्मण देवताओंके समान पूजे जारहेहैं उसकाल वेही ब्राह्मण दुःखके भोगनेवाले होंगे। वैशम्पायनजीने कहा—हे जनमेजय! इसके पछि कृष्ण तापस और ब्राह्मणोंने मिलकर यज्ञका महत्कार्य सम्पादन किया ॥१२॥ हे राजन्! वेदके कहेहुए विधानानुसार अन्नदान कियागया। अनन्तर धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिर दुर्योधनसे बोले ॥ १३ ॥ हे दुर्योधन महाराज! आप खजानची बनकर ब्रह्मणोंको दान कीजिये तब वैरके कारण दुर्योधनने ब्राह्मणोंको अत्यन्तही द्रव्य देना आरम्भ करदिया किन्तु दुर्योधनके हाथमें पद्म होनेके कारण एक एक बार दान करनेसे खजानेमें दश दश गुण द्रव्य बढ जाताथा ॥ १४ ॥

दत्तो महोत्सवस्यान्ते निरयान्निःसृतः पिता।
पाण्डुर्वै दिव्यदेहस्थो विभाति वृत्रहा यथा ॥ १५ ॥

सो महाराज दुर्योधनने एक एककी जगह दश दश बार दान दिया। इस प्रकार महामहोत्सवसे यज्ञके सम्पूर्ण होजानेपर युधिष्ठरके पिता महाराज पाण्डु नरकसे निकलकर दिव्य शरीरधारी हो वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इन्द्रकी समान शोभा पाने लगे ॥ १५ ॥

इति श्रीभारतसारे सभापर्वणि भाषायां पांडुसद्गतिवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

सप्तदशेऽमला कीर्त्तिर्युधिष्ठिरनृपस्य च।
सुयोधनापमानं च सभायामिह भण्यते ॥ १ ॥

५

इस सत्रहवें अध्यायमें महाराज युधिष्ठिरका विमल यश और मय दानवकृत सभामें दुर्योधनका अपमान होना यह कथा वर्णन कीजातीहै ॥ १ ॥

जनमेजय उवाच ।

राजसूये महायज्ञे धर्मराजस्य बान्धवाः ।
किंकिं कर्म कृतं तैस्तु श्रीकृष्णेनाथ कौरवैः ॥ १ ॥

महाराज जनमेजयने पूछा—हे द्विजोत्तम ! धर्मराजयुधिष्ठिरके उस राजसूयनामवाले बडे भारी यज्ञमें उनके भाइयोंने क्या क्या काम किया ? अथवा भगवान् श्रीकृष्ण और कौरवोंनेही कौन कौन काम किया ? यह आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥१॥ वैशम्पायनजीने कहा—हे नृपोत्तम ! अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरके उस राजसूययज्ञका महोदय देखकर वहाँपर जितने देवता और राजा आये थे वे सब मुदित (आनन्दित) हुए ॥ २ ॥ किन्तु एक दुर्योधन प्रसन्न नहीं हुआ क्योंकि वह कुरुकुलमें रोगकी समान पापरूप और कलियुगका मूर्तिमान् स्वरूप था । इसी कारण वह पांडुपुत्र महाराज युधिष्ठिरकी राज्यलक्ष्मीको जगमगातीहुई देखकर नहीं सहसका॥ ३॥ महाराज जनमेजयने कहा—हे ब्रह्मन् ! इस प्रकारके यज्ञमें दुर्योधन क्यों क्रोधित हुआ ? इस दुर्योधनके कोपका सब कारण आप मुझसे सूचित कीजिये ॥ ४॥ और फिर मेरे पिताके दादाके इस प्रकार बडे भारी राजसूय यज्ञमें प्रेमसे बँधेहुए बाँधवोंने क्या क्या सेवा (काम) किया ? सोभी आप वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ वैशम्पायनजीने कहा—हे राजन् ! उस यज्ञमें भीमसेन भोजनाध्यक्ष हुए अर्थात् इनको रसोईका काम सौंपागया, सुयोधन (दुर्योधन) धनाध्यक्ष हुए अर्थात् इनको धन संबंधी काम सौंपागया, सहदेव सबकी पूजा व आदर सत्कार करनेमें नियुक्त हुए, तथा नकुल द्रव्य और सामग्री लाकर इकट्ठी करनेमें नियुक्त हुए ॥६॥ अर्जुन ऋषि मुनियोंकी सेवा शुश्रूषा करनेमें नियुक्त हुए, श्रीकृष्ण चरण पखारनेमें नियुक्त हुए, द्रुपदकी पुत्री द्रौपदी भोजन परोसनेमें नियुक्त हुई, और उदारबुद्धि कर्ण दान करनेमें नियुक्त हुए ॥ ७ ॥ युयुधान, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुरादि बाह्लीक

राजाके पुत्र और संतर्दन इत्यादि अनेक ॥ ८ ॥ हे राजेन्द्र ! उस यज्ञमें महाराज युधिष्ठिरको प्रसन्न करनेके निमित्त विविध भाँतिके कामोंमें नियुक्त हुए ॥ ९ ॥ अनन्तर महाराज युधिष्ठिरने यज्ञके समाप्त होनेपर ब्राह्मण क्षत्रिय और अनेक मंगलोंसे युक्त होकर श्री गंगाजीमें अवभृथ स्नान किया ॥ १० ॥ उस काल सारे नरनारी उत्तमोत्तम वस्त्र, चंदन, माला, गहने व कपडाद्वारा शोभायमान हो आपसमें भाँति भाँतिका रंग रस छिडकने लगे ॥ ११ ॥ तैल सुगन्धित पदार्थोंका जल अर्थात् गुलाब, केवडा, वेला, मुश्क इत्यादि, तथा हलदी सघन व कुंकुम इन वस्तुओंद्वारा पुरुषोंकरके लेपति नारियाँ उनहीं वस्तुओंका पुरुषोंपर लेपन करती हुई विहार करने लगीं ॥ १२ ॥ अनन्तर महाराज युधिष्ठिर अपनी रानियों सहित सुवर्णकी माला इत्यादि अनेक गहनोंसे सुशोभित हो अच्छे घोडोंवाले रथमें विराजमान होकर ऐसी शोभाको प्राप्त हुए जैसे क्रियाओंके सहित स्वयं यज्ञराज शोभायमान होते हैं ॥ १३ ॥ फिर अन्यान्य राजा रानी और ऋत्विज इत्यादि ब्राह्मणोंने तथा ब्राह्मणोंकी भार्याओंने द्रौपदीके समेत महाराज युधिष्ठरको स्नान कराया ॥ १४ ॥ उस काल वहाँपर मनुष्योंने दुंदुभी (ढोल) इत्यादि बाजे बजाये और स्वर्गमें देवताओंनेभी अपने नगाडे बजाये फिर देवता, ऋषि, पितर और मनुष्योंने महाराज युधिष्ठिरपर फूल बरसाये ॥ १५ ॥ उस स्थानमें जिस जिस वर्ण आश्रमके मनुष्य गये थे और जो महापातकी (पापी) थे वे तत्कालही सब पापोंसे छूट गये ॥ १६ ॥ अनन्तर महाराज युधिष्ठिरने गंगामें अवभृथ स्नान करनेपर अच्छे नये रेशमीन वस्त्र और गहने पहर कर फिर आभूषण और अनेक रत्नोंद्वारा ब्राह्मणोंकी पूजा करी ॥ १७॥ इस पीछे नारायणपरायण राजा युधिष्ठिरने अपने बंधु ज्ञाति राजा और सुहृद (मित्र) व और भी सब किसीकी वार वार पूजा करी ॥ १८ ॥ फिर महाभाग ऋत्विज और ब्रह्मवादी सभापति ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और यज्ञमें आयेहुए राजा लोग ॥ १९ ॥ देवता ऋषि पितर तथा अनेकप्राणिसेवकोंसमेत लोकपाल महाराज युधिष्ठिरद्वारा पूजे-

जाकर उनकी आज्ञा ग्रहण पूर्वक अपने अपने स्थानोंको सिधारगये ॥ २० ॥ हरिदास अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त राजर्षि श्रीयुधिष्ठिरजीके राजसूययज्ञके महोत्सवकी बडाई करतेहुए वे सब इस प्रकार नहीं अघाते थे, जिस प्रकार मनुष्य अमृत पीनेसे नहीं अघाता है ॥ २१ ॥ (यज्ञके समाप्त होजानेपर) वियोगकातर महाराजयुधिष्ठिरने अपने मित्र सम्बन्धी और बांधवोंको व श्रीकृष्णचन्द्रजीको प्रेमपूर्वक बहुत दिनोंतक वहांही टिकालिया ॥ २२ ॥ हे महाराज ! उनको प्रसन्न करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने साम्ब इत्यादि यादवोंको द्वारकापुरीमें भेजकर आप वहीं निवास किया ॥ २३ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णजीकी कृपासे धर्मपुत्रमहाराजयुधिष्ठिर उस मनोरथरूपी दुस्तर महासमुद्रसे पार होकर निश्चिन्त हुए ॥ २४ ॥ फिर किसी समय दुर्योधन श्रीकृष्णमें चित्त रखनेवाले महाराज युधिष्ठिरके रनवासकी सुन्दरता और राजसूययज्ञकी महिमा देखकर तापित (दुःखी) हुआ ॥ २५ ॥ एकदिन अपने छोटे भाई बांधव और नेत्रस्वरूप श्रीकृष्णसे युक्त होकर महाराज युधिष्ठिर मयदानवकी दी हुई सभामें ॥ २६ ॥ कञ्चनके सिंहासनपर विराजमानहुए ब्रह्मलोककेसी सम्पदा व राजलक्ष्मीसे सेव्यमान और बन्दीजनोंसे प्रशंसित (स्तुतिको प्राप्त हो) इन्द्रकी समान शोभा पारहेथे ॥ २७ ॥ हे नृपोत्तम ! उसी समय वहां अपने भ्राताओंसमेत किरीटधारी अहंकारी हाथमें तलवार लिये राजा दुर्योधन आनकर प्राप्तहुआ ॥ २८ ॥ जब मूढमति दुर्योधन उस सुन्दर सभामें आया तो स्थलमें जलका धोखा खाकर उसने अपने फेंटे इत्यादि कपडोंको ऊपर उठाया ॥ २९ ॥ इसके पीछे फिर आगे बढकर जलमें स्थलका धोखा खाकर उसमें गिरपडा, उस काल मय दानवकी मायासे विमोहित होकर दुष्टात्मा दुर्योधन बहुतही खिन्न (दुःखित) हुआ ॥ ३० ॥ तब पांडवोंसमेत सभामें बैठेहुए सब यादव (बडे जोरसे खिलखिलाकर)हँस पडे फिर श्रीकृष्णकी प्रेरणासे भीमसेनने कहा ॥ ३१ ॥ भीमसेन बोले कि, अन्धे आदमीके सब बेटेभी अन्धे होतेहैं इसमें कुछ सन्देह नहीं। श्रीकृष्णके मना करनेपरभी भीमसेनने कृत्रिम-

करके वारम्वार यही बात कही ॥ ३२ ॥ भीमसेनकी यह बात सुनकर कुरुनन्दन दुर्योधन अत्यन्त लज्जा और क्रोधमें भरा हुआ (शीघ्रतासहित) हस्तिनापुरको चलागया॥ ३३॥धर्मराज महाराज युधिष्ठिरके समझा बुझाकर रोकने परभी वह भ्रष्टबुद्धि दुर्योधन नहीं रुका (उसके साथही) और भी सारे कौरव हस्तनापुरको चले गये ॥ ३४ ॥ उसकाल सब किसीने हाय! हाय !! करके कहा कि बडाही बुरा निन्दनीय काम हुआहै किन्तु भगवान् इस विषयमें चुपचाप रहे क्योंकि उनको तो भूमिका भारी भार भञ्जन (हरण) करना है ॥ ३५ ॥

एतत्ते कथितं राजन्यत्पृष्टोहं त्वयाऽनघ ।
सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥ ३६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—हे पापरहित जनमेजय! आपने जो हमसे राजसूय महायज्ञमें दुर्योधनकी दुष्टता पूछी थी यह सब मैंने आपसे वर्णनकरी है॥ ३६॥

इति श्रीभारतसारे सभापर्वणि भाषायां दुर्योधनमानभंगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः १८

अष्टादशेऽक्षविद्या च दुःशासनमहानयम् ।
पाण्डवानां च निर्याणं वनायेति निगद्यते ॥ १ ॥

इस अठारहवें अध्यायमें कौरव पांडवोंकी अक्षविद्या (चौपड खेलना) और दुःशासनकी भारी अनीति अर्थात् द्रौपदीका वस्त्र (सारी) खेंचना, तथा पांडवोंको वनमें निकालदेना यह कथा वर्णन करी जातीहैं ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

एकस्मिन्समये राजञ्शकुनिश्च सुयोधनः ।
दुःशासनश्च कर्णश्च संहता मन्त्रमाचरन् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—हे राजन्! एकसमय शकुनि, दुर्योधन दुःशासन, और कर्ण यह चारों (दुष्ट) मिलकर मंत्रणा (सलाह) करनेलगे ॥ १॥ शकुनिने

कहा—हे महामते महाराज दुर्योधन ! आप विषाद (दुःख) मत कीजिये धर्मराज युधिष्ठिरके निकालदेनेका एक उपाय है ॥ २ ॥ अर्थात् मैं जुआ खेलना बहुत अच्छा जानताहूँ इस विद्याद्वारा छल कपट करके युधिष्ठिरको जीत वनमें निकालदूँगा ॥ ३ ॥ पहले बारहवर्षतक वनमें वास करनेकी बाजी लगाकर जीतूँगा और फिर तेरहवें वर्ष गुप्त रहनेका प्रण करके उनपर विजय प्राप्त करूँगा ॥ ४ ॥ मैं युधिष्ठिरके साथ चौपड खेलकर उनको निःसन्देह जीतलूँगा और उसमेंभी यह नियम (शर्त्त) रक्खूँगा कि यदि तेरहवें वर्षमें प्रकट होजायँ, तो फिर बारहवर्ष पर्यन्त वनवास करें और एकवर्षतक छिप रहे इस प्रकार बाजी लगाकर पुनर्वार वनमें ॥ ५ ॥ भेजदूँगा । हे राजन् ! आप वृथा क्यों खेदित (दुःखित) होतेहैं ? फिर जब तेरहवें वर्षमें पांडव गुप्तवास करेंगे, उस समय उनको ढूँढनेके निमित्त ॥ ६ ॥ मैं सैकडों हजारों दूत भेजूँगा और जब वे दूत पांडवोंको खोज निकालेंगे, तो उनको फिर वनमें भेज दियाजायगा । वहाँ वे बारहवर्ष तक फिर वनमें वास करेंगे और एक वर्षतक नष्टचर्यामें रहेंगे इस भाँति पांडव लोग सदैव वनमें वास करेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ तब आप शत्रुहीन होकर निष्कण्टक राज्य करेंगे इस प्रकार इस चाण्डालचौकडीमें दुष्ट विचार करके ॥ ८ ॥ जुआ खेलनेके लिये महाराज युधिष्ठिरको बुलाया, कौरवोंके बुलानेपर युधिष्ठिर भाइयोंके सहित गये ॥ ९ ॥

चौपाई ।

विदुर समेत चढे नृप हाथी । चलत भये भीमादिक साथी ॥
उठे निशान चले नरनायक । धाये विपुल चहूँ दिशि पायक ॥
तुरगारूढ नगिन करवालहि । गहि कर घेरि चले नरपालहि ॥
कुरुपति सुन्यो धर्मसुत आये । आतुर लक्ष्मण कुँवर पठाये ॥
उल्का द्विरद दुःशासन साथा । नायो धर्म राजपद माथा ॥
दै अशीश नृप धर्म समोदा । बैठारेहु कुरुपतिसुत गोदा ॥

मुतियन माल दीन्ह पहिराई। दियो विविध पकवान मिठाई ॥
कीन बिदा कुरुनाथ कुमारा। आप वितान बीच पगु धारा ॥

दोहा-तेहि अवसर आवत भयो, धर्मराज रनवास।
त्याग त्याग पट पालकी, भीतर गई अवास ॥

तथा द्रौपदी कुन्ती और महाराजके नौकर चाकर यह सब भी आये तब पांडव वहाँ कौरवोंके साथ मिलकर हस्तिनापुरमें वास करनेलगे ॥१०॥ उस स्थानमें पांडवलोग प्रसन्नतापूर्वक रहतेहुए भाँति२की क्रीडा करनेलगे। एक दिन शकुनिने इस प्रकार कूट वचन कहे ॥ ११ ॥ शकुनि बोला-हे युधिष्ठिर इत्यादि वीरो! आप मेरी बात सुनिये। यदि आपके मनको अच्छा लगे तो जुआ खेलना प्रारंभ कियाजावे ॥१२॥ शकुनिके इस प्रकार कहने-पर होनहारके वशीभूत हो सर्व पांडवोंने तथास्तु कहा अर्थात् कौरवोंके साथ खेलना स्वीकार करलिया ॥ १३ ॥ तब कौरव बोले-जो आदमी हार जावे वह बारहवर्ष पर्यंत वनवासी रहे और एक वर्ष अर्थात् तेरहवें वर्ष किसी स्थानमें गुप्त रहे यह बाजी बद कर खेलना चाहिये ॥ १४ ॥ हे वीरगण! यदि वह तेरहवें वर्षमें प्रकट होजावें तो फिर निःसन्देह वनको चलाजाय वहाँ (बारह वर्षतक) वास करता रहे तथा एकवर्ष गुप्त रहे ऐसा पण बाजी लगायकर कौरव पांडवोंने खेलना आरम्भ किया ॥ १५ ॥

चौपाई।

तेहि अवसर कुरुपति रुख पाये। पाँसासार दुःशासन लाये ॥
दीन्ही धारि अजातरिपु आगे। कर गहि भीम विलोकन लागे॥
सो कुरुपति निज हाथ बिछाई। लिये धर्मसुत अक्ष उठाई ॥
फरकेउ अशुभ नयन भुज बाँये। उर थर हरेउ छींक भई बाँये ॥
अष्टधातु आयुध भयकारे। क्षणमहँ सकल धर्मसुत हारे ॥
तरकस कवच धनुष दस्ताना। चर्म त्रिशूल कटार कृपाना ॥
शक्ति कराल अस्त्र सब चीन्हे। पृथक २ धरि धर्मज दीन्हे ॥

तजे अक्ष शकुनी छलकारी । सर्वस गये धर्मसुत हारी ॥
चकित लोग सब देखि तमासा । कहैं न परत धर्मसुत पासा ॥
पुनि पुनि परत दाव कुरुपतिको। को जाने परमेश्वरगतिको ॥
जीती कुरुपति पांडवरानी । कहेउ धर्मसुतते यह बानी ॥
अनुचर भयउ समेत समाजा।करहु मानी मम आयसु काजा॥
कहेउ युधिष्ठिर आयसु होई । माथे मानि करब हम सोई ॥
रूख वदन कारि कह कुरुराई । द्रुपत सुता अब देहु मँगाई ॥
मूर्च्छि परेउ सुनि वचन कठोरा । हाहाकार मच्यो चहुँ ओरा ॥

दोहा—भूप युधिष्ठिरकी दशा, लखी न काहू आन ।
देखि अवज्ञा कुरुपतिहि, कोपेउ भीम महान ॥

तब प्रथम तो उस जुएके खेलमें महाराज युधिष्ठिरकी जीत हुई और इसके पीछे कौरवोंने पाण्डवोंका सारा धन जीतलिया ॥ १६ ॥ फिर महाराज युधिष्ठिर कौरवोंके आगे अपना राज्य, नगर, गृह, द्रव्य, धन, दारा (स्त्री) और बाँधव इत्यादि (सर्वस्व) हारगये॥ १७॥ तब तो सारे कौरव मनमें अत्यन्त हर्षित होकर सब किसीको सुनाकर इसप्रकार कहनेलगे कि, हमने सारे पांडवोंको हरा दिया ॥ १८ ॥ फिर दुष्टात्मा कौरवोंकी तरफके आदमी कहनेलगे कि किसने जीता है ? किसने जीता है ? यह बातें सुननेसे सभामें स्थितहुए सब पाण्डवोंका मुख मलीन होगया ॥ १९ ॥ तब राजा दुर्योधन दुःशासनसे (इसप्रकार) कहनेलगे. दुर्योधनने कहा—हे महाराज दुःशासन ! अब आप सभामें द्रौपदीको जाकर लेआइये ॥ २० ॥ आज्ञा पातेही दुष्ट दुःशासन ऋतुमती, खुलेकेश, लज्जित, उदास और दीन द्रौपदीको बाल खेंचताहुआ उस सभामें लेआया ॥ २१ ॥ वहाँ लाकर उस दुष्टात्माने जैसेही उसका वस्त्र निकालकर उसको (नग्न) करनेकी इच्छा करी कि वैसेही प्राणसंकट उपस्थित देखकर द्रौपदीने प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीको स्मरण किया ॥ २२ ॥

दोहा-भुज उठाय हरि नगर दिशि, पाहि पाहि पुनि टेर।
कृष्ण कृष्ण राधा-रमण, दीन्हीं हाँक करेर॥

चौपाई।

राधारमण वचन सुनु मेरे। कीन्ह विलाप कलाप घनेरे॥
बूडतविरह सिन्धु रघुनाथा। जिमि गहि लीन भरत कर हाथा॥
जिमि कपीश सुग्रीव उबारा। राखि विभीषण रावण मारा॥
तुम बिनु नाथ सुनै को मोरी। दीनदयाल शरण मैं तोरी॥
दैत्यदलन प्रहलाद उबारन। लागहु मम गुहारि जगतारन॥
मम अनाथके नाथ गुसांई। सो न होय लज्जा जेहि जाई॥
तुम बिनु आरत पक्ष गही को। राखु रमापति लाज गईको॥
पाण्डव त्यागी सुरति हमारी। तुम जनि त्यागहु गिरिवरधारी॥
परवश लाज जात हरि मेरी। त्रिभुवननाथ शरण मैं तेरी॥
बीते समय दयानिधि ऐहो। मोहि उघारि देखि पछितैहो॥
ग्राह ग्रसे गज कीन पुकारा। तब तुम नाथ न लायहु बारा॥
ते तुम नाथ कहाँ गिरिधारी। यह पापी खैंचत मम सारी॥
सर्वस हरेउ बचेउ इक बसना। सोऊ हरत बचावत कस ना॥
बीच सभा प्रभु मोहिनँगियावत। करुणासिन्धुधाय किनआवत॥
दवा जरत जिमि गोपन राखा। कौरव अग्नि दीन्ह गृहलाखा॥
तब तुमही यदुनाथ उबारा। दीन दयाल कहाँ यहि बारा॥

दोहा-गोकुल बूडत घेरि वन, जिमि रक्षा तुम कीन्ह।
नाश्यो मातलिसूत मद, गिरिवर कर धरि लीन्ह॥
श्रीपति दीनदयाल अब, तुम पति राखहु मोरि।
फिर हरि कैसी करहुगे, जब पट लैहैं छोरि॥

द्रौपदी बोली कि, कौरव और पांडवोंके आगे दुःशासन मेरे केश पकड कर वस्त्र हरता है अर्थात् मुझको इस सभामें नग्न करदेना चाहता है।

इस भाँति चिन्ता करके उसकाल द्रौपदी 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इन नामोंको पुकारनेलगी ॥ २३ ॥ हे हरे! मैं इस समय दुःखसागरमें निमग्न होरहीहूँ अतएव मेरे लिये अब आपके नामोंका स्मरणही नौकास्वरूप है। इस तरह वह द्रौपदी भक्तिपरायण होकर 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!' इत्यादि नामोंको उच्चारण करनेलगी ॥ २४ ॥ हे विष्णो! इस समय पिता, बान्धव, भाई, पुत्र, माता, सुहृद और मित्र कोई सहायक नहीं है अतएव अब आपही मेरे शरण्य हूजिये अर्थात् मुझको अपनी शरणमें रखिये ॥ २५ ॥ हे कृष्ण! हे विष्णो! हे मधुकैटभारे! हे भक्तोंपर कृपा करनेवाले! हे भगवन्! हे मुरारे! हे केशव! हे लोकनाथ! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ २६ ॥

चौपाई।

द्रुपदसुता लखि विकलपुकारा। प्रणत पाल हरिबिरद सँभारा॥
द्वारावति तजि नंगे पांयन। आतुर आय गये नारायण॥
प्रथम पाहि मुखतें जब काढा। प्रगटे वसनरूप पट बाढा॥

कवित्त।

दुर्जन दुःशासन दुकूल गह्यो दीनबन्धु दीन ह्वै के द्रुपददुलारी यों पुकारी है। आपुनो सबल छाँडि ठाढे पति पारथसे भीममहाभीम ग्रीवा नीचे करि डारी है ॥ अम्बरलो अम्बर पहाड कीन्हो शेष कवि भीष्म कर्ण द्रोण सबै मनमें यह विचारी है। सारी मध्य नारी है कि नारी मध्य सारी है कि सारी है कि नारी है कि सारी है कि नारी है ॥

वसन रूप धारि वसन समाने। धीरज द्रुपद सुता उर आने॥
खैंचो प्रथम जोर भरि जेता। निकस्यो वसन वसन मग तेता॥

दोहा—भक्ति प्रेम वश द्रौपदी, देखि वसनकी बाढि।
विनयकरत गदगदगिरा, भइ रोमावलि ठाढि॥

इस प्रकार द्रौपदीके कहते कहते ही पांडवोंके पालक भगवान् विष्णु आकर द्रौपदीके वस्त्ररूपमें स्थित होगये ॥ २७ ॥ उस काल सबके देखते-हुए वहां महान् हाहाकार मचा तब उस दुष्ट दुःशासनको द्रोण और भीष्मने (इस कामके करनेको) निवारण भी किया ॥ २८ ॥ फिर जब अधर्मी दुःशासन द्रौपदीके शापसे घबराकर इस कार्यसे शान्त हुआ तब भीम इत्यादि वीर कुरुकुलका सत्यनाश करनेको ॥ २९ ॥ उठ खडे हुए, किन्तु धर्मराज युधिष्ठिरने उनको आंखके इशारेसे निवारण करदिया। तब फिर सब पांडव दुःखित चित्तसे उठकर बनको चलेगये ॥ ३० ॥

सर्वेषां पश्यतां तत्र भावी केन विलुप्यते ॥ ३१ ॥

यद्यपि पाण्डव लोग ऐसे महाबलवान् व धर्मात्मा थे तो भी वे सब किसीके देखते हुए बनको चलेगये । क्योंकि होनहार बातको कौन टाल सकता है ॥ ३१ ॥

इति श्रीभारतसारे सभापर्वणि भाषायां पाण्डवप्रस्थानं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

कहा करै बैरी प्रबल, जो सहाय यदुवीर।
दश हजार गज बल घट्यो, घट्यो न दशगज चीर ॥

इति सभापर्व ॥



श्रीकृष्णाय नमः ।

भारतसार-भाषा ।

वनपर्व ३.

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

एकोनविंशे चेन्द्रेण शक्रशङ्करमेलनम् ।
नलराजस्य वृत्तान्तमन्यच्चापि निगद्यते ॥ १ ॥

इस उन्नीसवें अध्यायमें इन्द्रकील पर्वतपर इन्द्र और शंकरका मिलन और राजा नलका वृत्तान्त तथा कुछ औरभी कथा वर्णन करीजातीहै॥ १॥

वैशम्पायन उवाच ।

महावनं समासाद्य पाण्डवा दुःखपीडिताः ।
शाकान्भक्षितवन्तश्च भीमानीतान्दिनेदिने ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! उस महावनमें पहुँचकर पाण्डव दुःखी हुए और प्रतिदिन भीमसेनके लायेहुए (फलादि) शाकका भक्षण करने लगे ॥ १ ॥ शाकके खानेसे वे सब वीर दुबले और बलपराक्रम-रहित होगये । तब पाण्डवोंको भूँखसे घबरायाहुआ देखकर द्रौपदी जैसेही दुःखके मारे बहुतही पीडित हुई॥ २ ॥ देवीद्रौपदी जैसेही दुःखसे कातर हुई कि उसी समय उसने देवर्षि नारदजीका दर्शन किया अर्थात् नारदजी वहां आन-कर उपस्थित हुए । तब द्रौपदीने उनको प्रणाम करके अपने दुःखका सारा हाल मुनिसे कहसुनायी ॥ ३ ॥ यह सुनकर देवर्षि नारदजीने द्रौपदीको एक सूर्य देव-ताका मन्त्र दिया । जो कि अन्न, वस्त्र और (अभिलाषित) सिद्धिका देनेवाला था ॥ ४ ॥ तब फिर जिस समय सबेरेही उठकर भलीभाँति विधिपूर्वक स्नान करके द्रौपदी उस मन्त्रके सिद्ध करनेमें निरत हुई और भगवान् सूर्यकी

स्तुति करने लगी, तब सूर्यनारायणने परम संतुष्ट होकर उसको वर प्रदान किया॥५॥ और भगवान् सूर्यने अन्नसे भरीहुई एक स्थाली (कसैडी) दी, (उसमें यह गुण था) कि जिस समय तक द्रौपदी भोजन न करे तब-तक उसका अन्न क्षय (कम) नहीं हुआ करताथा ॥ ६ ॥ किन्तु जब द्रौपदी भोजन करचुकनेपर उस कसैडीको धोकर अधोमुख (औंधासुख) करके रखदेवे, तब वह उस दिन अन्नसे खाली रहेगी और अगले दिन फिर अन्नसे भर जायगी ॥ ७ ॥ इस कसैडीके मिलजानेपर पांडव मनमें बहुत ही हर्षित हुए। तब तो वे पांडव प्रतिदिन (शतशःब्राह्मणोंको) पंचामृत भोजन कराकर फिर आप भोजन करनेलगे इस कारण वे हृष्ट पुष्ट और तेजस्वी होगये ॥ ८ ॥ इस प्रकार उस वनमें समस्त पांडव वास किया करतेथे, फिर समय देखकर धर्मके जाननेवाले अर्जुन तीर्थयात्राके निमित्त चले गये ॥९॥ अनन्तर वनवासके समय ही अर्जुनके साथ मार्गमें उलूपीका संगम हुआ। यह उलूपी नागकन्या थी। यह भगवान् श्रीमहादेवजीके लिंग (प्रतिमा) पर चढगई थी ॥ १० ॥ इसी कारण इसके पिताने क्रोधित होकर यह शाप दिया कि, तू अर्जुनको पति बना, अस्तु यह अर्जुनकी भार्या बनी और चित्राङ्गदाको अर्जुनके अंश करके बभ्रुवाहन पुत्र हुआ ॥ ११ ॥ इसके पीछे अर्जुन तीर्थयात्रासे लौटकर फिर उस महावनमें आगये और धर्मपुत्र युधिष्ठिर इत्यादिको प्रणाम किया, तथा नकुल, सहदेवको मिले, इस तरह उस वनमें सब पांडव वास करनेलगे ॥ १२ ॥ फिर (किसी समय) विजयी अर्जुनने आदरपूर्वक महाराज युधिष्ठिरसे कहा—हे भाई ! मैं तपस्या करनेके निमित्त दूसरे वनमें जाना चाहताहूँ ॥ १३ ॥ क्योंकि तपस्या करके युद्धमें सब कौरवोंको परास्त करूंगा। महाराजयुधिष्ठिरने अर्जुनकी यह बात सुन-कर ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीवेदव्यासजीको स्मरण किया और वे तत्काल आनकर उपस्थित हुए। उन्होंने अर्जुनको जय देनेवाली विद्या प्रदान करी अर्थात् इन्द्रका मन्त्र दिया ॥ १५ ॥ अर्जुनने उस विद्याको लेकर इन्द्रकील नामक पहाडपर प्रस्थान किया और इस तपकी सिद्धि देनेवाले इन्द्रके मन्त्रका

जप किया ॥ १६ ॥ फिर महात्मा अर्जुनके तपकी सिद्धि देखकर वनमें घूमनेवाले इन्द्रकीलपर्वतवासी देवराज इन्द्रके सेवकोंने इन्द्रसे जाकर कहा ॥ १७ ॥ वनचर बोले—हे स्वामिन् ! आपके वनमें कोई नरोत्तम पुरुष तपस्या कररहाहै; वह विष्णु हैं, अथवा पद्मयोनि ब्रह्माजी हैं, वा श्रीमहादेवजी हैं, या वरुणदेवजी हैं ॥ १८ ॥ किंवा वह कोई उत्तम देवता है, यह बात हम ठीक ठीक नहीं कहसकते । उनके इस प्रकार वचन सुनकर देवराज इन्द्रने कहा ॥ १९ ॥ हे अप्सराओ ! तुम शीघ्रतासहित अभी उस वनमें चलीजाओ, वहाँ कोई आदमी तपस्या कररहाहै, उसको अपने हावभाव और कटाक्षोंसे लुभालो ॥ २० ॥ इसतरह इन्द्रकी बात सुनकर वे सब अप्सरायें अपने पतियोंके सहित कोई पालकी और कोई हाथीपर सवार होकर उस महावनमें गई ॥ २१ ॥ और वहाँ जाकर अपने हावभाव व कटाक्षोंसे अर्जुनके लुभानेकी चेष्टा करनेलगीं, किन्तु महायोगी अर्जुनने उन सारी अप्सराओंको तुच्छ करदिया अर्थात् अर्जुनकी समाधि किसीप्रकारभी न डिगी ॥ २२ ॥ और उन्होंने अनेक भाँतिसे तपस्या करके अपने कामको सिद्ध करलिया, तब उन अप्सराओंने निष्फल हो अर्थात् अपने मनमें हार मान घर जाय गदगद वाणीद्वारा सब समाचार देवराज इन्द्रसे कहा ॥ २३ ॥ तब इन्द्र ब्राह्मणका वेष बनाय कर उस वनमें पहुँचे और अर्जुनसे पूछा । वासवने कहा—हे वीर ! आप इस वनमें बखतर और धनुष ग्रहण किये किस निमित्त तपस्या कररहे हैं ? इन लक्षणोंसे तो हमको ऐसा मालूम होताहै कि, आप कोई कामी ऋषि हैं ॥ २४ ॥ यह कामनाका विषय सर्वथा परितापका (दुःखका) ही देनेवाला होताहै, अत एव आप इसको छोडकर शान्तिमार्गमें मन लगाइये ॥ २५ ॥ आपकी यह तपस्या तो मोक्षके लायक है इसको आप निष्फल मत कीजिये । देवराज इन्द्रके इस प्रकार वचन सुनकर अर्जुनने उत्तर दिया ॥ २६ ॥ अर्जुनने कहा—हे विप्रेन्द्र ! आप जो कुछ कहरहेहैं वह आपका कहना मुझको अयोग्य दीखरहाहै। कारण कि, प्रबन्धको विना जाने पूछे कहरहेहो

इसलिये आपकी बातें व्यर्थ हैं ॥ २७ ॥ यदि बृहस्पतिजीभी प्रबंधके विना जाने पूछे कोई बात कहें तो हे ब्राह्मण ! उनकीभी वह बात वृथा होती है, इस कारण अब आप मुझसे ऐसी बात (कदापि) न कहिये ॥ २८ ॥ जिस तरह बिखरेहुए मेघ दूर होजायाकरतेहैं इस पहाडके शिखरपर मैं भी उसी तरह सहस्राक्ष (इन्द्र) को संतुष्ट करके अयशरूपिणी कीचड अलग करदूँगा ॥ २९ ॥ इस प्रकार अर्जुनकी बातें सुनकर देवराज इन्द्रने अपना असली रूप धारण कर लिया और आनन्दित चित्त हो अर्जुनको छातीसे लगाकर कहा ॥ ३० ॥ फिर उन्होंने महात्मा अर्जुनको शिवका मन्त्र दिया, तब वैरियोंके जीतनेकी अभिलाषासे अर्जुन उस शिवमन्त्रकी आराधना करनेलगे ॥ ३१ ॥ जब परवीरघाती अर्जुनने शिवजीका मंत्र जपा, तिससे श्रीमहादेवजीने प्रसन्न होकर उनको महान् पाशुपतनामक अस्त्र दिया ॥ ३२ ॥ उसको लेकर अर्जुन शीघ्रतासे उस वनमें गये, जहां धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिर वास किया करते थे, वे अर्जुनको देखकर अपने मनमें बहुतही हर्षित हुए ॥ ३३ ॥ फिर किसी समय बलवान् पुरुषोंमें अग्रणी भीमसेनने रास्तेमें पडेहुए एक छोटेसे वानरको देखा ॥ ३४ ॥ तब भीमसेनने उस वानरसे कहा—कि तू मुझको रास्ता दे । बंदरने उत्तर दिया आप मुझको उलांघकर चलेजाइये और या किसी दूसरे रास्तेसे चलेजाइये ॥ ३५ ॥ और यदि यहभी न करो तो मेरी पूँछपकड मुझको दूर करके अगाडी चले जाइये । वानरके इस प्रकार कहनेपर भीमसेनने वैसाही काम किया ॥ ३६ ॥ किन्तु वह देखनेमें छोटासा बन्दर भीमसेनसे जौभरभी नहीं सरका, तब तो यह बडे अचम्भेमें होकर (सोचनेलगे कि) यह वानररूप धरेहुए कौन है ? ॥ ३७ ॥ यह ब्रह्मा, विष्णु, महादेवके बीचमें कौनसा देवता है ? या इन तीनोंके अतिरिक्त कोई औरही देवता है ? इस तरह भीमसेनको अचम्भेमें देखकर श्रीहनुमान्जीने उनसे कहा ॥ ३८ ॥ हनुमान्जी बोले—हे महावीर भीमसेन ! आप मुझको पवनपुत्र हनुमान् जानलीजिये । मैं सुखपूर्वक इस पृथ्वीपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सुनता

हुआ घूमता रहता हूँ ॥ ३९ ॥ हनुमान्‌जीकी यह बात सुनकर भीमसेन इस प्रकार कहनेलगे। भीमसेनने कहा—हे कपिराज! आपकी समान श्रीरामचन्द्रजीके कटकमें क्या दूसरा कोई बली नहीं था? ॥ ४० ॥ अथवा आप भगवान्‌ही बन्दरका रूप धरकर पृथ्वीपर घूमते हैं? भीमसेनकी यह बात सुनकर कपिराजने उनसे कहा ॥ ४१ ॥ हनुमान्‌जी बोले—हे महबाहो भीम! आप इस प्रकारका अचम्भा मत कीजिये। कारण कि, श्रीरामचन्द्रजीके श्रेष्ठ कटकमें मुझसे भी अधिक बलवान् वीरथे ॥ ४२ ॥ यदि आप यह मेरी बात (सत्य) नहीं माने तो मेरे संग चलिये। मैं आपको एक बडाही आश्चर्य दिखाऊंगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४३ ॥ इतनी बातचीतके पीछे भीमसेन और कपिराज हनुमान् दोनोंजने समुद्रकी तरफ चल दिये, तब रास्तेमें भीमसेनने एक बडा भारी तालाव देखा ॥ ४४ ॥ उस तालावको देखकर पृथाके पुत्र भीमसेनने हनुमान्‌जीसे कहा—भीमसेन बोले—हे कपिराज! आप देखिये यह बडा भारी तालाव दिखाई देरहा है॥४५॥ हे महाबाहो! यदि आप आज्ञा देवें तो मैं इस तालावमें स्नान करूं भीमसेनकी यह बात सुनकर कपिराज हनुमान्‌जीने उनसे कहा॥४६॥हे महावीर! आपने बहुत उत्तम विचार किया। हे महाबलवान्! आप इस तालावमें स्नान कीजिये हे भीम! आप इसमें स्नान करतेही पवित्र होजायँगे ॥ ४७ ॥ कपिराज हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर भीमसेनने वैसाही किया और उस तालावमें स्नान करते करतेही वे बीचमें डूबगये ॥ ४८ ॥ फिर जब बुद्धिमान् हनुमान्‌जीने भीमसेनके रोने चिल्लानेकी आवाज सुनी तो उन्होंने हँसते हँसते भीमसेनको निकाललिया ॥ ४९ ॥ हनुमान्‌ने अपनी पूछके सहारेसेही भीमसेनको निकाललिया तब भीमसेन बडा आश्चर्य करके कहनेलगे। हे कपिराज! यह तालाव नहीं है,मुझको तो यह समुद्रका अंग दीखरहारहै ॥५०॥ क्योंकि मैंने (आजतक) इसकी समान तालाव कहीं भी नहीं देखा है; हनुमान्‌जी बोले—हे महाबाहो भीम! सुनिये इसकी समान दूसरा तालाव नहीं है॥५१॥हे वृकोदर! पूर्वकालमें रामरावणके संग्राममें कुंभकर्णके मस्तकका

टुकडा बाणोंके प्रहारसे उछलकर यहाँ आ गिरा था उसमें मेघोंकी वर्षाका जल भरगया है. यह आप जानिये ॥ ५२ ॥ कपिराज हनुमान्‌जीकी यह बात सुनकर भीमसेनने मस्तक कंपायमान किया अर्थात् इस बातको सत्य नहीं जाना । तब हनुमान्‌जीने भीमसेनका यह मत जानकर ॥ ५३ ॥

अंगुष्ठेन शिरोभागः कुंभकर्णस्य भूमितः ।
तं दृष्ट्वा विस्मितो भीमः प्रशंसति कपीश्वरम् ॥ ५४ ॥

अपने अँगूठेसे कुंभकर्णके शिरका भाग (टुकडा) पृथ्वीसे निकाललिया, उसको देखकर भीमसेनको बडाही अचंभा हुआ और कपिराज हनुमान्‌जीकी बडाई करी॥ ५४ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां भीममानभ्रंशो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

विंशे दुर्वाससस्तृप्तिर्वने कृष्णस्य मेलनम् ।
राज्ञो नलस्य वृत्तान्तं किञ्चिदत्र प्रकीर्त्यते ॥ १ ॥

इसी वीसवें अध्यायमें वनके बीच श्रीकृष्णका मिलना, दुर्वासामुनिका तृप्त होना और महाराज नलका वृत्तान्त इत्यादि वर्णन किया जाता है॥ १॥

वैशम्पायन उवाच ।

एकदा वनमध्ये तु वर्तमानं युधिष्ठिरम् ।
दुर्वासाश्चागतस्तत्र द्वादश्यां पारणाय च ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले-हे जनमेजय ! एकदिन वनमें वर्तमान महाराज युधिष्ठिरके निकट मुनिवर दुर्वासाजी द्वादशीका पारण करनेके निमित्त आये ॥ १॥ उस काल दुर्वासाजी दुर्योधनके पठायेहुए दशहजार चेलोंको संग लेकर आये थे, किन्तु तब पांडव भोजनकरके निश्चिन्त होचुके थे ॥ २॥ और द्रौपदीने भी खानेसे निबटकर उस कसैडीको खाली करके औंधा रखदिया था तब पांडव उस समय दुर्वासामुनिको आयाहुआ देखकर संभ्रम युक्त हुए ॥ ३ ॥ तब ऋषिवर दुर्वासाजीने कहा-हे पांडवो ! आप मुझको भिक्षा दीजिये

अर्थात् पारण करवाइये । उनकी यह बात सुनकर पांडव अपने मनमें विचारने लगे ॥ ४ ॥ फिर सब पांडवोंने मिलकर सोचा कि, इस समय क्या उपाय करना उचित है ? तब यह विचार किया कि, इन ऋषिको तो स्नान करनेके निमित्त भेजदें और अपने आप अग्निमें प्रवेश करके भस्म होजाय ॥ ५ ॥ इस प्रकार उन्होंने निश्चय करके उन ब्राह्मणोत्तम दुर्वासाजीको तो स्नान करनेके लिये भेजदिया और अपने बहुत लकडियां इकट्ठीकर चिता रचाय उसको प्रज्वलित किया ॥ ६ ॥ फिर वे ज्योंही अग्निमें प्रवेश करनेको तैयार हुए कि, वैसेही पीताम्बर चक्र और वनमालासे विभूषित भगवान् विष्णु आनकर उपस्थित हुए ॥ ७ ॥ और द्रौपदीसे कहा कि मैं कलसे व्रती हूँ, अतएव मुझको पारण कराइये । यह सुनकर द्रौपदीने उत्तर दिया हे नाथ ! इस समय मेरी कसैडी खाली होरही है ॥ ८ ॥ और मेरे घरमें अन्नभी बिलकुल नहीं है, हे प्रभो ! यह बात क्या आपको विदित नहीं है ? इसके अतिरिक्त हे नाथ ! इस समय मुनिवर दुर्वासाजी भी अपने (दशहजार) शिष्योंसहित हमारे यहाँ पारण करनेके निमित्त आयेहुए हैं ॥ ९ ॥ इसी कारण हे प्रभो ! हम सब जने इस जलतीहुई अग्निमें प्रवेश करनेकी इच्छा कररहे हैं, द्रौपदीकी यह बातें सुनकर श्रीकृष्णने फिर कहा ॥ १० ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे द्रौपदी ! आप अपनी इस कसैडीको क्यों नहीं देखतीहो ? कि कहीं कुछ अन्न चिपट तो नहीं रहा है ? तब उनकी आज्ञानुसार देवी द्रौपदीने ज्योंही उस कसैडीको देखा ॥ ११ ॥ तो उसमें अन्नका एक किनका चिपटाहुआ दिखाई दिया । फिर उसको द्रौपदीने भगवान् श्रीकृष्णके हाथमें अर्पण किया जिसको श्रीहरिने विश्वार्पण करके भोजन करलिया ॥ १२ ॥ तब भगवान् श्रीहरि जैसेही उसके द्वारा तृप्त हुए कि, वैसेही पांडव इत्यादि सारा ब्रह्माण्ड तृप्त होगया । उसकाल भीमसेनसे उनके पालक श्रीकृष्णने कहा ॥ १३ ॥ हे भीम ! अब आप ब्राह्मणोंको भोजन करनेके निमित्त शीघ्रतासे बुलाय लाइये । यह सुनकर भीमसेन गये और अकेलेही ब्राह्मणोंके पास जाकर कहा कि, आप लोगोंने इतनी देर क्यों लगादी ? अब शीघ्रही पारण कर-

नेके निमित्त चलदीजिये ॥ १४ ॥ तब उन ब्राह्मणोंने भीमसेनसे पूछा क्या श्रीहरि आपके घर पधारे हैं ? भीमसेनने उत्तर दिया कि, हाँ श्रीकृष्ण स्वयं ही हमारे घर आये हैं ॥१५॥ अनन्तर उन मुनियोंने फिर कहा—हे भीम! भगवान् श्रीहरिके तृप्त होनेपर अब हम लोगभी (भली भाँति) तृप्त होगये हैं, किन्तु भीमसेन उनको हठकरके बुलानेलगे ॥ १६ ॥ तब तो हे राजन् !(भीमसेनकी यह जबर्दस्ती देखकर) बाल खुलेहुए वे सब ब्राह्मण भाग निकले । ऐसा करके जगन्नाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने (अपने भक्त) पांडवोंकी रक्षा करी ॥ १७ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराज युधिष्ठिरसे आज्ञा लेकर अपने स्थानको चलेगये । फिर एक समय वनमें वास करतेहुए धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिरके पास श्रीवेदव्यासजी गये और उन धर्मतत्पर आकुल और दुःखी महाराजसे कहने लगे ॥ १८ ॥ हे नरव्याघ्र ! आप दुष्टदशाको प्राप्त होरहे हैं अतएव विषाद मत कीजिये । क्योंकि हे महाराज ! पहले सत्ययुगमें राजा नलभी ऐसीही दुष्टदशाको प्राप्त होचुके हैं ॥ १९ ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिर पूछा—हे स्वामिन् ! वे नलराजा कौन थे और कैसे दुष्टदशाको प्राप्त हुए थे ? तथा वे पीछे किसतरह सुखी हुए ? आप यह सारी बातें मुझसे सत्यही सत्य वर्णन कीजिये ॥ २० ॥ श्री वेदव्यासजीने उत्तर दिया—हे राजा युधिष्ठिर ! पहिले सत्ययुगमें नलनामक एक परम धर्मात्मा राजा थे जो, कि नलवर नामवाले दुर्ग (किले) में राज्य किया करते थे॥२१॥ वह महाराज नल रूपवान्, गुणयुक्त, सुशील, उदारबुद्धि, सत्यवादी और जितेन्द्रिय वीरसेनके पुत्र थे ॥२२॥ और भीमनामसे विख्यात एक राजा कुण्डिन नगरमें राज्य कियाकरता था, जिसके घरमें रूप और गुणशालिनी एक दमयन्ती नामवाली कन्या थी॥२३॥ चन्द्रमाको लज्जित करनेवाला मुखारविन्द, कमलोंका तिरस्कार करनेवाली आँखें, कञ्चनकी सुन्दरताको छीननेवाला देहका रंग, श्याम कमलिनीकी सुन्दरताको परास्त करनेवाले बाल, हाथियोंके कुम्भकी छबिको चुरानेवाले दोनों स्तन, भारी नितम्बोंकी स्थली और बोलनेमें मन हरनेवाला मधुर भाव यह

नारीमें स्वाभाविक ही शृङ्गार हुआ करता है॥२४॥ ऐसी रूपलावण्यवाली बाला दमयन्तीने स्वयंवरमें आये सारे राजाओंको छोडकर महाराज नलको ही वरा अर्थात् उनके ही गलेमें जयमाला पहिराई॥२५॥ यह देखकर इन्द्र इत्यादि देवता भी दुःखी हुए। वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय! उन देवता-ओंने अपना निरादर हुआ समझकर बडा कोप किया और कलियुगसे प्रार्थना करी कि, तुम महाराज नलके शरीरमें घुसजाओ॥ २६॥ देवताओंके इस प्रकार कहनेपर कलियुग महाराज नलके समीप आया और शरीरमें घुसनेके निमित्त बारह वर्षतक राजाके चारों ओर घूमतारहा ॥२७॥ किन्तु धर्मात्मा महाराज नलके शरीरमें नहीं घुससका, फिर एकदिन उसने घूमतेहुए महाराज नलके शरीरको देखा॥ २८॥ उसने ऐसे शरीरको चारों ओर घूमतेहुए देखा कि, उनकी गुदाका निचला भाग जलके स्पर्शसे रहित है॥ २९॥ तब कलि-युगने उसीको अपने घुसनेका रास्ता जाना और फिर तत्काल गुदाद्वारसे इनके शरीरमें घुसगया। अनन्तर महाराज नलके शरीरमें कलियुगका स्पर्श होनेपर वे दुष्ट अवस्थाको प्राप्त हुए॥३०॥ उनकी प्रतिदिन दुर्बुद्धि और दारुण मन-स्ताप होनेलगा, तेजकी हानि होगई और वे अपनी पत्नी (रानी दमयन्ती)का भी प्रतिदिन अविश्वास करने लगे ॥ ३१ ॥ जिस समय कलिका प्रवेश होता है, उस काल प्रायः धर्म जलजाया करता है, तपस्या चलित होजाया करती है, सत्य दूर भागजाया करता है, भूमि मन्दफलवती होजाया करती है, राजालोग कपट करने लगते हैं, ब्राह्मण लोग अधिक याचना करनेसे चञ्चल हो उठा करते हैं, सारे मनुष्य नारियोंके वशीभूत होजाया करते हैं, नारियां चञ्चल होजाया करती हैं, बेटा बापका शत्रु होजाया करता है, साधु सन्तोंको दुःख मिला करता है, और दुष्टात्मा आदमी सुख भोगा करता है ॥ ३२॥ महाराज जनमेजय बोले—हे मुनिवर! जब महात्मा अर्जुन अस्त्रके निमित्त इन्द्रलोकको चलेगये, तब उससमय युधिष्ठिर इत्यादि पाण्डवोंने क्या किया? ॥३३॥ वैशम्पायनजीने कहा—हे महाराज! अस्त्रके निमित्त महात्मा अर्जुनके इन्द्रलोकको चलेजानेपर पुरुषोत्तम पाण्डव कृष्णा द्रौपदी समेत काम्य

वनमें वास करनेलगे॥ ३४॥इसके पीछे हे भरतश्रेष्ठ ! किसी समय एकान्त स्थानमें द्रौपदी समेत दुःखित पांडव कोमल और हरी हरी घासपर बैठेहुए थे॥ ३५॥ तथा दुःखित मनसे अर्जुनका सोच करते २ आंसुओंकी धारा उनके कण्ठपर आरही थी, तब महाबाहु भीमने महाराज युधिष्ठिरसे कहा ॥ ३६ ॥ कि, अर्जुनके वियोग और राज्यके नाशसे दुःखीहुए हम क्या करें ? और कहाँ जाँय ? तथा कैसे यह दुःख निश्चय करके छूटे ? ॥३७॥ हे महाराज ! आपकी आज्ञा होनेपरही अर्जुन इन्द्रलोकको गयेहैं और अर्जुनहीको पाण्डुपुत्रोंका प्राण समझना चाहिये; इस बातमें जराभी संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ वे तेजस्वी अर्जुन अनन्त क्लेशोंकी चिन्ता करतेहुए अत्यन्त दुःखित मन होकर आपकी आज्ञासेही वनान्तरको गयेहैं ॥ ३९ ॥ जिन महात्मा अर्जुनकी भुजाओंके सहारेसे हम सब कोई संग्रामस्थलमें पहुँचकर वैरियोंको जीताहुआ ही समझते हैं और पृथ्वीको मानो प्राप्त हुआही समझ लेते हैं ॥ ४० ॥ हम लोग तथा श्रीकृष्णसहित अर्जुन, कर्ण इत्यादि (महाबलवान्) भूपालोंको अपनी साधारण प्रजाकी तरह करके और अपने भुजबलसे सारे पृथ्वीमण्डलको विजय करके पालन किया करते हैं ॥ ४१ ॥ किन्तु हे महाराज ! हम सब आपके जुएके दोषसेही (दुःखित होकर) इस वनमें आयेहैं और जो हमलोग बलवान् मनुष्योंसेभी अधिक बलवान् थे वेही हम आज हीनपौरुष अर्थात् दुर्बल होरहे हैं ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! आप क्षात्रधर्म (क्षत्रियोंके कर्म) को भलीभांति जानतेहैं कि, महात्मा क्षत्रियोंका दूसरा धर्म नहीं है ॥ ४३ ॥ क्योंकि बुद्धिमान् पण्डितोंने राज्य करनाही क्षत्रियोंका परम धर्म बतलाया है, अतएव हे महाराज ! आप क्षत्रियोंका धर्म जाननेवाले हैं और धर्मात्मा हैं फिर दूसरे आदमीकी तरह नहीं हैं ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! हमलोगोंको धृतराष्ट्रके बेटोंने राज्यसे बाहर निकाल दियाहै सो यदि हम उन सारे कौरवोंको बारह वर्षके प्रथम ही वध करडालें; तबही क्षत्रियोंका सनातन धर्म रहसकता है ॥ ४५ ॥ इस सबसे पहले दुर्योधन, कर्ण तथा और भी संग्रामकरनेवाले वैरियोंका वध

करेंगे, पीछे आप वनसे हस्तिनापुरको लौट आइये ॥ ४६ ॥ हे महाराज ! ऐसा करनेपर आपको बिलकुलभी दोष स्पर्श नहीं करसकेगा, हे शत्रु-तापन ! कदाचित् आप पाप होनेकी शंका करें, तोभी अनेक कियेहुए यज्ञों द्वारा ॥ ४७ ॥ पाप धोकर हे महाबाहो ! अति उत्तम स्वर्गमें जाँयगे। हे राजन् ! यदि आप बालकबुद्धि नहीं करेंगे और मुझको आज्ञा देंगे तो इस पृथ्वीका सारा राज्य अपनाही होजायगा ॥ ४८ ॥ आप धर्मपरायण अर्थात् धर्मके जाननेवाले हैं, अतएव मुझको कौरवोंके मारडालनेकी आज्ञा दीजिये, क्योंकि प्रथम अपराध करचुकनेवालोंके मारडालनेमें कुछभी पाप नहीं लगताहै ॥ ४९ ॥ हे महाराज ! हमको तो राज्यके विना दिन रात वर्षके बराबर और वर्ष कल्पके बराबर महान् कष्टसे बीत रहाहै ॥ ५० ॥ हे राजन् ! आप मेरी बातोंका मनमें विचार कीजिये । यह कालही पुत्र स्त्रीके सहित दुर्योधनका नाश करडालेगा ॥ ५१ ॥ हे महाराज ! उस दुर्योधनने प्रथम हम लोगोंको राज्यसे बाहर करके सारी पृथ्वीको एकमात्र अपनीही आज्ञाके वशीभूत करलिया है । वैशम्पायनजी बोले--भीमसेनके इस प्रकार कहनेपर महाराज युधिष्ठिर कहनेलगे ॥५२॥ युधिष्ठिरने कहा-हे महाबाहो भीम ! आप तेरह वर्ष पीछे गांडीव धनुषधारी अर्जुनके सहित अवश्यही दुर्योधनको मारडांलेंगे; इसमें कुछभी संशय मत समझना ॥५३॥ क्योंकि हे भीम ! आजतक आपके मुखसे कभी झूंठी बात नहीं निकली है अतएव अब आप थोडेही समयमें दुर्योधनका संहार करडालेंगे ॥ ५४ ॥ महाराज युधिष्ठिर इस प्रकार भीमसेनसे बातें कररहे थे कि, उसी समय वहां महायोगी तपोधन बृहदश्वमुनि आनकर उपस्थित हुए ॥ ५५ ॥ तब धर्म-नन्दन महाराज युधिष्ठिरने उन धर्मचारी धर्मात्मा और शास्त्रके जाननेवाले बृहदश्वजीको आयाहुआ देखकर सन्मुख जाय मधुपर्कके द्वारा उनकी पूजा करी ॥ ५६ ॥ और फिर उनको विधिपूर्वक आसनपर बैठालकर धर्मराज युधिष्ठिरने कहा. युधिष्ठिर बोले-हे भगवन् ! अक्षद्यूत (चौपडका जुआ) मेरा सारा धन और राज्य हरगया॥५७॥मेरे दायभागी (हिस्सेदार)

कौरवोंने जो कि, पराई आजीविका हरनेमें परम प्रवीण और दुष्ट हैं, (मेरा सर्वस्व हरण करलिया) और पीछे हमारी भार्या द्रौपदीकोभी सभामें लेआये, जिससे मुझको एकतरहका अत्यंत दुःख हुआ है ॥ ५८ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस पृथ्वीतलपर मेरी समान दूसरा कोई भी दुःखी नहीं है। युधिष्ठिरकी यह बातें सुनकर बृहदश्वजी बोले—हे महाबाहो धर्मराज युधिष्ठिर ! आप बिलकुल भी दुःख नहीं कीजिये ॥ ५९ ॥ हे महाराज ! पहिले सत्ययुगमें राजा नलभी (आपहीकी तरह) दुःखसे पीडित हुएथे। युधिष्ठिरने कहा-ब्रह्मन् ! वे राजा नल कौन थे ? और किस दुःखसे पीडित हुए थे ? ॥ ६० ॥ वह दुःख उनको कितने समयतक रहा ? फिर उनका वह दुःख कैसे छूटा ? (आप यह सारी कथा विस्तारसहित वर्णन कीजिये) बृहदश्वजी बोले—हे महाराज युधिष्ठिर ! पूर्वकालमें वीरसेनके पुत्र एक नलनामसे प्रसिद्ध महाबलवान् राजा थे ॥ ६१ ॥ वे सर्वगुणसम्पन्न, रूपवान्, चौपड खेलनेमें प्रवीण (चतुर) और सारे राजाओंमें उनकी ऐसी प्रतिष्ठा थी, जैसे सब देवता देवराज इन्द्रकी प्रतिष्ठा कियाकरते हैं ॥ ६२ ॥ सबके ऊपर वे सूर्यकी समान तेजस्वी, ब्राह्मणोंकी सेवाकरनेवाले, वेदके जाननेवाले और निषधदेशके अधिपति थे ॥ ६३ ॥ पांसे खेलनेमें प्रीतिकरनेवाले, सत्यवादी, ग्यारह अक्षौहिणीसेनाके पति, सुन्दरी नारियोंकी इच्छा पूरी करनेवाले, उदारबुद्धि, जितेन्द्रिय ॥ ६४ ॥ रक्षक (पालक) और धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ साक्षात् स्वयम्भुव मनुकी समान हुए थे। ऐसेही विदर्भदेशके महाराज भीमभी (महापराक्रमी, ब्राह्मणभक्त, हरिभक्त, और प्रजाकी रक्षा करनेवाले) थे ॥ ६५ ॥ इसके अतिरिक्त शूर, सर्वगुणी, प्रजाकी कामना करनेवाले विदर्भाधिपति भीम संतानहीन थे। उन-महाराजने पुत्रके निमित्त सावधान होकर बहुत कुछ यत्न किया ॥ ६६ ॥ हे धर्मराज ! (फिर एक दिन उनके पास) दमन नामक ब्रह्मर्षि आनकर उपस्थित हुए उनके आने पर पुत्रकी कामनावाले धर्मात्मा राजा भीमने(पूजा करके) उनको सन्तुष्ट किया ॥ ६७ ॥ फिर जब अच्छे तेजवाले उन मुनिको

महाराज भीमने महारानीके सहित आदर सत्कार व पूजा करके सन्तुष्ट किया, तब दमनमुनिने रानी समेत महाराजपर प्रसन्न होकर उनको वरप्रदान किया ॥ ६८ ॥ अर्थात् महायशा मुनिवर दमनने अच्छे तेजवाले महाराज भीमको एक कन्यारत्न और अत्यन्त उदारबुद्धि तीन पुत्र[1] कि जैसे दमयन्ती, दम, दान्त, और दमन प्रदान किये ॥ ६९ ॥ वह सुन्दर कन्या दमयन्ती रूप, तेज, यश और सौभाग्यके द्वारा सम्पूर्ण लोकमें यश प्राप्त करके शोभित हुई ॥ ७० ॥ यह सब गहनोंसे विभूषित और नवीन अंगवाली सुन्दरी दमयन्ती सखियोंमें इस प्रकार शोभाको प्राप्त हुई कि जैसे बादलोंके बीच बिजली शोभाको प्राप्त होतीहै ॥ ७१ ॥ वह अत्यन्त रूपवती लक्ष्मीकी सदृश और विस्तारित आँखोंवाली थी, उसकी बराबर रूपवती देवता और यक्षोंमें भी कोई नहीं थी ॥ ७२ ॥

चौपाई ।

दमयन्ती विधिरूप सँवारी । रतिविमोह जेहि रूप निहारी ॥
जायन सुन्दर वदन बखानी । थकित होय लखि कविकी वानी ॥

मनुष्योंमें भी कामदेवको मोहितकरनेवाला ऐसा रूप दिखाई नहीं देता, अधिक कहाँ तक कहें, वह बाला चित्रलिखी पुतलीकी समान शोभायमान होरही थी ॥ ७३ ॥ और इधर भूमिपर नरशार्दूल महाराज नलभी गुणोंकी मूर्त्ति और रूपमें साक्षात् कामदेवकी समान थे। इस पृथ्वीपर गुणोंमें महाराज नलकी समान कोई नहीं था ॥ ७४ ॥ याचकोंने उन महाराज नलकी सुन्दरताका वर्णन दमयन्तीसे आनकर किया और निषधराज महाराज नलके समीप दमयन्तीकी सुन्दरताका वर्णन किया ॥ ७५ ॥ हे कौन्तेय युधिष्ठिर ! जब उन दोनोंने एक दूसरेके रूप गुणका हाल सुना तो दोनोंकी विवाह करनेकी अभिलाषा हुई और दोनोंकीही कामवृत्ति बढनेलगी ॥ ७६ ॥ एक दिन वनमें जातेहुए महाराज नलने हंसोंको देखा और उनमेंसे एक हंसको

१ यही तीनों पुत्र गुण और बलमें अपने पिताकी ही समान हुए थे ।

हाथमें पकडलिया ॥ ७७ ॥ वह हंस महाराज नलसे बोला कि, हे नल ! आप मुझको मत मारिये, क्योंकि मैं आपका प्रिय कार्य करूंगा अर्थात् दमयन्तीसे आपका समागम (भेंट) कराऊंगा ॥ ७८॥ वह दमयन्ती जिस प्रकार आपके अतिरिक्त किसी दूसरे आदमीकी चाहना न करे, मैं वैसाही उपाय करूंगा । पक्षी हंसके ऐसा कहनेपर महाराज नलने उसको छोड दिया ॥ ७९ ॥ अनन्तर वह हंस बिदा होकर विदर्भदेशको चलेगये, और वहाँ पहुँचकर दमयन्तीके निकट गये ॥ ८० ॥ उन हंसोंके वहाँ पहुँचनेपर दमयन्तीने उनको देखा । तब अपनी सखी सहेलियोंसे घिरीहुई वह दमयन्ती उन अद्भुतरूपवाले हंसोंको देखकर॥८१॥ हर्षित होती हुई उन हंसोंके पकडनेको इधर उधर दौडी, तब वह अनेक वर्णवाले हंस स्त्रियोंके चारों ओर॥८२॥ इधर उधर होकर अलग अलग फिरने लगे, किन्तु एकही हंस वहाँ ठहरगया कि जिसको महाराज नलने भेजा था ॥ ८३॥ फिर दमयन्ती जिस हंसके पकडनेको इच्छा करतीथी वह मनुष्यकी वाणी करके दमयन्तीसे बोला८४॥

चौपाई ।

सुनु दमयन्ती बात हमारी । निषधदेश महीपति भारी ॥
नलराजा उपमा को कहई । देखत रूप मोहि जग रहई ॥
तब यह सफल तोर है रूपा । जो पति पावो नलसों भूपा॥
सुनि दमयन्ती हृदय जुडाना । हंस वचन सुनि हर्षित प्राना॥
कह दमयन्ती करहु उपाई । जाते वरै मोहि नलराई ॥
भये स्वयंवर उनकहँ वरिहौं । अरु काहूको चित्त न धरिहौं ॥

हंसने कहा—हे दमयन्ती ! एक नलनामक निषधदेशके महाराज है, जो कि रूपमें कामदेवके तुल्य है और सारे मनुष्योंमें एकभी उनकी समान नहीं है ॥ ८५ ॥ हे वरवर्णिनी ! हे सुमध्यमे ! यदि आप उनकी भार्या बनजाँय, तो यह आपका रूप और जन्म सफल होवे ॥ ८६ ॥ मैंने क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या मनुष्य, क्या सर्प और क्या राक्षस सब किसीकोही देखडालाहै,

किन्तु मुझको तो महाराज नलकी समान रूप किसीमें भी दिखाई नहीं दिया ॥ ८७ ॥ आप तो नारियोंमें रत्न हैं और निषधाधिपति नल पुरुषोंमें शिरोमणि हैं, अतएव आप महाराज नलको ही वरिये, क्योंकि श्रेष्ठ कन्याका श्रेष्ठपतिसे संगम होनेपरही ठीक होताहै ॥ ८८ ॥ हे महाराज युधिष्ठिर ! उस हंसके यह बातें कहनेपर दमयन्तीने कहा—हे हंस ! मैं आपके कथनानुसार महाराज नलकोही अपना पति बनाऊँगी। किन्तु अब यह बात अच्छे तत्त्वके ज्ञाता महाराज नलसेभी जाकर कहदीजिये ॥ ८९ ॥

तथेत्युक्त्वाण्डजः कन्यां वैदर्भस्य विशांपतेः ।
पुनरागत्य निषधान्नले सर्वं न्यवेदयत् ॥ ९० ॥

हे महाराज युधिष्ठिर ! दमयन्तीके इस प्रकार कहनेपर पक्षी हंसने 'ऐसाही होगा' कहा और फिर उसने निषधदेशमें महाराज नलके पास जाकर सब समाचार निवेदन करदिया ॥ ९० ॥

दोहा—हंस देश निषधमहँ, राजहि कहा बुझाइ ।
कन्यामन तुमसों बसेउ, करहु हर्ष मन राइ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

एकविंशे तु शक्राद्या दमयन्तीं जिघृक्षवः ।
तैः कलिः प्रेरितस्तेन बुद्धिभ्रंशो नलः कृतः ॥ १ ॥

इस इक्कीसवें अध्यायमें इन्द्र इत्यादि देवताओंने दमयन्तीके वरनेकी इच्छासे (जिस प्रकार) कलिको भेजकर महाराज नलकी बुद्धिको भ्रष्ट किया, सो कथा वर्णन करीजाती है ॥ १ ॥

बृहदश्व उवाच ।

दमयन्ती तु यच्छ्रुत्वा वचो हंसस्य भारत ।
तदा प्रभृति न स्वस्था नलं प्रति बभूव सा ॥ १ ॥

बृहदश्वजीने कहा—हे भारत ! दमयन्तीने जबसे हंसकी बातें सुनी, उसी दिनसे वह महाराज नलके प्रति आसक्त होगई अर्थात् महाराज नलकी चिन्तासे स्वस्थ न हुई ॥ १ ॥ और वह चिन्तापरायणा, दीन, विवर्ण, दुबली, दमयन्ती (लम्बेलम्बे) श्वासछोडनेवाली होगई ॥ २ ॥ अनन्तर दमयंतीके मनमें कामका आविर्भाव होजानेके कारण ऊर्द्धदृष्टि अर्थात् ऊंची दृष्टिवाली, भाँति भाँतिकी चिन्तासे युक्त, बडी आँखोंवाली और पांडुवर्णवाली होगई ॥ ३ ॥ वह शय्या, भोजन और भोगोंमें प्रीति नहीं बाँधती और हा नाथ ! हा नाथ ! इस प्रकार वारंवार कहती हुई क्या दिन, क्या रात कभीभी नहीं सोतीथी ॥ ४ ॥ तब उसकी सखियोंने पतिकी कामना करनेवाली दमयन्तीकी ऐसी अवस्थाको जान लिया. फिर उन सखियोंने विदर्भ राजाके पास जाकर दमयन्तीकी इस अवस्थाका सारा समाचार कह सुनाया ॥ ५ ॥ तब अपनी कन्या दमयन्तीको यौवनअवस्था (जवानी) में स्थित देखकर वह महाराज इस कामकी अत्यन्त चिन्ता करनेलगे, क्योंकि कन्याके निमित्त समान वरका खोजना सहज काम नहीं है, महान् काम है ॥ ६ ॥ इसके पीछे उन्होंने सोच विचार करके अपने करने लायक कार्य दमयन्तीका स्वयंवर ही देखा, फिर पृथ्वीतलमें जितने राजा थे, उन सबको बुलाकर कार्यका आरंभ कर दिया ॥ ७ ॥ तब महाराज भीमके शासनमें रहनेवाले सारे राजा हाथी, घोडे और रथोंके शब्दसे पृथ्वीको शब्दायमान करतेहुए (दमयन्तीके स्वयंवरमें) आये ॥ ८ ॥ उस काल विचित्र माला व गहनोंसे विभूषित तथा देखनेयोग्य अपनी सेनाके द्वारा शोभायमान नरेश आनकर प्राप्त हुए। फिर उसी अवसरमें प्राचीन ऋषियोंमें श्रेष्ठ ॥ ९ ॥ महात्मा देवर्षि श्रीनारदजी महाराज और पर्वतमुनि पृथ्वीपर घूमते घामते इन्द्रलोकको चलेगये ॥ १० ॥ फिर जब सब किसीके पूजा करने योग्य इन दोनों मुनियोंने देवराज इन्द्रके भवनमें प्रवेश किया, तब सहस्राक्षने उनका (आदर सत्कार) और पूजा करके कहा ॥ ११ ॥ इन्द्र बोले—हे ब्रह्मन् ! आपके और सब लोकोंको कुशल तो है? इस भाँति देवराजने सब लोकोंमें विचरनेवाले सर्वज्ञ मुनियोंसे कुशल प्रश्न

किया, तब श्रीनारदजी बोले—हे वीर! हे विभो! ईश्वरकी कृपासे हम दोनों कुशल मंगलसे हैं, और हे मघवन्! हम सब लोकोंमें गये थे, सो वहाँके सब राजा भी कुशल मंगलसे हैं ॥ १२ ॥ बृहदश्वजीने कहा—हे महाराज युधिष्ठिर! नारदजीकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्रने शीघ्रतासे कहा—हे देवर्षि श्रीनारदजी महाराज! ऐसे धर्मके ज्ञाता और पृथ्वीकी रक्षा करनेवाले राजालोग संग्रामके अर्थ अपने प्राणोंके गँवाय दिया करते हैं ॥ १३ ॥ अतएव जो पुरुष शस्त्रके द्वारा प्राणत्याग किया करते हैं और लडाईमें पीठ नहीं दिखाया करते तो जिस तरह यह स्वर्ग मेरी अभिलाषाओंको पुरा किया करता है, उसी तरह यह लोक उनकीभी सब अखंड कामनाओंका पूरा करनेनेवाला होता है ॥ १४ ॥ किन्तु मैं उन शूर क्षत्रियोंको यहाँ आयाहुआ नहीं देखताहूं। हां, दमयन्तीके लेनेकी अभिलाषा करनेवाले राजालोग आनेवाले हैं ॥ १५ ॥ इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर नारदजीने कहा—हे इन्द्र! उन राजाओंके यहाँ दिखाई न देनेका कारण सुनिये ॥ १६ ॥ एक दमयन्तीनामवाली विदर्भदेशाधिपति महाराज भीमकी कन्या है जो रूपमें विख्यात पृथ्वीकी सारी स्त्रियोंमें बढी चढी है ॥ १७ ॥ हे देवराज! उसी दमयन्तीके स्वयंवरमें आपसरीखे सम्पूर्ण राजा और राजकुमार चले जारहे हैं ॥ १८ ॥ और हे बलवान् वृत्रासुरका नाश करनेवाले! मृत्युलोकके सारे नरेश उस दमयन्तीरूपी रत्नके प्राप्त करनेकी अभिलाषा कररहे हैं, और अधिक प्रार्थना कररहे हैं वरन् वे सब महीपाल दमयन्तीके वरनेकी कामनासे जाही रहे हैं ॥ १९ ॥ इस तरह देवर्षि श्रीनारदजी कहतेही थे कि, उसी अवसरमें देवोत्तम साग्निक लोकपाल देवराज इन्द्रके निकट आनकर उपस्थित हुए ॥ २० ॥ उन सबनेभी आनकर देवर्षि नारदजीकी वे महान् बातें सुनीं और सुनकर वे हर्षित चित्तसे कहनेलगे कि हम सब लोगभी दमयन्तीके उस स्वयंवरमें जाँयगे ॥ २१ ॥ हे राजा युधिष्ठिर! अनन्तर वे सब लोकपाल अपने अपने वाहन और गणोंसमेत विदर्भदेशको चलदिये. जहाँ पहिले सब राजा लोग जा चुकेथे॥ २२ ॥ हे कौन्तेय! फिर महाराज नलभी (दमयन्तीके स्वयंवरमें) राजा-

ओंका समागम सुनकर वहाँ गये कि, जो महा समर्थ और दमयन्तीके अनुकूल थे ॥ २३ ॥ तब उन देवताओंने रास्तेमेंही महाराज नलको पृथ्वीपर खडा देखा, कि रूपसम्पदाके द्वारा साक्षात् कामदेव नलकी मूर्त्ति धारण किये खडे हैं । २४ । अनन्तर इन्द्र इत्यादि लोकपालोंने महाराज नलको सूर्यकी समान प्रकाशमान देख और उनकी रूपसम्पत्तिसे आश्चर्ययुक्त होकर जो अभिलाषा करते हुए जारहेथे उसको निष्फल जाना ॥ २५ ॥

चौपाई ।

मारग माँझ मिले नलराई । सुरपति वचन कह्यो समुझाई ॥
हम सब जात स्वयंवर काजा । हँसिकै वचन कहे सुरराजा ॥
हमरे हेतु दूत ह्वै जाहू । दमयन्ती हम सों करि व्याहू ॥
चारि जने हम इकमन माना । सुनि नल राजा बहुत लजाना ॥

तब उन देवताओंने अपने विमानोंको अन्तरिक्ष (आकाश) में स्थापन किया और फिर स्वर्गसे पृथ्वीपर आनकर महाराज नलसे कहा ॥ २६ ॥ कि, हे महाराज नल ! हमलोग आपकी प्रशंसा सुनकर एक कामके लिये आपके निकट उपस्थित हुए हैं सो आशा है कि, आप उसको अवश्यही कर देंगे । हे युधिष्ठिर ! उन प्रार्थी देवताओंकी यह बात सुनकर महाराज नलने उत्तर दिया कि, आपका कार्य यदि मेरे द्वारा होसकेगा तो मैं उसको अवश्य करदूंगा । महाराज नलने उन देवताओंसे इस भाँति प्रतिज्ञा करली, और फिर इन्होंने उन देवताओंसे हाथ जोडकर पूँछा ॥ २७ ॥ कि, आप लोग कौन हैं ? और वह कौन है ? जिससे मित्रता करनेकी आप अभिलाषा कर रहे हैं । तथा आप सबजने कहाँ को जारहेहैं ? कौनसा काम है ? यह सब सत्यही सत्य बतादीजिये ॥ २८ ॥ महाराज नलके इस प्रकार कहनेपर देवराज इन्द्रने कहा—हे नल ! आप हम सबको दमयन्तीके निमित्त आयेहुए देवता जानिये ॥ २९ ॥ हे महाराज ! यह मैं देवराज (इन्द्र) हूँ यह अग्नि हैं, यह जलके अधिपति वरुणजी हैं और यह मनुष्य शरीरके नाशक

धमराज हैं ॥ ३० ॥अब आप हमलोगोंके दूत बनजाइये और हमारे सबके यह समाचार दमयन्तीसे जायकर (इसतरह) निवेदन करदीजिये कि, आपके दर्शनोंकी इच्छासे इन्द्रके सहित लोकपाल आयेहैं ॥३१॥ आपको ग्रहण करनेकी अभिलाषासे इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम यह चारों देवता आनकर प्राप्त हुएहैं, अतएव हे कामिनी ! आप इन चारों देवताओंमें एक देवताको रानी होनेके लिये वर लीजिये ॥ ३२ ॥ देवराज इन्द्रके इस तरह कहनेपर महाराज नलने उत्तर दिया । नलने कहा—आपको इस कामके निमित्त मुझे नहीं भेजना चाहिये ॥ ३३ ॥ देवता बोले, हे निषधराज ! पहले आप हमलोगोंसे यह प्रतिज्ञा करचुकेहैं कि 'यदि मुझसे होसकेगा, तो मैं आपका काम अवश्य करूंगा' सो उसको अब कैसे नहीं करोगे ? अत एव आप जल्दीसे जाइये ॥ ३४ ॥

दोहा—बोले नल नृपभवनमहँ, रहैं बहुत रखवार।
राजसुतासों जाय किमि, कहिहौं बात तुम्हार ॥ १ ॥

चौपाई ।

इन्द्र कह्यो मम आज्ञा होई । तुमहिं जात देखहि नहिं कोई ॥
करि मन दुरित चले नृप तहँवा । राजकुँवरि अन्तः पुर जहँवा ॥

बृहदश्वजीने कहा—हे धर्मराज ! देवताओंके इसप्रकार कहनेपर महाराज नलने जाते जाते कहा कि दमयन्तीके मन्दरकी बहुतसे योधा रखवाली किया करतेहैं, सो भला उस मन्दिरमें मैं किस तरह घुस सकूंगा ? ॥ ३५ ॥ जब नलने यह बात कही तब उन लोकपालोंने महाराज नलको अदृश्यविद्या देकर फिर कहा कि इस विद्याके द्वारा आप उसके मन्दिरमें बेखटके प्रवेश कर सकेंगे. अनन्तर महाराज नल देवताओंसे बहुत अच्छा, कहकर दमयन्तीके स्थानको गये॥ ३६॥ वहाँ जाकर सखियोंसे घिरीहुई विदर्भकुमारी दमयन्तीको देखा कि अपने देहकी कान्ति द्वारा प्रकाशमान और उत्तम वर्णवाली ॥ ३७॥ अत्यन्त सुकुमार अंगवाली, पतली कमर और सुन्दर नेत्रोंवाली, अपने शील प्रकाशद्वारा चन्द्रमाका आक्षेप करनेवाली॥ ३८॥और जिस दमयन्तीके

देखनेपर बूढे आदमीकोभी कामेच्छा होतीहै, महाराज नलने उस चारुहासिनी दमयन्तीका दर्शन कियां, और उधर दमयन्तीकी सखियाँ महाराज नलको देख भ्रमित हो ॥ ३९॥ उनके तेजसे धर्षित, प्रसन्न और आश्चर्ययुक्त सभांगनसे उठकर महाराज नलकी बडाई करनेलगीं ॥ ४०॥ कि अहो ! इन महात्माका कैसा रूप है ? कैसी महा कान्ति है ? और कैसा धैर्य है ? यह कोई देवता, यक्ष अथवा गन्धर्व होंगे ॥ ४१ ॥ इस भाँति विचारकर और महाराज नलको देखकर वह वरांगना लजायरहीं इसी कारण महाराज नलसे कोई बात नहीं कहसकीं ॥ ४२॥ इसके पीछे सुन्दरी और मन्द मन्द मुसुकाकर बोलनेवाली बाला दमयन्तीने अचंभेमें भरकर महाराज नलसे कहा ॥ ४३॥ हे सब निर्दोष अंगवाले ! हे वीर ! हे पापरहित ! आप मेरे कामको बढानेवाले देवताओंके समान यहाँ आनेवाले कौन व्यक्ति हैं ? मैं आपको जानना चाहतीहूँ ॥ ४४ ॥ आप यहाँ किस तरह आपहुँचे ? रक्षक इत्यादिने आपको क्यों नहीं देखा ? क्योंकि मेरे घरकी अनेक वीर रखवाली किया करतेहैं और मेरे पिता महाराज (भीम) का बडा उग्र शासन है॥ ४५॥

चौपाई ।

दमयन्ती पूछो नृप पाँहा । तब परिचय दीन्हा नरनाहा ॥
जान प्रकार इहाँको आये । आवत काहु न देखन पाये ॥
इन्द्र वरुण यम पावक आये । तेइ दूत करि मोहि पठाये ॥
चारों जन कहँ मन महँ धरहू । एकजने कहुँ स्वामी करहू ॥

विदर्भराजकुमारी दमयन्तीके इसप्रकार पूछनेपर महाराज नलने उत्तर दिया हे कल्याणी ! मुझको आप नल जानिये । मैं देवताओंका दूत बनकर यहां आयाहूँ ॥ ४६ ॥ हे शोभने ! आपकी प्राप्ति करनेकी कामनासे इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम यह देवता आये हैं, इनमेंसे एक देवताको आप अपना पति बनालीजिये ॥ ४७॥ उन्होंने जो मुझको अदृश्य होनेकी विद्या दीथी, उसीके सहारेसे मैंने यहां प्रवेश किया है, हे कल्याणी ! उन सुरसत्तमों (लोकपालों) ने मुझे इसी कामके लिये यहां भेजा है ॥ ४८ ॥

तत्तच्छ्रुत्वा शुभे देवि कुरु त्वं यदि रोचते ॥

अतएव हे कल्याणी ! हे देवि ! उनकी यह बात सुनकर अब आपको जो अच्छा लगे वही कीजिये ॥ ४१ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

द्वाविंशे विबुधान्हित्वा देवी चक्रे नलं ध्रुवम् ।
देवेशेभ्यो वरप्राप्तिर्नलराजस्य वर्ण्यते ॥ १ ॥

इस बाईसवें अध्यायमें दमयन्तीका देवताओंको छोडकर नलको पति बनाना और फिर उन देवताओंसे महाराज नलको वर मिलना, यह कथा वर्णन करी जातीहै ॥ १ ॥

बृहदश्व उवाच ।

सा नमस्कृत्य राजानं प्रहस्य नलमब्रवीत् ।
आदौ वृतोऽसि राजेन्द्र देवाः सन्तु यथासुखम् ॥ १ ॥

बृहदश्वजीने कहा—हे राजाओंमें इन्द्र युधिष्ठिर ! तब वह दमयन्ती महाराज नलको प्रणाम करके कहने लगी । हे राजन् ! मैं प्रथमही सुखपूर्वक आपको वर चुकी हूँ, अब उन देवताओंसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ १ ॥

चौपाई ।

लज्जित ह्वै दमयन्ती कहई । देव नाग नर चित्त न अहई ॥
देवल पति हम तुम कहँ जाना। देव नाग नाहिं कोउ न माना॥
राजा कहेउ दोष मोहि होई । कहैं देव हमहीं सब कोई ॥
चर ह्वै अपन काज सँवरा । देव अवज्ञा दुख है भारा ॥
कह कन्या नृप देवन साथा । पठयहु तुमहिं होन नरनाथा॥
जिय अपने महँ तुमहीं आनों । तुम तजि कैसे दूसर जानों॥
यह कहि कन्या नृपहि बुझाये । देवन पहँ नल राजा आये ॥

हे पार्थिव ! मेरे मनमें उस हंसकी बात जमी हुई है । इसी कारण हे वीर ! आपके निमित्त अन्य राजाओंका मैंने निरादर कर दिया है ॥॥ २॥ यदि आप मुझ भजनेवालीका 'नहीं' कहकर निरादर करेंगे तो मैं आपके लिये विष खाकर अग्निमें जलकर जलमें डूबकर अथवा रस्सीद्वारा गलेमें फांसी लगाकर अपने प्राण त्यागदूँगी ॥ ३ ॥ महाराज भीमकी कन्या दमयन्तीके इस प्रकार कहनेपर नलने उत्तर दिया । नलने कहा—आप लोकपालोंके आगे मुझ मनुष्यकी अभिलाषा कैसे कररही हैं ? ॥ ४ ॥ क्योंकि मैं तो उन महात्मा लोकपालोंके पदरजकी समानभी नहीं हूँ,इस कारण हे सुमध्यमे ! आप उनको ही वरिये अर्थात् उनमेंसे किसीएकके साथ अपना विवाह करलीजिये ॥ ५ ॥ गुरु, देवता और ब्राह्मणोंकी आज्ञा भंग करनेसे मृत्यु होती है, अतएव हे निर्दोषअंगोंवाली ! आप मुझको छोडकर उन्हीं उत्तम देवताओंको वरलीजिये ॥ ६ ॥ महाराज नलकी इसप्रकार बातें सुनकर बुद्धिमती दमयन्ती आँसुओंकी धारा छोडने लगी और फिर महान् दुःखित हो धीरे धीरे राजा नलसे कहने लगी ॥ ७ ॥ दमयन्ती बोली—हे महाराज नलेश्वर ! इसका एक उपाय है, जो कि आपने तो नहीं देखाहै, किन्तु मैंने देख लिया है, यदि उस उपायसे काम कियाजायगा तो फिर आपको किसी तरहका भी दोष नहीं लगसकेगा ॥ ८ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आप मेरे स्वयंवरमें इन्द्र इत्यादि सब देवताओंके संग मिलित होकर आइये ॥ ९ ॥ तब मैं हे नलेश्वर ! उन लोकपालोंके सामने ही आपको वरूंगी । हे नरव्याघ्र ! ऐसा होनेपर आपको कुछभी दोष नहीं लगेगा ॥ १० ॥ वैदर्भकुमारी दमयन्तीके इस प्रकार कहनेपर महायशस्वी महाराज नल वहाँ आये, जहाँ इन्द्रके साथ सब देवता स्थित थे ॥ ११ ॥

चौपाई ।

देव सबै तव पूछन लीन्हों । तबहीं नल यह उत्तर दीन्हो॥
मोहि छांडि मन और न माना । मैं गुण रूप तुम्हार बखाना॥
सुनत देव भये अन्तर्द्धाना । राजसभा नल करेहु पयाना ॥

तब लोकपालोंने नरेश्वर महाराज नलको आयाहुआ देखकर वहाँका सारा हाल पूछा ॥ १२ ॥ देवता बोले—हे भूपाल ! उस मन्द मन्द हँसनेवाली दमयन्तीको क्या आपने देखा है ? हे पापरहित ! हमारे लिये उस देवीने आपसे क्या कहा है ? सो बता दीजिये ॥ १३ ॥ नलने कहा—हे लोकपालो ! जब कि,आप पूछतेहैं तो मैं आपसे सब बताये देता हूँ कि, दमयन्तीके घरकी रखवाली दंडधारी सिपाही खडेहुए रक्षा कररहेहैं, जिससे वहाँ आदमी बहुत कष्ट स्वीकार करकेभी नहीं घुससकता ॥ १४ ॥ तथापि मुझको घुसतेहुए किसी आदमीनेभी नहीं देखा और आपलोगोंके तेजद्वारा नम्रहुई राजकुमारी दमयन्तीको ॥ १५ ॥ मैंने सखियोंसे घिरीहुई देखा। हे देवेश्वरो ! मुझकोभी उन सारी स्त्रियोंने देखलिया और मुझको निहार कर वे सब अचंभेमें होगई ॥ १६ ॥ फिर मैंने उनसे आपकी सुन्दरता और गुणोंका (भलीभाँति) वर्णन किया, किन्तु हे उत्तम देवताओ ! उस दमयन्तीने मेरेही वरनेका संकल्प कररक्खाहै, अतएव मुझकोही स्वीकार करतीहै ॥ १७ ॥ इसके पीछे वह बाला मुझसे यह भी बोली कि, हे नरोत्तम ! मेरे स्वयंवरमें आप सब देवताओंके साथ मिलकर तुरन्तही चले आइये ॥ १८ ॥ तो हे नरश्रेष्ठ ! मैं उनके सामनेही आपको वरूंगी और हे महाबाहो ! ऐसा होनेपर आपको कुछ दोष नहीं लगेगा॥ १९॥ हे लोकपालो ! मैंने जो प्रथम आपसे प्रतिज्ञा करी थी सो उसीके अनुसार सब कामभी करदिया, स्वर्गके देवता इस बातकी साक्षी देसकते हैं ॥२०॥ बृहदश्वजीने कहा—हे महाराज युधिष्ठिर ! अनन्तर अच्छे काल, उत्तमतिथि और शुभ मुहूर्त्तके प्राप्त होनेपर महाराज भीमने अपनी कन्याके स्वयंवरमें सब राजाओंको बुलाया ॥ २१ ॥ तब राजकुमारी दमयन्तीके स्वयंवरकी बात सुनकर वे सारे राजालोग सुवर्णके थंभयुक्त, तथा महासुन्दर शोभा और तोरणोंसे युक्त ॥ २२ ॥ इस प्रकारकी रंगभूमिमें जिस भाँति सिंह पहाडपर आता है उसी तरह आन कर उपस्थित हुए । फिर वहां अनेक आसनोंपर सारे राजा बैठ गये (और उन्हींके

बीचमें यह चारों लोकपाल तथा महाराज नल भी जाबैठे) ॥ २३ ॥ वे सब पुष्पमाला पहरे सुगन्धित अनुलेपन लगाये और उत्तम प्रकाशमान मणिजडित कुण्डल धारण कररहे थे, उनको देखकर देवता और गन्धर्वपतिभी अचंभेमें होगये ॥ २४ ॥ इनके अतिरिक्त जो उस स्वयम्वरमें पुरवासी और जनपदवासी आनकर बैठेहुए थे, उनके हाथ परिघके समान दिखाई देरहे थे ॥ २५ ॥ राजकुमारी दमयन्तीका स्वयम्वर देखनेके निमित्त मूर्त्तिमान् सारे देवता और पांचमस्तकके सांपभी आये थे ॥ २६ ॥ इसके पीछे सुन्दर मुखवाली राजकुमारी दमयन्तीने अपनी कान्तिसे सारे राजाओंकी दृष्टि और मनको हरतेहुए रंगभूमिमें प्रवेश किया ॥ २७ ॥ और जिस जिस महात्मा राजाके अंगपर राजकुमारी दमयन्तीकी दृष्टि पडी वे सब राजा जहाँके तहां तसबीरमें लिखे देवताके समान निश्चल होगये ॥ २८ ॥ हे भारत ! इसके पीछे (बन्दीजन) सारे राजाओंके नाम व (गुण) वर्णन करनेलगे उनमें जब राजकुमारी दमयन्तीने महाराज नलका नाम सुनकर उधरको देखा तो उसको एकसी सूरतके पांच नल दिखाई दिये ॥ २९ ॥ जब देवी दमयन्ती बालाने एकसी सूरतके पांच नलोंको बैठाहुआ देखा, तो वह सन्देहसे महाराज नलको नहीं पहिचान सकी ॥ ३० ॥ उस काल वह देवी दमयन्ती जिस जिसको देखे उसको मनमें नलही समझे, तब वह भामिनी चिन्ता करतीहुई अपनी बुद्धिसे स्वयं ही तर्कना करनेलगी ॥ ३१ ॥ कि, प्रथम बडोंके मुखसे देवताओंके जो लक्षण सुने थे इस समय देवी दमयन्तीने अपने हृदयमें उन्हीको विचारकर महाराज नलमें अपने मनको धारणकिया ॥ ३२ ॥ राजकुमारी दमयन्ती स्वयम्वरकी भूमिमें सोच रहीहै, मैं देवताओंको किस तरह पहिचानूं ? अथवा महाराज नलको कैसे पहिचानूं ? और यह मेरा दुःख किसप्रकारसे दूर हो ? ॥ ३३ ॥ (उसने फिर सोचा कि) मनुष्य तो भूमिपर चलते फिरते हैं और देवता आकाशमें विचरते रहते हैं, वे पृथ्वीपर पैर नहीं रखते उस देवीने यह विचारकर महाराज नलको

देखा ॥ ३४ ॥ इसके पीछे राजकुमारी दमयन्ती हाथ जोड कांपती हुई मन और वचनसे प्रणाम करके देवताओंसे इस तरह कहने लगी ॥ ३५ ॥

चौपाई ।

विनय करत तब राज दुलारी । हे देवहु मैं शरण तुम्हारी ॥
नैषध पति है स्वामी मोरा । करो प्रकट पद वन्दत तोरा ॥
सुनिके विनय दया सुर कीन्हे ।आपन रूप बहुरि धरिलीन्हे॥
चीन्हों नल तब राज कुमारी ।जय माला तिनके गर डारी ॥
राजा सत्य वचन कह सोई । देवन ताजि जनि हममन मोई ॥
यहै प्रतिज्ञा सत्य हमारी ।क्षण एक तुम्हहिं करब जनिन्यारी ॥
दीन्ह देव पाति यह वर दाना। इन्द्र कहे सम पवन पयाना ॥
सुमिरत तुम ढिग तुरतहि ऐहों ।यातें सदा सुक्खतुम देहौं॥
दोहा—पावक अग्नी शक्ति है, वरुण दियो जलवान ।
धर्म मांहि रति यम दई, सब भये अन्तर्धान॥ १ ॥

मैं हंसका वचन सुनकर प्रथमही पतिभावमें महाराज नलको स्वीकार कर-चुकी हूँ । हे देवताओ ! अब आप उसी सत्यसे महाराज नलका दर्शन करा-दीजिये ॥ ३६ ॥ हे देवताओ ! यदि मैं मन तथा वचनसे महाराज नलके साथ छल और कपट नहीं करती हूँ, तो मुझको उसी सत्यसे उनका दर्शन करादीजिये ॥ ३७ ॥ तब वे सब देवता राजकुमारी दमयन्तीका दृढ निश्चय और महाराजनलमें अनुराग तथा मनकी पवित्रता व भक्ति देख-कर अत्यन्त अचम्भेमें हुए ॥ ३८ ॥ तब उन नलरूपधारी सब देवताओंने दमयन्तीका अभीष्ट कार्य सिद्ध किया अर्थात् अपना २ असल रूप धारण करके उसको महाराजनलका दर्शन करादिया । उस काल दमयन्ती उन सब देवताओंको इकटक नेत्रोंसे देखनेलगी ॥३९॥ फिर राजकुमारी दमयन्तीने अत्यन्त रमणीय रंगभूमिमें स्थित तथा पृथ्वीको नहीं छूतेहुए उन सारे देव-ताओंको जानकर त्याग दिया ॥ ४० ॥ अनन्तर बडे बडे नेत्रवाली दमय-

न्तीने पृथ्वीपर स्थित और पलक मारते हुए महाराज नलको जानकर लज्जित भावसे उनका वस्त्र पकडलिया ॥ ४१ ॥ फिर सुलोचना दमयन्तीने धर्मप्रिय महाराज नलके गलेमें जयमाला पहिराकर उनको पतिभावमें वरण करलिया ॥ ४२ ॥ हे भारत ! उस काल बहुतसे राजालोग तो मनमें खिन्न होकर हाहाकार शब्द करनेलगे तथा देवता और महर्षि 'साधु ! साधु ! !' शब्द उच्चारण करने लगे ॥ ४३ ॥ फिर जब राजकुमारी निषधाधिपति महाराज नलको वरचुकी तब उन महातेजस्वी सब लोकपालोंने अपने मनमें प्रसन्न होकर राजा नलको आठ वर दिये ॥ ४४ ॥ अर्थात् शचीपति इन्द्रने प्रसन्न होकर महाराज नलको यज्ञमें प्रत्यक्षदर्शन और उत्तम शुभगति यह दो वर प्रदान किये ॥ ४५ ॥ हुताशन (अग्नि) देवताने महाराज नलकी इच्छानुसार अपना भाव (प्राकट्य) और लोकमें अपनेही समान प्रभा उनको देदी ॥४६॥ यमराज नलको अन्तर्धान होनेकी विद्या और धर्ममें परमा स्थिति दी । जलाध्यक्ष वरुणदेवताने उनकी अभिलाषानुसार अपना भाव (प्रकट-होना) प्रदान कर दिया ॥४७॥ तथा वरुणजीने महाराज नलको एक उत्तम सुगन्धित मालाभी अर्पण करी । इस प्रकार सब देवता महाराज नलको दो दो वर देकर स्वर्गमें चलेगये ॥ ४८ ॥ इसके पीछे दमयन्तीके विवाहका अनुभव करके सारे राजालोग अचंभेमें भरे अपने अपने घरोंको चलेगये फिर ब्राह्मणभी प्रसन्न हो जिस तरह आये थे वैसेही अपने अपने घरोंको सिधारगये ॥ ४९ ॥ इसके पीछे स्त्रीरत्नको पाकर पवित्र यशवाले और बलवान् महाराज नल जिस प्रकार शचीके संग देवराज इन्द्र विहार कियाकरते हैं उसी प्रकार उस दमयन्तीके संग रमण करनेलगे ॥५०॥ इस प्रकार अत्यन्त मुदित मन हो वह वीर महाराज नल धर्मानुसार प्रजाका पालन करतेहुए अनेक रचना करनेलगे अर्थात् प्रजाके हितार्थ उन्होंने अनेक औषधालय, अनाथालय और देवमन्दिर आदि निर्माण किये ॥ ५१ ॥ फिर उन्होंने नहुषपुत्र ययातिके समान अश्वमेध यज्ञ करके देवराज इन्द्रकी पूजा करी तथा पूर्ण दक्षिणासहित और भी अनेक यज्ञोंद्वारा धर्म इत्यादि देवताओंका यजन

देखा ॥ ३४ ॥ इसके पीछे राजकुमारी दमयन्ती हाथ जोड कांपती हुई मन और वचनसे प्रणाम करके देवताओंसे इस तरह कहने लगी ॥ ३५ ॥

चौपाई ।

विनय करत तब राज दुलारी । हे देवहु मैं शरण तुम्हारी ॥
नैषध पति है स्वामी मोरा । करो प्रकट पद वन्दत तोरा ॥
सुनिके विनय दया सुर कीन्हे । आपन रूप बहुरि धरिलीन्हे ॥
चीन्हों नल तब राज कुमारी । जय माला तिनके गर डारी ॥
राजा सत्य वचन कह सोई । देवन ताजि जानि हममन मोई ॥
यहै प्रतिज्ञा सत्य हमारी । क्षण एक तुम्हहिं करब जनिन्यारी ॥
दीन्ह देव पति यह वर दाना । इन्द्र कहे सम पवन पयाना ॥
सुमिरत तुम ढिग तुरतहि ऐहों । यातें सदा सुक्खतुम दैहौं ॥
दोहा—पावक अग्नी शक्ति है, वरुण दियो जलवान ।
धर्म मांहि रति यम दई, सब भये अन्तर्धान ॥ १ ॥

मैं हंसका वचन सुनकर प्रथमही पतिभावमें महाराज नलको स्वीकार कर-चुकी हूँ । हे देवताओ ! अब आप उसी सत्यसे महाराज नलका दर्शन करा-दीजिये ॥ ३६ ॥ हे देवताओ ! यदि मैं मन तथा वचनसे महाराज नलके साथ छल और कपट नहीं करती हूँ, तो मुझको उसी सत्यसे उनका दर्शन करादीजिये ॥ ३७ ॥ तब वे सब देवता राजकुमारी दमयन्तीका दृढ निश्चय और महाराजनलमें अनुराग तथा मनकी पवित्रता व भक्ति देख-कर अत्यन्त अचम्भेमें हुए ॥ ३८ ॥ तब उन नलरूपधारी सब देवताओंने दमयन्तीका अभीष्ट कार्य सिद्ध किया अर्थात् अपना २ असल रूप धारण करके उसको महाराजनलका दर्शन करादिया । उस काल दमयन्ती उन सब देवताओंको इकटक नेत्रोंसे देखनेलगी ॥ ३९ ॥ फिर राजकुमारी दमयन्तीने अत्यन्त रमणीय रंगभूमिमें स्थित तथा पृथ्वीको नहीं छूतेहुए उन सारे देव-ताओंको जानकर त्याग दिया ॥ ४० ॥ अनन्तर बडे बडे नेत्रवाली दमय-

न्तीने पृथ्वीपर स्थित और पलक मारते हुए महाराज नलको जानकर लज्जित भावसे उनका वस्त्र पकडलिया ॥ ४१ ॥ फिर सुलोचना दमयन्तीने धर्मप्रिय महाराज नलके गलेमें जयमाला पहिराकर उनको पतिभावमें वरण करलिया ॥ ४२ ॥ हे भारत ! उस काल बहुतसे राजालोग तो मनमें खिन्न होकर हाहाकार शब्द करनेलगे तथा देवता और महिर्षि 'साधु ! साधु ! !' शब्द उच्चारण करने लगे ॥ ४३ ॥ फिर जब राजकुमारी निषधाधिपति महाराज नलको वरचुकी तब उन महातेजस्वी सब लोकपालोंने अपने मनमें प्रसन्न होकर राजा नलको आठ वर दिये ॥ ४४ ॥ अर्थात् शचीपति इन्द्रने प्रसन्न होकर महाराज नलको यज्ञमें प्रत्यक्षदर्शन और उत्तम शुभगति यह दो वर प्रदान किये ॥ ४५ ॥ हुताशन (अग्नि) देवताने महाराज नलकी इच्छानुसार अपना भाव (प्राकट्य) और लोकमें अपनेही समान प्रभा उनको देदी ॥४६॥ यमराज नलको अन्तर्धान होनेकी विद्या और धर्ममें परमा स्थिति दी । जलाध्यक्ष वरुणदेवताने उनकी अभिलाषानुसार अपना भाव (प्रकट-होना) प्रदान कर दिया ॥४७॥ तथा वरुणजीने महाराज नलको एक उत्तम सुगन्धित मालाभी अर्पण करी। इस प्रकार सब देवता महाराज नलको दो दो वर देकर स्वर्गमें चलेगये ॥ ४८ ॥ इसके पीछे दमयन्तीके विवाहका अनुभव करके सारे राजालोग अचंभेमें भरे अपने अपने घरोंको चलेगये फिर ब्राह्मणभी प्रसन्न हो जिस तरह आये थे वैसेही अपने अपने घरोंको सिधारगये ॥ ४९ ॥ इसके पीछे स्त्रीरत्नको पाकर पवित्र यशवाले और बलवान् महाराज नल जिस प्रकार शचीके संग देवराज इन्द्र विहार कियाकरते हैं उसी प्रकार उस दमयन्तीके संग रमण करनेलगे ॥५०॥ इस प्रकार अत्यन्त मुदित मन हो वह वीर महाराज नल धर्मानुसार प्रजाका पालन करतेहुए अनेक रचना करनेलगे अर्थात् प्रजाके हितार्थ उन्होंने अनेक औषधालय, अनाथालय और देवमन्दिर आदि निर्माण किये ॥ ५१ ॥ फिर उन्होंने नहुषपुत्र ययातिके समान अश्वमेध यज्ञ करके देवराज इन्द्रकी पूजा करी तथा पूर्ण दक्षिणासहित और भी अनेक यज्ञोंद्वारा धर्म इत्यादि देवताओंका यजन

किया ॥५२॥ फिर महाराज नल देवताओंके समान मनोहर वन और बगीचियोंमें महारानी दमयन्तीके साथ विहार करनेलगे ॥ ५३ ॥

चौपाई ।

यहि प्रकार दमयन्ती विवाही । वेदविदित सब रीति निवाही ॥
दाइज भीम नृपाति बहु दीन्हों । ह्वैके बिदा चलन चित कीन्हो ॥
बाजे बजत मनो घन गाजा । नगर आपुने आयउ राजा ॥
ऐसे आय बसे रजधानी । नल राजा दमयन्ती रानी ॥
केतिक दिवस बीति इमि गयऊ । नाना केलि रंग रति भयऊ ॥
इहि विधि रति रस राजा कीन्हो । इन्द्र सरिस उपमा कहँ लीन्हो ॥
धर्मवन्त नैषधपति राजा । पालै प्रजा पुत्रके काजा ॥

दोहा—राज्य करैं महराज नल, करि बहु धर्म प्रकाश ।
दमयन्ती अरु राजा, पूजेउ दोनों आश ॥

'एवं स यजमानस्तु विरराम नराधिपः' ॥ ५४ ॥

इस प्रकार नराधिप महाराज नलने देवताओंका यजन (पूजन) करके विराम प्राप्त किया ॥ ५४ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

त्रयोविंशे कलिप्राप्तिर्नलराजे नृपोत्तमे ।
तन्निमित्तमभूद्द्यूतं तत्ख्यातिरिह वर्ण्यते ॥ १ ॥

इस तेईसवें अध्यायमें नृपोत्तम महाराज नलके शरीरमें कलिकी प्राप्ति और उसीके कारण जुएका होना, यह कथा वर्णन करीजाती है ॥ १ ॥

बृहदश्व उवाच ।

वृते तु नैषधे भैम्या लोकपाला महौजसः ।
यतो ददृशुरायान्तं द्वापरं कलिना सह ॥ १ ॥

बृहदश्वजीने कहा—हे महाराज युधिष्ठिर ! महाराजनलके दमयन्तीको वर लेनेपर मार्गमें जातेहुए महाबलवान् लोकपालोंने कलिके सहित द्वापरको देखा ॥ १ ॥ तब उस कलिको देखकर बलवान् वृत्रासुरका नाश करनेवाले देवराज इन्द्रने कहा—हे कले ! आप इस समय द्वापरके साथ कहाँ जारहेहैं ? सो बताइये ॥ २॥ यह सुनकर कलियुगने उत्तर दिया—हे इन्द्र ! मैं दमयन्तीको वरनेकी इच्छासे उसके स्वयंवरमें जारहाहूँ, क्योंकि मेरा चित्त दमयन्तीमें आसक्त होगया है ॥ ३ ॥ देवराज इन्द्र हँसकर बोले—हे कले ! वह स्वयंवर तो हो बीता और दयमन्तीने हमारे समीपही अर्थात् हम सरीखे लोकपालोंके होतेहुएभी महाराज नलकोही वरलिया ॥ ४ ॥

चौपाई ।

यह सुनि कलियुग उठा रिसाई । बोलेउ वचन क्रोध जिय लाई ॥
नलके निकट जात सुरराई । राज्य छुडाउब निज वरिआई ॥

इन्द्रके इस प्रकार वचन सुनकर कलिने बडा कोप किया और फिर उसने देवताओंसे मन्त्रण (सलाह) करके कहा ॥ ५ ॥ कि, मैं देवी दमयन्तीसमेत अवश्य महाराज नलको राज्यसे च्युत (अलग) करदूंगा; क्योंकि ऐसे मनोहर देवताओंको छोडकर दमयन्तीने (एक साधारण मनुष्य) नलको अपना पति बनाया है ॥ ६ ॥ उस कलिके इस प्रकार कहनेपर देवताओंने कहा कि, सर्वगुणसम्पन्न धर्मात्मा महाराज नलकी कौन निंदा करता है ? ॥ ७ ॥ हे कले ! उन महाराज नलकी जो निन्दा करेगा वह नरकमें गिरेगा, कलियुग और द्वापरसे इस तरह कहकर वे सब देवता स्वर्गमें चलेगये ॥ ८ ॥ तब उन देवताओंको चलेजानेपर कलि द्वापरसे बोला कि, हे भाई ! मैं अपने कोपको नहीं रोकसकता, इस कारण महाराज नलके शरीरमें बसूंगा ॥ ९ ॥ और उनको राज्यसे भ्रष्ट करके दमयन्तीसे उनका वियोग कराऊंगा । आप भी अक्षविद्या (पासोंकी विद्या) को भलीभाँति जानते हैं, अतएव मेरी सहायता कीजिये ॥ १० ॥ बृहदश्वजीने कहा—हे महाराज युधिष्ठिर ! अनन्तर वह कलि द्वापरसे इस प्रकार सलाह करके जहाँ निषधाधिपति

महाराज नल थे, वहाँ आपहुँचा ॥ ११ ॥ और वह प्रतिदिन महाराज नलके शरीरमें घुसनेका अवसर देखताहुआ निषधदेशमें उनके समीप बहुत समयतक रहा फिर कलिको बारह वर्ष बीतजानेपर उनके शरीरमें घुसनेका अवसर मिला ॥ १२ ॥ अर्थात् एक दिन महाराज निषधाधिपति नल मूत्र पुरीष त्यागकरनेपर विनाही चरण धोये सन्ध्योपासन करनेलगे, वह कलि उसी समय महाराज नलके शरीरमें घुसगया ॥ १३ ॥ इस भाँति महाराज नलके शरीरमें प्रवेश करके फिर कलियुगने (नलके भाई) पुष्करसे जाकर कहा कि अब आप महाराज नलके संग चौपड खेलनेको चलदीजिये॥ १४॥

दोहा–जीति लेहु नलराजही, कह कलियुग समुझाय ।
विप्ररूप तब कलियुग, कहेउ तासु ते आय ॥

हे पुष्कर ! आप मेरी सहायतासे अक्षद्यूतमें महाराज नलको जीतकर निषधदेशके राजा बनबैठिये॥ १५॥ कलिके इस प्रकार कहनेपर पुष्कर नलके पासको चलदिया, वैरियोंका नाशकरनेवाला पुष्कर वीरवर महाराज नलके समीप पहुँचा, निषधाधिपति वीरसेनात्मज महाराज नलसे कहनेलगा ॥ १६॥

चौपाई ।

पुष्कर गये तब नलके पासा। जाय करहु यह वचन प्रकाशा ॥
जुआ हेतु आँयउं तुम पाँई। आज दुवो जन खेलिय भाई ॥
नल राजाके मनमें आई। खेलनके हित करेउ उपाई ॥
दमयन्तीके वचन न भाये। नल राजा सब द्रव्य मँगाये ॥
रानी अरु मन्त्री समुझावे। राजाके कछु मनहि न आवे ॥

पुष्करने कहा–हे महाराज ! आइये हम और आप दोनों जने वारंवार चौपड खेलें, तब महाराज नलने महात्मा पुष्करके बुलानेको सहन नहीं किया ॥१७॥ और वैदर्भकुमारी महारानी दमयन्तीके देखते महाराज नलने क्षण भरकी भी देर नहीं करी खेलनेका ही अवसर ढूंढने लगे फिर सुवर्ण, रत्न, यान और वस्त्रोंकी जोडीसे ॥ १८ ॥ कलिके भरमायेहुए महाराजने

जुआ खेलनेमेंही मनको लगा दिया । उस काल पाँसोंके मदसे मत्तहुए राजा नलको किसीकी भी निषेधरूपी भली बात अच्छी नहीं लगी ॥ १९ ॥ इस प्रकार वैरियोंका नाश करनेवाले महाराज नल चौपड खेलनेमें निरत होगये । तब दुःख और शोकसे घबराकर सारे पुरवासी ॥ २० ॥ महाराजका दर्शन और उनको निवारण करनेके लिये आये । तब द्वारपालने दमयन्तीसे आकर निवेदन किया ॥ २१ ॥ कि कुछ पुरवासी लोग घबरायेहुएसे दरवाजेपर खडेहैं, अतएव आप महाराज नलसे जायकर सब हाल कहो कि, आपके पास आनेके लिये सब प्रधान आदि खडेहैं ॥ २२ ॥ हे देवि ! धर्मार्थदर्शी वे सब जने महाराजका व्यसन नहीं सह सकतेहैं, तब शोकसे मूर्च्छित हुई दमयन्ती गद्गद वाणीके द्वारा ॥ २३ ॥ निषधराज नलसे बोली—हे महाराज ! आपके दर्शनोंकी इच्छा कियेहुए पुरवासीलोग दरवाजे पर आकर खडेहैं ॥२४॥ हे महाराज ! मंत्रीभी आपके दर्शनोंको आनकर दरवाजेपर स्थित हैं, उनको आप देखिये । इस प्रकार वारंवार प्रार्थना करके ॥२५॥ सुन्दर रुचिर कटाक्ष, पतली कमरवाली महारानी दमयन्ती विलाप करनेलगी । किन्तु महाराजके शरीरमें तो कलियुग घुसरहाथा, इस कारण उन्होंने कुछभी उत्तर नहीं दिया ॥ २६ ॥ तब मंत्रीसहित सारे नगरनिवासी आपसमें ' इस समय महाराज जुआ खेलना बन्द नहीं करेंगे ' इस प्रकार कहते हुए अपने अपने घरको चलेगये ॥ २७ ॥

तदा तद्भवने द्यूतं पुष्करस्य नलस्य च ।
युधिष्ठिर बहून्मासान्पुष्करो ह्यजयत्तदा ॥ २८ ॥

हे महाराज ! इसके पीछे उस घरमें महाराज नल और पुष्करका बहुत महीनोंतक जुआ होतारहा और उसमें पुष्करकी जीत हुई ॥ २८ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

चतुर्विंशे सभार्यस्य धर्मस्थस्य महात्मनः ।
गते राज्ये क्षुधार्त्तस्य वार्त्ता चात्र निगद्यते ॥ १ ॥

इस चौवीसवें अध्यायमें धर्मस्थित और क्षुधातुर रानी दमयन्तीके सहित महाराज नलके राज्य नष्ट होनेकी कथा वर्णन कीजाती है ॥ १ ॥

बृहदश्व उवाच ।

दमयन्ती ततो दृष्ट्वा पुण्यश्लोकं नराधिपम् ।
उन्मत्तवदुत्थितं तं नैषधं गतचेतनम् ॥ १ ॥

बृहदश्वजीने कहा—हे महाराज युधिष्ठिर ! अनन्तर महारानी दमयन्तीने पुण्यश्लोक महाराज नलको उन्मत्तकी समान उठे हुए अचेत देखकर ॥ १॥ वह भीमकुमारी उद्विग्नचित्त हुई फिर हे राजन् ! वह महाराज नलके प्रति महत् कार्य करनेकी चिन्ता करने लगी ॥ २ ॥ वह महाराजके पापकी चिन्ता करती और उनके प्रियकी इच्छा करती हुई उस दमयन्तीने सर्वस्व-हीन महाराज नलके पास जाकर इस तरह कहा ॥ ३॥ हे महाराज ! आपका सारा धन जुआ खेलनेसे नष्ट होगया, और तुम्हारे पासके हाथी घोडे भी सब निकल चुके और जिस कोश (खजाने) से बलकी वृद्धि अर्थात् सेना इत्यादि राज्यकी सामग्री बढाकरती है अब आपके पास वह कोशभी नहीं रहा ॥ ४ ॥ किन्तु राजकुमारी दमयन्तीकी उन बातोंको महाराज नलने मनमें भी धारण नहीं किया । तब फिर भीमतनया दमयन्तीने अपनी दाईसे कहा ॥ ५ ॥ हे कल्याणी ! इस समय मेरे करनेयोग्य महत् कार्य उपस्थित है, अतएव आप वार्ष्णेय सारथी बृहत्सेनके पास मेरे पुत्रको ले जाइये ॥ ६॥ महारानी दमयन्तीकी यह बात सुनकर बृहत्सेनने अपने आज्ञाकारी पुरुषोंके द्वारा पुत्रोंको बुलाया ॥ ७ ॥ तब देश कालको जाननेवाली पतिव्रता दमयन्तीने मीठी वाणी द्वारा वार्ष्णेयको सन्तुष्ट करके समयानुसार कहा ॥ ८ ॥ कि, आप जिसतरह उत्तम अवस्थामें महाराजका सब हाल जानते हैं, वैसेही अब विषमस्थितिका हाल जानकर आपको महाराजकी सहायता करनी

चाहिये ॥ ९ ॥ इस समय महाराज नलराजा पुष्करके संग ज्यों २ क्रीडा करते हैं अर्थात् जुआ खेलते हैं वैसेही उनको खेलनेकी लत बढती जाती है॥ १०॥ जिस प्रकार राजा पुष्करका अर्थ (हित) करनेवाले पाँसे उनके वशीभूत होरहे हैं अर्थात् उनको जिताय रहे हैं उसी प्रकार वे महाराज नलको विपरीत फल देरहे हैं, अर्थात् उनकी हार कराय रहे हैं ॥ ११ ॥ इस समय वे महात्मा महाराज नल अपने सुहृद (मित्र) और स्वजनोंकी बातभी नहीं सुनते हैं, इस कारण मैं समझती हूँ कि, उनकी बुद्धि नष्ट होगई॥ १२॥जब कि, मोहितहुए महाराज मेरी बात नहीं मानते हैं इस कारण मैं आपकी शरणागत हूं । हे सारथे ! आप मेरे कहनेको कीजिये ॥ १३ ॥ अर्थात् आप मेरे दोनों बालकोंको रथमें चढाकर कुण्डिनपुरको लेजाइये और वहां मेरे माता पिता इत्यादिकोंके पास इनको रखकर ॥ १४ ॥ और उनको भली भांति समुझाय बुझाय फिर यहां चले आइये। महाराज नलके वार्ष्णेय नामक सारथीने महारानी दमयन्तीकी यह बात सुनकर ॥ १५ ॥ महाराज नलके प्रधान अमात्य (मन्त्री) से जायकर यह वृत्तान्त निवेदन किया, तब सारे मन्त्रियोंने इस बातका निश्चय करके आज्ञा देदी ॥१६ ॥

चौपाई ।

सुत कन्या तब रथ बैठावा । सारथि देश विदर्भ पठावा ॥
पहुँचो वेगि सारथी तहँवा । देश विदर्भ भीम नृप जहँवा ॥
दमयन्ती पठये ले साथा । सुत प्रतिपाल करो नरनाथा॥
खेलैं जुआ कहेउ सो गाथा । चिन्तावन्त भये नरनाथा ॥
दोहा-यह कहि तब सो सारथी, राजहि कियो जुहार ।
बहुत देश तहँ देखिकै, अवध नगर पग धार ॥

तब वह सारथी उन दोनों बालकोंको रथमें चढाकर विदर्भदेशमें लेगया, वहाँ घोडोंको रथके निकटही रखकर उस अतिश्रेष्ठ रथसे ॥ १७ ॥ इन्द्रसेना नामवाली कन्या और इन्द्रसेन नामक पुत्रको उतार महाराज भीमको सौंपदिया और फिर उनसे आज्ञा लेकर राजा नलकी ओरको चलदिया ॥ १८ ॥

तब वह सारथी घूमता घूमता महाराज ऋतुपर्णके नगरमें आपहुंचा और परम दुःखसे उनके पास रहा ॥ १९ ॥ तथा महीपति ऋतुपर्णका सारथी होकर उनकी टहल करने लगा। बृहदश्वजीने कहा, हे युधिष्ठिर! इधर वार्ष्णेय सारथीके चलेजानेपर पुण्यश्लोक महाराज नलका जुआ खेलते खेलते ॥ २० ॥ पुष्करने सारा राज्य जीतालिया, कोई वस्तु बाकी न रही तब महाराज नलके सारे राज्य हारजानेपर पुष्कर उनसे हँसकर बोला॥ २१॥

चौपाई ।

स्वर्ण रजत जो लाव भुवारा। धरत दाव पल महँ सब हारा ॥
गज तुरंग हारे तब राऊ। एकहु वार न जीतेउ दाऊ ॥
हारे वस्त्र अभूषन जेते। राजस्थान आदि पुर तेते ॥
सर्वस हार चुके नल राजा। पासा खेले भयउ अकाजा ॥
पुष्कर कह्यो रह्यो कछु अहई। दमयन्ती लावहु यह कहई ॥
सुनत राउ भा क्रोध अपारा। पर नैकहु कछु चलै न चारा ॥

कि अब हमारा तुम्हारा जुआ फिर होवे, उसमें आप औरभी दाव लगाइये किंतु मैं तो आपका सर्वस्व जीतचुका,एकमात्र दमयन्ती बचीहुई है सो यदि आप चाहें तो अबकी वार उसकाही दाव लगादीजिये ॥२२॥ पुष्करके ऐसी बात कहनेपर पुण्यश्लोक महाराज नलकी छाती फटनेलगी परन्तु उन्होंने पुष्करसे कुछ नहीं कहा ॥ २३ ॥ तब पुष्करको देखकर महाराज नल महाक्रोधित हुए और उन्होंने अपने (अंगोंके) सब गहने उतारकर वहाँ रखदिये ॥२४॥ केवलमात्र एक वस्त्र धारण किये वे बाँधवोंके शोक बढानेवाले महाराज नल अपनी विपुल राज्यलक्ष्मी त्यागकर नगरके बाहर निकले२५॥

चौपाई ।

दमयन्ती जान्यो यह राजा। कियों चलन वनकेर समाजा ॥
रोय चली दमयन्ती रानी। सो करुणा किमि कहौं बखानी ॥
राज्य तजा वन वास सिधाये। विधिने काठिन कलेश दिखाये ॥
दासी दास बहुत विलखाई। दमयन्ती नृप पाछे जाई ॥
जो जहँ सुने धुनै शिर सोई। बड विषाद नहिं धीरज होई ॥

दोहा—चले जात नृप राजसों, पुर जन धीर धराय ।
दमयन्ती नल ऊपमा, रामचन्द्रसों पाय ॥

उन एक वस्त्र धारण करके जातेहुए महाराज नलके पीछे पीछे महारानी दमयन्तीभी चलदी । तब तीन रात्रितक महाराज नलने दमयन्तीके सहित नगरके बाहर वास किया ॥ २६ ॥ इधर राजा पुष्करने सारे नगरमें ढँढोरा पिटवादिया कि, जो आदमी नलको आदर मानसे टिकावेगा या उसके पास जायगा वह मेरे हाथसे मरनेयोग्य होगा ॥२७॥ तब हे युधिष्ठिर ! पुष्करका यह ढंढोरा सुनकर उससे वैर होजानेके डरसे किसी पुरवासीने महाराज नलका आदर सत्कार नहीं किया ॥२८॥ (अधिक क्या कहें) किसीने उन सत्कार करनेयोग्य महाराज नलका वाणीसेभी सत्कार नहीं किया और वे महाराज वहाँ तीन राततक जलमात्र पीकरही रहे ॥ २९ ॥ तब फिर भूखसे अत्यन्त पीडित होकर महाराज नलने नदीके किनारेपर एक मछली मारनेवाले धीमरको देखा और उससे मछली माँगकर ॥३०॥दमयन्तीके हाथमें देदीं किन्तु वे मछली उसके हाथसे तत्काल गायब होगईं । तब फिर उस नदीमें स्नानकरके महाराजने दमयन्तीसे कहा ॥ ३१ ॥ कि हे दमयन्ती ! आपने मुझको छोडकर इन मछलियोंको खालिया, इस तरह कहते ही थे कि, इनको कुछ पक्षी दिखाई दिये, तब वे कहने लगे कि, इनसे मेरे उदर पूर्ण होनेका काम चलजायगा अर्थात् यह वस्तु मेरी होचुकी ॥ ३२ ॥ रानी दमयन्तीसे इस प्रकार कहकर महाराज नलने उन पक्षियोंको अपने वस्त्रसे भलीभाँति ढकदिया अर्थात् उन्होंने उनके ऊपर इस अभिप्रायसे अपना वस्त्र फेंका कि, यह निकलकर नहीं जासकें, किन्तु वे सब पक्षी उनके उस वस्त्रको भी लेकर उडगये ॥ ३३ ॥ और फिर उन सब उडतेहुए पक्षियोंने कहा—रे दुर्बुद्धि ! हम तेरे वस्त्रके हरनेवाले पक्षीरूपधारी पाँसे हैं ॥ ३४ ॥ इसके पीछे वे सब पक्षी महाराज नलको भूमिपर नंगा देखकर आपसमें विवाद करनेलगे । इस प्रकार पक्षीरूपी पाँसोंको गयाहुआ और अपने आपको नंगा देखकर॥३५॥

पुण्यश्लोक महाराजने दमयन्तीसे कहा हे भद्रे ! मैं जिनके क्रोधित होनेपर संपूर्ण ऐश्वर्यसे च्युत हुआहूँ अर्थात् मेरी सारी सम्पदा नष्ट होगई हैं ॥ ३६ ॥ उनको क्षुधित और दुःखित विशेषभावकरके नहीं पासकताहूँ और फिर जिनके कुपित होनेपर मेरे सन्मुख ही आपका निरादर हुआ ॥ ३७ ॥ उन्होंने ही अब पक्षी होकर मेरे वस्त्रको भी हरलिया, मैं महाविषमभावको प्राप्त होकर इस वनमें दुःखी हुआहूँ ॥ ३८ ॥ मैं आपका पति हूं, अतएव मैं जो कुछ कहताहूं, वह अपनी हितकारी बात सुनिये देखिये ! यह दक्षिणदिशाको बहुतसे रास्ते चलेगये हैं ॥ ३९ ॥ यह अवन्ती पुरी और अवन्त नामक पहाडको अतिक्रम करके फैलाहुआ विन्ध्यनामवाला महापहाड है इसके पीछे समुद्रमें मिलीहुई पयोष्णी है ॥ ४० ॥ यह महर्षियोंके आश्रम हैं जो कि भाँति भाँतिके फूल फलोंसे युक्त हैं और यह रास्ता विदर्भदेशको चलागया है, इसी रास्तेसे आदमी कोशलदेशको जायाकरते हैं ॥४१॥ इसकी दक्षिणदिशामें यह दक्षिण नामक देश है, आप इस मेरे बताये रास्तेसे अपने बापके घर चली जाइये । महाराज नलके इस भाँति कहनेपर बाष्पकलासहित वाणीरूपी दुःखसे खेदित हो ॥ ४२ ॥ महारानी दमयन्ती निषधाधिपति महाराज नलसे दीनवचन कहने लगी कि हे नाथ ! इस समय मेरा हृदय काँप रहाहै और मेरे सब अंग भी दुःखित होरहेहैं ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! आपकी आज्ञाको वारंवार वर्त्तती अर्थात् पालन करती हुई हतराज्य, निर्धन, वस्त्ररहित (नंगे) और भूँखसे आतुर ॥ ४४ ॥ आपको इस निर्जनवनमें छोडकर मैं कैसे अपने पिताके घर चलीजाऊँ ? मैं थकेहुए और उस पहले राज्यसुखकी चिन्ता करतेहुए ॥ ४५॥ हे महाराज ! इस घोर वनमें आपके दुःखको नष्ट करूंगी । क्योंकि भार्याकी समान अमृतरूपी औषधी दूसरी कोई भी विद्यमान नहीं है ॥ ४६ ॥ यह बात मैं सत्यही कहती हूं कि स्त्रियां सब दुःखोंकी औषधीस्वरूप होती हैं। यह सुनकुर महाराज नलने कहा—हे सुमध्यमे ! आपने जो बात कही, सो सच्ची है ॥ ४७ ॥ निःसन्देह मनुष्यके दुःखकी औषधी भार्याके

समान दूसरी कुछभी नहीं है, हे भीरु ! मैं आपको संकटमें नहीं त्यागना चाहाताहूं ॥ ४८ ॥ हे भीमनन्दिनी ! आपको जो यह डर लगरहा है कि मैं कहीं तुमको त्याग न दूं, सो इस डरको आप दूर कर दीजिये । दमयन्तीने कहा-हे महाराज ! यदि आप यहां मुझको नहीं त्यागना चाहतेहैं ॥ ४९ ॥ तो आप मुझको बेरबेर विदर्भदेशका रास्ता किसलिये दिखारहे हैं? हे नृपते ! मैं आपसे त्यागीजानेके योग्य नहीं हूँ ॥ ५० ॥ हे पृथ्वीपति ! आप अकष्ट चित्त करके मुझको मत त्यागना । हे सुखकारक! मुझे इस त्यागनेके कारण आप मेरे शोकको बढातेहैं ॥ ५१ ॥ और हे महाराज ! यदि आपका यही अभिप्राय हो कि मैं विदर्भ देशको चली जाऊँ, तो हम और आप दोनोंही जने साथ विदर्भदेशको चले चलें ॥ ५२ ॥

दोहा-कुण्डिनपुरको चलहु नृप, जो मन मानै कन्त ।
तुम कहँ देखत भीमनृप, करिहैं प्रेम अनन्त ॥

'विदर्भराजस्तत्र त्वां पूजयिष्यति मानद ।
तेन त्वं पूजितो राजन्सुखं वससि तद्गृहे' ॥ ५३ ॥

हे मानद ! वहाँ विदर्भ देशाधिपति मेरे पिता महाराज भीम आपका (भलीभाँति) आदर (सत्कार) करेंगे । हे राजन् ! उनसे पूजित होकर आप सुखपूर्वक उनके घर वास कीजिये ॥ ५४ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः २५.

पञ्चविंशे तु राज्याश्च विरहश्च नलस्य वै ।
व्याधस्य मरणं चैव दुष्टबुद्धेश्च कथ्यते ॥ १ ॥

इस पचीसवें अध्यायमें जिसप्रकार महाराज नल और रानी दमयन्तीका वियोग होकर दुष्टबुद्धि व्याधकी मृत्यु हुई, सो कथा वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥

नल उवाच ।

यथा राज्यं पितुस्तेऽस्ति तथा मम न संशयः ।
न तु तत्र वसिष्यामि विषमस्थः कथंचन ॥ २ ॥

महाराज नलने कहा—हे प्यारी ! आपके पिताका जो राज्य है, सो निःसन्देह मेरा है इसमें कुछभी फरक नहीं है, किन्तु इस समय बडे भारी संकटको प्राप्त हूँ इसलिये वहाँ नहीं रहूँगा, हे प्यारी ! (नेक सोचो तो सही) कि मैं वैरियोंसे पराजित निर्धन और आपके शोकको बढानेवाला होकर कैसे तुम्हारे पिताके घर जाकर वास करूं ? ॥ २ ॥ हे कान्ते ! जिस समय आदमी समृद्धिमान् (धनसम्पन्न) होकर अपनी ससुरालको जायाकरताहै, तबही उससे ससुर इत्यादि सबलोग प्रसन्न होकर बातचीत किया करतेहैं ॥ ३ ॥ और वही आदमी जब निर्धन होकर ससुरालमें जाताहै तब ससुरालके वही आदमी उससे टेढी टेढी बातें कियाकरतेहैं । इसतरह रानी दमयन्तीसे महाराज नलने बारंबार कहा ॥ ४ ॥ और अर्द्धवस्त्रसे आच्छादित कल्याणी दमयन्तीको शान्त किया अर्थात् समझाया बुझाया तब फिर एकवस्त्र धारण कियेहुए दोनों जने इधरउधर फिरनेलगे ॥ ५ ॥ इस प्रकार क्षुधातुर (भूँखे) और थकेहुए महाराज नलको एका प्रपा (प्याऊ) दिखाई दी उस प्रपा (प्याऊ) के मिलजानेपर यह दोनों जने वहाँ ठहरगये ॥ ६ ॥ अनन्तर महाराज नल पृथ्वीकी धूरिसे गुंठित, मलीन केशयुक्त, वस्त्रहीन हुए पृथ्वीतलपर दमयन्तीके सहित बैठगये ॥ ७ ॥ फिर थकेहुए महाराज नलने पृथ्वीतलपर रानी दमयन्तीके सहित शयन किया और दमयन्ती लेटते ही नींदके वशीभूत होगई ॥ ८ ॥ जब अकस्मात् दुःखको प्राप्त हुई सुन्दरी राजकुमारी दमयन्ती सोगई तब महाराज नल दमयन्तीको सोतीहुई देखकर ॥ ९ ॥ उसके त्यागदेनेकी इच्छासे चिन्ता करने लगे । फिर सोचा कि इस रानीको वनमें छोडना चाहिये वा नगरमें त्यागना ठीक होगा ? ॥ १० ॥ इसके छोडदेनेपर मुझे सुखमिलेगा अथवा नहीं छोडनेसे मिलेगा ? इस तरह महाराज नलने वारंवार चिन्ता करके रानीके त्यागदेनेको ही अच्छा समझा ॥ ११ ॥ उन महाराज नल और रानी दमयन्ती दोनोंके पास एकही एक वस्त्र था, इसकारण महाराज नलने रानीके आधे वस्त्र कतरनेका विचारकिया ॥ १२ ॥ और फिर यह भी सोचा कि, इस

वस्त्रको इस तरह कतरना चाहिये जिससे इसको मालूम न हो । महाराज नल इस भाँति विचार करतेहुए वस्त्र कतरनेके लिये प्रियाके चारों ओर देखने लगे ॥ १३ ॥ (उसी समय कलि शोकरूपी) उत्तम खड्ग होकर राजा रानीके बीचमें आकर स्थितहुआ । तब वैरियोंके नाशकरनेवाले महाराज नलने उस खड्ग द्वारा उसका आधावस्त्र कतर कर ग्रहण (धारण) करलिया॥ १४॥ और फिर महाराज वैदर्भकुमारी महारानी दमयन्तीको वहांही अचेत सोतीहुई छोडकर भागगये ॥ १५ ॥ किन्तु स्नेहसे हृदयबँधा होनेके कारण महाराज नल फिर दमयन्तीके निकट लौट आये, और उसको उसी तरह सोतीहुई देखकर रोने लगे ॥ १६ ॥

चौपाई ।

देखि नृपति उरमें अति सोगा । देखहु विधि कीन्हों कस योगा॥
रविशशि जिनकहँ देखेउ नाहीं । सो मम संग फिरत वनमाहीं ॥
मेरे साथ विपिन दुख पैहै । बहु संताप कहाँ लगि सैहै ॥
जाउँ याहि तजि जो वनमाँही । आखिर पिताभवन सो जाही ॥
यह विचार नृपके मन आये । कलियुग हृदय बहुत भरमाये॥
दोहा-क्षण आवै नल निकटही, क्षणक चलै तजि मोह ।
करै विचार अनेक विधि, कबहुँ करै मनक्षोह ॥ १७ ॥

फिर विलाप करते करते कहनेलगे कि, हाय ! पहले जिन महारानी दमयन्तीको वायु और सूर्यभी स्पर्श नहीं करसके थे, वही प्यारी बाला इस समय प्रपा (प्याऊ) में अनाथकी समान सोरही है ॥ १७ ॥ यह चारुहासिनी वस्त्र कतरलेनेपर भी उन्मत्तकी तरह सोही रही है सो यह वरारोहा किस प्रकार जागेगी ? ॥ १८ ॥ मुझसे रहित होकर अर्थात् मेरा वियोग होजानेपर यह भीमकुमारी सुन्दर दमयन्ती मृग सर्पादि (हिंसक) जन्तुओंसे सेवित इस घोर वनमें अकेली किसतरह विचरण करेगी ? ॥ १९ ॥ इस भाँति (चिन्ताकरतेहुए) महाराज नल वारंवार चलेजाँय, और फिर

अपनी प्यारीके निकट पलट आवें। इसतरह कलियुगसे आकर्षित होकर महाराज अज्ञानी होगये ॥ २०॥ उस काल महाराज नलका दुःखित हृदय दो प्रकारका हो रहाथा, वे हिंडोलेकी तरह बेर बेर प्यारीके पास आवें और फिर चलेजावें ॥ २१ ॥ फिर वे महाराज नल कलिद्वारा आकृष्ट होनेके कारण सोती हुई अपनी भार्या दमयन्तीको त्याग करुणाके सहित विलाप करते करते महान् कष्टको प्राप्तहुए ॥ २२॥ जो कि कलियुगके स्पर्शसे महाराज नलका ज्ञान नष्ट होगयाथा, (इसलिये) वे रानीको छोडकर दुःखित चित्तसे निर्जन वनमें चलेगये ॥ २३॥ बृहदश्वजी बोले—हे महाराज युधिष्ठिर ! जब राजा नल चलेगये तब इधर थकावट दूर होनेपर वरारोहा दमयन्ती जागी और उस निर्जन वनमें डरती काँपती ॥ २४॥ अपने पति महाराज नलको न देखकर दुःख शोकयुक्त व त्रासित हो 'हे महाराज !' इस भाँति उच्च स्वरसे नलको पुकारनेलगी ॥ २५ ॥

चहुँ दिशि चितें चकित चित भयऊ। हाहा करि बहुरोदनठयऊ ॥
हा हा स्वामी कन्त हमारे। ताजि मोकहँ बन कहाँ सिधारे ॥
प्रथमहि कह्यो न छाँडब तोही। जब लगि घट बिच जीवनमोही ॥
यदि दुख जीवन जात हमारा। वचन झूठ नृप भयउ तुम्हारा ॥
कीन्हीं सेवा सदा तुम्हारी। कौन चूक भइ कन्त हमारी ॥
आज्ञा भंग न कबहूँ कीन्हा। कोहि अघ त्यागि हमहिं दुखदीन्हा ॥
धीरज आय देउ जो नाहीं। कैसे प्राण रहै तन माहीं ॥

दोहा—सघन विपिन महँ रोवती, दमयन्ती विलखाय।
कौने अवगुण कीन्हेऊ, दीन्ह कन्त दुख आय ॥

हा नाथ ! हा नाथ ! हा महाराज ! हा स्वामिन् ! आप किस लिये मुझे छोडनेकी कामना करते हैं ? हाय ! मैं मरी ! नष्ट हुई ! इस विजन वनमें मुझको डर लगरहा है ॥ २६ ॥ हे महाराज ! हे धर्मके जाननेवाले ! आप सत्यवादी अर्थात् सच्ची बातकेही कहनेवाले हैं, तब फिर मुझ दीन सोतीहुई और अकेली भार्याको छोडकर किसतरह चलेगये ? ॥२७॥ हे पुरुषोत्तम !

अब तक क्या आपने हँसी करी है? हे महाराज! हे ईश्वर! अब मुझको आप अपने स्वरूपका दर्शन दीजिये कारण कि, मुझे यहाँ डर लगरहा है ॥२८॥ हे महाराज! आपने देवताओंकी प्रदान करीहुई विद्याद्वारा किसलिये अपनेको छिपा रक्खाहै ? हे नरेश्वर ! मुझसे आप बात क्यो नहीं करते ? हे नाथ ! मुझको आपका वियोग भस्म कियेडालताहै ॥ २९ ॥ हे पार्थिव ! आप मुझे विलपतीहुई भार्याको ढाढस बँधाकर क्यों नहीं आलिंगन करते ? मुझको अनपनेका सोच नहीं है और दूसरोंकी भी कुछ चिन्ता नहीं है ॥ ३० ॥ किन्तु मैं मात्र आपकीही चिन्ता कर रहीहूँ कि आप अकेले वनमें कैसे होंगे ? यही समझकर रोरहीहूँ । हे महाराज ! आप भूखे, प्यासे और थके हुए किस तरह निर्वाह करते होंगे ? ॥ ३१ ॥ और सांझ समय मुझको वृक्षके मूलमें नहीं देखकर आप विषाद (शोक) करेंगे ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर वह दमयन्ती दुःखसे अतीव आर्त हो क्रोधसे प्रज्वलित हुई महान् दुःखसे रोती रोती इधर उधर भागनेलगी ॥ ३३॥ तदनन्तर हे विभो ! इस विजन वनमें आप मुझसे बात चीत कीजिये । इसप्रकार कहतीहुई वह बाला वार वार उठ मूर्च्छित होकर भूमिपर गिरनेलगी ॥ ३४ ॥ फिर महाराज भीमकुमारी पतिव्रता दमयन्ती अपने मनमें भरोसा बाँधकर उठी और सच्चा वचन कहनेलगी कि, जिससे और जिस हेतुसे वे निषधाधिपति नल दुःखको प्राप्त होकर दुःख भोग रहेहैं ॥ ३५ ॥ मेरे वचनसे उस पापात्माको महान् दुःख हो, जिस पापात्माने पापहीन महाराज नलको ऐसा दुःखी कर रक्खाहै ॥३६॥ वह प्रत्येक जन्ममें महान् दुःखको प्राप्त हो, आजीवन दुःखही भोग करता रहेगा, वह महात्मा महाराज नलकी भार्या दमयन्ती इस प्रकारसे विलाप करनेलगी ॥ ३७॥ इसके पीछे दमयन्ती हिंसक जन्तुओंसे भरेहुए उस वनमें अपने स्वामी महाराज नलको खोजतीहुई बावलेकी तरह बार बार विलाप करनेलगी॥३८॥ इस भाँति दुःखसागरमें डूबीहुई और भर्त्ताके दर्शनकी लालसा करनेवाली मार्गमें विचरतीहुई दमयन्तीको ॥३९॥

चौपाई ।

सर्प एक तब सन्मुख आवा । रानी पद मुख भीतर लावा ॥
रानी बिकल बहुत बिल खाई । हाय कन्त मोहि लेहु बचाई ॥
निषध देश स्वामी जब जैहौ । कहो कन्त मोकहँ कहँ पैहौ ॥
व्याध एक तहँ देखउ जाई । वधिक सर्प कहँ मारेउ आई ॥
वधिक सर्प कहँ डारेउ मारी । पीडित काम कह्यो सुनु नारी ॥
काम वश्य होई बोलेउ वानी । केहि हित वनमें फिरहु भुलानी ॥
तब रानीको चिन्ता आई । नलको मनमें पुनि पुनि ध्याई ॥
रानी शाप वधिक कहँ दीन्हा । तुरत भस्म तेहि खलकहँ कीन्हा

प्राणियोंके ग्रहण करनेवाले बडे शरीरवाले एक भूँखसे घबरायेहुए अजगरने निगल लिया । उस अजगरके निगलजानेपर दमयन्ती बहुत ही दुःखित हुई ॥ ४० ॥ और महाराज नलका ऐसा सोच करनेलगी कि जैसा अपनी अनाथ आत्माका भी नहीं किया । हा नाथ ! इस वनमें मुझको अजगरने अनाथके समान निगललिया है ॥ ४१ ॥ अत एव हे स्वामी ! आप मुझको छुडानेके लिये दौडकर किस निमित्त नहीं आते हैं ? हे महाराज ! मुझ अधम नारीको आपने शापसे त्याग दिया है ॥४२॥ हे नैषध ! हे राजसिंह ! हे मानदेनेवाले ! आपके क्षुधातुर और मलीन जनित श्रम (थकावट) को कौन नष्ट करेगा ? ॥ ४३ ॥ इसके पीछे एक मृगोंका मारनेवाला व्याध उस गहन वनमें घूमताहुआ दमयन्तीकी करुणाभरी दीन वाणी सुनकर शीघ्रतासहित उसके सन्मुख आपहुँचा ॥ ४४ ॥ और उस मृगव्याधने उस दमयन्तीको इस तरह अजगर द्वारा निगलीहुई देख वेगसहित पैने शस्त्रसे उस उरग (अजगर) के मुखको चीरडाला । इस भाँति उस सर्पको मार निर्विचेष्ट करके ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वह वधिक उस दमयन्तीको छुडाय जलसे नहलाय और आहार कराय पूछनेलगा ॥४७॥ व्याध बोला— हे मृगकी समान आंखोंवाली ! आप कौन हैं ? किसकी भार्या हैं ? और हे भामिनी ! इस घोर वनमें किसलिये आईहो ? ॥४८॥ हे भरत ! उस

व्याधके इस तरह पूछनेपर दमयन्तीने अपना सारा हाल उसको सुनादिया ॥ ४९ ॥ अनन्तर अर्द्धवस्त्रसे ढकीहुई पुष्ट जंघा व स्तनोंवाली, कोमल व नवीन अंगवाली और शरदऋतुके चन्द्रमाकी समान मुखवाली ॥ ५० ॥ कमलपत्रकी समान आँखोंवाली और मधुर वचन बोलनेवाली दमयन्तीको देखकर वह मृगव्याध कामके वशीभूत होगया ॥ ५१ ॥ और फिर वह कामातुर व्याधाभी मीठी मीठी बातोंसे दमयन्तीको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा करनेलगा, तब कामिनी दमयन्तीने उसके इस (बुरे) अभिप्रायको जान-लिया ॥ ५२ ॥ अनन्तर उस दुष्टको देखकर सती दमयन्तीने महान् रोष-युक्त क्रोधसे जलतेहुए कहा अर्थात् उसको यह शाप दिया ॥ ५३ ॥

ननु पापमतिः क्षुद्रः परासुर्मृगजीवकः ।
उक्तमात्रे तु वचने तया स मृगजीवकः ॥
व्यसुः पपात मेदिन्यामग्निदग्ध इव द्रुमः ॥ ५४ ॥

कि यह पापमति नीच मृगव्याध प्राणहीन होजावे, पतिव्रता महारानी दमयन्तीके यह बात कहतेही वह मृगजीवी व्याधा अग्निसे जलेहुए वृक्षकी समान प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिरपडा ॥ ५४ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः २६.

षड्विंशे नलपत्न्याश्च काननेऽतिविलापनम् ।
मुनिभिः सह संवादस्तस्या राज्याश्च कथ्यते ॥ १ ॥

इस छब्बीसवें अध्यायके बीच महाराज नलकी भार्या दमयन्तीका वनमें अतिविलाप करना फिर मुनियोंके संग रानीका संवाद होना; यह कथा वर्णन करीजातीहै ॥ १ ॥

बृहदश्व उवाच ।

सा निहत्य मृगव्याधं प्रतस्थे कमलेक्षणा ।
वनं प्रति वनं शून्यं झिल्लिकागणनादितम् ॥ १ ॥

बृहदश्वजीने कहा—हे महाराज युधिष्ठिर! इसके पीछे वह कमलकी समान आँखोंवाली दमयन्ती उस मृगव्याधका नाश करके झिल्ली इत्यादि पक्षियोंसे शब्दायमान वनमें जापहुँची ॥ १ ॥ सिंह, व्याघ्र, हिरन, हाथी, सुअर और बन्दरोंसे युक्त, सर्प तथा पल्लीगणसे युक्त; म्लेच्छ और तस्करोंसे सेवित ॥ २ ॥ साल, वाँस, नीप, पीपल, इंगुद तथा गुंदके पेड, किंशुकके पेड अर्जुनके पेड, चन्दनके पेड और आमलेके पेड इन पेडोंसे युक्त ॥ ३ ॥ जामन, आम, खैर, ताल बेत इनसे आकुल तथा कालेय, कदम्ब और गूलरद्वारा युक्त ॥४॥ बेर, बेल और मुलहठीके वृक्षोंसे युक्त, प्रियाल, शष, खजूर, हरड और बहेडेके पेडोंसे युक्त ॥ ५ ॥ भाँति भाँतिकी धातुके शतशः छिद्र, नानाभाँतिके हरे हरे तृण (घास) तथा कुंज कि जिनमें पक्षिगण (तरह तरहकी सुहावनी और मनभावनी) बोलियाँ बोलरहेहैं, व सूर्यके उत्तापसे रहित ॥६॥ नदियाँ, सरोवर (तालाव) बावडी और भाँति-भाँतिके पशु व पक्षी, अनेक क्रूर पिशाच, साँप और राक्षसगण ॥ ७ ॥ अनगिन्त पल्वल, तडाग, गिरिकूट, नदियोंके संगम तथा और भी बहुतसे अद्भुत दर्शनवाले पदार्थ ॥ ८ ॥ वनैले भैंसे, सुअर, गीदड, रीछ और गैंडोंसे युक्त वनोंमें जाकर विदर्भनन्दिनी दमयन्तीने इन सबको देखा ॥ ९॥ महान् तेजस्विता और यशसे मनोहर दमयन्ती वनमें अकेली फिरतीहुई निरन्तर महाराज नलको खोजनेलगी॥ १० ॥ और वह महाराज भीमकी पुत्री घोर मार्गमें पहुँचकर कहीं भी न डरी, किन्तु एक मात्र अपने स्वामीके दुःखसे अवश्य पीडित हुई ॥ ११ ॥ हे राजन्! फिर महाराज भीमकी कन्या दमयन्ती स्वामीके शोकसे महान् दुःखित होकर एक पत्थरकी शिलापर बैठगई और विलाप करनेलगी॥ १२ ॥ दमयन्ती बोली—हे सिंहविक्रम! हे महाबाहो! हे निषध देशस्थितजनोंके अधिपति! आप मुझको विजन वनमें छोडकर कहाँ चले गये? ॥ १३ ॥ हे वीर! हे नरसिंह! आपने बहुतसी दक्षिणावाले अश्वमेधादि यज्ञ करके मेरे संग उत्तमोत्तम कार्योंको किया है ॥ १४ ॥ हे नरोंमें सिंह! हे महाराज! हे राजातिलक!

आप जो मेरे पक्षको स्वीकार करचुके हैं उसको आप स्मरण कीजिये ॥ १५ ॥ हे पृथ्वीपति ! मेरे पासके हंस पक्षियोंने आपके पास पहुँचकर जो बातें कही हैं उनको आप सहलेनेके योग्य हैं ॥१६॥ हे मनुजव्याघ्र ! एक ओर तो अंग और उप अंग समेत चारों वेदका पढना और दूसरी ओर सत्य बोलना यह दोनों समान हैं ॥ १७ ॥ अतएव हे राजेन्द्र ! हे नरेश्वर ! हे विभो ! पाहिले आपने मुझसे जो कुछ कहाथा अर्थात् प्रतिज्ञा की थी; उसको सत्य कीजिये ॥ १८ ॥ हे राजेन्द्र ! आपका दर्शन करके मैं जन्म जन्ममें आपकी प्यारी, (भाया) हूँगी, अत एव इस घोर अटवीमें पहुँची-हुई मुझसे आप बात चीत क्यों नहीं करते हैं ?॥ १९ ॥ यह दुष्ट भयंकराकार वनराज कुत्ता भूँखसे घबराकर मुझको खेंचलेताहै अत एव आप मुझको क्यों नहीं बचाते हैं ? ॥२०॥ हे कल्याण ! आपने जो प्रथम मुझसे सुखकारक बातें कही थी; सो उन सब जनोंकी प्यारी बातोंको सत्य कीजिये ॥ २१ ॥ हे नाथ ! हे नराधिप ! उन्मत्तकी तरह विलाप करती और आपकी कामना करतीहुई मनोहरसे मनोहर मेरे संग आप किस लिये बात चीत नहीं करते हैं ? ॥२२॥ हे हरिणेक्षण ! हे शत्रु-कर्षण ! मुझे अपने झुंडसे छूटीहुई हिरनीके समान अकेली रोतीहुईको आप क्यों नहीं लेजाते हैं ? ॥ २३ ॥ हे नाथ ! कुलके शील स्वभाव सम्पन्न और सर्वाङ्गसुन्दरी मैं आपको खोजरहीहूँ और हे नरश्रेष्ठ ! वाणीद्वारा पुकारभी रहीहूँ अब आप दर्शन दीजिये ॥ २४ ॥ इसके पीछे दमयन्ती महाराजा नलके वियोगमें पागलिनीसी होकर कहनेलगी कि—हे अशोक ! क्या आपने महाराज नलका दर्शन किया है ? यदि किसीने इस वनमें शंकित नलको देखाहो तो आनकर मुझे बतादीजिये ॥ २५ ॥ निषधदेशके महाराज जो नरोंमें उत्तम और वीरसेननामसे विख्यात थे वे मेरे ससुर हैं ॥ २६ ॥ उनके पुत्र वीर श्रीमान् सत्यवादी, पराक्रमी और क्रमसे पितृराज्यको प्राप्त होकर राज्य करनेवाले ॥ २७ ॥ महाराज नलनाम वैरियोंका नाश करने-वाले, पुण्यश्लोक, प्रकाशित, ब्राह्मण भक्त, वेदके ज्ञाता और पुण्यवान्

हैं ॥ २८ ॥ हे पर्वतोत्तम! आप मुझको उन्हीं महाराज नलकी भार्या जानिये, मैं अपने उन्हीं श्रेष्ठ स्वामीको खोजती खोजती यहां पहुँचीहूँ॥२९॥ इसके पश्चात् यहांसे दमयन्ती उत्तरदिशाको चलीगई और वह लगातार तीन रात चलकर चौथे दिन तपस्वियोंसे सेवित एक परम सुन्दर वनमें जापहुँची वह वन बहुत बडा और अनेक उपवनोंसे शोभायमान होरहाथा ॥ ३० ॥ वह वन दम, दान और दयासे युक्त तथा शम साम्यादि गुणसम्पन्न वशिष्ठ, अत्रि और भृगु इत्यादि ऋषियोंसे सुशोभित होरहाथा ॥ ३१ ॥ उनमें बहुतसे ऋषि उपवास सहित, बहुतसे वायुभोजी अर्थात् हवाकाही भोजन करनेवाले, बहुतसे सूखेहुए पत्तोंको खानेवाले, बहुतसे एक मासपर्यंत उपवास करनेवाले, बहुतसे एकान्तोपवासी और बहुतसे चौथे दिन भोजन करनेवाले थे ॥ ३२ ॥ बहुतसे रूखा आहार करनेवाले, बहुतसे अन्न खानेवाले, बहुतसे शीत ऋतुमें जलके भीतर स्थित रहनेवाले, बहुतसे गरमियोंमें पंचाग्नि तापनेवाले और बहुतसे वर्षाकाल (चौमासे) मैं बादलोंकी जल वर्षाको सहनेवाले थे ॥ ३३ ॥ वे सब मान और अपमानको समान जाननेवाले, जटाधारी, नखधारी, दंडधारी, बहुतसे अदंडी और बहुतसे काषाय और वल्कल वस्त्रके धारण करनेवाले थे ॥३४॥ वे सब इन्द्रियोंको जीतनेवाले, महाभाग तथा भोजपत्र और मृगछालासे युक्त थे, इस प्रकार इन तपस्वियोंसे युक्त उस वनको देखकर दमयन्तीके मनमें अत्यंत हर्ष हुआ ॥ ३५ ॥ वह सर्वाङ्गसुन्दरी मनोहर, सर्वलक्षण सम्पन्न, भीमनृपकी प्यारी कन्या वह वरारोहा दमयन्ती ॥ ३६ ॥ उन सब वयोवृद्ध तपस्वियोंको प्रणाम करके विनयसे नम्रहो बैठगई । तब उन सब मुनियोंने भी सतीका स्वागत करके कुशल क्षेम पूँछी ॥ ३७ ॥ फिर उन सब तपोधन मुनियोंने पतिव्रता दमयन्तीकी यथाविधि पूजा व आदर मान करके कहा कि हे देवि ! हमको आपका क्या काम करना होगा, सो कहिये ॥ ३८ ॥ तब वरारोहा दमयन्तीने आदर सहित उन ऊर्द्धरेता ऋषियोंकी सब कार्योंमें कुशल पूँछी ॥ ३९ ॥ तब वे सब ऋषि बोले—हे कल्याणी ! हमारी तो

सर्वत्र अर्थात् सब बातोंमें कुशलहै किन्तु आप सर्वाङ्गसुन्दरी और मनोहारिणी कैसे दुःख पारहीहो ? ॥ ४० ॥ हे उत्तम भौंओंवाली ! आपने इस अपने कोमल शरीरपर शीत और वायु इत्यादिके कठिन दुःख कैसे सहे ? सो हमको बताइये ॥ ४१ ॥ दमयन्ती बोली—हे ऋषियो ! मैं न देवी हूँ, न यक्षी हूँ, न जलचरी हूँ और न पर्वत देवताहूँ, मुझको तो आप मानुषी जानिये ॥ ४२ ॥ अब मैं अपना सारा हाल आपसे विस्तारपूर्वक कहदेती हूँ, सुनिये । मैं विदर्भाधिपति महाराज भीमकी कन्या और निषधाधिपति वीरसेनके पुत्र महाराज नलकी प्यारी भार्या हूँ ॥ ४३ ॥ हे ब्राह्मणो! पूर्वकर्मके फलसे मैं आपके समीप आईहूँ । और युद्धमें चतुर अपने भर्ता नलको ढूँढ रहीहूँ ॥ ४४ ॥ अपने महात्मा और कृतास्त्र पतिकी तलाशमें दुःखित हुई यहां घूमरहीहूँ, यदि मुझको कितनेक दिन रात्रिकरके महाराज नलका दर्शन नहीं मिलेगा ॥ ४५ ॥ तो मैं अपने श्रेययुक्तशरीरका अन्त करदूँगी अर्थात् प्राण नहीं रक्खूँगी क्योंकि वह स्त्री नारियोंमें अधम (नीच) कहाती है जो अपने पतिका शरीरान्त(प्राणान्त) होनेपर ॥ ४६॥ फिर तेज रहित होकर वंशमें जीवित रहतीहै, वह जिस तरह दिनमें चन्द्रमा तेज हीन दिखाई देताहै, उसी प्रकार दिखाईदियाकरतीहै । इस भाँति वनमें अकेली विलपती हुई भीमनंदिनी ॥ ४७॥ दमयन्तीसे उन सत्य बोलनेवाले तपस्वियोंने कहा—हे कल्याणी ! हे शुभे ! आपका भाग्य अच्छाहै, अतएव आपको कल्याण प्राप्त होगा ॥ ४८ ॥ हम लोग महाराज नलको अपनी तपस्याके द्वारा देखरहेहैं अतएव आप सर्व पापोंसे हीन और सर्वरत्नसम्पन्न निषधराज (नल) का शिघ्रही दर्शन पाओगी॥ ४९॥हे कल्याणी ! पहिलेकी समान श्रेष्ठ वचन बोलने और वैरियोंका नाश करनेवाले तथा मांगलिक (कल्याण) महाराज नलका दर्शन आपको (अवश्य) मिलेगा इस प्रकार कहकर वे सब तपस्वी अपने अपने स्थानमेंही अन्तर्धान होगये ॥ ५० ॥

चौपाई ।

पुनि सबऋषियन आशिष दीन्हो । मिलिहैंनल मुनिजियसुखकीन्हो ॥

अन्तर्धान भये मुनि राई। चिन्ता उर रानीके आई॥
सुपनो सो मनमें यह जानी। मानुष जन्म कहा तब रानी॥
कर्म वश्य वन फिरौं भुलानी। ऐसे सोचि रानि अकुलानी॥
नलको खोजत बहु दुःख पाये। आपन पतिके दरश न पाये॥

तब दमयन्तीको यह महान् आश्चर्य देखकर विस्मय हुआ। वह सोचनेलगी कि, मैंने क्या यहाँ सुपना देखा ? अथवा यहाँ यह क्या आश्चर्यदायक तमाशासा होगया ॥ ५१ ॥ वे सब तपस्वी मुनिलोग कहाँ चलेगये ? और उनका आश्रम मण्डलही कहाँको चलागया ? भीमकन्या शुचिस्मिता दमयन्ती वहाँ इसतरह चिन्ता करनेलगी ॥ ५२ ॥ और फिर वह मुनियोंसे प्रशंशित दमयन्ती एक गहन वनमें चलीगई और वहाँ उसने बैलोंसे युक्त सार्थवाह (मुसाफिरोंके समाजका मुखिया) को देखा ॥ ५३ ॥ उस महासार्थको देखकर महाराज नलकी पत्नी वरारोहा और यशस्विनी दमयन्ती वनके बीचमें उसके पास पहूँची ॥ ५४ ॥ अनन्तर उस भीमनन्दिनी दमयन्तीको उन्मत्तकी समान आधेवस्त्रसे अंग ढके दुर्बल, विवर्ण, विकल खुले शिरसे ॥ ५५ ॥ आईहुई देखकर उनमें बहुतसे आदमी काँपने लगे, और बहुतसे डरके मारे भागगये बहुतसे विडरके उसके आगेही टिके रहें और बहुतसे पुकार करनेलगे ॥ ५६ ॥ बहुतसारे हँसनेलगे, बहुतसे उसकी बुराई करनेसे और है! बहुतसे उसके प्रति दया दिखातेहुए पूछनेलगे॥ ५७॥ कि, हे कल्याणि ! आप कौन हैं ? किसकी पुत्री हैं ? किसकी भार्या हैं ? और वनमें किसको तलाश करती फिररहीहैं ? आपका दर्शन करनेसे कितनेही आदमी व्यथित होगयेहैं, सो क्या आप मानुषी हैं ? ॥ ५८ ॥ अथवा आप इस वन और पहाडकी अधिष्ठात्री देवी हैं ? सो यह बात सत्यही सत्य बतादीजिये। हे कल्याणी ! हमको आप निःसन्देह देवी ज्ञात होतीहैं, अतएव हम सब लोग आपकी शरणागत हैं ॥ ५९ ॥ आप यक्षी हैं ? वा राक्षसी हैं अथवा वराङ्गना हैं ? हे कल्याणी ! (आप जो कोई ही क्यों न हों) हमारा कल्याण करके अवश्य रक्षा कीजिये ॥ ६० ॥ हे कल्याणी !

अब आप वही यत्न कीजिये कि जिससे हमारा यह सारा सार्थ कुशल क्षेमके सहित शीघ्र अपने अभीष्ट स्थानमें जा पहुँचे और सब आदमी सुखी रहें ॥ ६१ ॥ उस सार्थके इसप्रकार कहनेपर राजकुमारी दमयन्तीने 'हे सार्थवाहक !' इस तरह सम्बोधन करके कहा ॥ ६२ ॥ कि यहाँ उपस्थित बूढे, तरुण, बालक, सब जगे सार्थके आगे स्थित स्वामीके दुःखसे आर्त्त ॥ ६३ ॥ मुझको मानुषी अर्थात् महाराज भीमकी पुत्री और वीरसेनात्मज महाराज नलकी भार्या स्वामीके दर्शनकी अभिलाषा करतीहुई जानिये ॥ ६४ ॥ मेरे पिता विदर्भदेशके महाराज और महा भाग्यवान् मेरे पति नल निषधदेशके महाराज हैं, ऐसे वैरियोंसे नहीं हारनेवाले महाराज नलको ही मैं ढूँढती फिररही हूँ ॥ ६५ ॥ यदि आपलोग मेरे प्राणप्यारे पुरुषसिंह, और वैरियोंका संहारकरनेवाले महाराज नलको जानते हों तो मुझको शीघ्र बताय दीजिये ॥ ६६ ॥ महारानी दमयन्तीकी यह बात सुनकर शुचिनामवाले सार्थके फौजदारने दमयन्तीसे कहा—हे कल्याणी ! आप मेरी बात सुनिये॥ ६७॥ हे शुभे ! मैं सार्थका नेता और सबका अधिपति (मालिक) हूँ, किन्तु हे यशस्विनी ! मैंने नलनामक मनुष्यको नहीं देखाहै ॥ ६८ ॥ यह सुनकर दमयन्तीने उन सब वणिक और सार्थप्रेरकसे कहा कि आपका यह सब सार्थ कहाँको जारहहै सो मुझको कहिये ॥ ६९ ॥

सार्थवाह उवाच ।

सार्थोऽहं चेदिराजस्य सुबाहोः सत्यदर्शिनः ।
क्षिप्रं जनपदं गन्ता नाथोऽयं मनुजात्मजे ॥ ७० ॥

सार्थवाहने कहा—हे मनुजात्मजे ! यह सार्थ सत्यदर्शी सुबाहुनामक चंदेरीके महाराजका हैं, मैं सार्थवाह अर्थात् सब सार्थका अधिपति हूँ और जिस स्थानमें महाराज निवास कररहेहैं, उसी जनपदको शीघ्रतासे जारहाहूँ ७०

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यान-
वर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

सप्तविंशे च सूतेन सार्थेन सहिता सती।
तं हित्वा विपिनं चैद्यं पुरं प्रापेति चोच्यते ॥ १ ॥

इस सत्ताईसवें अध्यायमें सूत (सार्थवाह) सार्थसहित सती दमयन्तीका उसवनको छोडकर चैद्यपुरको पहुँचना यह कथावर्णन करी जातीहै ॥ १ ॥

बृहदश्व उवाच।

सा तच्छ्रुत्वाऽनवद्याङ्गी सार्थवाहवचस्तदा।
अगच्छद्राजशार्दूल विद्युल्लेखेव शारदी ॥ २ ॥

बृहदश्वजीने कहा—हे राजशार्दूल! सार्थवाहके यह वचन सुनकर वह निर्दोष अंगवाली दमयन्ती शरदृऋतुके विद्युल्लेखाके समान शीघ्रतासे आकर दुःखित और स्वामीके दर्शनोंकी कामनावाली, धूरीसे ढके शरीरवाली, शुचिस्मिता अर्थात् मन्द मन्द मुसकरानेवाली दमयन्ती सार्थसहित ॥ २ ॥ और पुरुषोंकरके अज्ञात हुई उस श्रेष्ठ महावनमें गमन करतीहुई सूर्यके छिपजानेपर रमणीक सरोवरपर जा पहुँची ॥ ३ ॥ वह सरोवर शीतलजलवाला, महा विस्तृत अर्थात् बहुत लम्बा चौडा, विमल, कल्हार जातिके कमलोंद्वारा ढकाहुआ और उत्पल जातिके कमलोंद्वारा विराजित ॥४॥ इस कारण्डवादिपक्षियोंसे भरा और चक्रवाकों (चकवा चकवियों) से शोभायमान था, इस प्रकार उस सरोवरके सहारेसे टिकनेके निमित्त वह सार्थ उसके पास पहुँचा ॥ ५ ॥ तब उस समय बैलभी जो कि भाराक्रान्त और भूख प्याससे घबराये हुए थे, अपने कंधोंसे बोझ उतारने और घास इत्यादिके खानेसे परम सुखी हुए ॥ ६॥ वैसेही घोडे हाथी, रासभ अपने अपने बालकोंके सहित उस श्रेष्ठ सरोवरको देखकर परमानन्दित हुए ॥ ७ ॥ अनन्तर उस वनमें सरोवरके निकट जाकर वणिक् और पथिक जन यथायोग्य स्नान करके टिकगये ॥ ८ ॥ वहाँ उन मुसाफिरोंने क्रय विक्रय योग्य भाँति

भाँतिके अनेक पदार्थोंका व्यापार किया और फिर दूसरे आदमी हिंसक जीवोंसे घिरेहुए कठिन वनका आपसमें हाल कहनेलगे ॥ ९ ॥ इसके पीछे वे सब जने अपने घरके सुख भोग, ज्ञातिका समागम और पुत्र स्त्री तथा मित्रोंको याद करते करते नींदके वशीभूत होगये ॥ १० ॥ फिर हे महा-राज युधिष्ठिर ! वहाँ आधीरातके समय हाथियोंका एक बडा भारी झुंड जल पीनेके निमित्त आया ॥ ११ ॥ और उस झुंडने वहाँ आनकर उस सार्थयूथ और सार्थ संगीय अनेक हाथियोंको देखा तब मदसे परिपूर्ण वे सब वनैले हाथी उन ग्राम्य हाथियोंको देखकर उनको मारडालनेकी काम-नासे झपटकर आये, तब उन आतेहुए हाथीयोंका वेग दुःसह हो उठा ॥ १२॥१३॥ अनन्तर लडाई होनेपर वनैले हाथियोंने ग्रामके हाथियोंको शीघ्रही मारडाला और स्त्री बालक तथा गजयुक्त वह सार्थभी मथित किया गया ॥ १४ ॥ उस समय भागतेहुए घोडे और गधोंका तीनों लोकको भय दायक महान् शब्द होनेलगा ॥ १५॥ वनैले हाथियोंसे मथित होकर कोई भी अपनी रक्षा नहीं करसका और न किसी दूसरेकोही बचासका । तब सार्थ-वाहने कहा मेरे भाई पुत्र सहायक सबही निहत होगये ॥ १६ ॥ और यह कष्टदायक अग्नि उठी है अर्थात् प्रकट हुईहै,इससे अब तुम रक्षा करो, भागते क्यों हो ? सारे रत्न बिखरगये हैं, इनको लेलो भागे किस लिये जातेहो ? ॥ १७॥ सार्थवाहकी यह बात सुनकर वे सब लोग झपटकर आये और उन पडेहुए रत्नोंको उठायकर हाय! हाय! करनेलगे॥ १८॥जो बात पहिले कभी नहीं देखीगई ऐसी सब किसीको भयंकर शापके दुष्ट कर्मकी घटना देखकर कमलके सदृश आँख और चन्द्रमाकी समान मुखवाले घबरायेहुए बालक वनमें टिके रहे । इसके पीछे सारे रत्न, हीरे, प्रवाल, बिगड और टूट फूटकर ॥ १९ ॥ २० ॥ भूमिपर गिरगये ! तब उनके द्वारा उसकाल भूमि इसप्रकार शोभायमान हुई जिस प्रकार शरद्ऋतुमें नक्षत्रोंके द्वारा आकाश शोभायमान हुआ करताहै और कितनेही आदमी सार्थसे छूटकर दूर जा छिपे॥ २१॥ अनन्तर सार्थके सब जने इकट्ठे होकर आपसमें कहनेलगे कि, हम लोगोंको

यह किस कर्मका फल मिलाहै? क्या हमलोगोंने महायशवाले मणिभद्रकी पूजा नहीं करीहै? ॥ २२ ॥ अथवा हमने श्रीमान् गणेशजीकी पूजा नहीं करी? वा यक्षोंके अधिपति श्रीकुबेरदेवताकी पूजा नहीं करी ? उसीका यह बुरा फल हुआ। अथवा हमारे महासार्थमें यह जो उन्मत्तदर्शनवाली भयंकराकार नारी मनुष्यका अच्छा रूप बनाकर आ घुसीहै उसीका यह फल है ? या अपशकुनोंका विपरीत फल हुआहै ? ॥ २३ ॥ २४ ॥ या नवग्रह विपरीत हुएहैं ? अथवा इस उत्पातके होनेका कोई दूसरा कारण है ? इसके पीछे अपरजाति तथा धनहीन और दीनहुए आदमी कहने लगे ॥ २५ ॥ कि जो महा दारुण माया मनुष्यका रूप बनाकर सार्थमें घुसतीहुई दिखाई दीथी २६ ॥ वो निःसन्देह राक्षसी, यक्षी, वा भयंकर पिशाची है, यह सारा पाप उसकाही है, इस विषयमें दूसरा विचार नहीं करना चाहिये॥ २७ ॥ अब यदि हमलोग उस सार्थका नाश करनेवाली और अनेक खोटे काम करनेवाली पापिनीको देखेंगे तो पत्थर, धूरि, लकडी (लाठी) और घूंसोंसे ॥ २८ ॥ अवश्यही मारडालेंगे, क्योंकि वह इस हमारे सार्थकी कृत्या है। उन लोगोंकी यह दारुण वात चीत सुनकर दमयन्ती ॥ २९ ॥ डरती काँपती वहाँसे दूसरे वनको भागी और उस पापकी आशंका करतीहुई अपनपेकी निन्दा करने लगी ॥ ३० ॥ कि अहो ! विधाताका मेरे प्रति महान् दारुण क्रोध है, जो मेरे पर कुशल नहीं बाँधता है ! इसको मैं किस कामका फल समझूँ? ॥ ३१ ॥ यह अवश्य जन्मान्तरका कियाहुआ पाप इस समय आनकर उपस्थित हुआहै, इसी कारण मेरा स्वामी और पुत्रोंसे वियोग हुआ ॥ ३२ ॥ और वे महाराज नल भी विधाताकी गतिसे महापराभूत होकर मुझ पापिनीकी आशंका करतेहैं अहो ! दैवकी कैसी विचित्रताहै ? ॥ ३३ ॥

कुत्रात्मानं पातयेऽहं यामि च क्व नु हाश्रयम् ।
अन्यथा न भवेच्छान्तिर्ध्रुवं देहस्य पातनात् ॥ ३४ ॥

इस समय मैं अपनपेको कहां गिराऊं ? अथवा किसके सहारेमें जाऊँ

अब इस शरीरकोही अवश्य त्यागदेना चाहिये, क्योंकि दूसरे उपायसे मुझको शान्ति नहीं होगी ॥ ३४ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

अष्टाविंशे नलस्यैव नागेन सह संगमः ।
कर्कोटकेन तत्तस्य सुखकारणमुच्यते ॥ १ ॥

इस अट्ठाईसवें अध्यायमें कर्कोटक नामक नागके सङ्ग महाराज नलका समागम (मिलन) हुआ और यही समागम नलके सुखका कारण होगया इसीकी कथा वर्णन करी जातीहै ॥ १ ॥

बृहदश्व उवाच ।

एवं सा दुःखसंतप्ता भर्तृव्यसनकर्शिता
आक्रम्य सा वनं घोरं ययौ चेदिपुरं प्रति ॥ १ ॥

बृहदश्वजी बोले-हे महाराज युधिष्ठिर ! इस भाँति दुःखसे संतप्त और स्वामीके दुःखसे दुर्बल दमयन्ती उस घोर वनको उल्लंघन करके चेदिपुरको चलदी ॥ १ ॥ और अर्द्धवस्त्र धारण कियेहुए इसने सन्ध्या समय सत्यदर्शन महाराज सुबाहुके उत्तम नगरमें प्रवेश किया ॥ २ ॥ तब इस विवर्ण, दुबली, दीन, मुक्तकेशी (खुले शिरवाली) मैले कुचैले शरीरवाली और उन्मत्तकी समान जातीहुई दमयन्तीको नगरनिवासियोंने देखा ॥ ३ ॥ और फिर वे नगरनिवासी इस बाला दमयन्तीको चेदिराज सुबाहुके पुरमें घुसताहुआ देखकर कुतूहलसे उस राजकुमारीके पीछे पीछे चलदिये ॥ ४ ॥ तब वह दमयन्ती उन लोगोंसे घिरीहुई राजमहलके पास जापहुँची । अनन्तर सब जनोंसे युक्त उसको महलके धोरे आयाहुआ देखकर राजमाताने ॥ ५ ॥ अपनी धायको आज्ञा दी कि तू जाकर इसको मेरे पास बुलाला । राजमाताकी यह बात सुनकर धाय दमयन्तीके पास गई ॥ ६ ॥ और फिर वहाँ

जाकर उसने शोकसे दुर्बल, उन्मत्तवेशसे ढकी और लक्ष्मीके सदृश आयत-नेत्र दमयन्तीसे मीठी वाणी द्वारा कहा ॥ ७ ॥ हे सुन्दरी ! आप विद्युल्लेखा अर्थात् बिजलीकी रेखाके समान परमोत्तम रूपको धारण कररहीहैं, अतएव हमारे मनमें संशय होता है कि आप कौन हैं ? और किसकी भार्या हैं ? क्यों कि यह आपका मनुष्यरूप मालूम नहीं होता ॥ ८ ॥ उस धायकी यह बात सुनकर भीमकुमारी दमयन्तीने कहा कि, मुझको आप मानुषी ही जानिये । मैं अपने स्वामीका अनुगमन कररहीहूँ ॥ ९ ॥ और सैरन्ध्रीका व्रत धारण करके स्वामीके दुःखसे पीडित मैं अकेली केवलमात्र फल और मूल खातीहुई जहाँ सन्ध्या होजातीहै वहीं ठहरजाया करतीहूँ ॥ १० ॥ हे देवि! निषधदेशके महाराज नल मेरे स्वामी हैं जो कि, जुएमें वैरीसे हार-गये और अब वे भूपाल अपना सारा राज्य छोडकर किसी वनमें चले गये हैं ॥ ११ ॥ उन महाराजने बहुतसे दिन तो मेरेही संग बिताये, और फिर बहुतसा समय बीतजानेपर एक दिन मुझ सोतीहुईको त्यागकर ॥ १२ ॥ और मेरे आधे कपडेको कतरकर निरपराधिनी मुझको छोडदिया। मैं अपने उन्हीं स्वामीको मार्गमें खोजतीहुई दिनरात जलतीरहतीहूँ ॥ १३ ॥ और हे सुभ्रु ! वे महाराज किसी तरह देशान्तरको गये ? इस विषयमें मैं कुछभी नहीं कहसकतीहूँ दयन्तीकी यह बातें सुनकर राजमाताने कहा ॥ १४ ॥

चौपाई ।

कहेउ नृपतिकी तब महातारी । रहो गेह काहू सुकुमारी ॥
दमयन्ती बोली यह बाता । रहैं धर्म रहिहौं तहँ माता ॥
होय जौन शुचि सेवौं चरण । इस प्रकार रहिहौं तेहि शरण ॥
सुनि राजाकी मातु बखाना । पुत्रि कहेउ सो वचनप्रमाना ॥
मम कन्या जो अहै सुनन्दा । रहो तासु संग परमानन्दा ॥

हे कल्याणी ! आप मेरेही यहाँ वास कीजिये क्योंकि आपमें मेरा मन बहुतही लगरहाहै और हे भद्रे! मेरे आदमी अर्थात् नौकर चाकर आपके पतिको ढूँढेंगे ॥ १५ ॥ अथवा इधर उधर घूमते घामते आपके स्वामी अपने

आपही यहाँ आपहुँचेंगे। अत एव हे बाले ! यहाँ वास करनेपर ही आप अपने स्वामीको पाजायँगी॥ १६ ॥ माताकी यह बात सुनकर दमयन्तीने कहा। हे बीरजननी! मैं आपके घर समयका ठहराव करके रहना चाहतीहूँ॥ १७॥

दोहा-बात दूसरे पुरुषसे, जूंठा भोजन त्याग।
और सबै सेवा करूँ, यही हमारे भाग ॥

अर्थात् मैं जूंठा भोजन, दूसरे पुरुषकी चरण सेवा (पैर दाबना) अथवा पराये पुरुषसे बात चीत कभी नहीं करूँगी ॥ १८ ॥ और यदि कोई मेरी प्रार्थना करेगा अर्थात् मुझको कुदृष्टिसे देखेगा, तो वह पुरुष मारडालनेके लायक होगा और मेरे स्वामीकी खोजा (तलाश) में ब्राह्मणोंको भेजना पडेगा ॥ १९ ॥ यदि आप मेरी इन सब बातोंको स्वीकारकरले तो मैं निःसन्देह यहाँ रहसकतीहूं, इसके अन्यथा होनेसे इस समय मेरा रहना आपके समीप नहीं होगा ॥ २० ॥ दमयन्तीकी यह प्रतिज्ञा सुनकर राजमाता आनन्दितमनसे बोली-हे सुन्दरी ! आपने जो कहाहै, वह मैं सब (यथावत्) करूँगी, यह आपका व्रत परमोत्तम है ॥ २१ ॥

दोहा-जो जो तुम हमसे कही, सो सो सब स्वीकार।
रहो यहां आनन्दसौं, सुघर सयानी नार ॥

हे भरतवंशोत्पन्न महाराज युधिष्ठिर ! भीमकुमारी दमयन्तीसे इसप्रकार कहकर फिर राजमाताने अपनी सुनन्दानामवाली दुहिता (पुत्री) से कहा ॥ २२ ॥ हे सुनन्दे ! तुम इस सैरन्ध्रीको देवीरूपिणी समझकर निःशंक हृदयसे निरन्तर इसके साथ आमोद प्रमोद कियाकरो ॥ २३ ॥ हे युधिष्ठिर ! उधर महाराज नलने एक समय विजन वनमें प्राणियोंको दग्ध करते हुए वनाग्निका दर्शन किया और उस आग्निके बीचमें इन्होंने किसी प्राणीका शब्दभी सुना ॥ २४ ॥ कि, मुझको कोई छुडाओ इस भांति कोई उच्चस्वरसे शब्द करताहुआ कहरहाहै कि, पुण्यश्लोक कौनहै ? तब महाराज नल-'मा भैः ! मा भैः ! ' अर्थात् डरो मत डरो मत कहतेहुए आग्निमें

प्रविष्ट हुए ॥२५॥और वहां कुण्डलाकार सोतेहुए नागराजका दर्शन किया तब वह नाग हाथ जोडकर काँपाताहुआ महाराज नलसे ॥ २६ ॥ कहनेलगा कि, हे नल ! आप मुझको नागराज कर्कोटक जानिये। मैंने पूर्वमें ज्ञानवान् ब्रह्मर्षि और महातपस्वी ॥ २७ ॥ सुमन्तुको छलाथा इस कारण हे नराधिप ! उन्होंने (क्रोधपूर्वक) मुझको शाप दिया, उनके शापसे मैं वनमें घूम फिर नहीं सकताहूं अर्थात् पैरों चलनेको भी समर्थ नहीं हूँ ॥ २८ ॥ अब मैं आपको अच्छा उपदेश करताहूं कि आप मेरी रक्षा करने योग्य हैं अर्थात् मेरी रक्षा कीजियै। ऐसा होनेपर मैं आपका मित्र होजाऊंगा, क्योंकि मेरे समान दूसरा पन्नग कोई भी नहीं है ॥ २९ ॥ अब मैं आपके सामने अपना आकार बहुत छोटासा बनाये लेताहूं, आप मुझको शीघ्रतासे उठाकर लेचलिये। इस प्रकार कहकर वह नागेन्द्र अंगूठेकी बराबर होगया ॥ ३० ॥ तब महाराज नल उस नागराजको ग्रहण करके अग्निरहित आकाशदेशमें पहुंचकर ॥ ३१ ॥ उस नागके त्यागनेकी कामना करनेलगे तब (उस समय) कर्कोटकने कहा, हे स्वामिन् नैषधराज ! आप कितनेक पदोंकी गिन्ती करतेहुए चलिये ॥ ३२ ॥ तों हे महाराज ! मैं आपको परम श्रेय प्रदान करूंगा अर्थात् आपके शरीरको आश्रयभूत करके निर्मल कर दूंगा, तब महाराजने पदोंका गिनना आरंभ किया। किन्तु दशवें पगमें वह नागराज अन्तर्धान होगया ॥ ३३ ॥ उसके अन्तर्धान होनेपर महाराज नलका पूर्वरूप तत्क्षण अदृश्य होगया तब वह नल अपनपेको विरूप (बद सूरत) देखकर बडे अचंभेमें हुए और वहीं स्थित रहे ॥ ३४ ॥ अनन्तर वे महाराज छोटासा रूप धारण करनेवाले उस नागको देखकर आश्चर्य करने लगे तब कर्कोटकनाग समझाता बुझाता हुआ महाराज नलसे कहनेलगा ॥ ३५ ॥ नागराजने कहा—हे महाराज ! मैंने जो आपके उस पूर्वरूपको अदृश्य किया है इससे अब आपको मनुष्य नहीं पहिचान सकेंगे। यह कर्कोटक नाग दमयन्ती और महाराज नल ॥ ३६ ॥ तथा राजर्षि ऋतुपर्णकी कथा कलिका नाशकरनेवाली है । हे महाराज

नल ! आप जिसके लिये महान् दुःखयुक्त हुएहैं ॥ ३७ ॥ सो आप मेरे विषय और विषके दोषसे दुःखित नहीं होगें तथा जबतक आप विषयुक्त अंगोंसे रहित नहीं होंगे ॥ ३८ ॥ तिस समयतक हे महाराज आपमें यह दुःख वास नहीं करेगा, क्यों आपने मुझे अग्निसे जलतेहुए बचायाहै ॥ ३९ ॥ अतएव हे नरसिंह ! आपको दाढवाले जीवों और वैरियोंसे डर नहीं होगा और हे नराधिप ! मेरे प्रसादसे आप ब्रह्मवित् अर्थात् ब्रह्मको जाननेवाले होंगे ॥ ४० ॥ हे राजन् ! आपको विषजनित पीडा नहीं होगी, और हे राजेन्द्र ! संग्राममें आपको (सदा) विजय प्राप्त होगा ॥ ४१ ॥ अब हे महाराज ! आप अपनपेको बाहुक सारथीके नामसे प्रसिद्ध करतेहुए राजा ऋतुपर्णके पास चलेजाइये। वह महाराज अक्षनिपुणताको जानतेहैं ॥ ४२ ॥ हे निषधाधिपति ! आप इसी समय मनोहर अयोध्यापुरीको चलेजाइये । वे महाराज आपको सुहृद (मित्र) भावसे अक्षयहृदय प्रदान करेंगे॥४३॥ और वे इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न श्रीमान् महाराज ऋतुपर्ण आपके मित्रभी होंगे । तब आप उत्तम यज्ञोंसे श्रेयःफल पावेंगे ॥ ४४ ॥ और आपको रानींभी मिलजायगी, शोकमें मन मत कीजिये। क्योंकि आपको रानी और पुत्र दोनोंही मिलेंगे, यह बात मैं सत्यही कहरहाहूँ ॥ ४५ ॥ और हे महाराज ! जिस समय आप अपना पूर्वरूप देखना चाहें, तो उस समय मुझको याद करना और मैं जो आपको यह वस्त्र देताहूँ॥४६॥ सो इस वस्त्रको शरीरपर ओढनेसे आप अपने(असली) रूपको प्राप्त होंगे, यह कहकर (नागराजने) महाराज नलको अतीव सुन्दर दो वस्त्र दिये ॥ ४७ ॥

एवं नलं समादिश्य वासो दत्त्वा च कौरव ।
नागराजस्ततो राजंस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥

हे महाराज युधिष्ठिर ! इस प्रकार राजा नलको उपदेश और वस्त्र देकर वह नागराज (कर्कोटक) उसी स्थानमें अन्तर्धान होगया ॥ ४८ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं
नामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः २९.

एकोनत्रिंश ईशेन्द्र ऋतुपर्णपुरं गतः ।
दूतान्संप्रेषयामास भीमोऽपि त्विह कथ्यते ॥ १ ॥

इस उनतीसवें अध्यायमें महाराज नलका ऋतुपर्णके नगरमें पहुँचना और राजा भीमका नलकी खोजमें दूतोंका भेजना, यह कथा वर्णन करीजातीहै ॥ १ ॥

बृहदश्व उवाच ।

तस्मिन्नन्तर्हिते नागे प्रययौ नैषधो नलः ।
ऋतुपर्णस्य नगरं प्राविशद्दशमेऽहनि ॥ १ ॥

बृहदश्वजी बोले—हे महाराज युधिष्ठिर! उस नागराजके अन्तर्धान होजानेपर निषधराज नल यात्रा करतेहुए दशवें दिन महाराज ऋतुपर्णके नगरमें घुसे॥ १॥ और उन्होंने राजा ऋतुपर्णके समीप पहूँचकर इस तरह कहा कि हे राजन्! मैं बाहुक नामसे प्रसिद्ध सारथीहूँ पृथ्वीपर मेरेसमान घोडे हांकनेमें चतुर दूसरा कोईभी नहींहै ॥ २॥ आप अर्थ सम्बन्धी कठिन कार्योंमें पूछने योग्य और निपुण कार्योंमें भी मेरी सलाह ले सकतेहैं, इसके आतिरिक्त मैं अन्नसंस्कार अर्थात् रसोई बनानेकी विधि तथा औरभी बहुतसे कामोंको जानताहूँ ॥ ३ ॥ हे ऋतुपर्ण ! संसारमें जितने शिल्पकारीके कामहैं, मैं उन सबकोभी (भली भाँति) करसकताहूँ, अतएव आप मुझको स्वीकार कीजिये ॥ ४ ॥ महाराज नलके ऐसा कहनेपर ऋतुपर्णने कहा—हे बाहुक ! आप मेरे यहाँ वसिये। आपका कल्याण होगा। आप सब काम करेंगे किन्तु विशेषतः रथके शीघ्र चलानेमेंही बुद्धिदेना॥ ५॥ और सब भाँतिसे ऐसा यत्न करना कि जिससे मेरे घोडे शीघ्र चलाकरें ! आप घोडोंके अधीश्वर हुए और वेतन (तनख्वाह) भी आपको सौसे अधिक मिलेगा ॥ ६ ॥ और यह दोनों वार्ष्णेय और जीवल सदैव आपके निकट उपस्थित रहेंगे, हेबाहुक ! आप इन दोनोंके साथ रमतेहुए मेरे समीप रहिये ॥ ७ ॥ बृहदश्वजी बोले—हे

युधिष्ठिर ! ऋतुपर्णके इस प्रकार कहनेपर और उनसे आदर सत्कारको प्राप्त होकर महाराज नल वार्ष्णेय और जीवलके सहित ऋतुपर्णके नगरमें वास करनेलगे ॥ ८ ॥ उस स्थानमें वास करतेहुए महाराज नल विदर्भकुमारी दमयन्तीकी चिन्ता करतेहुए संध्याके समय नित्य एक श्लोकको उच्चारण किया करते ॥ ९ ॥ कि वह तपस्विनी, सन्तापित, भूंख प्याससे आर्त्त, थकावट युक्त मुझ मन्दभागीको याद करतीहुई और अर्द्धवस्त्रधारिणी सोतीहुई रानी किस स्थानमें अब स्थित होगी ॥ १० ॥ इस भाँति नित्य रातके समय कहतेहुये महाराज नलसे (एक दिन) जीवलने पूछा कि बाहुक ! आप प्रतिदिन किसका सोच किया करतेहैं ! सो मैं सुनना चाहताहूँ ॥ ११ ॥ तब बाहुकरूपी महाराज नलने जीवलको उत्तर दिया कि, किसी मन्दमति व्यक्तीकी अत्यन्त प्यारी स्त्री हुईथी, और वह स्त्री उसको अत्यंत प्यारा समझतीथी ॥ १२ ॥ वह मन्दमति किसी अर्थ करके उस स्त्रीसे अलग होगया अर्थात् उन दोनोंका परस्पर वियोग होगया, और वह वनमें घूमता फिरता महान् दुःखसे पीडित हुआ ॥ १३ ॥ वह शोकसे दिन रात दग्ध होता और रात्रिकालमें स्त्रीको याद करताहुआ एक श्लोक गाया करताथा ॥ १४ ॥ वह सारी पृथ्वीपर घूमता फिरता किसी जगह किसीका सहारा लेकर वारंवार उसको याद करताहुआ दुःखितहै ॥ १५ ॥ वह स्त्री अत्यंत कष्ट करके पुरुषके पीछे पीछे वनमें आई, किन्तु उस अल्प पुण्ययुक्त मनुष्यद्वारा त्यागीहुई कहाँ होगी, कदाचित् ही जीती हो ॥ १६ ॥ अकेली मार्गादिसे अनभिज्ञ अर्थात् रास्तेको नहीं जाननेवाली, अपने भर्ताको खोजती और उचित भूँख प्याससे आतुर वह महान् कठिनतासे जीवित होगी ॥ १७ ॥ हे मारिष ! उस मन्दभागीपुरुषने हिंसक पशुओंसे सदा भरेहुए दारुण महावनमें उस स्त्रीको छोडदियाहै ॥ १८ ॥ इस भाँति निषधातिपति नल दमयन्तीको याद और महाराज ऋतुपर्णकी आज्ञा पालन करतेहुए उस स्थानमें रहनेलगे ॥ १९ ॥ बृहदश्वजी बोले—हे युधिष्ठिर ! जब महाराज नल राज्यहीन होकर महारानी दमयन्ती समेत वनको चलेगये, तब नलके दर्शनकी

अभिलाषासे राजा भीमने ब्राह्मणोंको चारों ओर भेजदिया ॥ २० ॥ उन ब्राह्मणोंको बहुतसा द्रव्य (धन) देकर महाराज भीमने आज्ञा दी कि आप-लोग राजा नल और मेरी दमयन्तीको खोजिये ॥ २१ ॥ इस कर्मसे यत्न करके पृथ्वीपति नल जान लिये जाँयगे, और जब मेरी पुत्री दमयन्ती मिल-जायगी तो आपको मैं एक हजार गौएँ पुरस्कारमें दूंगा ॥ २२ ॥ इसके अतिरिक्त आपको मैं मोतियोंका हार और नगर (शहर) के बराबर बडा ग्रामभी दूंगा, और कदाचित् आप लोग महाराज नल और दमयन्तीको यहाँ नहीं लासकेंगे ॥ २३ ॥ तो उनका केवल पता लगादेनेपर भी एक हजार गौ प्रदान करदूंगा । इस प्रकार महाराज भीमके आज्ञा देनेपर वे सारे ब्राह्मण हर्षित हो अलग अलग सब दिशाओंमें चलेगये ॥ २४ ॥ और वे रानी समेत महाराज नलको पुर और देशोंमें खोजतेहुए चले, उनमें एक सुदेवनामक ब्राह्मण मनोहर चेदिपुरमें जायकर उपस्थित हुआ ॥ २५ ॥ और उसने विदर्भकुमारी दमयन्तीको ढुँढतेहुए, वहां महाराजका राजभवन देखा कि महाराजके उत्तम धर्मस्थानमें सुनन्दा राजकन्या समेत स्थितहै ॥ २६ ॥ वह मन्दप्रज्ञानके परिमाणसे आच्छन्न तथा गुप्त रूपके द्वारा उत्तम प्रतिमाके समान और शरीरपर विरहरूपी भूतिके जालद्वारा तेजसे ढकी तथा अन्तरमें सूर्यकी किरणके सदृश तेजसम्पन्न है ॥ २७ ॥

तां समीक्ष्य विशालाक्षीमधिकां मलिनां कृशाम् ।
तर्कयामास भैमीति कारणैरुपपादयन् ॥ २८ ॥

तब उस बडी आँखोंवाली, अत्यन्त मैली कुचैली और दुबली दमय-न्तीको देखकर वह ब्राह्मण अपने मनमें तर्कना करने लगा कि यह महाराज भीमकी पुत्री दमयन्तीही है, उस ब्राह्मणने उसके लक्षणोंसे यह जानलिया २८

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं
नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ३०.

त्रिंशे तु दमयन्त्याश्च सुदेवस्य समागमः।
चैद्यादीनां महाहर्षो विशोकश्चापि कथ्यते ॥ १ ॥

इस तीसवें अध्यायमें दमयन्ती और सुदेवका समागम (मिलन) चैद्य इत्यादिका हर्ष और उनके शोकरहित होनेकी कथा वर्णन करीजातीहै १॥

सुदेव उवाच।

यथेयं मे पुरा दृष्टा तथारूपेयमङ्गना।
अङ्गनेयं पुरा दृष्टा मन्मथस्य रतिर्यथा ॥ १ ॥

सुदेवने कहा अर्थात् अपने जीमें सोचा कि मैंने जिस प्रकार प्रथम इस अंगना (नारी) को देखाथा, यह अबभी उसी रूपसे सम्पन्न दिखाई देरहीहै, क्योंकि मैंने इस स्त्रीको प्रथम कामदेवकी भार्या रतिके समान देखाथा ॥ १ ॥ पूनोंके चन्द्रमाकी प्रभाके समान अपनी कान्तिके द्वारा इस स्थानको प्रकाशित करती जिस प्रकार मनुष्य अपनी प्यारी कान्ताका दर्शन करके कृतार्थ हुआ करतेहैं, तैसे इसका दर्शन करके इस समय मैं भी उसी प्रकार कृतार्थ होगयाहूँ ॥ २ ॥ पूर्णचन्द्रानना अर्थात् पौर्णमासीके चन्द्रमाकी समान मुखवाली, श्यामा (सोलह वर्षकी अवस्था युक्त) शोभायमान, गोल पयोधर (स्तन) वाली, अपनी कान्तिद्वारा प्रकाश करती और सारी दिशाओंके अँधेरेका नाश करती हुई ॥ ३ ॥ सारे संसारके बीच पूर्णचन्द्रकी चन्द्रिकाके सदृश मैंने दर्शन किया और प्रारब्धके दोषद्वारा इसको उस विदर्भस्वरूप सरोवरसे जन्मीहुई ॥४॥ मलरूपी कीचडसे लिप्त अंगवाली कमलिनीके तुल्य राहुग्रसित चन्द्रके होनेपर पूर्णिमाकी रातके समान ॥५॥ अपने स्वामीके शोकसे अकुलाईहुई दीन सूखे स्रोत प्रवाहवाली नदीके समान टूटे फूटे कमलपत्रकी समान डरेहुए पक्षीके समान॥६॥हाथीकी सूंडसे भ्रष्टहुई पद्मिनी (कमलिनी) के समान और अच्छे सुकुमार और कोमल अंगवाली रत्नोंसे भरे घरोंमें वास करनेवाली ॥ ७ ॥ चिरकालकी निकली कमलिनीके समान

दग्धहोती और रूप तथा उदार गुणोंसे युक्त गहने पहरने लायक और गहनोंसे हीन ॥ ८ ॥ नवीन आकाशमें नीले मेघोंसे युक्त चन्द्रलेखाकी समान शोभायमान, उत्तम काम भोगसे हीन, दीन और बन्धुजनोंसे ॥ ९ ॥ हीन होकर यह शोभा पारहीहै, किन्तु तथापि शोभा नहीं पाती । उधर इससे दीन होकर महाराज नलभी बहुत दुःख करतेहैं ॥ १० ॥ और आत्माकरके शरीरको धारणकरती इधर यह दमयन्तीभी शोकसे दग्ध होरही है, इस काले बालोंवाली शतपत्र कमलके पत्रसदृश आँखोंवाली ॥ ११ ॥ और सुख पानेके योग्य इसको दुःखित देखकर मेरा हृदयभी दुःखित होताहै, अहो ! यह भामिनी निश्चितरूपसे किस समय दुःखके पार जायगी ? ॥ १२ ॥ चन्द्रमाके समागमसे जिस प्रकार रोहिणी सुखको प्राप्त हुआ करतीहै, उसी प्रकार यह पतिव्रता अपने स्वामीके समागमसे कब सुखको प्राप्त होगी ? ॥ १३ ॥ समानशील, समान अवस्था, समान रूप और समान अभिमानसे युक्त तथा श्यामनेत्रवाली इस विदर्भकुमारी दमयन्तीके लिये निषधराज नलही योग्य हैं ॥ १४ ॥ पूर्णचन्द्रानना अर्थात् पूर्णचन्द्रकी समान मुखवाली और अदृष्टपूर्व (पहले नहीं देखे) दुःखसे युक्त और अपने स्वामीकोही मुख्य माननेवाली इस दमयन्तीको मैं ढारस दूँ ॥ १५ ॥ बृहदश्वजी बोले। हे युधिष्ठिर ! इस तरह अनेक कारणोंद्वारा चिन्ता करके सुदेव ब्राह्मण भीमकुमारी दमयन्तीके पास जाकर कहनेलगे ॥ १६ ॥ सुदेवने कहा-हे विदर्भकुमारी ! मैं सुदेव नामवाला ब्राह्मण आपके भाताका प्यारा मित्र हूँ । और महाराज भीमकी आज्ञानुसार आपको खोजाताहुआ यहाँ आ पहुँचा हूँ ॥ १७॥ आपके पिता महाराज भीम कुशलपूर्वक हैं और उनकी रानी अर्थात् आपकी जननीभी कुशल मंगलसे हैं और रहते हुए आपके बालक कुशल पूर्वक हैं ॥ १८ ॥ किन्तु आपके निमित्त बांधवलोग मुरदेकी समान होरहे हैं। बृहदश्वजी बोले । हे युधिष्ठिर ! तब दमयन्तीने भी उस सुदेवको पहचानकर ॥ १९ ॥

चौपाई।

ब्राह्मणको दमयन्ती चीन्हा। करि प्रणाम बहु रोदन कीन्हा॥
द्विजको लै पुनि निज गृह आई। तबहि सुनन्दा सब सुधि पाई॥
राजमातु तहँ दौरी आई। दमयन्ती कहँ चीन्हेउ जाई॥
भूप मातु पूछी यह बाता। आपन देश नाम कहु ताता॥
भीम भूपके प्रोहित अहहीं। नाम सुदेव हमारो कहहीं॥
रोय सुनन्दा नृपमहतारी। अहो प्रथम नहिं कीन्ह चिह्नारी॥

उनसे क्रमानुसार सब सुहृदों व सखियोंकी कुशल पूछी (और फिर उस ब्राह्मणको अपने पिताके नगरमें भेजदिया) ॥ २० ॥ और फिर सुदेवसे अपने दुःखका सब कारण कहा और फिर दमयन्ती उस ब्राह्मणके साथ राजमाताके पास आई ॥ २१ ॥ तब उस (ब्राह्मण) ने विदर्भकुमारी दमयन्तीका सारा चरित्र राजमाताके आगे वर्णन कर दिया, तब चेदिराजकी माताने उसका सत्कार करके कहा ॥ २२॥ हे राजन् ! तब सुदेव को देखकर राजमाता पूछनेलगी वह कौनसा ग्राम है जहां इस बालाका निवास है ?॥२३॥ यह किसकी भार्या है और किसकी पुत्री है तथा यह सुन्दर आखोंवाली अपनी जाति और अपने पतिसे किसतरह छुटगई ?॥२४॥अथवा हे ब्राह्मण ! आपनेही इसे यहाँ आईहुई सतीको किस प्रकारसे पहचान लिया ? यह सारा हाल मैं सत्यही सत्य सुनना चाहतीहूं ॥२५ ॥

एवमुक्तस्तया राजन्सुदेवो द्विजसत्तमः।
सुखोपविष्ट आचष्ट दमयन्त्या यथातथम् ॥

हे महाराज ! राजमाताके इस प्रकार पूछनेपर ब्राह्मणोत्तम सुदेवने सुखासनपर बैठेहुए दमयन्तीका सच्चा सच्चा (सारा) हाल वर्णन करदिया॥२६॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ३१.

एकत्रिंशे विदर्भे च दमयन्त्यास्तथागमः।
स्वकीयैः परकीयैश्च बलैः सह स कथ्यते ॥ १ ॥

इस इकतीसवें अध्यायमें विदर्भराज भीमके पास दमयन्तीका आना और अपनी व पराई सेनाके संग समागम होना, यह कथा कहीजातीहै॥ १॥

सुदेव उवाच ।

विदर्भराजो धर्मात्मा भीमो भीमपराक्रमः ।
सुतेयं तस्य कल्याणी दमयन्तीति विश्रुताः ॥ १ ॥

सुदेवने कहा—हे राजमाता ! विदर्भदेशके जो धर्मात्मा रणमें भयंकर पराक्रम करनेवाले भीमनामक महाराज हैं, यह कल्याणी दमयन्तीके नामसे प्रसिद्ध उन्हीकी कन्या है ॥ १ ॥ और निषधाधिपति महायशस्वी बुद्धिमान् और पुण्यश्लोक महाराज वीरसेनके नलनामक पुत्रकी यह कल्याणी दमयन्ती पत्नी है ॥ २ ॥ वे महाराज नल अपने भाईसे जुएमें हारकर और राज्यहीन होकर दमयन्ती समेत कहीं चलेगये, जिनको कोई भी नहीं जानसका ॥ ३ ॥ अत एव हम सारे ब्राह्मण इस दमयन्तीके लियेही भूमिपर घूमरहेहैं, सो यह बाला दमयन्ती आपके यहाँ पुत्रीके स्थानमें मिल गई ॥ ४ ॥ इसके रूपकी समान दूँसरी कोई मानुषी विद्यमान नहीं है, इसकी भौओंके बीचमें यह जन्मका ही पिप्लु[1] चिह्न है ॥ ५ ॥ इस श्यामाका वह कमलकी समान चिह्न मैंने छपाहुआ देखा, कारण कि इसका रूप जिस तरह मेघसे चन्द्रमा ढकजाताहै, इसी प्रकार मैलसे ढकरहाहै ॥ ६ ॥ विधाताने यह पिप्लु चिह्न विभूतिके निमित्त रचना कियाहै, जिस प्रकार चन्द्रमाकी लेखा प्रतिपदाके द्वारा दूषित हुई अधिक शोभा नहीं पाती इसी प्रकार पिप्लु चिह्नसे ढकनेपर दमयन्ती अधिक शोभा नहीं पाती ॥७॥ किन्तु मैलसे इसका सुन्दर रूप कदापि नष्ट नहीं होता, यह विना संस्कार किये कंचनकी समान प्रकाशित होरहीहै ॥ ८ ॥ मैंने इस पिप्लुचिह्नयुक्त देहके द्वाराही इस बाला देवीको पहिचानलिया है, जिस प्रकार ढकीहुई अग्नि उष्ण चिह्नके द्वारा पहिचानली जाती है ॥ ९ ॥ हे महाराज! ब्राह्मण सुदेवकी यह बात सुनकर सुनन्दाने पिप्लु चिह्नके ढक-

१—यह लाल तिलके समान लांछनके नामसे प्रसिद्ध है ।

नेवाले उस मैलको दूरकर दिया ॥ १० ॥ तब दमयन्तीको वह पिप्लु चिह्न उस मैलके दूर होजानेपर जिस प्रकार गगनमण्डलमें सूर्य शोभायमान होताहै, उसी प्रकार अत्यन्त प्रकाशित दिखाई देनेलगा ॥ ११ ॥ हे युधिष्ठिर ! तब तो उस पिप्लु चिह्नको देखकर सुनन्दा और राजमाता उससे मिलीं और दो घडी तक रोतीहुई स्थित रहीं॥ १२ ॥ फिर राजमाताने धीरे धीरे आंसुओंको रोककर कहा कि मैंने आपको इस पिप्लुचिह्नके द्वारा पहचान लिया कि आप मेरी बहनकी कन्या है ॥ १३ ॥ हे शुभदर्शने ! मैं और आपकी महतारी दोनों जनी हीं महात्मा दशार्ण देशके महाराज सुदामाकी पुत्री हैं ॥ १४ ॥ वह आपकी महतारी महाराज भीमको समर्पण कीगई अर्थात् उनका विवाह भीमराजसे हुआ, और मैं महाराज वीरबाहुको अर्पण कीगई आपको मैं दशार्ण देशमें पिताके घर प्रकट हुई देखचुकी हूं ॥ १५ ॥ अत एव जैसा आपके पिताका घर है हे भामिनी ! वैसाही मेरा घर जानो,हे दमयन्ती ! जैसी हमारी सम्पत्ति है, वैसीही आपकी है ॥ १६ ॥ हे महाराज ! तब तो दमयन्तीने मनमें अत्यन्त हर्षित होकर अपनी महतारीकी बहन (मौसी) को प्रणाम किया और फिर इस तरह कहनेलगी ॥ १७ ॥ कि मैं (आपके घर) बिना जानेभी सुखसे रहीहूँ, और आपने मेरी सारी कामनाओंको पूर्ण करके निरन्तर रक्षा की है॥ १८ ॥ किन्तु अब सुखसेभी अधिक सुखपूर्वक वास होगा, इसमें संशय नहीं । हे मइया! मैंने बहुत दिनोंतक आपके निकट निवास किया अतएव अब मुझको (अपने घर जानेकी) आज्ञा दीजिये ॥ १९ ॥ क्योंकि वहाँ पहुँचायेहुए मेरे दोनों बालकभी वास कररहेहैं वे माता पितासे हीन और शोकार्त होकर कैसे होंगे ? ॥२०॥ यदि आप कुछभी मेरे प्रिय कार्यकी इच्छा करती हैं तो मेरी इच्छा है कि,शीघ्रही विदर्भ देशमें पहुँचूं, अत एव आप यान (रथ)का प्रबन्ध करदीजिये ॥ २१॥ हे महाराज ! तब दमयन्तीकी मौसी अत्यन्त हर्षितहुई और उन्होंने 'ऐसाही करतीहूं' कहकर बहुत सेना करके युक्त

अपने पुत्रकी अनुमति (सलाह) से ॥ २२ ॥ श्रीमती राजमाताने अतीव सुन्दर और अन्न पान व सब सामग्रीयुक्त नरवाहन अर्थात् पालकीमें बिठाकर दमयन्तीको वहाँसे (विदर्भनगरको) भेजदिया ॥२३॥ हे भरतवंशोत्पन्न युधिष्ठिर! तब वह कल्याणी दमयन्ती उस पालकीकेद्वारा बहुत शीघ्र विदर्भदेशमें (अपने पिताके घर) जा पहुँची । उस समय सारे बंधुजनोंने आनन्दित होकर उसका आदर सत्कार किया ॥ २४ ॥ फिर सब बाँधव, दोनों बालक माता पिता और अपनी सखी सहेलियोंको सकुशल देखकर ॥ २५ ॥ हे महाराज ! उस यशस्विनी दमयन्तीनेभी उत्तम विधिके द्वारा कुलदेवता और ब्राह्मणोंका पूजन किया ॥ २६ ॥

अतर्पयत्सुदेवं च गोसहस्रेण पार्थिवः ।
प्रीतो दृष्ट्वैव तनयां ग्रामेण द्रविणेन च ।
सा व्युष्टा रजनी तत्र पितुर्वेश्मनि भामिनी ॥ २७ ॥

अनन्तर महाराज भीमने अपनी कन्या दमयन्तीको देखकर प्रसन्नतापूर्वक सुदेव नाम ब्राह्मणको हजार गौ, ग्राम और धन अर्पण किया । वह रात दमयन्तीने अपने पिताके ही घर बिताई ॥ २७ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्याने एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२.

द्वात्रिंशे प्रेरितो भीमः पुत्र्या च नलमार्गणे ।
चारान्संप्रेषयामास देशेदेशे तदुच्यते ॥ १ ॥

इस बत्तीसवें अध्यायमें पुत्री दमयन्तीके कहनेसे महाराज भीमने नलके ढूँढनेको देशदेशमें अपने दूत भेजे, यह कथा वर्णन करीजातीहै ॥ १ ॥

दमयन्त्युवाच ।

मां चेदिच्छसि जीवन्तीमसत्यं न वदामि ते ।
नरवीरस्य वै तस्य नलस्यानयने यत ॥ १ ॥

दमयन्तीने कहा—हे मइया ! मैं यह बात सत्यही कहतीहूँ कि, यदि आप मेरा जीवित रहना चाहतीहैं तो नरवीर महाराज नलके लानेका उपाय कीजिये ॥ १ ॥ दमयन्तीके इस प्रकार कहनेपर वह रानी बहुतही दुःखी हुई और आँसुओंसे कंठ रुद्ध होजानेसे कुछ नहीं बोलसकी ॥ २ ॥ हे कुरूद्वह युधिष्ठिर ! तब उसकी यह दशा देखकर सारा रनवास हाय ! हाय !! करताहुआ अत्यन्त उदास होगया ॥ ३ ॥ इसके पीछे रानीने महाभाग महाराज भीमसे कहा कि, आपको कन्या दमयन्ती अपने स्वामीका (बडा) सोच कररहीहै ॥ ४ ॥ हे महाराज ! वह लाज शरमको त्यागकर अपने आपही कहरहीहै, इस कारण आप पुण्यश्लोक नलको ढूंढनेके लिये अपने हलकारोंको भेज दीजिये ॥ ५ ॥ तब रानीके कहनेसे महाराज भीमने अपने वशमें रहनेवाले हलकारोंको भेजकर यह आज्ञादी कि, तुम सब लोग राजा नलके ढूँढनेको चलेजाओ ॥ ६ ॥ अनन्तर विदर्भाधिपति महाराज भीमकी आज्ञानुसार ब्राह्मण दमयन्तीके समीप गये और पास बैठकर पूछनेलगे ॥ ७ ॥ तब दमयन्तीने उन ब्राह्मणोंसे कहा कि, आप लोग सब देशोंमे पहुँचकर यह बात कहना कि—"हे कितव ! आप मेरा आधा वस्त्र कतरकर कहाँ चलेगये ? ॥ ८ ॥ और हे प्यारे ! आप अपनेमें प्रीति करनेहारी और सोतीहुई प्यारीको विजन वनके बीच छोडकर चलेगये उसको जिस प्रकार आपने देखाहै, वह उसी तरह आपकी प्रतीक्षा कररही है ॥ ९ ॥ आपकी वह भार्या अधिक दग्ध होती और आधे कपडेसे ढकरहीहै, महाराज नल ! उस निरन्तर दुःखसे रुदन करतीहुई रानीके प्रति ॥ १० ॥ हे वीर ! आप प्रसन्न होजाइये और हमको उत्तर दीजिये" हे ब्राह्मणो ! इसके अतिरिक्त और जो बात मेरे हितकी हो, सो भी आप कृपापूर्वक कहिये ॥ ११ ॥ जिस तरह पवनद्वारा प्रेरित होकर अग्नि वनको जलाडाला करतीहै, उसीतरह स्वामीको भी निरन्तर भार्याका पोषण और पालन करना चाहिये ॥ १२ ॥ सो धर्म जाननेवाले और उत्तम ऐसे आपके दोनों कर्म किस प्रकार नाशको प्राप्त होगये कारण कि, आप तो लोकमें सदा प्रसिद्ध बुद्धिमान्, कुलीन

और दयालु हैं ॥ १३ ॥ सो अब आप उस दयासे किसतरह खाली होगये जो कि मेरा भाग्य नष्ट होगयाहै, इसी कारण मैं आपको दयारहित समझरहीहूँ, इस भाँति जिस किसी स्थानमें महाराज नल हों, आपलोग वहाँ जाकर कहिये ॥ १४ ॥ इन बातोंके कहनेपर महाराज जो कुछ भी कहें, सो शीघ्रतापूर्वक मुझसे आनकर कहदो, यदि वे धनसंपत्तिसम्पन्न हों अथवा धनहीन हों ॥ १५ ॥ किंवा समर्थ हों, यह उनकी सब अवस्था समझ लीजिये। दमयन्तीके इस प्रकार कहनेपर वे सब ब्राह्मण सारी दिशाओंको चलेगये १६

चौपाई ।

ब्राह्मण चले खोज तहँ पाई। ग्राम नाम देशन प्रति जाई ॥

हे महाराज युधिष्ठिर ! वे सारे ब्राह्मण राजा नलको खोजनेके निमित्त और उनका विचार मालूम करनेके निमित्त देशसहित नगर, ग्राम, घोष और आश्रमोंमें उनको ढूंढतेहुए जानेलगे ॥ १७ ॥

अन्वेषन्तो नलं राजन्प्रजग्मुर्हि द्विजातयः ।
तस्या वाक्यं ततः सर्वं तत्रतत्र विशांपते ॥
श्रावयांचक्रिरे वीर दमयन्त्या यथेरितम् ॥ १८ ॥

इस प्रकार वे सब ब्राह्मण महाराज नलको ढूँढतेहुए चले। और हे वीर युधिष्ठिर ! दमयन्तीने उनसे जो वचन कहेथे, उसी प्रकार वे सब वचन ब्राह्मण जहाँ तहाँ सुनाने लगे ॥ १८ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३.

त्रयस्त्रिंशे च पर्णादाद्गतिं ज्ञात्वा नलस्य च ।
सुदेवो गमनं चक्रे ऋतुपर्णं तदुच्यते ॥ १ ॥

इस तैंतीसवें अध्यायमें पर्णाद ब्राह्मणके द्वारा महाराज नलकी गति जानकर सुदेव ब्राह्मण ऋतुपर्णके पास गये यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

बृहदश्व उवाच ।

अथ दीर्घस्य कालस्य पर्णादो नाम वै द्विजः ।
प्रत्येत्य नगरं भैमीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

इसके पीछे दीर्घकालमें पर्णाद नामक ब्राह्मण नगरमें आकर भीमकुमारी दमयन्तीसे यह वचन कहनेलगा ॥ १ ॥ हे दमयन्ती ! मैं महाराज नलको ढूँढकर आपके निकट आयाहूँ । अयोध्यानगरीमें जाकर राजमार्गमें उपस्थित हो ॥ २ ॥ मैंने आपके कहे वचन महाजनोंके निकट सुनाये । तब हे वरवर्णिनी ! महाभाग ऋतुपर्णने ॥ ३ ॥ उन बातोंको सुनकर कुछभी नहीं कहा । तब फिर उस बातको कई वार सुनाया, किन्तु उनके किसी पार्षद (सभासद) नेभी कुछ नहीं कहा ॥ ४ ॥ फिर महाराजसे आज्ञा ग्रहण पूर्वक एकान्त स्थानमें बाहुकनामक महाराज ऋतुपर्णका चाकर ॥ ५ ॥ सारथी, विरूप, ह्रस्वबाहु अर्थात् छोटे हाथवाला और रथके शीघ्र चलानेमें होशियार और मीठा भोजन बनानेमें पण्डित (चतुर) ॥ ६ ॥ उसने लम्बे लम्बे श्वास लिये और वारंवार रोते रोते मुझसे कुशल पूँछकर फिर यह वचन कहे ॥ ७ ॥ कि कुलवती नारी विषम भावमें स्थित तथा भ्रष्ट सुखवाले मूढ पतिके द्वारा विषम (संकट) में पडकर भी अपनी रक्षा किया करती है ॥८॥ वह त्यागीजानेसे भी क्रोधित नहीं हुआ करतीहैं, मैं उसकी यह बात सुनकर तुरन्तही यहाँ (आपके पास) चला आयाहूँ ॥ ९ ॥ अत एव आप उसकी बातका अर्थ (मर्म) समझकर शीघ्रही महाराजसे निवेदन करदीजिये । पर्णादकी कही यह बात सुनकर फिर आँसूभरी आँखोंवाली ॥ १० ॥ दमयन्तीने अकेलेमें जाकर अपनी मइयासे कहा—हे माता ! यह बात महाराज भीमको किसी तरह मालूम न होवें ॥ ११ ॥ मैं आपके पास उस ब्राह्मण सुदेवको इस रीतिसे भेजेदेतीहूँ कि जिससे महाराज भीमको मेरा अभिप्राय विदित न होसके ॥ १२ ॥ यदि आप मेरा प्रिय काम करना चाहतीहैं, तो आपको ऐसा यत्नकरना चाहिये, जिस तरह प्रथम मुझको ब्राह्मण सुदेव बाँधवोंके निकट ले आयाथा ॥ १३ ॥

उसी तरह मंगल उत्सव करके महाराज नलको ले आनेके निमित्त हे मइया! यहाँसे ब्राह्मण सुदेव शीघ्रता सहित अयोध्यापुरीको चलेजाँय और देर जराभी नहीं करें ॥ १४ ॥ दमयन्तीने अपनी मातासे इस भाँति कहकर फिर थकावट रहित हुए द्विजोत्तम पर्णादका बहुतसे धनद्वारा आदर सत्कार किया ॥ १५ ॥ और फिर बोली हे विप्रोत्तम ! जिस समय महाराज नल यहाँ आजाँयगे, तब मैं आपको और भी बहुत सारा धन अर्पण करूंगी । मेरा बडा भारी काम आपने किया है, ऐसा काम दूसरा कोई भी आदमी नहीं करसकता ॥ १६ ॥ हे द्विजोत्तम ! जिस कार्यके करनेसे मेरे स्वामी मुझको शीघ्रही मिलजाँय, (अब आप वही काम कीजिये) भीमकुमारी दमयन्तीने इस प्रकार कहकर उस ब्राह्मणका पूजन करके उसको मांगलिक आशीर्वादोंसे प्रसन्न किया ॥ १७ ॥ इसके पीछे वह महामनवाला ब्राह्मण कृतार्थ होकर अपने घरको चलागया । हे युधिष्ठिर ! तब फिर दमयन्तीने ब्राह्मण सुदेवको बुलाकर ॥ १८ ॥ दुःख और शोकसहित अपनी महतारीके सामने कहा कि, हे सुदेव ! आप अयोध्यानगरवासी महाराजके निकट पहुँचकर ॥ १९ ॥ विनयसहित ऋतुपर्णसे मेरे वचन कहिये । दमयन्तीकी यह बात सुनकर सुदेव अयोध्यापुरीको चलदिये ॥ २० ॥ और वहाँ जाकर नृपोत्तम महाराज ऋतुपर्णसे धर्मरूपी वचन कहनेलगे ॥ २१ ॥ कि हे महाबाहो ऋतुपर्ण ! हे नृपश्रेष्ठ ! आप दमयन्तीके स्वयंवरमें आइये । क्योंकि वहाँ और भी बहुतसे राजा आयेहुएहैं ॥ २२॥ हे वैरियोंको दमन करनेवाले ! आजके दूसरे दिन लग्नका समय है, अत एव यदि आपकी इच्छा होय तो शीघ्र चलदीजिये ॥ २३ ॥ क्योंकि हे वीर ! दमयन्तीको महाराज नलके जीवित रहने वा मरजानेकी इस समय कुछ खबर नहीं है, इस कारण सूर्योदय (सवेरा) होतेही वह दूसरे पतिको वरलेगी ॥ २४ ॥

एवं तदा यथोक्तं वै गत्वा राजानमब्रवीत् ।
ऋतुपर्णं महाराजं सुदेवो ब्राह्मणस्तदा ॥ २५ ॥

इस प्रकार ब्राह्मण सुदेवने महाराज ऋतुपर्णके निकट जाकर यथोचित सब बात कहदी ॥ २५ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४.

ऋतुपर्णश्चतुस्त्रिंशे नलेन बाहुकेन च ।
विदर्भदेशमार्गं तच्चक्रे गमनमुच्यते ॥ १ ॥

इस चौंतीसवें अध्यायमें ऋतुपर्णका बाहुकनामक सारथी नलके नामसे प्रकटहुआ और विदर्भदेशके मार्गमें गमनकरताहुआ यह कथा कही जातीहै १

बृहदश्व उवाच ।

श्रुत्वा वचः सुदेवस्य ऋतुपर्णो नराधिपः ।
सांत्वयञ्श्लक्ष्णया वाचा बाहुकं प्रत्यभाषत ॥ १ ॥

बृहदश्वजी बोले । हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मण सुदेवकी यह बात सुनकर महाराज ऋतुपर्णने मधुर वाणीद्वारा समझातेहुए अपने बाहुक (सारथी) से कहा ॥ १ ॥ हे अश्वविद्याके ज्ञाता बाहुक ! मैं दमयन्तीके स्वयंवरमें एक दिनमें ही विदर्भदेश पहुँचजाना चाहताहूँ यदि आपाके मेरी यह बात (शर्त्त) स्वीकार हो तो इसका उपाय कीजिये ॥ २ ॥

दोहा—आजुहि पहुँचहुँ तहाँसो, वरहुँ भीमजहि जाहि ।
आजु करों पुरुषारथ, देश विदर्भहि आहि ॥

हे कुन्तीके पुत्र ! महाराज ऋतुपर्णके इस प्रकार कहनेपर महामना राजा नलकी छाती दुःखसे फटनेलगी और फिर वे अपने मनमें चिन्ता करनेलगे ॥ ३ ॥ कि क्या दमयन्ती दुःखसे मोहित हो गई ! क्या वह सत्यही वर करनेकी इच्छा कररहीहै ? अथवा उसने मेरे ढूँढ निकालनेको यह उपाय सोचाहै ? ॥४॥ मुझ पापमति, कृपण, क्षुद्र और अंध मनुष्यने उस रानीको त्याग दिया । अब वह तपस्विनी विदर्भकुमारी संतापित होकर पतिकी इच्छा करतीहुई ऐसा निंदित काम करती है, इस बातका दुःख है ॥ ५ ॥

जो हो वह सुमध्यमा दमयन्ती अन्य व्यक्तिको पति बनावेगी या नहीं ? इस बातके झूंठ सत्यको मैं वहाँ जाकर निश्चय देखलूंगा ॥ ६ ॥ और महाराज ऋतुपर्णका कामभी मैं अपने अर्थ करूंगा । बाहुकने इस भाँति निश्चयकर दीनमन हो ॥ ७ ॥ हाथ जोड महाराज ऋतुपर्णसे कहा—हे नराधिप ! मैं आपके वाक्यको जानताहूँ । हे पुरुषव्याघ्र ! इसलिये एकही दिनमें आपको विदर्भनगर पहुँचादूंगा ॥ ८ ॥ इसके पीछे बाहुक महाराजके सहित घोडोंकी परीक्षा करनेलगा ॥ ९ ॥ और फिर दुबले, महावेगवान्, रास्ता तय करने योग्य, दश आवर्तोंसे युक्त, सिन्धदेशोत्पन्न और वायुके समान वेगयुक्त घोडोंको चुनालिया ॥ १० ॥ उन घोडोंको देखकर महाराज कुछेक क्रोध सहित कहनेलगे वह क्या कर्मकी प्रार्थना कीहै ? क्या तुम मुझको छल रहेहो ? ॥ ११ ॥ हे सूत ! यह थोडे बल और प्राणवाले घोडे किसतरह चलसेंकेंगे ? क्योंकि इस विदर्भदेशकी मंजिल बहुत लम्बी है, अत एव मैं इच्छित स्थानमें कैसे पहुँच सकूंगा ? ॥ १२ ॥ बाहुकने उत्तर दिया हे महाराज ! यही घोडे (निर्दिष्ट) समयपर विदर्भदेश पहुँचजायँगे, इस बातमें आप जराभी संशय मत कीजिये अथवा आप इन घोडोंके सिवाय दूसरे जिन घोडोंको बलवान् समझतेहों, तो उनको बतादीजिये मैं उन्हींको आपके रथमें जोतदूँगा ॥ १३ ॥ ऋतुपर्णने कहा—हे बाहुक ! घोडोंका तत्त्व तो आपही जानते हैं, इस विद्यामें आप परम चतुर हैं इस कारण आप जिन घोडोंको समर्थ (निर्दिष्ट स्थान और निर्दिष्ट समयपर पहुँचने योग्य) समझें, उनकोही शीघ्रता सहित रथमें जोत देवें ॥ १४ ॥ तब महाराजकी आज्ञानुसार कुलशीलयुक्त और बडे वेगवान् उत्तम घोडोंको चतुर बाहुकने महारथमें जोतदिया ॥ १५ ॥ हे राजा युधिष्ठिर ! तब तो महाराज ऋतुपर्ण शीघ्रता सहित उस जुडेहुए रथमें सवार होगये । तब पुरुषोत्तम श्रीमान् महाराज नल ॥ १६ ॥ तेज बलयुक्त घोडोंको रश्मियों (लगामों) के द्वारा शीघ्रतासे पुचकारतेहुए वेगपूर्वक चलानेलगे ॥ १७ ॥ और दूसरे वार्ष्णेयनामवाले सारथीको बैठालकर महान् वेगसे रथको चला-

नेलगे, उस बाहुक द्वारा यथायोग्य प्रेरित उत्तम घोडे॥ १८॥ रथी(सवार) को मोहित करतेहुए आकाशमें उडनेलगे। इस प्रकार वायुकी समान वेगवान् उन घोडोंको देखकर ॥ १९ ॥ अयोध्याधिपति बुद्धिमान् ऋतुपर्ण महान् अचंभेको प्राप्त हुए और रथका घोष तथा घोडोंका संग्रह देखकर ॥ २० ॥ वार्ष्णेय बाहुकके रथ चलानेकी चतुराई देखकर सोचने लगा कि क्या यह मातलिनामवाला देवराज इन्द्रका सारथी है ? ॥ २१ ॥ क्योंकि इस बाहुकमें इसी तरहके महान् लक्षण (चिह्न) दिखाई दे रहे हैं, अथवा यह घोडोंके कुलका तत्त्व (मर्म) जाननेवाले मुनिवर शालिहोत्र हैं ? ॥ २२ ॥ जिन्होंने यह परमोत्तम नरशरीर धारण किया है। अथवा यह वैरियोंके पुरको विजय करनेवाले महाराज नल हैं ?॥ २३ ॥ यह वेही महाराज जानपडतेहैं, फिर यह विचारा कि, जो विद्या महाराज नल जानतेहैं वही विद्या यह बाहुक भी जानताहै ॥२४॥ और बाहुक तथा नलका वेगभी बराबरही दिखाई देता है और बाहुक तथा नलकी बातें भी एकसी मालूम होतीहैं॥२५॥यह महावीर्यवान् महाराज नल नहीं हैं, वा उनकी समान कोई और होगा ? क्योंकि इस भूमिपर अनेक महात्मा गुप्तरूपसे भ्रमण कियाकरतेहैं ॥ २६ ॥ प्रारब्धकी गतिसे युक्त होकर वे महात्मालोग भ्रमण किया करतेहैं,और या शास्त्रकथित प्रामाणोंसे गात्रके विरूपभाव प्रति मेरी बुद्धिका भेद होरहाहै ॥ २७ ॥ हे महाराज युधिष्ठिर ! इस प्रकार पुण्यश्लोकका सारथी वार्ष्णेय अन्तःकरणमें अनेक भाँतिकी चिन्ता करनेलगा ॥ २८ ॥

बलं वीर्यं तथोत्साहं हयसंग्रहणं च तत् ।
परं यत्नं च संप्रेक्ष्य परां मुदमवाप ह ॥ २९ ॥

अनन्तर महाराज ऋतुपर्ण बल, वीर्य,तथा उत्साह और घोडोंका संग्रह व अन्य भी बहुत यत्न देखकर अतीव प्रसन्न हुए॥ २९ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ३५.

पञ्चत्रिंशे विदर्भेषु प्राप्तिस्तस्य नलस्य च ।
हर्षो भीमस्य राज्ञश्च सर्वेषामिह कथ्यते ॥ १ ॥

इस पैंतीसवें अध्यायमें नलका विदर्भ देशमें पहुँचना और महाराज भीम तथा सब किसीको आनन्द प्राप्त होना, यह कथा कही जातीहै ॥ १ ॥

बृहदश्व उवाच ।

स नदीः पर्वतांश्चैव वनानि च सरांसि च ।
अचिरेणातिचक्राम खचरः खे चरन्निव ॥ १ ॥

बृहदश्वजी बोले—हे महाराज युधिष्ठिर ! जिस प्रकार आकाशगामी व्यक्ति आकाशमें विचरताहुआ शीघ्र(अभीष्ट) स्थानमें जा पहुँचताहै, उसी प्रकार महाराज नलने बहुत थोडे समयमें नदी, पहाड, वन और सरोवरोंको उल्लंघन किया ॥ १ ॥ इस तरह रथके जाते जाते परपुरजयी महाराज ऋतुपर्णने अपने उत्तरीय वस्त्र (डुपट्टे) को गिराहुआ देखा ॥ २ ॥ हे राजन् ! उस डुपट्टेके गिरनेपर महामना महाराज ऋतुपर्णने वेगमें भरकर अर्थात् शीघ्रतासहित सारथीसे कहा कि मैं इस डुपट्टेको लेना चाहताहूँ ॥ ३ ॥ हे सारथे! आप मनके समान वेगवान् इन उत्तम घोडोंको उस समयतक रोकलो कि जबतक यह वार्ष्णेय मेरे उस डुपट्टेको उठाकर यहाँ ले आवें ॥ ४ ॥ नलने उत्तर दिया आपका डुपट्टा बहुत दूर गिरा है अर्थात् वह चार कोश दूर रहगया, इसलिये अब वह डुपट्टा आपको नहीं मिलसकता ॥ ५ ॥ हे युधिष्ठिर ! नलके इस प्रकार कहते कहते महाराज ऋतुपर्ण वनमें प्रफुल्लित एक बहेडेके पेडके समीप जा पहुँचे ॥ ६ ॥ उसको देखकर महाराज ऋतुपर्णने शीघ्रही बाहुकसे कहा—हे सारथी ! तुम इस पेडके (पत्ते) गिननेका मेराभी परमबल देखो ॥ ७ ॥ सब आदमी सब बातें नहीं जानते हैं, क्योंकि सब बातोंके जाननेवाले तो एक मात्र जगदीश्वरही हैं, अत एव हे बाहुक ! इस पेडपर जितने फल और पत्ते हैं ॥ ८ ॥ मैं अक्षज्ञानके द्वारा उन सबको जानताहूँ, इस पेडपर एक लाख और दश हजार पत्ते हैं ॥ ९ ॥

तथा इसमें दश हजार फल हैं, इसमें संशय नहीं । तब बाहुकने रथको खडाकरके महाराजसे कहा ॥ १० ॥ हे राजन् ! जिस समयतक मैं इस बहेडेके पत्ते और फल गिनूं, तबतक आप खडेहुए देखते रहिये । क्योंकि आपने कहा—'इतने पत्ते और फल हैं वा नहीं ?' यह मैं नहीं जानताहूँ ॥ ११ ॥ हे जनाधिप ! जबतक मैं इस पेडके पत्ते और फल गिनूं, तबतक थोडी देरको इन घोडोंकी लगाम यह वार्ष्णेय थाँमे रहैं ॥ १२ ॥ तब महाराजने सारथीसे कहा कि यह समय देर करनेका नहीं है, बाहुकने उत्तर दिया बहेडेके पेडके पत्र और फलकी गिन्ती मैं (अवश्यही) करूँगा ॥ १३ ॥ और गणना करलेनेपर फिर विदर्भदेशको चलूंगा, किन्तु आपके काममें विघ्न नहीं पडनेपावेगा. तब ज्ञानवान् महाराज ऋतुपर्णने कहा अच्छा गिनो ॥ १४ ॥ हे पापरहित ! मेरे बताये शाखाके एक देशको गिनो इस प्रकार कहकर तत्त्वके जाननेवाले महाराज, स्वस्थ होगये ॥ १५ ॥ तब महाराज नलभी शीघ्रतापूर्वक रथसे उतरकर उस पेडके निकट पहुँचे और जलदी जलदी फलोंकी गिनती करनेलगे ॥ १६ ॥ और फिर जितने फल राजाने बताये थे, उतनेही फल गिनकर अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक राजासे कहनेलगे ॥ १७ ॥ हे राजन् ! मैंने आपका परम अद्भुत बल देखा, अत एव हे नृपोत्तम ! जिससे यह बात जानली जातीहै, मैं उस विद्याको सुनना चाहताहूँ ॥ १८ ॥ तब जानेमें जल्दी करनेवाले राजा ऋतुपर्णने कहा कि मैं गिन्तीमें (चतुर) और अक्षहृदयका ज्ञाता हूँ, यह आप जान लीजिये ॥ १९ ॥ बाहुकने कहा—हे पुरुषोत्तम ! आप यह (अक्षहृदय) विद्या मुझको दीजिये और (इसके बदलेमें) मुझसे भी अश्वहृदय विद्या लेलीजिये ॥ २० ॥ अनन्तर महाराज ऋतुपर्णने कार्यके गौरव और अश्वहृदयके लालचसे बाहुकसे 'यही हो' इस प्रकार अंगीकाररूपी वचन कहा ॥ २१ ॥ कि सच्चे परमोत्तम अक्षहृदयको आप लेलीजिये और हे बाहुक ! अश्वहृदय मुझको दीजिये ॥ २२ ॥ ऐसा कहनेपर पुरुषोत्तम महाराज ऋतुपर्णने शुद्ध और एकाग्र चित्त हो राजा नलको वह (अक्षहृदय) विद्या

अर्पण करदी ॥ २३ ॥ तब उस अक्षहृदयके जाननेवाले महाराज नलके शरीरसे कलि कर्कोटकसर्पके तीखे विषको मुख द्वारा उगलताहुआ (बाहर) निकला ॥ २४ ॥ इसके पीछे दुःखित हुए उस कलियुगके शरीरसे शापरूपी अग्नि निकली तब कलि विषहीन होकर अपने पहले रूपको प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ तब तो निषधाधिपति महाराज नलने महान् कुपित होकर उसको शाप देना चाहा, उस काल कलियुगने डरते और काँपतेहुए हाथ जोडकर कहा ॥ २६ ॥ हे महाराज ! आप क्रोधको निवारण कीजिये । क्योंकि मैं आपको परमोत्तम कीर्त्ति(यश) प्रदान करूँगा । हे राजेन्द्र ! पूर्वमें जब आपने उसको त्यागा, तब इन्द्रसेनकी महतारी दमयन्तीने क्रोधित होकर मुझको शाप प्रदान किया इसी कारण मैंने महान् पीडित होकर दुःखपूर्वक आपके शरीरमें वास किया ॥ २७ ॥ २८ ॥ और वहाँ मैं सर्पराज कर्कोटकके विषसे दिन रात दग्ध होताथा । लोकमें जो मनुष्य सावधान होकर आपका कीर्त्तन करेंगे ॥ २९ ॥ उनको मुझसे कभी भय नहीं होगा । क्योंकि कर्कोटक नाग, दमयन्ती, नल ॥ ३० ॥ और राजर्षि ऋतुपर्णका कीर्तन कलिका नाशक है ॥ इस प्रकार कहकर वह कलियुग बहेडेके वृक्षमें घुसगया इसी कारण कलिके संसर्ग दोषसे बहेडेका पेड अपवित्र है ॥ ३१ ॥ हे महाराज युधिष्ठिर ! उस कलियुगके नष्ट अर्थात् बहडेमें प्रवेश करनेपर फलोंकी गणना करके परवीरघाती महाराज नल शोकरहित होगये ॥ ३२ ॥ फिर उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतायुक्त तथा महान् तेजस्वी वेगवान् घोडोंसे युक्त रथमें सवार होकर गमन किया ॥ ३३ ॥ उस काल वे उत्तम घोडे पक्षियोंकी समान उछल उछलकर चलने लगे और महाराज नलभी मनमें हर्षित होकर उन घोडोंको प्रेरणा करनेलगे ॥ ३४ ॥ महाराज नल बडी सावधानीसे विदर्भदेशके सन्मुख जानेलगे और कलियुगभी महाराज नलके चलेजानेपर अपने घरको चलागया ॥ ३५ ॥

ततो गतज्वरो राजा नलोऽभूद्भूतलाधिपः ।
विमुक्तः कलिना राजा सुखरूपो विराजते ॥ ३६ ॥

तब हे राजन् ! पृथ्वीपति महाराज नल कलिसे छुटकारा पाकर शोक-रहित हो सुखपूर्वक विराजमान हुए ॥ ३६ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६.

षट्त्रिंशे केशिनीदासी नलदारैश्च प्रेरिता ।
बाहुकं परिपप्रच्छ नलज्ञानाय कथ्यते ॥ १ ॥

इस छत्तीसवें अध्यायमें महाराज नलको जाननेके निमित्त दमयन्तीकी भेजी-हुई केशिनीनामवाली दासीने बाहुकसे.जाकर पूछा,यहकथा कही जातीहै १॥

बृहदश्व उवाच ।

ततो विदर्भान्सायाह्ने संप्राप्तं सत्यविक्रमम् ।
ऋतुपर्णं जना राजन्भीमाय प्रत्यवेदयन् ॥ १ ॥

बृहदश्वजी बोले—हे महाराज युधिष्ठिर ! अनन्तर साँझसमय पहुँचेहुए सत्यविक्रम महाराज ऋतुपर्णकी खबर सेवकोंने राजा भीमसे करी ॥ १ ॥ हे महाराज ! तब राजा भीमके कथनानुसार महाराज ऋतुपर्णने रथके शब्द-द्वारा दशों दिशाओंको कम्पित करते करते कुंडिनपुरमें प्रवेश किया॥ २ ॥ उस रथके शब्दको वहाँ महाराज नलके घोडोंने सुना, जिसको सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक नलके सन्मुख आये ॥ ३ ॥ फिर भीमकुमारी दमयन्तीने नलके रथका वह शब्द सुना और अत्यंत शब्दवाले रथके शब्दको उसके समान जाना ॥ ४ ॥ दमयन्ती बोली कि, यह रथका शब्द भूमिको कम्पायमान करताहुआ मेरे हृदयको अत्यन्त आनन्दित करताहै (अतएव जानपडताहै कि) इसमें अवश्य महाराज नल हैं ॥ ५ ॥ किन्तु तथापि मैं जबतक अपनी आंखोंसे उन चन्द्रमाकी सदृश कान्तियुक्त मुखवाले और अनन्तगुणवाले वीर नलको नहीं देखलूँगी तबतक और किसीका कहना सत्य नहीं समझूँगी ॥६॥ यदि सिंहके समान विक्रान्त और मतवाले हाथीको

परास्त करनेवाले राजेन्द्र नहीं आये तो किसी दूसरेका कहना नहीं मानूँगी ॥ ७ ॥ उन महाराजके गुणोंको दिन रात याद करतीहुई मुझ पतिव्रताकी छाती शोकसे वालुकाबांधके समान फटीजातीहै ॥ ८ ॥ हे भारत ! वह दमयन्ती इस तरह विलाप करती बेसुधि होगई और फिर महाराज नलका दर्शन करनेकी कामनासे ऊँचे महलपर जाचढी ॥ ९ ॥ तब उसने मध्य-द्वारके बीच रथमें बैठेहुए वार्ष्णेय और बाहुकसमेत महाराज ऋतुपर्णका दर्शन किया ॥ १० ॥ हे युधिष्ठिर ! तत्पश्चात् रथके ऊपरसे उतरकर महा-राज ऋतुपर्ण भीमपराक्रमी भीमराजाके निकट गये ॥ ११ ॥ तब महाराज भीमने उन अकस्मात् शीघ्रतासहित आयेहुए महाराज ऋतुपर्णकी अत्यन्त पूजा करके उनको ग्रहण किया । किन्तु उन महाराज ऋतुपर्णको स्त्रीके विचारकी कुछ खबर नहीं है ॥ १२ ॥ अनन्तर महाराज भीमने ऋतुपर्णके कानमें यह बात कही कि—हे नराधिप ! नलको जाननेके निमित्त दमयन्तीने यह शब्द किया है ॥ १३ ॥ हे महाराज ! सो मैंने प्रकट करदिया अब आप सबको जनाइये और विश्राम कीजिये ! इसतरह महाराज भीमने दुःखसे कहा । फिर दमयन्तीने सावधान होकर ॥ १४ ॥ अपनी केशिनी नामवाली दासीसे कहा—हे अनिन्दिते ! आप इस बाहुक नामक आदमीसे सत्य पूछिये, क्योंकि मुझको इसके विषयमें महती शंका अर्थात् बडाभारी सन्देह होरहाहै कि—यह महाराज नलही मालूम होते हैं ॥ १५ ॥ जिस प्रकार मेरा मन संतुष्ट होरहाहै और हृदयमें निवृत्ति अर्थात् परमानन्द प्राप्त होरहाहै वैसाही ब्राह्मण पर्णादका कथन (कहना) भी है अतएव आप इसके समीप पहुँचकर यह बात सुनाइये ॥ १६ ॥ और हे अनिन्दिते ! हे सुश्रोणि ! आप उसके उत्तरको सुनिये इस प्रकार भीमतनया दमय-न्तीने अपनी केशिनी नाम्नी दासीसे कहा ॥ १७ ॥ उसी भाँति अत्यन्त सावधानी सहित दूतीने जाकर बाहुकसे कहा और कल्याणी दमयन्तीभी महलपर स्थित हुई देखनेलगी ॥ १८ ॥ केशिनीने कहा—हे मनुजेन्द्र ! आपका स्वागत हो अर्थात् आपका यहाँ पधारना अति उत्तम हुआ, मैं

आपकी कुशल पूछतीहूँ–हे पुरुषोत्तम ! अब आप दमयन्तीके शुभ वचन (कल्याणकारक बातें) सुन लीजिये ॥ १९॥ कि आप किस समय और किस कामके लिये यहाँ पधारे हैं ? यह सब सत्य यथावत् बतादीजिये, क्योंकि विदर्भकुमारी दमयन्ती इस बातको जानना चाहती है ॥२०॥बाहुकने उत्तर दिया–हे सुन्दरी ! महात्मा महाराज ऋतुपर्णने ब्राह्मणसे ऐसी बात सुनी है कि, कल सबेरे ही दमयन्तीका दूसरा स्वयंवर होगा ॥ २१॥ यह सुनतेही चारसौ कोश (प्रतिदिन) चलनेवाले वायुकी समान वेगवान् मुख्य घोडोंके द्वारा हमारे महाराज यहाँ आये हैं और मैं उनका सारथी हूँ॥२२॥ केशिनीने कहा कि, यह जो तीसरा आदमी आपके बीचमें है यह किसका है ? और कहाँसे आया है ? तथा आप किसके हैं ? और आपको सारथीका काम कैसे मिला ? ॥२३ ॥ बाहुकने कहा–हे कल्याणी ! यह पुण्यश्लोक महाराज नलका वार्ष्णेय नामक सारथी है जो कि, नलके चलेजानेपर अब राजा ऋतुपर्णके निकट रहा करताहै ॥ २४ ॥

अहमप्यश्वकुशलः सूतत्वे च प्रतिष्ठितः ।
ऋतुपर्णेन राज्ञा वै भोजने च कृतः स्वयम् ॥ २५ ॥

और मैं भी अश्वविद्यामें कुशल (पण्डित) हूँ इसी कारण मुझको महाराज ऋतुपर्णने सारथीकर्म और भोजन बनानेमें नियुक्त कररखाहै ॥ २५॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७.

सप्तत्रिंशे नलस्यैव दमयन्त्याश्च मेलनम् ।
पतित्यागभयात्तत्र पूजनं तत्र कथ्यते ॥ १ ॥

इस सैंतीसवें अध्यायमें महाराज नल और दमयन्तीका मिलान तथा फिर स्वामीके त्यागके भयमें नलकी पूजाका होना, यह कथा होगी ॥ १ ॥

केशिन्युवाच ।

किंतु जानाति वार्ष्णेय कुत्र राजा नलो गतः ।
कथं चित्त्वयि वै तेन कथितं स्याच्च बाहुक ॥ १ ॥

केशिनीने कहा । हे बाहुक ! क्या यह बात वार्ष्णेयको मालूम है कि महाराज नल कहाँको चलेगये ? आपसे उसने महाराज नलका हाल किस तरह कहा ॥ १ ॥ बाहुकने उत्तर दिया कि शुभकर्मकारी महाराज नलके दोनों पुत्रोंको यहाँ रखकर फिर वार्ष्णेय चलागया, यह निषधराजको नहीं जानता॥२॥हे यशस्विनी ! और किसीकोभी महाराज नलका हाल मालूम नहीं है, क्योंकि वे महीपति अपना रूप नष्टकरके गुप्तरूपसे संसारमें घूमाकरते हैं ॥ ३ ॥ महाराज नलका रूप, अवस्था और कैसे चिह्न हैं ? केशनीने कहा कि प्रथम जिस ब्राह्मणने अयोध्यापुरीमें जाकर ॥ ४ ॥(दमयन्तीकी) नलविषयक बात बारबार कहीथी कि-" हे कितव ! आप मेरा आधा कपडा कतरकर कहाँको चलेगये ? ॥ ५ ॥ आप अपनी पतिव्रता अनुरक्त प्यारीको वनमें अकेली सोतीहुई छोडकर कहाँ चलेगये ? उसको आप जिसप्रकार छोडगयेहैं वह वैसेही आपकी आज्ञानुसार वर्ततीहुई आपकी प्रतीक्षा कररहीहै ॥ ६ ॥ हे पार्थिव ! वह आधे वस्त्रसे ढकीहुई दिन रात शोकसे जलती रहती है और दुःखके मारे सदैव रोती रहाकरतीहै "॥ ७॥ हे वीर ! आप मेरेप्रति प्रसन्न होकर मेरी बातोंका प्रति उत्तर दीजिये । हे कुरुनन्दन युधिष्ठिर ! जब केशिनीने इस प्रकार कहा ॥ ८ ॥ तब तो महाराज नलका हृदय व्यथित होगया, आँखोंमें आँसू भरआये और उन महीपालने जलतेहुए अपने आत्माके दुःखको हटाकर ॥ ९ ॥ आँसुओंसे संदिग्ध अर्थात् गद्गदवाणीके द्वारा कहा कि, जो कुलीन नारी अपने पतिके विषमभावको प्राप्त होनेपर भी उसकी (आज्ञाका) पालन करती है ॥ १० ॥ उसने सत्यही स्वर्गको जीतालिया है, इस बातमें कुछ विचार (सन्देह) नहीं करना चाहिये । विषमस्त अर्थात् विषमसंकटमें पडकर मूढ और भ्रष्ट सुखवाले ॥ ११ ॥ उसने क्रोध फैलजानेसे भार्याका परित्याग किया, सत्कार कीहुई वा निरादर कीहुई भ्रष्टराज्यवाले श्रीहीन, भूँखसे आतुर और व्यसन (किसीलत) में पडकर आयेहुए स्वामीका दर्शन करके जो नारी उसकी निरन्तर सेवा करतीहै वह विष्णुलोकको प्राप्त

होजाया करतीहै ॥ १२ ॥ १३ ॥ इस प्रकार बातें कहतेहुए महाराज नल अत्यन्त दुःखी हुए और वे महीपाल कुछ न कहकर केवल उस समय रोनेही लगे ॥ १४ ॥ तब केशिनीने दमयन्तीके निकट जाकर उससे सब समाचार निवेदन करदिया कि हे भामिनी ! वहाँ नल आपका नाम लेनेपर रोते हैं॥१५॥ उसकी यह बात सुनकर दमयन्ती अत्यन्त शोकाकुल हुई और फिर महाराज नलकी आशंका करती करती केशिनीसे यह कहनेलगी ॥ १६ ॥ हे केशिनी ! तुम्हारा कल्याण (भला) हो, तुम बाहुककी परीक्षा करनेको जाओ और वहाँ ठहर उससे कुछ भी बात चीत न करके केवल उसके चरित्रही देखो ॥ १७ ॥ हे भामिनी ! वह जिस समय जो कुछ करे, तहां उत्तम चेष्टा करनेवाले उसकी चेष्टाको देखो ॥१८॥ और फिर उन सारे चिह्नोंको जानकर मुझसे आ कहो । दमयन्तीकी यह बात सुनकर केशिनी तत्काल चलीगई ॥ १९ ॥ और बाहुकके सारे चिह्न देखकर फिर लौटी और वह सारा हाल दमयन्तीसे कहदिया ॥ २० ॥ केशिनी बोली—हे दमयन्ती ! दृढ और पवित्र आचारवाला ऐसा आदमी पहले मैंने न कभी देखा और न सुना ॥ २१ ॥ जो कि अश्वज्ञान (घोडोंकी विद्या) और अन्नपाचन अर्थात् भोजन बनानेमें बडा चतुर है और महाराज ऋतुपर्णके निमित्त भाँति भाँतिके अनेक भोजन बनाया करता है ॥ २२ ॥ तथा यह बाहुक मंडलमें मंडलाकार, घोडोंकी व्यवस्था और वेगधारणमें चतुर है और घोडोंको दक्षिण तथा वाम भागके घुमानेमें और घोडोंकी पूँछकी तरफ मुँह कर उनके फेरनेमें बहुतही चतुर है ॥ २३ ॥ उसकी यह सब अद्भुत बातें देखकर मैं अचंभेमें होकर यहाँ आईहूँ इसके आतिरिक्त मैंने और भी उसमें अनेक अचंभेकी बातें देखीहैं ॥ २४ ॥ हे कल्याणी ! अग्निके स्पर्श करनेपर भी वह नहीं जलता और उसके छूनेसे जलका खाली बरतन भी चंदन जलकी समान जलसे भर जाता है ॥ २५ ॥ इनको छोडकर मैंने औरभी अतीव आश्चर्यकारक (तमाशे) देखेहैं, उसके हाथोंसे फूल ॥ २६ ॥ मसले जानेपर भी कभी नहीं मुरझाते हैं, ऐसी अद्भुत बातें (लक्षण) देखकर मैं

आपके पास चली आई हूँ ॥ २७ ॥ बृहदश्वजी बोले—हे युधिष्ठिर ! तब दमयन्तीने (दासीद्वारा) पुण्यश्लोक महाराज नलकी चेष्टाओं (कामों) को सुनकर कर्म चेष्टासे सूचित राजा नलको आयाहुआ समझा ॥ २८ ॥ अनन्तर दमयन्तीने चेष्टाओंद्वारा बाहुकके प्रति अपने स्वामीका सन्देह करके रोते रोते मीठी वाणीद्वारा केशिनीसे फिर कहा ॥२९॥ हे केशिनी ! तुम अबकीवार प्रसन्नतापूर्वक फिर जाओ और उसके रसोईगृहसे धीरे धीरे बाहुकका रांधाहुआ अन्न लाकर मुझको दो ॥ ३० ॥ हे नृपोत्तम युधिष्ठिर ! (आज्ञानुसार) वह दासी वहाँ गई और बाहुकको अन्यान्य कामोंमें लगाहुआ देखकर उसके रांधे अन्नको ले तुरन्तही लौटी और उस अन्नको दमयन्तीके हाथपर रखदिया ॥ ३१ ॥ प्रथम उसके रांधेहुए अन्नको दमयन्ती बहुतबार देख और चखचुकीथी, उसका विचार किया और फिर उस अन्नको चखकर बाहुकको निश्चित नल समझकर महान् दुःखी हो पुकार करनेलगी ॥ ३२ ॥ हे भारत ! फिर अत्यन्त व्याकुल हो मुख धोकर अपने दोनों पुत्रपुत्रीको दासी केशिनीके संग (बाहुकके समीप) भेजदिया॥३३॥ हे महाराज ! तब केशिनी भाई इन्द्रसेन समेत इन्द्रसेनाको बाहुकके समीप लेगई ॥ ३४ ॥ उस काल देवपुत्रोंकी समान अपने पुत्र कन्याको (आयाहुआ) देखकर बाहुक महान् दुःखी हुआ और उच्चस्वरसे रोदन करने लगा ॥ ३५ ॥ तब फिर इस प्रकार पुत्र कन्याको देखकर महाराज नलने केशिनीसे यह बात कही कि, हे कल्याणी ! यह दोनों सुन्दर तो मेरेही पुत्र कन्याकी समान मालूम होतेहैं ॥ ३६ ॥ क्योंकि इनका दर्शन करनेपर मेरी आँखोंसे सहसा आँसू निकल पडे । अनन्तर (बाहुकने) पुण्यश्लोक महाराज बुद्धिमान् नलके सारे लक्षण देखकर ॥ ३७ ॥ केशिनीने शीघ्रतासहित आनकर दमयन्तीसे सारा हाल कहदिया । तब नलकी शंकायुक्त और दुःखार्त्त दमयन्तीने उस केशिनीको फिर अपनी मइयाके पास यह कहकर भेजा, कि मैंने महाराज नलकी आशंकासे बाहुककी बहुतही परीक्षा करी ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ (सो उसमें और सारी बातें तो ठीक ठीक मिलगईं)

किन्तु एक मात्र उनके रूपमें सन्देह है अत एव इस विषयमें मैं उनकी परीक्षा स्वयं करना चाहतीहूँ, अब महाराज नलके आनेकी बात मेरे पिताजीसे भी प्रकट करदीजिये ॥ ४० ॥ विदर्भकुमारी दमयन्तीके इस प्रकार कहने-पर उस देवी रानीने सारा हाल महाराज भीमसे कह दिया और भीमनेभी कन्याका यह अभिप्राय जानकर (इस विषयमें) उसको आज्ञा देदी ॥ ४१ ॥ हे भरतर्षभ ! इनके पीछे भीमनन्दिनी दमयन्तीने माता पिताकी आज्ञा मिलजानेपर जहाँ उसका घर है, वहाँ महामहाराज नलका प्रवेश कराया अर्थात् अपने घरमें बुलाया ॥ ४२ ॥ तब उस समय दमयन्तीको देखतेही महाराज नल सहसा शोक और दुःखसे अभिभूत होगये । उनकी आँखोंमें आँसू भर आये ॥ ४३ ॥ और इधर वरवर्णिनी दमयन्तीभी महाराजकी यह अवस्था देखकर महान् शोकाकुल हुई॥ ४४॥ हे महाराज ! तब मैलवस्त्रवाली और जटिल अथवा बालोंमें मैलके द्वारा स्वेदपंकवाली दमयन्तीने बाहुकसे कहा ॥ ४५ ॥ हे बाहुक ! कोई धर्मका जाननेवाला आदमी अपनी सोतीहुई भार्याको वनमें छोडकर चलागया, उस आद-मीको आपने कहीं प्रथम देखाहै ? ॥ ४६ ॥ अपराधहीन, दीन, श्रमसे थकी, माँदी, ऐसी प्यारी भार्याको पुण्यश्लोक महाराज नलके अति-रिक्त दूसरा कौन छोडजायगा ? ॥ ४७ ॥ हे अरिन्दम ! अर्थात् वैरि-योंका नाश करनेवाले युधिष्ठिर ! इस भाँति कहते कहते दमयन्तीकी आँखोंसे शोकके आँसू निकलनेलगे और वह महान् दुःखी हुई ॥ ४८ ॥ तब महान् शोकयुक्त और लाल लाल आँखोंसे होतेहुए जलस्रावको देख महाराज शोकार्त्त होकर इस तरह कहने लगे ॥ ४९ ॥ कि, हे भीरु ! मेरे जो राज्यका नाश हुआ, सो मैंने स्वयं नहीं किया, वरन् यह सारे काम कलियुगने कियेहैं, अत एव मेरा इसमें कुछ अपराध नहींहै ॥ ५०॥ आप-नेभी पूर्वमें धर्मकष्ट करके कलिको शापसे नष्ट किया था, अब वही कलि जब मेरे देहसे निकलगया, तब मुझको यह बुद्धि मिलीहै ॥ ५१ ॥ हे बृह-

च्छ्रोणि ! जब पापात्मा मुझको त्यागकर चलागया तब मैं आपके निकट आयाहूँ। आपके ही निमित्त मेरा यहाँ आगमन हुआहै, दूसरा प्रयोजन मेरा कुछ नहीं है ॥५२॥ और आपमें अनुरक्त अर्थात् प्रीति करनेवाला, ऐसे अपने अनुकूल स्वामीको छोडकर स्त्री अन्यको किसतरह वरती हैं, जिस प्रकार उत्तमवर्णवाली आप कररही हैं ॥ ५३ ॥ क्योंकि महाराज भीमकी आज्ञानुसार उनके दूत प्रत्येक देशमें घूम घूमकर ऐसा कहते फिरते हैं कि, भैमी दमयन्ती दूसरे पतिको वरण करेगी ॥ ५४॥ स्वतन्त्रवृत्तिसे अपनीही इच्छानुसार अपने समान भर्त्ताको वरेगी यह बात सुनकर ही महाराज ऋतुपर्ण यहां शीघ्रतासहित उपस्थित हुएहैं ॥ ५५ ॥

दमयन्ती तु तच्छ्रुत्वा नलस्य परिदेवितम् ।
प्राञ्जलिर्वेपमाना च भीता वचनमब्रवीत् ॥ ५६ ॥

तब राजकुमारी दमयन्तीने महाराज नलकी यह उदार बातें सुनकर कंपित और डरते डरते हाथ जोडकर कहा ॥ ५६ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं
नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८.

अष्टत्रिंशे च संवादो दमयन्त्या नलस्य च ।
भीमादीनां महाहर्षो दर्शनादेव कथ्यते ॥ १ ॥

इस अडतीसवें अध्यायमें दमयन्ती और नलका संवाद और नलके दर्शनसे महाराज भीमादिका महाहर्षित होना यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

दमयन्त्युवाच ।

न मामर्हसि कल्याण पापेन परिशङ्कितुम् ।
मया तु देवानुत्सृज्य वृतस्त्वं निषधाधिप ॥ १ ॥

दमयन्तीने कहा–हे कल्याण ! आप मुझमें पापकी शंका नहीं कीजिये

क्योंकि हे निषधराज ! मैंने तो देवताओंको छोडकर आपको स्वीकार किया ॥ १ ॥ हे महाराज ! मैंने आपके जाननेके लिये ही यह उपाय कियाहै, और स्वयंवरके नामसे इस कपटकी रचना कीहै ॥ २॥ हे पृथ्वी-पाल ! हे मनुजाधिप ! इस संसारमें आपके अतिरिक्त घोडोंद्वारा एकदि-नमें चार सौ कोश दूसरा कोई आदमी नहीं चल सकता ॥ ३ ॥ हे पृथ्वी-पति ! जिस प्रकार अपराध करनेवाले आपका कोई दोष मैं अपने मनमें नहीं विचारतीहूँ इसी कारण आपके चरण छूती हूँ, अतएव आप मेरे प्रति प्रसन्न होजाइये; जैसा कि सनातन धर्म है ॥ ४ ॥ और जो इस लोकमें यह सब देहधारियोंका साक्षी सदागतिरूप वायु भीतर बाहर विचरण किया करताहै, यदि मैंने कुछभी पापका आचरण किया हो तो वह वायु मेरे शरी-रसे प्राणको दूर कर देवे ॥ ५ ॥ फिर जो इन तीनों लोकके धारण करने-वाले यह तीनों देवता हैं, वेही न्यायानुसार बतावें, जैसा कि सनातन धर्म है ॥ ६ ॥ दमयन्तीके इस तरह कहनेपर आकाशसे वायुने कहा—हे निषधा-धिपति नल ! यह दमयन्ती पापिनी नहीं है, अर्थात् इसने कोई पाप नहीं कियाहै, यह बात मैं आपसे सत्यही कहताहूँ ॥७॥ हे महाराज ! हे शील-सागर !! मैं इसका साक्षी (गवाह) और रक्षा करनेवाला हूँ क्योंकि मैंने तीन वर्ष पर्यन्त इस दमयन्तीकी रक्षा की है ॥८ ॥ हे नल ! आपके निमि-त्तही इसने यह उपाय रचना कियाहै, क्योंकि आपके अतिरिक्त इस संसारमें एक दिनमें चारसौ कोश चलनेवाला दूसरा कोई आदमी नहीं है ॥ ९ ॥ हे पृथ्वीपाल ! आपको यह भीमकुमारी दमयन्ती मिलगई और इसको आप मिलगये, अतएव आप इस (दमयन्तीके विषय) में कुछ सन्देह मत कीजिये, वरन अब इस अपनी भार्याके संग आप आनन्द विहार कीजिये ॥ १०॥ इस तरह पवनके कहनेपर गगनमण्डलसे फूल बरसने लगे, देवता-ओंके नगाडे बजनेलगे, फिर सुखदायक पवन चलने लगा ॥ ११ ॥ हे राजन् युधिष्ठिर ! महाराज नलने इस परम अद्भुत चरित्रको सुनकर उस दमयन्तीको विशोक (शोकहीन) किया ॥ १२ ॥ इसके पीछे महाराज

नलने सर्पराज कर्कोटकके दियेहुए दो वस्त्रोंको धारण किया और उस सर्पराजका स्मरण करके अपने पूर्वशरीरको प्राप्त किया ॥ १३ ॥

दोहा-करकोटकको ध्यान धरि, जप्यो मन्त्र शत आन ।
पूर्व रूप निज पायऊ, बाढ्यो हर्ष महान ॥

तब भीमनान्दिनी निर्दोष दमयन्तीने पुण्यश्लोक रूपवन्त स्वामीको देखकर उनको छातीसे लगाया और फिर ऊँचे स्वरसे पुकार करनेलगी॥१४॥ अनन्तर दमयन्तीने स्वामी महाराज नलने पूर्ववत् प्रकाशित होकर अपने दोनों पुत्र कन्याको छातीसे लगाया और यथावत् बडाई करी ॥ १५ ॥ फिर शुभानन (सुन्दर मुखवाले) महाराज नलने उस दमयन्तीके मुखको अपनी छातीसे लगाकर पहिले दुःखसे दुःखी उस कमलनयनीको आलिंगन किया ॥ १६ ॥ उसीतरह मैलसे लिपटे अंग और मन्द हँसनेवाली भीमकुमारी दमयन्ती पुरुषसिंह महाराज नलसे कईबार मिलकर अश्रुयुक्त हो स्थित हुई ॥ १७ ॥

चौपाई ।

पिछले दुःखकी कथा चलाई । सुनत रुदन कीन्हो नलराई ॥
क्षमा करहु दोष सब हमारा । इमि विनवत नल बारहि बारा॥
तेहि अवसर सुख किमि कहिजाई । रंक धनदपदवी जनु पाई॥
बारहि बार लईं उर लाई । अति आनन्द न हृदय समाई ॥

इसके पीछे उन दोनों राजा रानीने एकत्र होकर रात्रिकालमें पुरातन (पिछली) बातें करी और महाराज नलने अपने वनमें घूमनेकी कथा वर्णन करी ॥ १८ ॥ इसतरह महाराज भीमके घर आपसमें 'सुखानन्द' की अभिलाषा करतेहुए नलदमयन्ती रहनेलगे ॥ १९ ॥ अनन्तर अपनी भार्याके सहित मिलकर वे महाराज नल चौथे वर्ष सारी कामनाओंद्वारा पूर्ण अर्थयुक्त हो इस आनन्दको प्राप्तहुए ॥ २० ॥

सैवं समेत्य व्यपनीततंद्रा शांतज्वरा हर्षविवृद्धसत्त्वा ॥
रराज भैमी समवाप्तकामा शीतांशुना रात्रिरिवोदितेन ॥ २१ ॥

और जिस प्रकार चन्द्रमाके उदय होनेपर रात्रि प्रकाशमान होती है, उसी तरह वह भीमनंदिनी दमयन्ती अपने स्वामीको पाकर आलस्यहीन भगवान्‌के रूपको जाननेवाली और लब्धकाम (अपनी सारी कामना पूर्ण होनेवाली) होकर शोभायमान हुई ॥ २१ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यान-
वर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्याय: ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३९.

एकोनचत्वारिंशे च श्वशुरेण च भाषणम् ।
नलस्य भूयो राज्यस्य द्यूतेनाप्तिश्च कथ्यते ॥ १ ॥

इस उनचालीसवें अध्यायमें महाराज नलकी ससुरसे बातचीत और फिर जुएके द्वारा राज्यका मिलना यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

बृहदश्व उवाच ।

अथ रात्र्यां व्यतीतायां नलो राजा स्वलंकृतः ।
वैदर्भ्या सहितो भीमं ददर्श वसुधाधिपम् ॥ १ ॥

बृहदश्वजी बोले—हे महाराज युधिष्ठिर ! इसके पीछे रात बीतजानेपर गहनोंसे विभूषित और विदर्भकुमारी दमयन्तीके सहित नलने राजा भीमका दर्शन किया ॥ १ ॥ तब महाराज नलने अत्यन्त नम्रता (विनय) से अपने ससुरको अभिवादन (प्रणाम) किया और फिर कल्याणी दमयन्तीनेभी पिताकी वन्दना करी ॥ २ ॥ तब महाराज भीमने अत्यन्त आनन्दित हो दमयन्तीको पुत्रकी समान ग्रहण किया और यथोचित आदर सत्कार करके धीर बँधाया ॥ ३ ॥ उस काल ऐसे महाराज नलका दर्शन करके सारे नगरवासी मनुष्य आनन्दित हुए, तब उनके हर्षका बडा भारी शब्द होनेलगा ॥ ४ ॥ और सब मनुष्य नगरको ध्वजा पताकाओंसे युक्त करके सजाने लगे, उस समय राजमार्गकी पृथ्वी संमार्जन (झाड बुहारकर) जलसिक्त और पुष्पयुक्त करीगई ॥ ५ ॥ फिर (भाँतिभाँतिकी) सामग्री और प्रासा-

दोंसे पुरवासी और देशवासी बधाई बाँटनेलगे और प्रत्येक नगरवासीके दरवाजेपर फूलोंका चूरा गिरायागया ॥ ६ ॥ फिर जब महाराज ऋतुपर्णने छद्मवेष (बाहुकवेष) धारी महाराज नलको दमयन्तीयुक्त सुना तो उस समय उनकोभी बडाही आनन्द हुआ ॥ ७ ॥

चौपाई।

तब ऋतुपर्ण चकित लखि भयऊ। बहुविनती राजासन कियऊ ॥
क्षमा करो सब दोष हमारा। मैं माया तव जानि न पारा ॥
तब नृपभीम अनुग्रहकीन्हो। नृप ऋतुपर्णहि बहु सुखदीन्हो ॥
नलहि पाय तब हर्षित राजा। विविध भांति बजवाये बाजा ॥
पुनि ऋतुपर्ण बिदा तहँ भयऊ। अवध नगर अपने गृह गयऊ ॥

और उन ऋतुपर्णने नलसे कहा—हे महाराज ! मैंने आपको नहीं पहिचाना था, इसी कारण आपकी सेवा नहीं करसका सो (यह अज्ञानकृत अपराध) आप क्षमा करदीजिये ॥ ८॥ नलने उत्तर दिया, आपने तो मेरा कुछ अपराध नहीं किया और न मेरे प्रति आप कभी क्रोधितही हुए, तब फिर मैं आपका कौनसा अपराध क्षमा करसकताहूँ ? ॥ ९ ॥ हे महाराज ! पूर्व संबंधके योगद्वारा हमारा और आपका एकत्र समागम विधाताने रचदियाथा, इसी कारण आपने मेरी रक्षा करी ॥ १० ॥ इसके पीछे विदर्भराज भीम और निषधराज नलसे आज्ञा लेकर महाराज ऋतुपर्ण अपने देशको चलेगये ॥ ११ ॥ हे युधिष्ठिर महाराज ! ऋतुपर्णके चलेजानेपर राजा नल बहुत दिनों तक कुंडिनपुरमें नहीं ठहरे ॥ १२ ॥ बृहदश्वजी बोले; अनन्तर तेजवान् महाराज नल भीमराजको आनन्दित कर और उनकी आज्ञा ले कुंडिनपुरसे अल्प सैन्ययुक्त निषधदेशको चलेगये ॥ १३ ॥ एक सुन्दर रथ, और सोलह हाथी, पचास घोडे और छै सौ पैदलों की ॥ १४ ॥ सेनासे पृथ्वीको कम्पायमान करतेहुए क्रोधयुक्त महामति महाराज नलने शीघ्रता सहित अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ १५ ॥ और पुष्करके पास पहुँचकर वीरसेनके पुत्र महाबली नलने कहा कि—हे पुष्कर ! आप आइये हमारा

आपका फिर जुआ हो क्योंकि मैंने बहुत सारा धन उपार्जन करलियाहै १६ मैंने दमयन्तीके सिवाय और भी बहुतसी वस्तुएँ इकट्ठी करली हैं। अतएव हे पुष्कर! आप मेरे साथ फिर जुआ खेलिये ॥ १७ ॥ महाराज नलकी यह बात सुनकर पुष्कर खेलनेलगा तब फिर नलने राज्य, घोडे और हाथी जीतलिये ॥ १८ ॥

चौपाई।

यन्त्र मन्त्र नल जेते जाईं। हार्‌यो पुष्कर नृपको भाई ॥
देश कोश साहस भण्डारा। रथ गज द्रव्य अनेक अपारा ॥
जीते नल पुष्कर जो हारा। फिर क्रोधित ह्वै कहेउ भुआरा ॥
दोहा-दमयन्तीके दास तुम, कुटुंबसहित हो आन।
कालि दुख हम कहँ दीन्हेऊ, तुमहिं कहै को जान ॥

तब फिर (सर्वस्व) हारजानेपर पुष्कर तत्क्षण हाथ बाँधकर खडा होगया, उस समय उसको समझाबुझाकर महाराज नलने नगरमें वसाया ॥ १९॥ पुष्कर बोला-हे महाराज! जोकि आपने मेरे प्राण बचाये और मुझको राज्य भी अर्पण किया, इस कारण आपकी अखंड कीर्त्ति बढेगी और आप सुखपूर्वक अयुतायुतवर्षपर्यन्त जीवित रहेंगे ॥ २० ॥

स तथा सत्कृतो राज्ञा ह्याश्वास्य च तदा नृपम् ॥
प्रययौ स्वपुरं हृष्टः पुष्करः स्वजनैर्वृतः ।
अथ तान्सान्त्वयामास पौरांश्च निषधाधिपः ॥ २१ ॥

इस भाँति वह पुष्कर महाराज नलसे सत्कार पाय नलको सन्तुष्ट कर स्वजनोंसमेत अपने नगरको चलागया तब फिर महाराज नलने अपने नगर-वासी मनुष्योंको सान्त्वना दी अर्थात् अनेक तरहसे उनको सन्तुष्ट किया २१॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः ४०.

चत्वारिंशे सभार्यस्यानन्दो राज्यस्य तस्य च ।
नलस्य ऋतुपर्णस्य सत्कीर्त्तनमिहोच्यते ॥ १ ॥

इस चालीसवें अध्यायमें रानी दमयन्तीके सहित महाराज नल तथा उनकी प्रजाको आनन्द प्राप्त हुआ, और राजा ऋतुपर्णका कीर्त्तन यह कथा वर्णन की जातीहै ॥ १ ॥

बृहदश्व उवाच ।

प्रयाते पुष्करे राजन्संप्रवृत्ते महोत्सवे ।
महत्या सेनया युक्तो दमयन्तीमुपानयत् ॥ १ ॥

बृहदश्वजी बोले—हे युधिष्ठिर ! जब पुष्कर चलागया, तब महाराज नल महा उत्सवसे बडी सेना करके युक्त दमयन्तीको लेआये ॥ ॥ १ ॥ परवीरघाती अमेयात्मा भीमपराक्रम पिता महाराज भीमने दमयन्तीका सत्कार करके उसको भेजदिया ॥ २ ॥ तब महाराज नल पुत्र-कन्यासमेत विदर्भ-कुमारी दमयन्तीके आजानेपर हर्षित हुए । इस प्रकार शोभा पानेलगे, जिस प्रकार नन्दनवनमें (इन्द्राणी और जयन्तके साहित) देवराज इन्द्र शोभा पातेहैं ॥ ३ ॥ फिर महायशस्वी महाराज नल राज्य पाकर स्थित हुए और उन्होंने यथाविधि बहुतसी दक्षिणावाले विविधयज्ञोंद्वारा परमेश्वरकी पूजा करी ॥ ४ ॥ बृहदश्वजी बोले—हे युधिष्ठिर ! एक दिन महाराज नलने घरके थंभपर बैठेहुए सुन्दर तोतेको निःशल्य (कंटकहीन) बाण द्वारा निपातित किया ॥ ५ ॥ किन्तु भीमकुमारी दमयन्तीने दयाके वशीभूत होकर उसको हाथके संपुटमें रखलिया, ऐसा होनेपर उसके हाथके पसीनेद्वारा उस तोतेमें जान आगई अर्थात् वह जीवित होगया ॥ ६ ॥ तब महाराज नलके मनसे दमयन्तीके मछली खाजानेका सन्देह जातारहा इसी तरह हे राजेन्द्र ! आपही सुहृदों समेत शीघ्र राज्यकी रक्षा करेंगे ॥ ७ ॥ हे भरतर्षभ ! हे पर-पुरविजयी युधिष्ठिर ! आर्य महाराज नलने रानी दमयन्तीके सहित (जुआ

खेलनेसेही) इस प्रकारका दुःख पायाथा ॥ ८ ॥ उसी तरह हे भरतश्रेष्ठ ! आपभी कृष्णा (द्रौपदी) और बाँधवगणके समेत धर्मकी चिन्ता करतेहुए उत्तम स्थानमें रमण करेंगे ॥ ९ ॥

चौपाई ।

होइहौ धर्मज तुमहुँ भुवारा । जो यह कथा सुनेउ सुखसारा ॥
सारी चिन्ता मिटहिं तुम्हारी । पूजहु यदुपाति कृष्ण मुरारी ॥
क्षणमहँ दुःख तुम्हारे हरिहैं । सकल मनोरथ पूरण करिहैं ॥
जो कोउ जात शरण मोहनकी । पूरी करत आश जन मनकी॥

हे महाराज ! तुम जैसे दुःखी जनोंका आश्वासन करनेयोग्य इस इतिहासके श्रवण करनेपर कलियुग नाशको प्राप्त होजाता है ॥ १० ॥ क्योंकि कर्कोटक नाग, दमयन्ती, नल और राजर्षि ऋतुपर्णका कीर्त्तन कलियुगको नाश करनेवाला है ॥ ११ ॥ हे नृपोत्तम ! जो पुरुष इस (कथा) को सुनाते हैं अथवा जो श्रद्धासहित सुनते हैं उनको कलिसमुद्भव (कलिजनित) भय विद्यमान नहीं रहता ॥ १२ ॥

चौपाई ।

यहिके सुने पाप तनु भागै । व्याधि होय सो तनु नहिं लागै ॥
दुखी सुनै सब दुख मिटजाई । बन्दीका बन्धन कटजाई ॥
राज्यहीन जन राजहि पावे । जेहि दुख बहुत सुने क्षय पावे ॥

दोहा-बृहदश्वमुनि भाषेऊ, धर्मराज सुखपाय ।
नशै पाप तन सुख बढै, नलचरित्र जो गाय ।

हे राजन् ! जो इसको नित्य (निरन्तर) सुनाते और श्रद्धासे सुनते हैं, हे महाराज ! उनको कलिसे उत्पन्नहुए किसी प्रकारके भय नहीं होते हैं ॥ १३ ॥ राजर्षि ऋतुपर्णके स्वयंवरके लिये उसको लेकर वह राजर्षि भीमके स्थानमें गये ॥ १४ ॥ एक समय वह ऋषिसेवक महाराज नल पेडकी जडमें सो रहेथे, उसी समय उनके मुखसे निकलकर कलियुग बहेडेमें सभीत

आया ॥ १५ ॥ ऋतुपर्णने जैसेही उसको देखा वैसेही विस्मित होकर उठ-बैठा, फिर नागने उन महाराज नलको पुनर्वार काटा ॥ १६ ॥

स्वरूपत्वमनुज्ञातो यथापूर्वं तथाभवत् ।
भूयो राज्यमनुप्राप्तो दमयन्त्या युतो नलः ॥ १७ ॥

फिर महाराज नल अपने स्वरूपको प्राप्त होकर जिस प्रकार पूर्वमें थे, वैसेही होगये और दमयन्तीके सहित पुनर्वारभी राज्यको प्राप्तहुए ॥ १७ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां नलोपाख्यानवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१.

चत्वारिंशत्तमे सैके हरिश्चन्द्रस्य वर्णनम् ।
मुनिना हतराज्यस्य कीर्तिं धैर्यं च कथ्यते ॥ १ ॥

इस इकतालीसवें अध्यायमें मुनि विश्वामित्रजीके द्वारा राज्य हरण होजानेपर महाराज हरिश्चन्द्रकी कीर्ति और धैर्यका वर्णन कियाजाता है १

व्यास उवाच ।

तस्मात्त्वमपि राजर्षे मा विषादं कुरु प्रभो ।
हरिश्चन्द्रोऽपि राजर्षिर्दुःखान्ते सुखमाप्तवान् ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—हे राजर्षे! हे प्रभो ! इस लिये आपभी विषाद (शोक) मत कीजिये क्योंकि प्रथम राजर्षि हरिश्चन्द्रनेभी दुःखके पीछे सुख पाया था ॥ १ ॥ हे राजन् ! पूर्वकालमें त्रेतायुगके बीच सूर्यकुलोत्पन्न ब्रह्मण्य (ब्राह्मणभक्त) धर्मवान् सत्यबन्ध, सदा पवित्र॥२॥ और निरन्तर धर्मकी सेवा करनेवाले महावीर हरिश्चन्द्र नामक राजा अयोध्यापुरीमें हुए । उनके सात्त्विक भावसे इन्द्रपुरी कंपायमान होनेलगी ॥ ३ ॥ फिर जहाँ सनातन भगवान् विष्णु विराजमान थे देवराज इन्द्र वहाँही गये । और वहाँ जाकर इन्द्रने मलीन मुख और दीन मनसे कहा ॥ ४ ॥ इन्द्र बोले—हे स्वामिन् ! भारतखंडमें एक हरिश्चन्द्र नामक महाराज जो कि रूपवान् धर्मशील और सूर्यवंशोत्पन्न ॥ ५ ॥ महागुणवान् महातेजस्वी अयोध्याको पालनेमें स्थित

हैं, उनके पुण्यप्रभावसे मेरी पुरीका नाश (अवश्य) हो जायगा ॥ ६ ॥ इन्द्रकी यह बात सुनकर भगवान् विष्णुने मनमें विचार किया और फिर इन्द्रसे बोले—हे इन्द्र! आप अपने स्थानको प्रस्थान कीजिये, मैं उन राजाको साधूँगा ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीहरिने इसप्रकार कहकर वहीं विश्वामित्रजीको स्मरण किया और उनके याद करतेही वे विश्वामित्र ऋषि आनकर उपस्थित हुए ॥ ८ ॥ तब भगवान् केशवदेवने उनसे कहा कि, हे मुनिवर ! आप हरिश्चन्द्रकी अयोध्यानगरीको चलेजाइये और वहां जाकर हरिश्चन्द्रको स्वधर्मसे डिगाइये ॥ ९ ॥ और मेरी आज्ञासे आपको साधुजनको दुःख देनेका पाप नहीं लगेगा, यह सुनकर ब्राह्मण विश्वामित्र हरिश्चन्द्रकी पुरीको चलेगये॥ १० ॥वहां जाकर विश्वामित्रजीने महाराज हरिश्चंद्रको सिंहासनपर विराजमान देखा और राजा भी उन ऋषिका दर्शन करके सहसा सिंहासनसे उठ खडेहुए ॥ ११ ॥ और फिर अर्घ्यपाद्यादिके द्वारा उनकी पूजा कर हाथ बांधे खडे होगये और बोले—हे स्वामिन्! अब मुझपर कृपा करके आज्ञा-दीजिये ॥ १२ ॥ विश्वामित्रने कहा कि, हे धर्मज्ञ ! यदि आप संतुष्ट हुए हैं तो मुझको अपना सारा राज्य प्रसन्नता पूर्वक देदीजिये तो मैं आपको उत्तम धर्मात्मा समझूंगा॥ १३॥ मुनिवर विश्वामित्रजीके इस प्रकार कहनेपर महाराज हरिश्चन्द्रने पुत्र सहित अपना सारा राज्य रानीसे सम्मति करके विष्णु भगवान्की प्रसन्नताके लिये द्वादशी तिथिमें विप्रोत्तम विश्वामित्रजीको अर्पण करदिया तब विश्वामित्रजीने प्रसन्न होकर फिर कहा हे राजन् ! इस(महादान) की मुझको दक्षिणा दीजिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

विना दक्षिणा दान, सफल नहिं होत नरेशा ।
मानो मेरी बात, न मनमें करो अँदेशा ॥

क्योंकि हे महाराज ! जैसे कुशाके विना संध्या और तिलके विना तर्पण करनेसे कुछ फल नहीं होता, ऐसेही दक्षिणाहीन दान करनेसे वह सब निष्फल होजाताहै ॥ १६ ॥ महाबुद्धिमान् महाराज हरिश्चन्द्रने उनकी यह बात सुनकर दक्षिणामें तीन भार सुवर्ण देनेका विचार किया ॥ १७ ॥ और

संकल्पके लिये महाराजने विश्वामित्रजीके हाथमें जल दिया तब पीछे विश्वामित्रजीने उनका हाथ पकडकर कहा ॥ १८ ॥ हे महाराज ! मैं इस दान कियेहुए राज्यसे दक्षिणा नहीं लेसकता, क्योंकि आपके दान करनेपर अब यह सप्तांग राज्य हमाराही होचुका ॥ १९ ॥

सब पृथ्वी दे दान, खजाना अपना गावै ।
कहते ऐसी बात, तुझे कुछ लाज न आवै ॥

तब फिर इस राज्यका जो कुछ धन है, वह सबभी हमाराही होचुका इसमें सन्देह नहीं । हे महाराज ! हे विभो ! इसको छोडकर और द्रव्यके द्वारा मुझको दक्षिणा दीजिये ॥ २० ॥ तब महाराजने मनमें निश्चय कर और विह्वल हो विश्वामित्रजीसे कहा कि हे विप्रोत्तम ! आप मेरे पुण्यका नाश मत कीजिये ॥ २१ ॥

भूल तो मुझसे होगई, क्षमा करो द्विजराज ।
सभी खजाना आपका, ऋषियनके शिरताज ॥

इस प्रकार उनसे विज्ञापन (विनय) करके महाराज फिर कहने लगे । हरिश्चन्द्र बोले हे विप्र ! पुत्र, स्त्री और मुझको आप शिवपुरीकाशीमें लेचलिये और हम सबको वहाँ बेचकर जो धन मिले उसको हे द्विजोत्तम ! आप ग्रहण करलीजिये ॥ २२ ॥ बुद्धिमान् विश्वामित्रजी महाराज हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर मार्गमें निरन्तर दुःख सहतेहुए पुत्र स्त्रीसमेत उनको वाराणसी (काशी) पुरीमें ले आये ॥ २३ ॥ वहाँ लेजाकर उन सबको ब्राह्मण विश्वामित्रजीने अलग अलग बेंचडाला, पुत्र रोहिताश्व और रानी तारामतीको एक ब्राह्मणके हाथ बेंचा ॥ २४ ॥ और महाराज हरिश्चन्द्रको एक अन्त्यज अर्थात् चाण्डाल (भंगी) के हाथ बेंचदिया । फिर किसी दिन ब्राह्मण पुत्रोंके साथ (पुष्प लेनेके लिये) रोहिताश्व वनमें गया ॥ २५ ॥ तब उसको फूलोंमें बैठेहुए सांपने काटखाया और उसके काटतेही रोहिताश्वकी मृत्यु होगई तब उन बालकोंने ॥ २६ ॥ आनकर उस बूढे ब्राह्मणसे यह सारा हाल सुनादिया, तब वह ब्राह्मण उस वनमें

गया, और रोहितके (मृतक शरीरको) पवित्र गंगातटपर ले आया॥२७॥ तब (ब्राह्मणकी दासी तारामती) ज्योंही अपने पुत्रको फूंकनेके लिये तैयार हुई कि त्योंही महाराज हरिश्चन्द्रने आकर कहा कि, प्रथम हमको इसका (कर स्वरूप) वस्त्रखंड देदीजिये और फिर अपने पुत्रको फूँकिये ॥ २८ ॥

इस मशानपतिकी आज्ञाहै सुनिये सोई ।
आधा कफ्फन दिये बिनानहिं फूँके कोई ॥

महाराज हरिश्चन्द्रके यह बात कहनेपर उसने उनको वस्त्रखंड प्रदान किया और तब फिर पीछे अपने बेटेको फूँका । यह अद्भुत (घटना) हुई ॥ २९ ॥ वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जन्मेजय ! इसके पीछे अब मैं तारामतीकी चेष्टा वर्णन करताहूँ कि, वह तारामती ब्राह्मणके घर नित्य देवसेवा किया करतीथी ॥ ३० ॥ फिर किसी समय तारामतीने गंगापर पहुँचकर जलमें स्नान किया उस काल रानीके कंठसूत्रको कौवीने खानेकी चीज समझाकर पकडलिया और फिर उसको पानीमें डाल-दिया सो वह तारामतीके शिरपर स्थित होगया तब राजाने कोतवालके द्वारा (यह) ढँढोरा पिटवादिया ॥३१॥ ३२ ॥ कि हमारी रानीका हार गंगाके तटपर जिस किसी चोरने चुराया होगा वह मनुष्य वा स्त्री जो कोई भी हो मारडालाजायगा ॥ ३३ ॥ राजाका यह ढँढोरा सुनकर नगरवासियोंने (जाकर) कहा हे महाराज ! कोई एक स्त्री ब्राह्मणके घरमें दासी बनकर निवास किया करती है ॥ ३४ ॥ हमने उसके मस्तकके उपरीभागमें वह कंठसूत्र (हार) देखा है उनकी यह बात सुनकर राजाने कहा ॥ ३५ ॥ काशिराज बोले कि, उस चोर व्यक्ति मनुष्य, स्त्री अथवा नपुंसक (जनखे) को शीघ्रही मारडालो, क्योंकि चोरके मारडालनेमें देर नहीं करनी चाहिये ॥ ३६ ॥ महाराजकी आज्ञानुसार उन सब नगरनिवासियोंने उस स्त्रीको मारडालनेके निमित्त यह सब हाल अन्त्यजसे निवेदन किया तब उस अन्त्य-जने सेवक हरिश्चन्द्रको ताराके वधार्थ भेजा ॥ ३७ ॥ उस काल वह स्त्री भली भाँति स्नान करके गंगा किनारे स्थित थी तब उसी समय उसको मार-

डालनेके लिये अन्त्यजके भेजेहुए राजा उद्यत होगये ॥ ३८ ॥ और ज्योंही मारना चाहा तो उसी समय रानीने देखा कि अपने नाथ पृथ्वीके अधीश्वर महाराज हरिश्चन्द्र खडेहैं ॥ ३९ ॥ तब तो उसने हृदयमें आनन्दित होकर भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करी कि, हे भगवन् ! अपने स्वामीके चरणकमलोंमें मेरी स्मृति निरन्तर रहे, और मुझको प्रत्येक जन्ममें रोहिताश्वकी समान पुत्र और विश्वामित्रके समान गुरु मिलें ॥ ४० ॥ हे विष्णो ! यह सब देखकर मुझको अपनी सनातनी भक्तिभी प्रदान कीजिये । इस तरह कहती-हुई वह तत्काल राजाके द्वारा पीडित हुई ॥ ४१ ॥ और फिर महाराज हरिश्चन्द्रने ज्योंही उसके मस्तकपर खड्गाघात करना चाहा कि त्योंही वैकुंठवासी भगवान् श्रीहरि विष्णुने उनका हाथ पकडलिया ॥ ४२ ॥

चौपाई ।

तुरतहि प्रकट भये भगवाना । माँगु भूप अस वचन बखाना ॥
परे चरन नृप कंठ लगाये । रानीके बंधन छुडवाये ॥
है प्रसन्न तब श्रीभगवाना । भूपति कहँ दीन्हों वर दाना ॥
अब नृप करहु अवधपुर वासा । अन्तकाल आयहु मम पासा ॥
करी कृपा हरि कुँवर जियाई । अन्तर्धान भये सुरराई ॥
चलेगये जब प्रभु सुखदानी । तब यह भई गगनसों वानी ॥
दोहा-सत राख्यो तनु कष्ट सहि, बीतगये दिन मंद ।
क्लेश तजो धीरज धरो, धन्य धन्य हरिचंद ॥

और कहा-हे महाराज ! अब आप ऐसा साहस मत कीजिये अर्थात् इसके वध करनेकी हठ छोडदीजिये । हम आपके भावसे अत्यन्त संतुष्ट हुएहैं, इस कारण हे राजेन्द्र ! आपके मनमें जो कामना वर्त्तमान हो वही मुझसे माँग लीजिये ॥ ४३ ॥ हरिश्चन्द्र बोले-हे स्वामिन् ! हे जगन्नाथ ! यदि आप (सत्यही) मेरे प्रति सन्तुष्ट होगयेहैं तो मैं यह चाहताहूँ कि मुझको आप पुत्र, स्त्री और पुरवासियोंसमेत अपने स्थान (वैकुंठ) ले चलिये ॥ ४४ ॥ कारण कि ब्रह्मपदमें पहुँचेहुए पुरुषोंको फिर संसारकी फांसीमें

बँधना नहीं पडताहै जब महाराज हरिश्चन्द्रने इस प्रकार प्रार्थना करी तब उसी समय विष्णुरूपी श्रीहरिने ॥ ४५ ॥

उद्धृता नगरी सर्वा हरिश्चन्द्रोऽपि ह्युद्धृतः।
सपुत्रः सकलत्रश्च सबन्धुश्च ससेवकः ॥
कृपया जगदीशेन वैकुण्ठे स्वे निवासितः ॥ ४६ ॥

(प्रथम) सारी अयोध्यापुरीका उद्धार किया और फिर पुत्र, स्त्री, बाँधव और सेवकोंसमेत महाराजा हरिश्चन्द्रकाभी उद्धार किया। भगवान् जगदीश्वरने अनुग्रह करके पुरवासी इत्यादिके सहित महाराज हरिश्चन्द्रको अपनी वैकुंठपुरीमें वास प्रदान किया ॥ ४६ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां हरिश्चन्द्रोद्धारणं
नाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२.

द्विचत्वारिंशेऽध्याये तु मृकण्डात्मजधर्मयोः ।
संवादे प्रलयोत्पत्तिरस्य विश्वस्य वर्ण्यते ॥ १ ॥

इस बयालीसवें अध्यायमें मृकण्डपुत्र मार्कण्डेय और धर्मनन्दन युधिष्ठिरके संवादमें इस विश्वकी उत्पत्ति और प्रलयका वर्णन कियाजाताहै॥ १॥

वैशम्पायन उवाच ।

एवमुक्त्वा तदा व्यासो जगाम स्वं निकेतनम् ।
एकदा वनमध्ये तु वर्त्तमानं युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! इस प्रकार कहकर व्यासजीने अपने स्थान (घर) को प्रस्थान किया। फिर एक समय वनमें वर्त्तमान महाराज युधिष्ठिरके समीप ॥ १ ॥ अनेक देशोंमें घूमते घामते महामुनि मार्कण्डेयजी आये। तब उनकी पूजा करके धर्मात्मा धर्मनन्दन युधिष्ठिरने पूछा ॥ २ ॥ हे स्वामिन् ! आप मेरे आगे (संसार) की उत्पत्ति और प्रलयका वर्णन कीजिये। मार्कण्डेयजीने कहा—हे महाराज ! एक दिन मैं अपने स्थानपर

निरन्तर शिष्योंको पढारहाथा ॥ ३ ॥ उसी अवसरमें (महावेगसे) पवन चलनेलगा, जिससे सारे पेड चकनाचूर होगये । और चारों दिशाओंसे जल आनकर मेरे स्थानमें प्राप्त होगया ॥ ४ ॥

दोहा–पवन झकोरे तेजसों, शीत भयो दुखदाय ।
घन गरजै लरजै हिया, तन ठिठरायो जाय ॥ ५ ॥

मैं उस पानी पर तैरता तैरता सत्यलोकमें जापहुँचा, वहां बालरूपधारी भगवान् विष्णुका मैंने वटके पत्तेपर दर्शन किया ॥ ५ ॥ तब वहां मैं उनसे बोला–हे नाथ ! मैं इस समय बहुतही डराहुआहूँ । यह सुनकर मुझसे उन बालमुकुन्दने कहा–हे पुत्र ! आप आनकर मेरे मुखमें प्रवेश कीजिये ॥ ६ ॥ यह कहकर वे मुकुन्दजी अपना मुख फैलायकर अवस्थित हुए और मैं तत्काल उनके मुखमें घुसगया और अपने (उसी) स्थान पर आपहुँचा ॥ ७ ॥ उस कालमें बडे भारी अचंभेमें भरकर अपने सब शिष्योंसे बोला कि, हे शिष्यगण ! अभी तो आप सब जने वायुके द्वारा उडगये थे, तब फिर इस स्थानपर किसतरहसे आपहुँचे? ॥ ८ ॥ यह सुनकर उन शिष्योंने उत्तर दिया कि हे स्वामिन् ! हम लोग तो बिलकुल नहीं उडे, किन्तु आप किस लिये विकल होरहे हैं ? तब पीछे मैं मनके भीतर ध्यान करताहुआ दारुण तपस्या करने लगा ॥ ९ ॥ हे राजन् ! उस तपस्याको करते करते दश हजार वर्ष बीत गये । तब मैंने एक दिन भगवान् बालमुकुन्दको स्मरण किया ॥ १० ॥ कि अपने करकमलमें चरणारविन्दके अँगूठेको पकडकर मुखमें चचोरते हुए वटवृक्षके पत्तेके दोनेमें बालरूपसे शयन करनेवाले बालरूपी मुकुन्दको मनसे स्मरण करताहूँ ॥ ११ ॥ कंठमें सुन्दर माला, भालपर सुन्दर तिलक लगाये, सुन्दरताका दमकसे मेघकी कान्तिके जीतनेवाले, शत्रुओंको करालरूप, भक्तजनरूपी कमलोंको राजहंस बालमुकुन्दको मनसे भजताहूँ ॥ १२ ॥ गोपाल बालक और संसारके एकही पालक संसारकी माया मतिको मोहका जाल फैलानेवाले, बडे यशस्वी और शिशुपालके काल बालमुकुन्दको मनसे स्मरण करताहूँ ॥ १३ ॥ जब मैंने इसतरहसे

उनका ध्यान किया, तब वे बालरूपी हरि मेरे प्रति सन्तुष्ट हुए और वे मेरे सन्मुख बोले कि अब आप आदरसहित संसारकी उत्पत्ति देखिये ॥ १४ ॥ उसी समय भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजी प्रकट हुए, तब श्रीहरिने उन ब्रह्माजीको आज्ञा दी कि आप सृष्टि उत्पन्न कीजिये उनकी आज्ञानुसार ब्रह्माजीने सृष्टिकी रचना करी ॥ १५ ॥ फिर भगवान् विष्णुके अन्तर्धान होजानेपर पीछे पंचभूतोंकी उत्पत्ति हुई । हे महाराज युधिष्ठिर ! इसी विधि (नियम) के अनुसार अनेक प्रलय बीत चुके हैं ॥ १६ ॥

मया विलोकितास्ते वै माधवस्य प्रसादतः ।
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र नित्यं भज हरिं ध्रुवम् ॥
इत्युक्त्वान्तर्दधे सोऽपि मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ १७ ॥

भगवान् माधवके प्रसादसे मैंने प्रलयका दर्शन किया है । इस कारण हे राजेन्द्र ! आपभी निश्चय करके निरन्तर श्रीहरिका भजन कीजिये । इस प्रकार कहकर महामुनि मार्कण्डेयभी अन्तर्धान होगये ॥ १७ ॥

इति श्रीभारतसारे वनपर्वणि भाषायां प्रलयोत्पत्तिकथनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषाभारतसारे वनपर्व समाप्तम् ॥ ३ ॥



श्रीकृष्णाय नमः ।

भारतसार-भाषा ।

विराटपर्व ४.

दोहा ।

वन्दौं पदपंकज सदा, राधा नन्द कुमार ।
पुनि विराट शुभ पर्वकी, भाषा लिखूं सुधार ॥
दयाभवन अति सुख सदन, सदा रहहु अनुकूल ।
नाथ न आनहु हृदय महँ, मो पामरकी भूल ॥
चरणकमल वन्दौं रुचिर, कष्ट विनाशन हार ।
बूडत हौं भवसिन्धुमहँ, मोहि करो प्रभु पार ॥
हौं शरणागत आपकी, काटहु जगजंजाल ।
हाथ जोरि विनती करत, मिश्र कन्हैयालाल ॥

त्रिंचत्वारिंशोऽध्यायः ४३.

त्रिचत्वारिंश अध्याये विराटस्य पुरं गतिः ।
पाण्डवानां च भीमेन मल्लदर्शनमुच्यते ॥ १ ॥

इस तैतालीसवें अध्यायमें विराटनगरमें पांडवोंका जाना और भीमसेनका मल्लदर्शन अर्थात् मल्लको मारडालना यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

प्रथमाब्दाद्द्वादशान्तं पाण्डवैरुषितं वनम् ।
प्राप्तं त्रयोदशं वर्षं नष्टचर्याचिकीर्षतः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! प्रथम वर्षसे आरंभ करके बारहवर्ष पर्यंत तो पांडव वनमें बसे किन्तु अब तेरहवाँ (अज्ञातवासका) वर्ष आनकर प्राप्त हुआ, उनमें उन्होंने गुप्तरीतिसे भ्रमण करनेका विचार किया॥ १॥ तब युधिष्ठिरादि सब पांडव विराटनगरमें पहुँचगये और वहाँ प्रत्येकने अपना गुप्त नाम रक्खा उस प्रत्येक नामको आपसे कहताहूँ ॥ २ ॥ महाराज युधिष्ठिर अपने साथ रहनेवाले धौम्यादि ऋषियोंसे बोले कि, हे ऋषियो ! अब आप सबजने अपने अपने स्थानको प्रस्थान कीजिये ॥ ३ ॥ और भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे पवित्र हुई द्वारकापुरीमें हमारे सब महावीर, रथी, तथा गजवाले चलेजाँय ॥ ४ ॥ और जो अन्यान्य सेवक तथा हमारा काम काज करनेवाले शिबिकावाहक (पालकी उठानेवाले) और शस्त्रोंको धारण करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ वे सब मेरे कहने(आज्ञा) से द्रुपदके स्थानको विनाविलम्ब चलेजाँय, और हमारी माता कुन्ती भी चलीजाँय ॥ ६ ॥ महाराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर वे सब आज्ञानुसार चलेगये और श्रीकृष्णके स्थानपर पहुँचे वहाँ यादवोंने उन सबकी पूजा अर्थात् आदर सत्कार किया ॥ ७॥ और उधर महाराज द्रुपदनेभी युधिष्ठिरके सेवकोंका यथोचित आदर मान किया । तब धर्मराज युधिष्ठिर बोले—हे भीम ! आप इन शस्त्रोंको शीघ्रतासे इस शमीवृक्षपर रखदीजिये ॥ ८ ॥ उनकी आज्ञानुसार भीमसेनने उन अस्त्रशस्त्रोंको बाँधकर शमीवृक्षपर स्थापन करदिया । तब युधिष्ठिर बोले—हे भाइयो ! अब जिस कामके करनेमें आपकी चेष्टा हो सो सब मेरे आगे कहदीजिये ॥ ९ ॥ आप सबके बीच जिसमें जैसा गुण हो सो मुझे बता दीजिये और मैं तो ब्राह्मण कंकनामसे विख्यात हूँगा ॥ १० ॥ फिर सब कोई अपने अपने गुण बताकर तदनुसारही रूप बनाने लगे । भीमसेन बल्लव नामक सूपकार अर्थात् अन्नपाचक (रसोइये) बने और अर्जुन नर्त्तक (नचनइया) होकर बृहन्नटके नामसे प्रसिद्ध हुए॥ ११॥ नकुल ग्रंथिक नामक अश्वपाल हुए और सहदेव गौओंकी रक्षा करनेमें अधिष्ठाता हुए ॥ १२ ॥ और द्रौपदी मालिनी नामसे विख्यात सैरन्ध्री

हुई। इस प्रकार उन सब क्षत्रियोंने अपने अपने गुप्त नाम रखलिये॥ १३॥ और जो कि भार्या अपने पतिका नाम नहीं लेसकती, इस कारण द्रौपदीने उन पांडवोंके जय, जयंत, विजय, जयत्सेन और जयद्बल यह नाम रखलिये ॥ १४ ॥ इस तरह वे सब जने निश्चय राजमन्दिरमें आपहुँचे । वहाँ नट, नचनइये और चारणों द्वारा शोभायमान ॥ १५ ॥ गीत व बाजोंके शब्दद्वारा तथा पहलवानोंसे सुशोभित श्रेष्ठ वीरों युक्त और अनेक पण्डितों द्वारा विभूषित ॥ १६ ॥ तथा और भी देखनेलायक भाँति भाँतिके अनगिन्त चिह्नोंवाली महाराज विराटकी सभा प्रकाशमान होरहीहै और क्रमशः आदिसे अन्ततक यथोचितरूप व चिह्नोंसे युक्त होरही है ॥ १७ ॥ तब महाराज विराटभी उस सभामें आनकर प्राप्त हुए और उन महाराजको सभामें आयाहुआ देखकर उन पाण्डवोंने अपनी अपनी चेष्टा कही ॥ १८॥ तब उन महाराज विराटने इन कंक इत्यादिका यथोचित आदर (मान) किया । ऐसा होनेपर यह गुप्त रीतिसे वहीं वास करनेलगे ॥ १९ ॥ इसी भाँति अन्तःपुर (रनवास) में गईहुई सैरन्ध्री द्रौपदीका रानी सुदेष्णाने बहुत आदर मान किया और उसको अपनेही घरमें टिकालिया ॥ २० ॥ तब फिर राजपत्नीसे सैरन्ध्रीने कहा । द्रौपदी बोली कि, मैं महाराज विराट तथा और किसीके प्राप्त करनेयोग्य कभी नहीं हूँ अर्थात् मेरी तरफ पत्नी बनानेकी इच्छासे कोई भी आँख उठाकर नहीं देखसकता ॥ २१ ॥ क्योंकि मेरे पति पांच गन्धर्व हैं, जो कि, सब गुप्तरीतिसे रहाकरतेहैं अतएव मुझको टेढी निगाहसे जो कोई भी देखेगा, उस दुष्टात्माको वे गन्धर्व तत्क्षण मार डालेंगे ॥ २२ ॥ इस तरह वहाँ पांडवगण गुप्तरीतिसे अपने अपने अधिकारमें स्थित रहनेलगे । इसके पीछे चौथे महीनेमें भाँति भाँतिके पहलवानों सहित ॥ २३ ॥ मेघनाद नामसे विख्यात मल्लोंके अधिपति (गुरु) ने महाराज विराटकी सभामें आनकर मल्लयुद्धकी याचना करी अर्थात् कुश्ती चाही ॥ २४ ॥ जो कि वह पहलवानोंका उस्ताद महाबलवान् महाकाय अर्थात् बडे शरीरवाला, दुर्निवार (पहलवानों से नहीं हटनेवाला) था, इस

कारण उससे कोईभी नहीं लड सका ॥ २५ ॥ फिर इसको अखाडेमें बल्लवके साथ लडनेको अधिकार मिला । तब पहलवान् मेघनाद और बल्लवका शस्त्रहीन घोर बाहुयुद्ध होनेलगा ॥ २६ ॥ वे दोनों दारुण, भयंकर, घोर और संसारको आश्चर्यकारक परस्पर महान् शब्दके द्वारा भय बतातेहुए लडनेलगे ॥ २७ ॥ मेघनाद नामक महापहलवान सारे पहलवानोंके बीचमें खडा हो हाथोंकी दोनों अँगुली और हाथ पैर परस्पर गुंफित करातेहुए आपसमें घूँसोंका प्रहार करनेलगे ॥ २८ ॥

चौपाई ।

मल्ल युद्ध लागे दोउ करना । मुष्टि घात अरु घालहिं चरना ॥
मल्ल युद्ध दोउ यहि विधि करहीं । लपटहिं धरहिं झूमिझुकिपरहीं ॥
फिरि फिरि करिबल उठहिं सँभारी।समबल युगल न मानहिं हारी ॥
तब बल्लव भुजबल अतिकीन्हा । मल्ल उठाय डारि महिदीन्हा ॥
करि बड क्रोध धरनिपहँ डारा । जनु सुर वज्र पर्वतन मारा ॥

दोहा–मृतक तासु तनु क्रोधकरि, दीन्हों दूरि पँवार ।
देशदेशके भूप सब, करत बडाई झारि ॥

फिर सुखपूर्वक आकाशमें उठेहुए पार्श्वसे मसलतेहुए कोपयुक्त बल्लवने उसके दोनों चरण पकडकर ॥ २९ ॥ अपने शिर चौतर्फा घुमायकर भूमितलपर पटकदिया । उसके मृतक हो गिरजानेपर सभामें बैठे हुए सब जने ३०

जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दप्रभाषिणः ।
बल्लवं तु ततो राजा बहुमानपुरःसरम् ॥
पूजयामास धर्मज्ञो विराटो हर्षसंयुतः ॥ ३१ ॥

जय जयका शब्द, नमः शब्द, और साधु (धन्य धन्य) शब्द करनेलगे । तब फिर धर्मके जाननेवाले महाराज विराटने अत्यन्त आदर मान पूर्वक आनन्दित मन हो बल्लवका पूजन किया ॥ ३१ ॥

इति श्रीभारतसारे विराटपर्वणि भाषायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४.

चतुश्चत्वारिंशेऽध्याये कीचकानां वधो यथा ।
पाण्डवानाञ्च प्राकट्यं सभायां कौरवैः कृतम् ॥ १ ॥

इस चौवालीसवें अध्यायमें जिसप्रकार कीचक मारागया और कौरवोंकी सभामें पांडव प्रकट हुए यह कथा वर्णन करी जायगी ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

मेघनादवधादूर्ध्वं मासमात्रादनन्तरम् ।
तथा चरति पांचाली सुदेष्णाया निवेशने ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! मेघनादके मरनेपीछे एक मास बीतजानेपर सैरन्ध्री सुदेष्णाके घर उसी तरह बर्त्ततीरही ॥ १ ॥ इस प्रकार वहाँ बसतेहुए कीचकनामसे विख्यात विराटके सालेने उस पतिव्रता, (सती) सैरन्ध्रीका दर्शन किया ॥ २ ॥ अपनी बहनकी टहलनी उस रूपवाली देवगर्भाकी तरह प्रकाशमान और दूसरी देवसदृश द्रौपदीका दर्शन करके ॥ ३ ॥ कीचक कामबाणसे पीडित होगया और उसने उसके प्राप्त करनेकी अभिलाषासे अपनी बहन सुदेष्णाके पास जाकर विनय सहित कहा ॥ ४ ॥ कीचक बोला—हे बहन सुदेष्णा ! आप अपनी सैरन्ध्रीको मेरे भोगनेके लिये मुझे देदीजिये । यह सुनकर उस सुदेष्णाने उसी तरह उत्तर दिया कि महाबली पांच गन्धर्व ॥ ५ ॥ इसके पति गुप्तरीतिसे यमराजके समान इसकी रक्षा करतेहैं यदि आप उसके ऊपर दुष्टबुद्धि करेंगे ॥ ६ ॥ तो वे गन्धर्व आनकर आपको मारडालेंगे इसमें सन्देह नहीं । अत एव पराई स्त्रीके प्रति आपको ऐसी बुद्धि कभी नहीं करनी चाहिये ॥ ७ ॥ स्त्रीके कारणही रावणकी शिरपंक्ति छिन्न हुई अर्थात् शिर कटगये और फिर प्राप्त नहीं हुए । तब उस दुष्टात्मा कीचकने ॥ ८ ॥ कामके वशीभूत होकर बहनकी टहलनी सैरन्ध्रीसे कहा । उसको सुनकर सैरन्ध्रीने कीचकको उत्तर दिया ॥ ९ ॥ हे कीचक ! आप मेरे साथ विनोद (रमण) करनेकी (इच्छा)

मत कीजिये नहीं तो मेरे पाँच गन्धर्वपति आपको मारडालेंगे ॥ १० ॥ यह बात मैं कसम खाकर कहतीहूँ, आप इसमें जराभी झूठ मत समझना। उसकी यह बात सुनकर कीचकने कहा ॥ ११ ॥ हे सैरन्ध्री! यदि पति गन्धर्व बलवान् हैं, तो मैं उनसे नहीं डरताहूँ। इसलिये मैं रातमें तुझे बलात्कार अपने घरको लेजाऊंगा ॥ १२ ॥ अनन्तर कृष्णा (द्रौपदी) ने उसकी कहीहुई सारी बातें भीमसेनसे निवेदन करदीं। तब भीमसेनने नृत्यघरमें उसका संकेत (इशारा) स्वीकार किया॥ १३॥ भीमसेनने कहा—हे सैरन्ध्री! आप कीचकके समीप पहुँचकर यह बात कहिये, कि 'भोजन करनेके निमित्त उत्तम मीठे मोदक लेकर आप देवी सुदेष्णाके नृत्यमन्दिरमें पहुँचिये'॥ १४॥ हे सैरन्ध्री! आप निर्भय रहिये, मैं उस कीचकका नाश कर डालूँगा। तब फिर रात्रिके समय कीचकने काममोहित हो ॥ १५ ॥ भक्ष्य, भोज्य लेकर नृत्यघरमें प्रवेश किया तब वहाँ खडेहुए भीमसेनने उसका हाथ पकडलिया १६

चौपाई।

गहे भीम तब दोउ भुजदंडा। मल्ल युद्ध तहँ भयउ अखंडा॥
करि बल भीम ताहि महि डारा। चला पराय अधम हियहारा॥
मोहि युधिष्ठिर भूप दुहाई। कीचक वधौं जियत नहिं जाई॥
पकरो भीम क्रोध करि धाई। गिरा बहुरि शठ ताल बजाई॥
दोउ महँ हार न कोऊ मानै। कोपि अमित गति युद्धहि ठानै॥
अति बल भीमसेन तब कीन्हा। पटक्यो भूमि कंठ पगदीन्हा॥
मारि दुष्ट प्राणन विनु कीन्हा। मूढ उठाय अवनि तब दीन्हा॥
डारेउ भीम तहाँ बलवाना। परेउ अधम तनु शृंगसमाना॥

दोहा—मारि दुष्ट धरि खोहमें, मनकी व्यथा नशाय।
अर्द्ध निशा सुत पवनको, निज थल पहुँचा जाय॥

फिर महाबलवान् भीमसेनने पुष्पमालायुक्त उसके बाल पकडलिये। फिर भीमसरीखे बलवानोंमें श्रेष्ठ योधासे पराजित कीचकने ॥ १७ ॥ वेग-

सहित अपने बालोंको छुडाकर भीमसेनकी भुजा पकडली। उस काल क्रोधित नरसिंहोंके समान उन दोनोंका बाहुयुद्ध होनेलगा॥ १८ ॥ अथवा दो बलवान् बैलोंके समान परस्पर मिलनेसे उन दोनोंका अत्यन्त दारुण और घोर प्रहार होनेलगा ॥ १९ ॥ वा गर्वित व्याघ्रके तुल्य नाखूँन और दाढरूपी शस्त्रवाले दो मतवाले हाथियोंकी तरह तथा दो वनैले भैसोंकी तरह युद्ध होने लगा ॥ २० ॥ तब उस पराक्रमी कीचकने भीमसेनको पकडलिया और उसने बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमसेनको धक्केसे हटादिया ॥ २१ ॥ अनन्तर उन दोनोंकी बाहुओंका परस्पर शरीरपर आघात होनेपर दोनोंके शरीर मसल गये तब उस युद्धका भयानक शब्द बादलोंके गर्जनेकी समान होनेलगा॥ २२॥ फिर जिस प्रकार प्रचंड वायु वृक्षोंको कंपायमान कर डालता है, उसीतरह भीमसेनने कीचककी कमरपर चरण प्रहार (लातमार) कर बलपूर्वक पकडकर कंपित करदिया ॥ २३ ॥ उस काल कीचक युद्धमें समर्थ होनेपरभी भीमसेनके मसलनेसे दुबला होगया और फिर खून उगलतेहुए कीचकको भीमसेनने भूमिपर डालदिया ॥ २४ ॥ किन्तु इतनेपर भी वेगसहित कीचकने उठकर भीमसेनको पकडलिया और भीमसेनने अबकी बारभी उसको नृत्यघरमें गिरादिया ॥ २५ ॥ तब उसके गिरनेके धमाकेसे वह घर बारंबार काँपनेलगा। फिर उस नृत्यघरमें बडा भारी उसका प्रतिशब्द अर्थात् झनकार शब्द होनेलगा ॥ २६ ॥ फिर जिस प्रकार सिंह मृगको गिराकर डराया धमकाया करता है,ऐसेही भीमसेनभी शिथिल(थके) हुए कीचकको भूमिपर पटककर सवेग धमकी बतानेलगे॥ २७ ॥ फिर भीमसेनने गुस्सेमें भरकर समस्त टूटे अंगवाले और मरेहुए दुष्टात्मा कीचकके हाथ, पैर और मस्तक तोड मरोरकर शरीरमें प्रविष्ट करदिया ॥२८॥ और उसके मांसका पिंड बनाकर देवी (द्रौपदी) के आगे निवेदन किया, फिर रक्तके द्वारा शिलापर इसप्रकार अक्षर ॥ २९ ॥ लिखे कि मैंने कीचकका बध कियाहै यह करके भीमसेनने उसके गहने इकट्ठे करके ॥ ३० ॥ लेलिये और उनको मत्स्यराजके दरवाजेपर डालकर फिर अपने स्थानको

चलेगये तब उन गहनोंको देखकर सब (नगरनिवासी) महान् हाहाकार शब्द करनेलगे ॥ ३१ ॥ रानी सुदेष्णा शोकसे संतप्त होकर करुणा करतीहुई रोनेलगी और लोकमें सब जनोंने यह बात प्रसिद्ध करी कि, इस वीर कीचकको गन्धर्वोंने मारडाला ॥ ३२ ॥ इसके पीछे सब कीचक और उपकीचकोंसमेत महाराजने भी आकर देखा, तो उनको मांसका पिंड दिखाई दिया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर महाराज विराटने उन अक्षरोंको देखकर मन्द मन्द मुसकरातेहुए कहा कि हे जनगण ! आपलोग शिलापर लिखेहुए अक्षरोंको तो बाँचो कि इनमें क्या लिखाहुआहै ? ॥ ३४ ॥ तब वे सब जनेभी उन अक्षरोंको बाँचकर धीरे धीरे मुसकुराये । फिर उसके सब भाइयोंने उस सैरन्ध्री (द्रौपदी) को अपने भाईके साथ जलादेनेके लिये शीघ्रतासे वनमें लेजाना चाहा, किन्तु द्रौपदीके चिल्ली पुकार मचानेसे भीमसेनने भयंकर रूप धारण पूर्वक (वहाँ पहुँचकर) सबको मारडाला ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उस समय गुस्सेमें भरेहुए कालस्वरूप बल्लवने लीलापूर्वकही एकसौ पाँच महाबली कीचकोंका विनाश किया ॥ ३७ ॥ तब (भीमसेनने) उन सब कीचकोंमें एक कीचककी जीभ तालुसे उखाडली, तब उस गूंगेने महाराजके पास पहुँचकर इशारेसे सारा हाल कहा ॥ ३८ ॥ तब महाराज उस गूंगेकी बात चीत सुनकर हँसे और सब सभासदभी धीरे धीरे हँसनेलगे । गंधर्वोंने कीचकको आधीरातके समय विनाश किया ॥ ३९ ॥ इसके पीछे यह सारा हाल सुनकर शकुनि दुर्योधनसे बोला कि विराटके (साले) कीचकको गंधर्वोंने वध किया ॥ ४० ॥ यह बात सुनकर सभामें बैठेहुए द्रोणाचार्यजीने इस प्रकार कहा कि, प्रथम विधाताने यही रचा होगा, क्योंकि ज्योतिषशास्त्रमें ज्योतिषियोंनेभी कथन कियाहै ॥ ४१ ॥ महात्मा भीमके हाथसेही मतवाले कीचकोंकी तथा हिडिम्ब और बकासुरकी मृत्यु होगी ॥ ४२ ॥ सो पुरातन मुनियोंने भीमके हाथसे इनके मरनेकी बात सत्यही कही हैं, द्रोणाचार्यकी यह बात सुनकर शकुनीने कहा ॥ ४३ ॥ शकुनी बोले— हे स्वामी ! आपकी आज्ञासे द्रोण और भीष्म आदि अनेक भाँतिके भोगोंको

भोग रहेहैं,हे राजेन्द्र ! यह सब दुष्टबुद्धि निरन्तर पांडवोंकी बात चीत किया करतेहैं ॥ ४४ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! वे पांडवलोग जाने वनमें कहाके कहाँ पहुँच-गये होंगे, नष्ट होगये अथवा मृत्यु प्राप्त करचुके होंगे, यह द्रोण इत्यादि इस-तरहसे वैरियोंकी बडाई किया करतेहैं और आपके दोषोंका वर्णन करतेहैं ॥ ४५ ॥ अथवा यदि दैव मोहित पांडवगण किसी स्थानमें टिकेहुए होंगे, तो मैं उनके जानलेनेका यत्न बताताहूँ ॥ ४६ ॥ कि जिसके द्वारा वे जान-लिये जायँगे और जानलेनेपर फिर उनको वनमें वास करना पडेगा, उनके प्रकट होजानेका मैं सब तरहसे अति उत्तम मन्त्र (सलाह) कहताहूँ ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! (वह उपाय यही है कि) आप विराटपुरीके निकट पहुँचकर गायोंको पकडिये यदि पांडव वहाँपर होंगे, तो गौ पकडलेनेके अवसरमें अवश्यही आनकर उपस्थित होंगे ॥ ४८ ॥ हे नृपोत्तम ! तब उन जानेहुए पांडवोंको बारहवर्षपर्यन्त फिर वनमेंही बसना पडेगा इसमें संशय नहीं जानना ॥ ४९ ॥ कर्णने कहा—हे महाराज ! आपके बुद्धिमान् मामाने बडी सुन्दर बात कही । हे सुयोधन ! आप उन पांडवोंको जाननेके निमित्त वहाँ गोग्रहण कीजिये॥५०॥कर्णकी वह बात सुनकर भीष्मजीने कहा—यदि आप मेरी सलाह पूछना चाहते हो तो ऐसा काम नहीं करना चाहिये॥५१॥

वीराणां क्षत्रियाणाञ्च हीदं कर्म न युज्यते ।
गोग्रहं नैव कुर्वन्ति चोराः पल्लीनिवासिनः ॥
आगमिष्यन्ति ते तत्र युद्धाय पालने गवाम् ॥ ५२ ॥

यह काम वीर क्षत्रियोंके करनेलायक नहीं, क्योंकि इस कामके कर-नेमें उनकी शोभा नहीं होती । इसके अतिरिक्त गौओंको तो पल्लीनिवासी भील जातिके चोरभी ग्रहण नहीं कियाकरतेहैं बरन् वे इस जगह गौओंका पालन करनेके निमित्त युद्ध करनेको आवेंगे ॥ ५२ ॥

चौपाई ।

तातैं शान्त रहिय कुरुराई । और दूसरो करहु उपाई ॥

इति श्रीभारतसारे विराटपर्वणि भाषायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ४५.

पञ्चचत्वारिंशत्तमे मालिकात्पाण्डुबोधनम् ॥
सुशर्मणा विराटस्य समरश्चेति कथ्यते ॥ १ ॥

इस पैंतालीसवें अध्यायमें मालीसे पांडवोंका जानना और सुशर्माके साथ महाराज विराटका संग्राम यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

इति भीष्मवचः श्रुत्वा पुनः शकुनिरब्रवीत् ।

शकुनिरुवाच ।

वृद्धानां पंडितानाञ्च गृहे वासस्तु युज्यते ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! भीष्मजीकी यह बात सुनकर शकुनीने फिर कहा । शकुनी बोला कि, बूढे और पंडित आदमियोंको घरमें रहना उचित है ॥ १ ॥ क्योंकि वे लोग सभा और घरमें अनेक अद्भुत बातें किया करते हैं । और युद्ध सम्बन्धीबातें तो शूरोंकोभी भयंकर हैं ॥ २ ॥ शकुनीकी यह बात सुनकर वहाँ जो आदमी स्थित थे, वे सब इस प्रकार अनेक सलाहें जानकर महाराज दुर्योधनसे कहनेलगे ॥ ३ ॥ कि हे महाराज ! पहले आप हमारी बात सुनकर पछि यह काम कीजिये अर्थात् प्रथम पांडवोंको देख आनेके लिये अपने किसी दूतको भेजदीजिये ॥ ४ ॥ वह दूत(जिस समय) पांडवोंको जानकर यहां लौट आवे, फिर हम सबको सोच विचारकर यथोचित काम करना चाहिये ॥ ५ ॥ उन सबकी यह बातें सुनकर धर्मात्मा पुरुषोंमें उत्तम भीष्मजीने एक मालीको बुलाकर इस तरह कहा ॥ ६ ॥ हे माली ! जिस स्थानमें पांडव रहतेहैं वहाँ आप दूत बनकर चलेजाइये । मालीने उत्तर दिया कि, हे भीष्मदेव ! मैं उन पांडवोंको किस तरहसे जानूँगा ? और वे पांडव कहाँ टिके हुएहैं ? ॥ ७ ॥ भीष्मजीने कहा—हे माली ! जिस देशमें सुकाल हो, पत्र पुष्पोंकी उत्तम वृद्धि इच्छानुसार मेघोंकी वर्षा, बहुत छायावाले पेड ॥८॥ सर्व दोषहीन बहुतसे

पेड फूल और फलोंसे लदरहेहों और ब्राह्मण लोग अग्निहोत्र तथा वेदशास्त्रोंके पढने पढानेमें निरत रहतेहों ॥ ९ ॥ गायें बहुत दूध देनेवाली और सारे आदमी अपने अपने धर्ममें तत्पर हों और जहाँके आदमी दुःख दरिद्रहीन होकर निरंतर मुदित (प्रसन्न) रहते हों ॥ १० ॥ जहाँ घर घरमें महा महोत्सव दिखाई देवे, जिस देशमें ऐसे चिह्न (लक्षण) हों, उसी देशमें (आप) महाराज युधिष्ठिरका रहना जानलेना ॥ ११ ॥ क्योंकि जिस स्थानमें महाराज युधिष्ठिर वास करतेहैं, वहाँ ऐसे चिह्न हुआकरतेहैं । हे माली ! आप दुर्योधनके इस कामको करही दीजिये ॥ १२ ॥ मालीने भीष्म-जीकी उस आज्ञाको ग्रहण करके मस्तकपर धारण किया और फिर शीघ्र-तासे विराटके नगरको चलागया ॥ १३ ॥ और वहाँ पहुँचकर भीष्मजीने जो कुछ कहाथा सो सब देखा तथा पग पगपर उसको गीत और बाजोंकी ध्वनि सुनाई दी ॥ १४ ॥ बहुतसे सुन्दर महलोंसे शोभायमान उस विराट नगरको देखा और फिर नगरके दरवाजेमें घुसकर महाराज विराटके मन्दि-रको गया ॥ १५ ॥ और इस दूतने वहाँ सभामें महाराज युधिष्ठिरका दर्शन किया कि उस सभामें कंकब्राह्मणके रूपसे युधिष्ठिर विराजमान हैं॥ १६ ॥

चौपाई ।

मालि देखि शुभ माला दीन्हा । धर्मराज अति विस्मय कीन्हा ॥

तब उस मालीने चिकित्सा करी और सुन्दर माला प्रदान की उसको देखकर महाराज युधिष्ठिर बडे अचंभेमें होगये । तब उस मालीने राजा युधि-ष्ठिरको पहचानकर फिर भीमसेनका भी दर्शन किया ॥ १७ ॥ जो कि रसोइयेका वेश बनायेहुए विराटकी महान् पाकशालामें स्थित थे । इसके पीछे कन्याओंको नचानेवाले बृहन्नटाका रूप धरे अर्जुनकाभी दर्शन किया ॥१८॥ फिर गौ और घोडोंकी रक्षामें नियुक्त नकुल सहदेवको देखा, और रानी सुदेष्णाके यहां सैरन्ध्रीरूप धारण करके रहनेवाली द्रौपदीकाभी दर्शन किया॥ १९॥इस तरह पांडवोंको देख कर वह माली लौट आया और उसने हस्तिनापुरमें पहुँचकर सभाके बीचमें बैठेहुए महाराज दुर्योधनसे कहा॥ २०॥

माली बोला-हे नृपोत्तम ! मैंने चारों भाइयों समेत महाराज युधिष्ठिरका दर्शन कियाहै, इसमें जो बात मैंने भूलसे कहीहो, उसको आप क्षमा कर दीजिये ॥ २१ ॥ हे नराधिप ! जिस देशमें पांडव टिके हैं, वहाँ आप नहीं जासकतेहैं, क्योंकि राज्यकी तो बात अलग रही वहाँ जानेसे वे आपके प्राणभी हरलेंगे ॥ २२ ॥ उसकी ऐसी बातें सुनकर राजा दुर्योधनने कोप करके कहा कि, हमको यह सभामें आकर वैरीसे डराताहै, इस कारण इस मालीको बाँधना और ताडना (प्रहार) करना चाहिये । इसके पीछे दुर्योधनने अपनी सारी सेना वहाँ भेजी और फिर सुशर्माको बुलाकर यह आज्ञा दी ॥ २३ ॥ २४ ॥

चौपाई ।

कह्यो सुशर्मा सों नृप ऐसे । जो मैं कहूँ करो तुम तैसे ॥
संग लेहु सब सैन सुहाई । रोकों नृप विराटकी गाई ॥
भूपति अमित सैनसंग दीन्हो । बिदा वेगि तेहि अवसर कीन्हो ॥
गमनी संग चमू चतुरंगा । उठी धूरि छिपगयो पतंगा ॥
चली सेन को वर्णै पारा । बाजे गोमुख शंख नगारा ॥
झाँझ ढोल अरु भेरि सुहाई । मारू राग सहित सहनाई ॥
दोहा-चली चमू चतुरंगनी, गज तुरंगके यूथ ।
रथी महारथी अतिरथी, सुभग पदाति वरूथ ॥

दुर्योधन बोला-हे सुशर्मा ! आप चतुरंगिनी सेनाको संग लेकर शीघ्र चले जाइये और विराटनगरकी दक्षिण दिशामें टिककर ॥ २५ ॥ दुष्टका गोधन ग्रहण करके नष्ट (तितर बितर) कर दीजिये अथवा गोधन छीन लो और दुष्टोंका नाश करो । फिर दूसरे दिनमें मैं भी गोधन ग्रहण करनेके लिये उत्तर दिशामें आपहुँचूँगा ॥ २६ ॥ इस तरह आज्ञा देकर सुशर्माको गोग्रहण करनेके निमित्त भेजा । और वह सुशर्मा विराटनगरको आया ॥ २७ ॥ किन्तु प्रस्थान करनेके समय उसको बहुत बुरे बुरे शकुन दिखाईदिये इस भाँति चतुरंगिनी सेनासमेत उस तेजस्वी ॥ २८ ॥ महाराज सुशर्माने

दक्षिणदिशामें गोधनको ग्रहण किया, तब (यह देखकर) गोपाललोग विराटनगरमें गये ॥ २९ ॥

चौपाई ।

ते नरेश पहँ जाय पुकारे । धेनु वृन्द हर गये तुम्हारे ॥
सेनापति पठवहु बलदाई । शत्रु जीत गौ लेइ छुडाई ॥
गोधन हरोसुशर्मा आई । उठि नरेश चालि लेहु छुडाई ॥
जो न नरेश होहु असवारा । तो नाहिं गोधन मिलहि तुम्हारा ॥
और न सकहि सुशर्महि जीती। सुनु नरेश मन मान प्रतीती ॥
दोहा—क्रोधित ह्वै भूपति कह्यो, सेनापती बुलाय ।
जाहु सुशर्मा वीरसों, सुरभी लेहु छुडाय ॥

और बडी शीघ्रताके साथ महाभयंकर कोलाहल मचातेहुए कहनेलगे कि हे राजन् ! सुशर्माने सारा गोधन छीन लिया और बहुत सारे गोपालोंकोभी मारडाला ॥ ३० ॥ उनकी यह बात सुनकर महाराज विराटको बडा अचंभा हुआ और फिर राजा विराटने कहा कि (इस समय) विराटनगरमें जो रणशूर योधा उपस्थित हैं ॥ ३१ ॥ वे सब मेरी आज्ञानुसार बिना विलंब (अभी) लडनेका निश्चय करके अग्रसर हों अपनी अपनी सेना समेत निकल खडेहों ॥ ३२ ॥ इस प्रकार कहनेपर मदगर्वित बलशाली योधा विराटनगरसे निकले ॥ ३३ ॥ उस समय आठ हजार रथ, एक लाख घोडे, (सवार) और सुवर्ण घंटोंसे शब्दायमान दश हजार हाथी ॥ ३४ ॥ और अनगिन्त पैदल शीघ्रतासे निकले । फिर महाराजने कंकके निमित्त सफेद पताका और सफेद वाहन समेत रथ अर्पण किया ॥ ३५ ॥ तब कंक महाराजसे यह बोले कि हे नृपोत्तम ! आप एक रथ संग्रामशोभी बल्लवको भी देदीजिये॥ ३६ ॥ क्योंकि इस बल्लवने प्रथम कई युद्धोंमें अनेक वीरोंको भग्न (नष्ट) कियाहै कंककी यह बात सुनकर महाराजने कहा, अच्छा यही हो ॥ ३७ ॥ तब बल्लवकोभी सारथी और घोडोंसमेत एक (उत्तम) रथ दियागया ।

फिर महाराज विराट महान् क्रोधयुक्त हो सेनासहित निकले ॥ ३८ ॥ उस काल (रण) दुन्दुभी तथा शंखोंके भयंकर शब्दसे सब पृथ्वी कांपनेलगी और धूरिने भगवान् सूर्यको छिपादिया ॥ ३९ ॥ और महाराज विराटके प्रस्थानकालमें (चारों तरफ) अँधकार छागया वहाँ गोधनको अगाडी कियेहुए सुशर्मा ठहराहुआहै ॥ ४० ॥ इसके पीछे संग्राम करनेके निमित्त योधाओंको तैयार देखकर दोनों सेनाओंमें भय उपजानेवाला संग्राम होनेलगा ४१

चौपाई ।

गाजत गज हींसत हैं घोरा । दुन्दुभि भेरि नाद अति शोरा ॥
शंखनाद पूरे सब कोई । मारु मारु सब दलमहँ होई ॥
द्वन्द्व घंट ध्वनि अति ठहनाई । मारू राग सहित सहनाई ॥
बाजत सेन सेनपर डंका । वर्णि बन्दि जन कहत अतंका ॥
द्विरद यूथ देखत अति भारी । भाँदों जलद घटा जनु कारी ॥
रथ ठट्टके भूमि सब छाये । परै न भूपर तिल छिटकाये ॥
अन्ध धुन्ध रग भयउ भयंकर । नाचत हँसत लेत शिर शंकर ॥
कट कटाहिं जम्बुक रण धावहिं । पियहिं रुधिर पलनाहिं अघावहिं
गिद्ध आदि पक्षीगण धाये । रण महँ भये तृपित मनभाये ॥
उठहिं कबन्ध मुंड विनु धावहिं । धरु धरु मारु मारुगोहरावहिं ॥

दोहा–भैरव भूत पिशाच सब, गावत कारि कारि हेत ।
नाचत चौंसठ योगिनी, रुधिर पियत युत प्रेत ॥

घोर आघात पहुँचानेवाले खड्ग अत्यन्त दारुण मुद्गर और भाँति भाँतिके आकारवाले बाणोंसे भयंकर युद्ध होनेलगा ॥ ४२ ॥ पैदलसे पैदल, रथीसे रथी और सवारसे सवार लडने लगा तथा हाथीपर बैठेहुये नायक हाथीवावालोंसे लडनेलगे । इस प्रकार बराबर द्वन्द्वयुद्ध होनेलगा ॥ ४३ ॥ महाराज विराट और सुशर्मा आपसमें संग्राम करनेलगे । तब उस सुशर्माने एक बाणसे महाराज विराटको मारा ॥ ४४ ॥ इसके पीछे बलवान् सुशर्माने

एक एक बाणद्वारा घोडोंको गिरादिया, और फिर एक बाणसे सारथीको भी पृथ्वीपर डालदिया ॥ ४५ ॥ तब महाराज विराटको मूर्छित अवस्थासे पृथ्वीपर पडाहुआ देखकर महावीर सुशर्माने उनको रथमें डालदिया ॥ ४६ ॥ और फिर गोधनको आगे करके धीरे धीरे जाने लगा, तब महाराज विराटकी सेनाभी अनाथ होकर नगरकी तरफ ॥ ४७ ॥ भागनेलगी, उसको देखकर भीमसेनने महाराज युधिष्ठिरसे कहा कि हे धर्मराज ! मैं आपकी आज्ञाके विना कुछभी नहीं करसकताहूँ ॥ ४८ ॥

अनेन निर्जितः स्वामिन्विराटः शत्रुणा नृपः ।
विलम्बो नात्र कर्त्तव्यो ममाज्ञा दीयतां प्रभो ॥
विराटं मोचयित्वा तु गोधनं च हराम्यहम् ॥ ४९ ॥

हे स्वामिन् ! इस वैरीने महाराज विराटको जीतलिया है, अतएव हे प्रभो ! विना विलम्ब मुझको आज्ञा दीजिये। जिससे मैं महाराज विराटको छुडाकर गोधन भी छीनलूँ ॥ ४९ ॥

इति श्रीभारतसारे विराटपर्वणि भाषायां विराटमूर्च्छाकथनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६.

षट्चत्वारिंश अध्याये सुशर्मणः पराजयः ।
जयो भीमस्य युद्धाच्च नृपमोचनमुच्यते ॥ १ ॥

इस छियालीसवें अध्यायके बीच संग्राममें सुशर्माकी हार और भीमकी जीत तथा महाराज विराटका छूटना यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्ते भीमसेने तु धर्मो वचनमब्रवीत् ।

धर्म उवाच ।

गता गावो विराटश्च नीयते शत्रुकर्षण ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! भीमसेनके इस प्रकार कहनेपर धर्म-

राज युधिष्ठिरने कहा। धर्मराज बोले गायें तो चली गईं और हे शत्रुकर्षण ! अब महाराज विराटकोभी लिये जातेहैं ॥ १ ॥ अत एव महाराज विराट प्राप्त करने योग्य हैं, अर्थात् उनको छुडालाना चाहिये, इस काममें आप आज्ञाकी प्रतीक्षा क्या कररहे हैं ? क्योंकि जिसका अन्न खाया है, और जिनके यहां बहुत दिनों तक रहे हैं ॥ २ ॥ उनकी मन, कर्म वचनसे भलाई करनी चाहिये और तेहरवाँ (अज्ञातवासका) वर्षभी बीतगया, वरन् इसके ऊपर छे दिन औरभी बीत गये॥ ३॥ अत एव हे भीमसेन ! अब आप समरमें अपनी इच्छानुसार संग्राम करसकतेहैं, तब धर्मराज युधिष्ठिरकी यह आज्ञा मिलनेपर भीमसेन अत्यन्त हर्षित हुए॥ ४॥ और फिर उन्होंने वैरीको भय उपजानेवाला सिंहनाद(सिंहकी तरह गर्जन) किया और तब रथको छोड-कर सुशर्माकी तरफ (भीमसेन)दौडपडे॥ ५॥इसके पीछे उन्होंने सरलका पेड उखाडकर हाथीपर प्रहार किया और फिर हाथीके मारनेपर उस वृक्षका चक-नाचूर होगया॥ ६॥तत्पश्चात् लम्बी भुजावाले भीमसेनने हाथीके द्वारा हाथी, रथके द्वारा रथ और घोडोंके द्वारा घोडोंको पृथक् पृथक् मारा॥ ७॥ इस तरह समरमें कोप करतेहुए भीमसेनने अर्द्ध पलमें उसकी (सारी) सेनाका निपात किया और फिर तत्क्षण सुशर्माके निकट जापहुँचे ॥ ८ ॥ तब बडी भुजा-वाले सुशर्मानेभी धीरे धीरे बाणोंद्वारा भीमसेनको ताडन किया, उस समय यद्यपि भीमसेन बाणोंद्वारा भग्नशरीर होगये, अर्थात् शरीरछिन्न भिन्न होगया किन्तु तथापि उन्होंने शीघ्रतासे उसके रथको पकड लिया ॥ ९ ॥ फिर उसके रथको अपने मस्तकपर घुमाकर भूमिपर पटक दिया, इससे उस रथका चकनाचूर होगया और सुशर्मा व महाराज विराट ॥ १० ॥ दोनोंजने रथसे दशदश कोशकी दूरीपर जाकर गिरे। तब गिरनेसे अत्यन्त घबरायेहुए सुशर्माके बाल पकडकर भीमसेन ॥ ११ ॥ महाराज युधिष्ठिरके सन्मुख लेआये और उसका शिर काटनेको तैयार हुए। तब सुशर्मा युधि-ष्ठिरसे इस प्रकार कहनेलगा ॥ १२ ॥ सुशर्मा बोला—हे नृपोत्तम ! आप भीमसेनके यमकी समान उद्योगसे मेरी रक्षा कीजिये अर्थात् इनके हाथसे

मेरे प्राण बचाइये, मैं फिर कभी क्षत्रियोंके पक्षमें अनुचित ऐसा काम आजसे लेकर नहीं करूंगा ॥ १३ ॥

चौपाई ।

त्राहि त्राहि कहि टेर लगाई । मोहि बचाय लेहु नृपराई ॥
दास जानिकै मोकहँ छोडो । दयाकरनसों मुँह मति मोडो ॥
जीव दान प्रभु अब मुहिं दीजे । अपनो बिरद राखि नृप लीजे ॥
तुम हो कृपासिन्धु अनुगामी । बारबार तव चरण नमामी ॥

हे कृपासागर ! मुझको अपना दास समझकर छोड दीजिये । हे दयानिधे ! (आपकी शरण हूँ) युधिष्ठिर बोले भो भो महाबाहु भीम ! अब आप इस सुशर्माको छोडदीजिये ॥ १४ ॥ क्योंकि हम लोगोंका जामातृ (जमाई) है, इसलिये वध करडालनेयोग्य नहीं है । भीमसेनने कहा—हे धर्मनन्दन ! मैं अपने इस जमाइकी केशहानि करूंगा अर्थात् इसके बाल मूँडूँगा ॥ १५ ॥ ऐसा होनेपर इसके सब साले हँसी उडावेंगे, इस तरह कहकर भीमसेनने खड्ग-द्वारा सुशर्माके ॥ १६ ॥ मस्तक और दाढीके बाल आधे आधे मूंडडाले, यद्यपि युधिष्ठिरने इस काममें निषेध (मना) किया किन्तु तोभी भीमसे-नने इस तरह पर सुशर्माका अर्द्ध मुंडन करही डाला ॥ १७ ॥ इसके पीछे सुशर्मा मनमें उदास हो कुरुदेशको चलागया, उसके चलेजानेपर वीर भीम-सेनने धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञानुसार अचेत (बेहोश) विराटको ॥ १८ ॥ अपने रथमें लिटाय लिया और गोधनको अगाडी करलिया, इसी बीचमे महाराज विराटकी मूर्च्छा दूर हुई तब वे जागगये ॥ १९ ॥

कङ्कञ्च बल्लवं चाथ ददर्श स्वरथोपरि ।
ततो विराटः स्वरथे संविश्य च जगर्ज च ॥
सर्वं बलं जितं सम्यक् प्रस्थितः स्वपुरं प्रति ॥

और उन्होंने अपने रथपर कंक तथा बल्लवका दर्शन किया, तब महाराज विराट अपने रथमें प्रविष्ट होकर गर्जने लगे । कि मैंने सम्यक् प्रकारसे सारी सेनाको जीत लिया । इस तरह कहकर अपने नगरकी ओरको चलदिये ॥ २० ॥

चौपाई ।

संग लिये सब निज कटाकाई । चले महीपति शंख बजाई ॥
विजय बाजने बाजन लागे । याचक वृन्द खडें नृप आगे ॥
विविधदानतिनको नृपदीन्हा । पुनिनिजनगरगवन प्रभु कीन्हा॥

इति श्रीभारतसारे विराटपर्वणि भाषायां भीमपराक्रमे दक्षिण-
गोग्रहो नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७.

सप्तचत्वारिंशत्तमे गोषूत्तरविकत्थनम् ।
अर्जुनस्य च शूरत्वं मार्गे गमनमुच्यते ॥ १ ॥

इस सैंतालीसवें अध्यायमें गोग्रहण होनेपर उत्तर कुमारका विकत्थन और अर्जुनका शूरत्व(पराक्रम)तथा मार्गमें गमन यह कथा कहीजातीहै॥ १॥

वैशम्पायन उवाच ।

शृणु राजन्विचित्रं तमर्जुनस्य पराक्रमम् ।
यं श्रुत्वा शूरदेहेषु रोमहर्षश्च जायते ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय! अब आप अर्जुनके उस अद्भुत पराक्रमकी कथा सुनिये । जिसके सुननेपर शूर व्यक्तिका शरीर हर्षके मारे रोमाञ्चित होजाताहै ॥ १ ॥ तत्पश्चात् राजा दुर्योधन, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और सारी सेनाके साथ उत्तर दिशामें गये ॥ २ ॥ और वहाँ पहुँचकर उन्होंने सारी गायोंको हरण करके बहुतसे गोपालोंको मार डाला । तब मरनेसे बचेहुए गोपाल विराट नगरमें गये ॥ ३ ॥ और उस समय उन्होंने महात्मा विराटकी पुरीको सूनी देखकर वहाँसे डरके मारे घबरायेहुए राजभवन (रनवास) में प्रवेश किया ॥ ४ ॥ हे महाराज जनमेजय ! वहाँ वे लोग बडे ऊंचे स्वरसे पुकार करतेहुए कहनेलगे कि हे मातः ! हमारे गोधनको दुर्योधनने उत्तर दिशामें छीनलिया और बहुत सारे गोपालोंकोभी मारडाला ॥ ५ ॥ महारानी सुदेष्णा उनकी यह बात सुनकर उत्तर कुमार और

सारी स्त्रियोंसमेत बाहर निकलआई ॥ ६ ॥ उस समय उत्तर कुमारने अपनी महतारी सुदेष्णासे इस प्रकार कहा कि महाराज विराटने सारी सेनाको जीता और अपने गोधनकोभी पुनः उन लोगोंसे छीन लिया है ॥ ७ ॥ तब फिर यह गोपाललोग ऐसी भयंकर चिल्ली पुकार किसलिये मचारहे हैं ? यह सुनकर सुदेष्णाने उत्तर दिया कि हे पुत्र ! आपके बलवान् पिता तो दक्षिणदिशामें गये हैं ॥ ८ ॥ वहाँ उन्होंने सारी सेनाको जीतकर अपना गोधन भी पीछा लेलिया, किन्तु हे पुत्र ! यह दुर्योधन भी उसी तरह उत्तर दिशामें आया है ॥ ९ ॥ सो यह महाबली, बडे शरीरवाला, पृथ्वीतलपर अजेय (अजीत) राजा दुर्योधन हमको बलात्कार परास्त करके राज्यको भोग करेगा ॥ १० ॥ किन्तु तोभी क्षात्रधर्मके अनुसार यहाँ ठहरे रहनेका विचार नहीं करना चाहिये । हे उत्तरकुमार ! इस अवसरमें हमारी यह पुरी सूनी पडीहै अत एव आप क्या करेंगे ? ॥ ११ ॥ यह बात सुनकर उत्तरने उत्तर दिया । उत्तरने कहा–हे माता ! अपने मनमें धीरज कीजिये, मैं अपना पौरुष (पराक्रम) दिखाऊँगा ॥ १२ ॥ मैं रणाङ्गण (युद्धस्थल) में कौरवोंकी सारी सेनाको विजय करूंगा इस तरह कहनेपर ध्रुवस्थानके गीदडोंने शब्द किया ॥ १३ ॥ तब उस उत्तरने जयशब्द किया और उस गर्वित बालक उत्तरने मातासे कहा ॥ १४ ॥

चौपाई ।

कौतुक समर देखियो मोरा । करिहौं बहुत कहत हौ थोरा ॥
सर्वसैन्यको इकला मारूं । शीश तोर गहि भुजा उपारूं ॥
मोरे रथ नहिं सारथि माई । याही तैं मम जिय घबराई ॥
जो मेरो रथ हाँके कोई । कौरव जियत न छांडहुँ कोई ॥

दोहा–द्रुपद सुता यह बात सुनि, अर्जुनतैं अकुलाय ।
कह्यो बृहन्नट कुँवरका, तुम रथ हाँको जाय ॥

उत्तरने कहा–हे मइया ! मेरे सामने युद्धमें यह भीष्म द्रोणादि कितने हैं ? मैं रणाङ्गणमें अकेलाही सारे कौरवोंका नाश करडालूँगा ॥ १५ ॥

किन्तु एक मात्र मुझको रथ चलानेवाला कोई सारथी दिखाई नहीं देता, उत्तरकुमारकी यह बात सुनकर सैरन्ध्री (द्रौपदी) बोली ॥ १६ ॥ सैरन्ध्रीने कहा—प्रथम मैं इस बृहन्नटको सारथीके रूपमें देखचुकी हूँ मालिनीकी यह सुन्दर बात सुनकर उत्तरकुमार अत्यन्त आनन्दित हुए॥ १७॥ और बोले कि उस बृहन्नटको शीघ्रही बुलाय दीजिये जिससे कि मैं गोहरणके स्थानपर जल्दीसे पहुँचजाऊँ। तब उनके बुलाने-पर वे बृहन्नटभी तत्काल आनकर उपस्थित हुए ॥ १८ ॥ उस काल उत्त-रने अत्यन्त आदर मान करके बृहन्नटसे कहा, हे वीर ! यदि आप महा संग्राम करनेके लिये सारथीका काम करनेमें निश्चल होजावें ॥ १९ ॥ तो मेरे घोडोंको बहुतही शीघ्र चलावें जिससे मैं विना विलम्ब गोहरणके स्थान पर जा धमकूं, और उन सारे कौरवोंको परास्त (जीत) कर अपने गोध-नको छीन लाऊँ ! ॥ २० ॥ बृहन्नट बोले—हे राजकुमार ! यह बात तो सैरन्ध्रीने सच्ची कही कि, मैं सारथीका कर्म (रथचलाना) जानताहूँ, किन्तु (इतनी शंका है) कि रथको विना चलाये मुझको बहुतदिन बीत चुके हैं ॥ २१ ॥ तोभी गायोंके निमित्त आपके रथको चलाऊँगा क्योंकि बालक, बूढे, शव, स्त्री, दुःखीजन और रोगयुक्त इनके निमित्त ॥ २२ ॥ और गाय तथा ब्राह्मणके निमित्त समय क्या करेगा ! बृहन्नटकी यह बात सुनकर उत्तरने कहा ॥ २३ ॥ हे बृहन्नट ! अब आप शीघ्रतासहित मेरे वज्रकी समान दृढ (मजबूत) रथको ले आइये और जो घोडे सर्वोत्तम हों, उनको मेरे रथमें जोतदीजिये ॥ २४ ॥ और फिर उस रथमें जल्दीसे सब अस्त्र शस्त्रोंकोभी रखदीजिये तो यदि सनातनधर्म है तो मैं उनके द्वारा कौरवोंको जीतलूँगा ॥ २५ ॥ उनकी यह बात सुन वह बृहन्नट बहुत आनन्दित हुआ फिर उसने (बहुत अच्छा) कह कर उत्तरकुमा-रकी आज्ञानुसार काम किया ॥ २६ ॥ इसके पीछे हंसवर्ण (सफेदरंग) युक्त, कुलीन, सुवर्णकी किंकिणीद्वारा शोभायमान घोडे अर्जुनका दर्शन करके अत्यन्त हर्षित हुए ॥ २७ ॥ फिर अर्जुन बडे सुन्दर रथको सजा-

कर उत्तरके समीप ले आये और तहाँ उत्तरकुमारसे कहा कि, अहो उत्तर कुमार ! अब आप इस घोडे जुतेहुए रथमें आबैठिये ॥ २८ ॥ अर्जुनकी यह बात सुनकर उत्तरकुमार ज्योंही रथमें बैठने लगे कि त्योंही उनकी छोटी बहने बाला उत्तराने आनकर कहा ॥ २९ ॥ हे भाई ! आप मेरे खेलनेके लिये उत्तमोत्तम वस्त्र लाने योग्य हैं, जो हो अब आप वैरियों पर विजय प्राप्तकर विजयलक्ष्मीसे युक्त होकर आइये ॥ ३० ॥ उसकी यह बात सुनकर उत्तरकुमारने अपनी माताको प्रणाम किया और मइयाके निवारण (मना) करनेपरभी वे नगरके बाहर निकले ॥ ३१ ॥ इसतरह नगरसे निकलनेके समय बाँई तरफसे गधेके रेकनेकी आवाज आई और रथ चलनेपर उसके दाहिनी तरफ मृग आगये ॥ ३२ ॥

चौपाई ।

शकुन देखि नृप हर्षित भयऊ । बृहन्नटासो पुनि अस कहेऊ ॥
रथ हांकहु दुर्योधन आगे । अब विलम्ब होवे केहि लागे ॥
निश्चय विजय हमारी ह्वैहै । पावन यश त्रिभुवनमें छइहै ॥

इन सब शकुनोंको देखकर राजकुमार उत्तर बहुत प्रसन्न हुए और फिर वे अपनी जीत होनेका निश्चय करके बृहन्नटसे कहनेलगे ॥ ३३ ॥ हे सारथे ! आप मेरे रथको शीघ्रतासे वहां लेचलिये, जहां राजा दुर्योधन स्थित है तब रथके वेगसे आगे कौरवोंकी बडी भारी महान् सेना दिखाईदी ॥ ३४ ॥ अर्जुन और उत्तरकुमारने अनेक छत्रोंसे युक्त और अपने अपने चिह्नोंद्वारा अलंकृत और बडी बडी पताकाओंसे शोभायमान सेनाका दर्शन किया ॥ ३५ ॥ उस काल रणधोंसोंके शब्द द्वारा, हाथियोंके बढतेहुए शब्द द्वारा घोडोंके हींसते तथा रथोंकी धूरीके शब्द द्वारा ॥ ३६ ॥ और योधाओंके सिंहनादसे पृथ्वीको कम्पायमान करनेवाला शब्द होनेलगा इसतरहका भयंकर शब्द सुननेपर उत्तरकुमार घबराकर कहनेलगा ॥ ३७ ॥

चौपाई ।

सारथीसन उत्तर कर जोरा । ले चलु भागि भवन रथ मोरा ॥
बार बार तेहि विनयबखानी । एकौ बात न साराथि मानी ॥

उत्तरने कहा—हे बृहन्नट ! आप अब इस पवनवेगवाले रथको और मुझको थामलीजिये क्योंकि मैं रणमें कौरवोंके संग युद्ध नहीं करसकूँगा ॥ ३८ ॥ यह राजपुत्र महावीर, महाबली और महापराक्रमी हैं, इनके अतिरिक्त भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और रविनन्दन (कर्ण) ॥ ३९ ॥ इन सबमें एक एक जनही मुझको पलभरके बीच मारसकताहै. अतएव यदि आप मेरा जीवित रहना चाहतेहैं तो शीघ्रही मेरे रथको हटालीजिये ॥ ४० ॥ तब हे बृहन्नट ! मैं घर पहुँचकर आपको बहुत सारा धन दूँगा । बृहन्नटने उत्तर दिया कि, हे राजकुमार ! ऐसी बात क्षत्रीयोधाके कहनेयोग्य नहींहै ॥ ४१ ॥ क्योंकि जो व्यक्ति गौ लेजानेवाले आदमीके निकटसे भागता है, वह घोर नरकमें चलाजाताहै और आजीवन उसकी निन्दा हुआ करतीहै ॥ ४२ ॥ गौ ले जानेवालोंके निकट और शरणागत व्यक्तिको बचानेके निमित्त तो संग्राम करना उचित है, भागजाना ठीक नहीं है ॥ ४३ ॥ क्योंकि यदि वे जीतगये तो उनको लक्ष्मी मिलतीहै, और यदि रणमें जूझ (मर) गये तो देवांगना प्राप्त होतीहैं यह शरीर तो क्षणभंगुर है अर्थात् जरा देरमें नाश होजाताहै, तब फिर युद्धमें मरजानेका क्या सोच है ? ॥ ४४ ॥ इसके अतिरिक्त जिस समय संग्राम हुआकरताहै, उस काल स्वर्गीय दरवाजोंके किवाड खुलजाया करतेहैं, और यशरूपिणी अप्सरायें हाथमें वरमाला लियेहुए रणस्थल (रंगभूमि) पर नाचती रहाकरतीहैं, प्रारब्धके वश हो संग्राममें बचजानेवाले व्यक्तिके यहाँ जीवित रहनेका यही फल है, अत एव कौन पण्डित पुरुष संग्राममें पहुँचकर फिर पीठ दिखाया करता है ? अर्थात् युद्धसे विमुख हुआ करताहै ॥ ४५ ॥ सूर्यमण्डलको भेदन करनेवाले इस लोकमें दोही आदमी हैं, एक तो योग करनेवाला संन्यासी और दूसरा सम्मुख युद्धमें प्राण त्याग करनेवाला ॥ ४६ ॥ वैरियोंके द्वारा घिरजानेपर शूरवीर जिस जिस स्थानमें

प्राणत्याग करतेहैं उन्होंने यदि कायर हिजडोंकी तरह बात नहीं करी है, तो वे अक्षय लोकको प्राप्त होतेहैं ॥ ४७ ॥

ज्येष्ठपुत्रो विराटस्य शूरः शोभन उत्तरः ।
कौरवैरथ संग्रामं कुरुष्व निर्भयः स्थितः ॥ ४८ ॥

फिर आप तो उत्तम शूर वीर महाराज विराटके ज्येष्ठपुत्र उत्तरकुमार हैं, अत एव आप खडे होकर कौरवोंके साथ निर्भय युद्ध कीजिये ॥ ४८ ॥

इति श्रीभारतसारे विराटपर्वणि भाषायामर्जुनवाक्यं
नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८.

अष्टचत्वारिंशत्तमे कुरूणां पार्थकीर्त्तनम् ।
परस्परं विवादश्च तेषामेव स कथ्यते ॥ १ ॥

इस अडतालीसवें अध्यायमें कौरवोंमें पार्थ (अर्जुन) का कीर्त्तन और उनके बीच आपसमें विवाद (झगडा) होना, यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

इत्यर्जुनवचः श्रुत्वा उत्तरो वाक्यमब्रवीत् ।

उत्तर उवाच ।

वीरमुख्यां युद्धवार्तां जानासि त्वं बृहन्नट ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! अर्जुनकी यह बातें सुनकर उत्तरकुमार कहनेलगे, उत्तरने कहा कि, हे बृहन्नट ! आप वीरप्रधान युद्धकी वार्त्ताके जाननेवाले हैं ॥ १ ॥ किन्तु आप तो नपुंसक होनेके कारण गाने बजाने और नाचनेमें चतुर हैं, मुझको न तो गायोंसे काम है और न कुछ दुर्योधनसेही मतलब है ॥ २ ॥ यदि मैं मट्ठा पीकर भी जीवित रहजाऊंगा, तो गोधनको पुनः प्राप्त करलूँगा, क्योंकि पण्डित जनको जिस किसी प्रकारसे अपनी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३ ॥ अत एव अब शीघ्रही मेरे रथको विराटनगरकी तरफ फेरीये। यदि आपको अपनी जान प्यारी मालूम होती हो, तो शीघ्र मेरे कहनेके अनुसार काम

कीजिये ॥ ४ ॥ फिर वहाँ इस तरह कहतेहुए अर्जुन और उत्तरकुमारने तथा कौरवपक्षीय सेनाने परस्पर देखा ॥ ५ ॥ यह जो नारीरत्न और नर-स्वरूप रथमें बैठाहुआ दिखाई देरहा है, सो यह कौन है ? और किस जग-हसे आया है ? इस प्रकारका सारे कौरवोंको अचंभा हुआ ॥ ६ ॥ योधा और वीरोंके लिये यह काल ही आपहुँचा है, उनकी यह बात सुनकर शकुनी कहनेलगा ॥ ७ ॥ शकुनीने कहा—हे कौरवो ! जो कि आपलोगोंने महाराज विराटका धन हरण करके उनके देशकोभी लूटलिया, इस कारण वे राजा विराटही आपसे मित्रता करनेकी इच्छा कियेहुए अपनी कन्यासमेत आये दीखे हैं ॥ ८ ॥ हे महाबाहो दुर्योधन ! अब आप शीघ्रतासहित (इस कन्या रत्नके संग) अपना विवाह करलीजिये । शकुनीके यह बात करतेही अने-कानेक कुशकुन ॥ ९ ॥ उत्पन्न हुए, तब उस सेनामें उनको देखकर महान् अचंभा हुआ । हे नृपोत्तम जनमेजय ! उस काल उन कौरवोंके कटकमें माँसभक्षी क्रूर पक्षी ॥ १० ॥ कोलाहल मचातेहुए शिरोंपर घूमनेलगे । अतिरिक्त औरभी वनैले (वनवासी) हिंसक जन्तु ॥ ११ ॥ यह सब सेनाके बीचमें आकर अपनी इच्छानुसार क्रीडा करने लगे । हे नृपोत्तम ! इन सब बुरे शकुनोंको देखकर द्रोणाचार्यजीने कहा ॥ १२ ॥ द्रोणाचार्यजी बोले—हे महाराज दुर्योधन ! आप इन औरभी कुशकुनोंको देखिये कि, जो आपके आयुध (हथियार) उज्ज्वल थे, सो अब काले पडगये ॥ १३ ॥ इसके अतिरिक्त उल्कापात (तारे टूटना) निर्घात और दिग्दाह अर्थात् दिशाओंका जलना भी देखिये। घोडे सब रोरहेहैं, सैनिक निर्बल होरहेहैं ॥ १४ ॥ और इस आसमानसे धूल बरस रहीहै, और सूर्य चन्द्रमाकी तरह शीतल होरहेहैं, मैं इन बुरे बुरे शकुनोंको देखकर रणमें वैरीका भय मानता हूँ अर्थात् हम लोग वैरीसे पीडित हो तो कुछ अचंभेकी बात नहीं है ॥ १५ ॥ हे नराधिपति ! इस जगह महाकठिन लडाई होगी । किन्तु आपके साथ अर्जुनको छोडकर और कौन लडसकता है ॥ १६ ॥ अत एव मुझको ऐसाही मालूम होता है कि इस समय अर्जुनकेही संग लडाई होगी ॥ १७ ॥

(महाराज दुर्योधनसे इस तरह कहकर फिर द्रोणाचार्यजी भीष्मपितामहसे बोले कि,) हे नदीज हे गांगेय ! जिनकी ध्वजामें लंकेशवनारि अर्थात् श्रीहनुमानजी विराजित हैं, और जो नगारि (देवराज इन्द्र) के पुत्र हैं, तथा इन्द्रके दिये किरीटको धारण करनेवाले हैं, वह यह अर्जुनजातिके वृक्षसमान नामधारी और स्त्रीवेषधारी अर्जुन अभी हम लोगों और दुर्योधनको पराजिज (जीत) कर गायें लेजायँगे, अत एव आप (बहुत सावधानीसे) दुर्योधनकी रक्षा कीजिये ॥ १८ ॥

चौपाई ।

तब गुरु द्रोण पार्थ पहिचान्यो । सबही सो यहि भाँति बखान्यो॥
शूर सजग ह्वै सब धनुबाना । लेहु शूल औ शक्ति कृपाना ॥
पवन गमन सम अर्जुन आवत । वा बिनु को जगमें असधावत ॥
दुर्योधनते द्रोण बखाना । अब तुम सजग रहो बलवाना॥
भूप भली कछु परत न दीसी । है आवनि यह अर्जुनकीसी ॥

तब भीष्मजी बोले—हे द्रोणाचार्यजी ! यह तो मुझको नारी मालूम नहीं होती; और यदि नारीभी है, तो शुंभनिशुंभका नाश करडालनेवाली देवी होगी, अथवा पुराणपुरुष (भगवान् विष्णु) ने लीलापूर्वक यह मायारूपी शरीर धारण किया है ॥ १९ ॥ या नारीका सुन्दर वेष धरे प्राणोंके हरने और वैरियोंके नाश करनेवाले अर्जुनही हैं. जो कि वनमें परिश्रम भुगतकर यहाँ आपहुँचे हैं, अत एव इनके हाथसे अब आपही कौरवोंकी रक्षा कीजिये ॥ २० ॥ तब कर्णने कहा कि, हे दुर्योधन ! वृद्ध और पण्डितजनोंका घरपर रहनाही ठीक है, क्योंकि बूढे और पण्डितोंका यहाँ (युद्धमें) रहना उचित नहीं ॥ २१ ॥ (कैसे अचंभेकी बात है कि) वे पाण्डव राज्यसे भ्रष्ट, और मुरदेकी तरह होगये, तोभी यह भीष्म और द्रोणादि उन वैरियोंको ही निरन्तर याद किया करतेहैं ॥ २२ ॥ बूढे और पण्डितोंको तो श्राद्ध, दान, होम, विवाह और महो-

त्सवमें जिमाकर तथा पूजा करके वरासनपर विराजमान करदे ॥ २३ ॥
यदि अकेला अर्जुन आभी गयाहै, तो वह क्या करसकताहै ? क्या मेरे
आगे अकेला अर्जुन टिकसकताहै ? ॥ २४ ॥ कर्णकी यह बात सुनकर
कृपाचार्यने कहा हे कर्ण! आप महावीर होकर ऐसी बात कहरहेहैं ?॥२५॥
अकेलेही अर्जुनने क्या क्या काम सिद्ध नहीं किये हैं ? उसी रूपद्वारा देव-
राज इन्द्रके देखते देखते ॥ २६ ॥ सवेग खांडववन जलायकर अग्निको तृप्त
करदिया और अकेलाही अर्जुन सुभद्राको उज्वल रथमें चढाकर ॥ २७ ॥
समस्त यादव और बलभद्रजीके देखते देखते हरकर लेगया और अकेले
अर्जुनने ही हिमाचल पहाडपर जाकर दारुण तपस्या करी ॥ २८ ॥ फिर
किरातरूपी कल्याणकारक श्रीमहादेवजीके निकट पहुँचकर उन देवको
(युद्धसे) सन्तुष्ट किया और अकेले अर्जुननेही उन धूर्जटि शंकरसे तीक्ष्ण
पाशुपत अस्त्र ग्रहण किया ॥ २९ ॥ और पूर्वमें अकेले अर्जुननेही भयंकर
मत्स्यवेध कियाहै तथा प्रथम जब काम्यकतपोवनमें दुर्योधनको बंधुसमेत
॥ ३० ॥ चित्राङ्गदनामक गन्धर्वने पकडालियाथा तो अकेले अर्जुननेही
उनको बन्धुसमेत छुडाया था, उस समय आप कहाँ स्थित थे ?॥ ३१ ॥
फिर राजसूय नामक महान् यज्ञमें वीर अर्जुनने समुद्रपर्यन्तके सारे राजा-
ओंको बलात्कार अपने वशीभूत करलियाथा॥ ३२ ॥और समुद्रमें अकेले
अर्जुननेही शरजालके द्वारा पुल बाँधदिया, कपिराज श्रीहनुमानजीको जीत-
कर राक्षसराज विभीषणसे सुवर्ण (धन) ग्रहण करलाया॥ ३३ ॥ आपने
क्या अर्जुनका पराक्रम कभी नहीं देखाहै ? अब वही अर्जुन आपको बहुत
जल्दी मारडालेगा ॥ ३४ ॥ अश्वत्थामाने कहा, जो व्यक्ति अप्रसिद्ध
(अनजान)वंशमें जन्मताहै वही ऐसी बात कहा करताहै, हे कर्ण ! आप
क्या सब वैरियोंको परास्त करचुकेहैं, जो इस समय ऐसा घमंड कररहेहो ?
॥ ३५ ॥ अश्वत्थामाकी यह बात सुनकर कर्णने कहा कि जिस वंशमें बडे
वीर क्षत्रिय उत्पन्न हुएहैं, उसी वंशमें मैंनेभी जन्म लियाहै ॥ ३६ ॥

यस्यास्ति मे कुले जन्म देवा जानन्ति नेतरे ।
अर्जुनेन च संग्रामं करिष्याम्यद्य निश्चितम् ।
इत्थं मिथो हि जल्पन्तः सर्वे राज्ञा निवारिताः ॥ ३७॥

मैं जिस वंशमें उत्पन्नहुआहूँ, उसको देवताही जानतेहैं, इतर मनुष्य नहीं जानते । किन्तु अब मैं अर्जुनके संग निःसन्देह युद्ध करूंगा । इसतरह सब किसीके बकबाद करनेपर राजा दुर्योधनने सबको रोका ॥ ३७ ॥

इति श्रीभारतसारे विराटपर्वणि भाषायां दुर्योधनसेनापरस्परविचारो नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ४९.

पञ्चशत्तम एकोन उत्तरस्य पलायनम् ।
गोसुखं पार्थशूरत्वं तस्याप्युत्कर्ष उच्यते ॥ १ ॥

इस उनचासवें अध्यायमें राजकुमार उत्तरका युद्धसे भागना, गौओंका सुख अर्जुनका वीरपना और उत्कर्ष यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

उत्तरो भयभीतस्तु रथाद्वेगितरस्तदा ।
शीघ्रमुत्प्लुत्य भूमौ च पलायनमथाकरोत् ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायनजी बोले–हे महाराज जनमेजय ! तदनन्तर उत्तरकुमार भयभीत होकर वेगसहित रथसे पृथ्वीपर कूदपडे और भागने लगे ॥ १ ॥ तब यह देखकर अर्जुनने तत्क्षण उसके पास एकही छलाँगमें जाकर उस भागते हुए राजपुत्र उत्तरको बाँये हाथसे पकडलिया ॥ २ ॥ और उनको फिर रथमें बैठालकर इस तरह कहनेलगे । बृहन्नटने कहा । हे उत्तरकुमार ! आप मेरी बात सुन लीजिये । इन कौरवोंके संग मैं संग्राम करूंगा ॥ ३ ॥ आप केवल धीरज धारण कियेहुए निडर होकर मेरे सारथीका काम कीजिये, तो मैं रणके बीच कौरवोंको जीतकर आपको यश (कीर्त्ति) प्रदान करूँगा ॥ ४ ॥ उत्तरकुमारने कहा । हे बृहन्नट ! आप इन महारथियोंके साथ किसतरहसे संग्राम कर सकेंगे ? क्योंकि द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह और

कृपाचार्यजीको तो देवता तथा असुरभी नहीं जीतसकतेहैं ॥ ५ ॥ अतएव अर्जुनके सिवाय दूसरा कौन आदमी इससे युद्ध कर सकताहै ? क्योंकि प्रथम महाराज द्रुपदके यहाँ मत्स्यवेधमें इकलाही अर्जुन इन सारे कौरवोंको जीतचुकाहै ॥ ६ ॥ बृहन्नटने कहा—हे कुमार ! आप देखिये वह अर्जुन मैंही हूँ, मैं इन सारे कौरवोंको रणमें परास्त करूँगा और गौएँ छुडाकर महाराज विराटको आनन्दित करूँगा ॥ ७ ॥ उत्तरकुमारने कहा—हे बृहन्नट ! आप किसतरहसे अर्जुन हैं ? इसकी मुझे प्रतीति दिखाइये अर्थात् अपने वास्तविक अर्जुन होनेकी बातका विश्वास दिलाइये? क्योंकि पाञ्चाली (द्रौपदी) और पाण्डुके पुत्रोंका आपसमें कभी वियोग नहीं हुआकरता है ॥ ८ ॥ बृहन्नटने कहा—हे कुमार ! आप ब्राह्मण कंकका रूप बनायेहुए तो महाराज युधिष्ठिरको जानिये, बल्लवको भीमसेन और अश्वपालको नकुल समझिये ॥ ९ ॥ तथा गौओंकी रक्षा और पालन करनेवालेको सहदेव,मुझ बृहन्नटको अर्जुन और सैरन्ध्रीको द्रौपदी जानलीजिये ॥ १० ॥ उसी सैरन्ध्रीके लिये भीमसेनने कीचकका वध कियाथा । हे राजपुत्र ! इस प्रकार निश्चय समझकर आप धीरज धारण कीजिये ॥ ११ ॥

दोहा—उत्तरसों सारथि कही, भय न करहु कछु यङ्क ।
सकल निपातौं अरि चमू, रहिये आप निशङ्क ॥

उत्तरने कहा—हे बृहन्नट ! यदि आप (सत्यही) अर्जुन हैं तो अपने दश नाम कहिये अर्थात् उनका अर्थ समझाइये कि किन किन कामोंद्वारा आपके यह दश नाम हुए हैं ? ॥ १२ ॥ यदि यह बात आप प्रत्यक्ष अर्थात् साफ साफ कहदेंगे, तो मुझे विश्वास होजायगा । यह सुनकर अर्जुनने कहा—हे राजपुत्र ! अर्जुन, फाल्गुन, पार्थ, किरीटी, श्वेतवाहन, ॥ १३ ॥ बीभत्सु, विजय, कृष्ण, सव्यसाची और धनञ्जय । जो पुरुष प्रातःसमय उठकर इन दश नामोंका जप कियाकरतेहैं ॥ १४ ॥ उनमें उद्यम और सामर्थ्य होकर रोगका नाश होजायाकरताहै, और वे सारे पापोंसे छूटकर भगवान् विष्णुके (वैण्कुठ) लोकको चले जाया करतेहैं ॥ १५॥ पवित्रताके कारण

मेरा ' अर्जुन ' नाम हुआहै, और जो कि मैं पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें जन्मा हूँ, इस कारण मेरा ' फाल्गुन ' नाम हुआ तथा लडाइमें मेरे द्वारा वैरियोंको भय प्राप्त हुआकरता है, इस लिये मेरा 'बीभत्सु' नाम हुआ ॥ १६ ॥ सब स्थानोंमें विजय होनेके कारण मेरा विजय नाम हुआ है, काला शरीर होनेसे 'कृष्ण' नाम हुआ, और जो कि मैं दाहिने तथा बाँये हाथमें समान भावसे धनुष धारण कियाकरताहूँ ॥ १७ ॥ इसलिये मेरा ' सव्यसाची ' नाम हुआ है तथा धनको जीतनेके कारण मेरा ' धनञ्जय ' नाम हुआ है जयशील होनेके कारण ' जिष्णु ' और जो कि देवराज इन्द्रने मुझको सुन्दर किरीट अर्पण किया, इससे 'किरीटी' हूँ । मेरे रथमें सफेद घोडे जुतते हैं, इसी कारण मेरा 'श्वेतवाहन 'नाम हुआहै । यह मैंने आपसे अपने दश नाम होनेका कारण वर्णन किया ॥ १८ ॥ हे उत्तरकुमार ! अब आप मेरे नपुंसकपनेका कारणभी सच्चा सच्चा सुनलीजिये । कि मैं निवातकवचोंके प्रति मारनेके निमित्त अस्त्र शस्त्र सीखनेके लिये ॥ १९ ॥ जब सब जनोंके साथ देवराज इन्द्रके (स्वर्ग) में पहुँचा, तो वहाँ उर्वशी नामवाली अप्सरा कामसे मोहित होकर मेरे समीप आई ॥ २० ॥ किन्तु जब मैंने उसकी बात नहीं मानी, अर्थात् उसके संग भोग करना स्वीकार नहीं किया, तब उसने लज्जित व क्रोधित होकर मुझको शाप देदिया, उसी शापके प्रभावसे मैं एकवर्षतक नपुंसक रहाकरताहूँ ॥ २१ ॥

चौपाई ।

सारी कथा तुमहि समझाई । यामें झूँठ न जानहु राई ॥
सँभर बैठ अब रथपर भ्राता । आन उपाय बनै नहिं बाता॥

हे राजकुमार ! अब आप मेरे अर्जुन होनेमें कुछ भी सन्देह मत कीजिये और सारथीभावसे विश्वासयुक्त हो रथके सगुणपर बैठकर स्वयं घोडोंकी लगाम पकड लीजिये ॥ २२ ॥ और यह जो शमीवृक्ष दिखाई देरहाहै, वहाँ रथको चलाइये, क्योंकि उस पेडपर हमलोगोंके उत्तम (विचित्र) हथियार रक्खेहुए हैं ॥ २३ ॥ अर्जुनकी यह बात सुनकर उत्तरकुमारने धीरे धीरे

रथ हाँकदिया और उस बहुत छायावाले तथा अनेक खखोडलोंसे युक्त॥२४॥ और सब तरफसे मकरी इत्यादि कीडे मकोडोंके जालोंद्वारा घिरेहुए उस शमीवृक्षके निकट जायकर प्राप्त हुआ, तब अर्जुनने कहा–हे उत्तर! अब आपही इस रथसे उतरकर हमारे हथियार लेआइये ॥ २५ ॥ तब उत्तर शीघ्रता सहित तुरन्त रथसे उतरकर उस वृक्षके निकट ज्यों ही पहुँचे॥२६॥ त्योंही वहाँ क्रोधित साँप और दुष्ट सरीसृप (विषैले हिंसक जीवों) को देखकर भयसे घबरातेहुए शीघ्र अर्जुनके पास लौट आये ॥ २७ ॥ और अर्जुनसे बोले कि आपने मुझे (वृक्षके पास नहीं, वरन्) कालके समीप भेजाथा, यह सुनकर अर्जुन हँसपडे और फिर अपने आपही उस वृक्षके निकट गये ॥ २८ ॥ वहाँ पहुँचकर धनञ्जयने उस शमीवृक्षकी परिक्रमा और स्तुति करके कहा–हे शमी! आप हमारे पापों और वैरियोंको शमन कीजिये ॥ २९ ॥ हे शमीदेव! आप रोगोंको शमन करके समस्त अर्थोंकी सिद्धि कियाकरतेहैं वीर अर्जुनने इसतरह प्रार्थना करके भूमिमें नमस्कार किया ॥ ३० ॥ इसके पीछे वे सारे हथियार स्वयं (अपने आपही) अर्जुनके पास आगये, तब अर्जुनने तत्काल अपना बल अजमाने और नपुंसकत्व व्रतकी समाप्तिके निमित्त एक बाणद्वारा भूमिको ताडना करी ॥ ३१ ॥ उसके प्रहारसे महानदी बाणगंगाकी उत्पत्ति हुई, तब बलवान् अर्जुनने नारीवस्त्र चोली इत्यादिको उतारदिया ॥ ३२ ॥ अनन्तर उस नपुंसकव्रतको विसर्जन (त्याग) करके अर्जुनने स्नान किया और फिर हृदयमें (भक्तभयहारी, असुरारी और सुखकारी मुरारी गोवर्द्धनधारी) भगवान् श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द जगद्वन्द्यको स्मरण करके उस सुंदर रथमें जाविराजे ॥ ३३ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णका तेज आनकर उत्तर और अर्जुनके शरीरमें प्राप्त होगया और फिर केवल चिन्तामात्र करतेही महावीर पवनतनय श्रीहनुमानजीभी तत्काल आनकर प्राप्त हुए ॥३४॥ फिर केवल मात्र अर्जुनके स्मरण करनेपर देवदत्तनामक शंखभी आनकर प्राप्त हुवा । तब तो प्रतापशाली अर्जुनने बडे ऊँचे शब्दसे सिंहकी समान गर्जना करके शंखध्वनि करी ॥ ३५ ॥

उस काल धनुषकी प्रत्यंचा (डोरे) के शब्द, और कपिराज श्रीहनुमानजीके गर्जनेका शब्द, इन महाभयंकर नादोंसे वज्र गिरनेकेसा शब्द हुआ ॥ ३६ ॥ तब वहाँकी भूमि काँपनेलगी, समुद्र मार्गको लुप्त करने लगे, और उस भयंकर शब्दको सुनकर सारे कौरव भयसे घबरागये ॥ ३७ ॥ हे महाराज जनमेजय ! उनमें कितनेही भीष्मपितामहके निकट, कितनेही द्रोणाचार्यके निकट और कितनेही कर्णके पास जाकर 'रक्षा कीजिये ! रक्षा कीजिये !' इस प्रकार कहनेलगे ॥ ३८ ॥ वैशंपायनजी बोले-हे जनमेजय ! वहां उस अर्जुनको केवल मात्र दर्शन करनेपरही कौरवोंकी बडी भारी सेना इस तरहसे घबराहटको प्राप्त होगई ॥ ३९ ॥ दुर्योधन बोले—हे भीष्मजी ! उन पांडवोंके तेरह वर्ष बीतनेमें कितने दिन बाकी रहे हैं । यह बात शीघ्र बतादीजिये ? क्योंकि मैं उनको फिर वनमें भेजूँगा ॥ ४० ॥ भीष्मजीने उत्तर दिया—हे महाराज ! पांडवोंकी (अवधि) के तेरह वर्ष बीतचुके, वरन् उसके ऊपर और भी तेरह दिन निकलगये इसीकारण अब महाबली सव्यसाची अर्जुन प्रकट होगयाहै ॥ ४१ ॥ तब फिर वीरवर अर्जुनने सबसे पहले दो बाण गुरु द्रोणाचार्यजीपर चलाये जो कि द्रोणाचार्यजीके पैरोंके समीप आनकर प्राप्तहुए ॥ ४२ ॥

दोहा—एक गिरो गुरुचरणतर, एक श्रवणढिग आय ।
करि प्रणाम पारथ कही, परो भूमि पहँ जाय ॥
तजे पार्थ पुनि बाण युग, गयो पितामहँ पास ।
परो चरण इक श्रवण महँ, कीन्हो आय प्रकाश ॥

तब उन दोनों बाणोंको गुरु द्रोणाचार्यजीने चरणोंके आगे गिराहुआ देखकर आज्ञा लियेहुए दोनों बाणोंको वहाँसे पीछे लौटादिया ॥ ४३ ॥ द्रोणाचार्यजीने कहा कि महाबली धर्मात्मा अर्जुनने जो यह दो बाण भेजे हैं, सो उसने युद्धमें अपनी गुरुभक्ति दिखाई है ॥ ४४ ॥ इसके पीछे उसी तरहके दो बाण अर्जुनने भीष्मपितामहके प्रति चलाये, उन बाणोंको भीष्मजीनेभी पीछा अर्जुनकेही पास लौटादिया ॥ ४५ ॥ फिर भीष्मजीने राजा

दुर्योधनसे कहा कि, प्रथमसे ही आप और पाँच पांडव थे और सारे कौरव तथा पांडव दो भाइयोंके बेटे हैं ॥ ४६ ॥ इसलिये आपसमें बाँटकर इस पृथ्वीको भोग कीजिये, युद्धसे क्या मतलब है ? तब तो दुर्योधनने महान् क्रोधित होकर कहा ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! मैं इस पृथ्वीको पांडवोंसे हीन करके राज्य भोगूंगा । दुर्योधनके इस प्रकार कहतेहुए किरीटी अर्जुनने उत्तरकुमारसे कहा कि, मेरे रथको गोधनके सामने पहुँचादो । क्योंकि मैं प्रथम गोधनको लेकर पीछे युद्ध करूंगा ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ अर्जुनकी यह बात सुनकर उत्तरकुमार वेगसे रथको गायोंके पास लेगये और वे गायें उस रथका शब्द सुनकर विराटनगरको चलीगई ॥ ५० ॥ अर्जुनके सिंह-समान गर्जन, रथकी धुरीके शब्द, शंखध्वनि और बुद्धिमान् अर्जुनके धनुषकी रज्जुके शब्दद्वारा ॥ ५१ ॥ सारी गायें घबराकर पूँछ उठातीहुई भागीं और तत्काल सब विराटनगरमें जापहुँचीं ॥ ५२ ॥

ततोऽर्जुनो महावीरो रथं संस्थाप्य तत्र वै ।
व्यतिष्ठद्धनुरुद्यम्य उत्तरस्तमभाषत ॥ ५३ ॥

तब महाशूर अर्जुन उस जगह रथको खडा करके और धनुष लेकर खडे होगये । फिर उनसे कुमार उत्तरने कहा ॥ ५३ ॥

इति श्रीभारतसारे विराटपर्वणि भाषायां अर्जुनपराक्रमो नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५०.

पञ्चाशत्तम अध्याये संप्रश्नश्चोत्तरस्य च ।
पार्थस्य धार्त्तराष्ट्राणां संग्रामागम उच्यते ॥ १ ॥

इस पचासवें अध्यायमें अर्जुनसे कुमार उत्तरका प्रश्न और पार्थ तथा धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनादिकोंके संग्रामका प्रारंभ होना, यह कथा कहीजातीहै ॥ १

वैशम्पायन उवाच ।

एवं पार्थः स्थितो राजन् रथारूढश्च संमुखे ।
तदोत्तरेण वीरेण पृष्टः किंचिच्छुभं वचः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् जनमेजय ! इस तरह जब अर्जुन रथमें सवार होकर सामने खडे होगये तब उस समय वीर उत्तरकुमारने उनसे कुछ उत्तम प्रश्न किया अर्थात् कोई अच्छी बात पूँछी ॥ १ ॥ कुमार उत्तरने कहा—हे अर्जुन ! बडे भारी शूर भीष्मपितामह कौन है ? और अश्वत्थामा कौनसे हैं ? व कृपाचार्यजी कौन हैं ? और रविनन्दन राजा कर्ण कौन हैं ? ॥ २ ॥ अभिमानियोंमें प्रधान राजा दुर्योधन कौनसे हैं ? और धृतराष्ट्रके अन्यान्य (दूसरे) पुत्र कौनसे हैं और कौरवोंके मामा शकुनी कौनसे हैं ॥ ३ ॥ आप इस समय उनके रूप और चिह्न दिखाइये । अर्जुनने कहा—हे वत्स ! जिनकी ध्वजा कनकाचल (सुवर्णके पहाड) की समान प्रकाशमान होरही है ॥ ४ ॥ सूर्यकी समान तेजमान रथ और जिसमें सफेद घोडे जुतरहेहैं, सफेद ध्वजा सफेदही छत्र और जिसके चामर भी दोनों सफेद हैं ॥ ५ ॥ और विना इच्छा किये जिनकी मृत्यु (कदापि) नहीं होसकती, भार्गव श्रीपरशुरामजी महाराज जिनके गुरू हैं और जिनको सब देवता पराजित नहीं करसकते, ऐसे यह हमारे भीष्मपितामहजी हैं ॥ ६ ॥ और जिनकी ध्वजाके अग्रभागमें कंचनके दृढ(मजबूत) कलश दिखाई देरहे हैं और जिनका रथ बडा स्थूल और अत्यन्त पुष्ट दिखाई देरहाहै ॥७॥ तथा सफेद घोडे, सफेद पताका और सफेदही छत्र दिखाई देरहाहै, यही हमारे और कौरवोंके (पूजनीय) गुरू द्रोणाचार्यजी महाराज हैं ॥ ८ ॥ और जिनके घोडे पाण्डुवर्ण तथा छत्र भी पाण्डुरंगकाही दिखाई दे रहाहै, यह तीनों लोकोंसे नहीं जीते जानेवाले हमारे गुरूके पुत्र अश्वत्थामाजी महाराज हैं ॥ ९ ॥ और जिनकी ध्वजाके अगले हिस्सेमें सूर्यकी नाईं चमकतीहुई वेदी दिखाई देरहीहैं. अत्यन्त सफेद व सुन्दर पताका और दो छत्र विराजमान होरहेहैं ॥ १० ॥ यह बडे भारी शूर सुबुद्धिमान्, द्रोणाचार्यजीकी बाईं तरफ खडेहुये कृपाचार्यजी महाराज हैं और जिनकी ध्वजाके अग्रभागमें सुवर्णमय दृढ व्याघ्र दिखाई देरहाहै ॥ ११ ॥ तथा अत्यन्त पीली ध्वजा, पीला छत्र व दो चामर दिखाई देरहेहैं और जिनके पीले घोडे

प्रसिद्ध हैं, सो यह रविनन्दन महाराज कर्ण हैं ॥ १२ ॥ यह बडे ही शूर-वीर और धीरजवान् हैं और इनका धनुष बाणभी अत्यन्त दृढ है, अत एव इनके ही संग मेरा महान् दारुण संग्राम होगा ॥ १३ ॥ और जिनकी ध्वजा घोडे और चामर अच्छे लाल लाल दीखरहेहैं और बडवानलकी समान रथ और छत्र भी लालही दिखाई देरहाहै ॥ १४ ॥ सो यही महाबली व पराक्रमशाली राजा दुर्योधनजी हैं और इनकी बाँई तथा दाँई तरफ जो बहुत सारे राजा दिखाई दे रहेहैं ॥ १५ ॥ यह सब निश्चित गिनेहुए महा-राज धृतराष्ट्रके सौ बेटे अर्थात् दुर्योधनके भाई हैं । मैंने आपके (पूछनेके अनुसार) आपसे इन सब वीरोंका वृत्तान्त वर्णन किया। यह सबही महान् दारुण वीर हैं ॥ १६ ॥ हे उत्तर ! अब आप मेरे रथको द्रोणाचार्यजीके निकट लेचलिये, क्योंकि इस समय आकाशमण्डलमें सारे देवता मेरे और गुरू द्रोणाचार्यजीके संग्रामका तमाशा देखनेको उपस्थित हुएहैं । तब फिर अर्जुनने गुरूजीको गिरानेके लिये दो बाण चलाये ॥ १७ ॥ १८ ॥ तब गुरू द्रोणाचार्यजीने अपने पैने बाणोंसे अर्जुनके उन बाणोंको काटडाला फिर गुरुने शिष्यको ताककर बाणपूरक (बाणोंका समूह) चलाया ॥ १९ ॥

चौपाई ।

हांक मारि यह वचन सुनयो । समरहु पार्थ द्रोण अब आयो ॥
अस कहि गुरु कोदण्ड चढायो । होहु सजग कहि बाण चलायो ॥
द्रोण विशिख यहि भाँतिचलायो । भूमि अकाश बाणतें छायो ॥
ते शर पार्थ निमिष महँ काटे । दिशि अरु विदिश बाणते पाटे ॥
कोपि द्रोण शर पूरक मारा । किये बाण अर्जुनके क्षारा ॥

दोहा-मृत्यु अस्त्र लै द्रोण, कीन्हो तुरत प्रहार ।
वायुवेगकी सदृश सो, चला कर फुंकार ॥

उन बाणोंके जालको अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा काटकर सौ २ खण्ड-कर दिया, तब तो द्रोणाचार्यजी (महान्) क्रोधित हुए और फिर गुस्सेमें

भरे हुए गुरू द्रोणाचार्यजीने उस अर्जुनके विनाशार्थ दुष्ट शरपञ्चकछोडा ॥ २० ॥ उसको छोडा हुआ देखकर शिष्य अर्जुनने कहा। अर्जुन बोले— भो गुरो! आपने मुझको वधकर डालनेके लिये यह शरपंचक (पांचबाण) चलायाहै ॥ २१ ॥ सो यह आपके बाण विफल (वृथा) हो जायँगे, कारण कि मैं यहाँ धर्मके निमित्त आयाहूँ, अधर्मके द्वारा तो कभी विष्णु भी नहीं जीतसकते, यह निश्चय है ॥ २२ ॥ यह कह कर अर्जुनने अपने पांच बाणोंके द्वारा उन पांच बाणोंको दश टुकडोंमें काटडाला और फिर बाणसे गुरू द्रोणाचार्यजीकी छातीको वींधा ॥ २३ ॥

चौपाई।

तब हि द्रोण गुरु मूर्छित भयऊ। स्यन्दन डारि सूत लै भयऊ॥
हाहाकार मच्यो तब भारी। पुनि अर्जुन सब सैन विडारी॥

उस (बाणके द्वारा) द्रोणाचार्यजी महामूर्छाको प्राप्त होकर रथमें गिर गये। तब सारथी उनको रणस्थलसे बाहर लेगया॥ २४ ॥ इस तरह द्रोणाचार्यजीको हटायकर फिर अर्जुन भीष्मजीके पास पहुँचे और बोले कि, हे महावीर पितामह! आप निरन्तर धर्मके मार्गमें स्थित रहनेवाले हैं ॥ २५ ॥ आपनेही धर्मानुसार हमारे सब पूर्वपुरुषोंका पालन पोषण किया, किन्तु हे नाथ! (इससमय) आप यह क्या निन्दित दुष्ट कर्म करनेको उतारू हुए हैं? ॥ २६ ॥ हे स्वामिन्! धर्मसागर आप सरीखे व्यक्तिके देशमें अधर्मकारी पापात्मा भीलजातिके तस्कर (चोर) भी जिस कामको नहीं करना चाहते ॥ २७ ॥ ऐसा निन्दित काम गायोंका हरण करना कभी आपके करने लायक नहीं है, क्योंकि यह बात आप स्वयंही कहचुकेहैं कि अधर्मके काममें प्रवृत्त होनेवालोंकी जीत (कदापि) नहीं होसकती॥२८॥ भीष्मजीने कहा—हे वत्स! यह आपने सत्य बात कही मुझको बहुत भाती है, किन्तु साधूजन संगके दोषसे दुष्ट कामोंको करनेलगजाया करतेहैं ॥२९॥ मैं यहाँ दुर्योधनके प्रसंगमें गायोंके हरनेको इसतरह आयाहूँ कि, जिसतरह रोगके प्रसंगमें अपने कलेवर (देह) को जलाना पडताहै ॥ ३० ॥ अतएव

अब आप यहाँ अपनी इच्छानुसार युद्धका काम कीजिये। तब अर्जुनने उनकी आज्ञासे एक बाण छोडा ॥ ३१॥ उस बाणसे महात्मा भीष्मजी भी रथमें गिरगये तब शत्रुके नाश करनेवाले अर्जुन कर्णपर जापहुँचे ॥ ३२ ॥ तब योथा कर्ण कहनेलगा। हे महामते! आप मेरी बात सुनिये। कर्ण बोला हे अर्जुन! आप महावीर और धर्ममार्गमें टिकेरहनेवालेहैं ॥ ३३ ॥ अतएव शास्त्रके धर्मानुसार आपकी विजय अवश्य होगी इसमें सन्देह नहीं किन्तु मैं इस समय अधर्मके द्वाराभी आपसे संग्राम करूंगा ॥३४॥ कर्णने इसतरह कहकर अर्जुनको मारे बाणोंके वींधडाला, और तबतो महावीर अर्जुननेभी महाक्रोधित होकर अपने बहुतसे बाण छोडे ॥ ३५ ॥

चौपाई।

ते सब विशिख कर्ण पुनि काटे। लाघव शर पारथ पर छाँटे॥
आवत देखे बाण अपारा। अर्जुन अग्नि बाण तब मारा॥
कर्ण बाण जारे सब आगी। लागे जरन सेन सब भागी॥
वरुण बाण तब कर्ण चलायो। क्षण भीतर सब अनल बुझायो॥

तब कर्णने अर्जुनके उन बाणोंको शीघ्रतासे काटडाला और फिर अदृश्य होकर पाँच बाणोंद्वारा अर्जुनके ललाटको वींधदिया ॥३६॥ उन बाणोंके प्रहारसे वह महावीर अर्जुन रथमें गिरे और फिर उन्होंने उठकर अपने बाणोंसे कर्णको वींधडाला ॥ ३७ ॥ फिर कर्णनेभी बाणोंके वेगसे किरीटी (अर्जुन) को वेधन किया, इस तरह युद्ध उपस्थित होनेपर बाणोंसे ढक-जानेके कारण सूर्य दिखाई नहीं देनेलगे ॥ ३८ ॥ अर्जुनने मारे बाणोंके वहाँ अन्धकार करदिया, जिससे आपसमें कोई वीर एक दूसरेको नहीं देख सका ॥ ३९ ॥ उस अन्धकारको देखकर कर्णने कहा। कर्ण बोला—हे वीर! आपने सूर्यको ढकनेके लिये जो कर्म साधन किया है ॥ ४० ॥ उसको मैं पहलेही जान गया था अत एव मैं आपको पलायन करने(भागने) वाला समझताहूँ। कर्णके इस तरह बकवाद करतेहुए शब्दके चिह्नद्वारा उन अर्जुनने॥४१॥ अत्यन्त लाघवताके सहारे एक बाण द्वारा कर्णके तालुको

वींधडाला और दश बाणोंके द्वारा सादर उसकी छातीको वींधा ॥ ४२ ॥ उन बाणोंके आघातसे रविनन्दन कर्णभी भूमिपर गिरपडे। तब महावीर अर्जुनने कर्णको धराशायी अर्थात् पृथ्वीपर गिराहुआ देखकर ॥ ४३ ॥ वह शरान्धकार (बाणोंका अँधेरा) दूर किया फिर एक बाणसे (कर्णके) सारथी और दो दो बाणोंद्वारा उसकी ध्वजा और छत्रको काटकर पृथ्वी पर डालदिया ॥ ४४ ॥

दोहा-अति संकट भा कटकमहँ, सेना चली पराय।
तब अर्जुन रणभूमिमहँ, गरज्यो शंख बजाय ॥

इसके पश्चात् परवीर नाशक अर्जुनने अश्वत्थामाके निकट पहुँचकर धनुषकी प्रत्यंचाका भयंकर शब्द किया और फिर (इस तरह) कहा ॥ ४५ ॥ हे गुरुभाई ! हे गुरुसखा हे महामते! जिस तरह श्रीद्रोणाचार्यजी महाराजसे अपनी विद्या सीखी है, उसी तरह मैंनेभी सीखी है ॥ ४६ ॥ इस समय दोनोंपर गुरूजीका प्रेम देखा, मैं तो आपके पिता द्रोणाचार्यका अत्यन्त प्यारा चेला हूँ और आप भी उनके अत्यन्त प्यारे पुत्र हैं ॥४७॥ इस प्रकार अर्जुनके कहते कहतेही अश्वत्थामाने भाँति भाँतिके बाणोंद्वारा अर्जुनकी छातीको वींधडाला, किन्तु कपिध्वज अर्जुन(जराभी) कम्पित न हुए ॥ ४८ ॥ तब महावीर अर्जुनने बाणों द्वारा आच्छादित करके फिर शीघ्रतासहित एक बाणसे गुरुपुत्र अश्वत्थामाको गिरादिया ॥ ४९ ॥ इसके पीछे अश्वत्थामाने पुनर्वार वेगसहित उठकर बाणोंद्वारा अर्जुनके नाभि-देशको विद्ध किया तथापि अर्जुन विह्वल (विचलित) नहीं हुए ॥ ५० ॥ फिर महाबलवान् अश्वत्थामाने लघुता धारण करके अर्थात् अत्यन्त शीघ्रतासहित सोनेकी पुंखके बाणद्वारा ध्वजाके अग्रभागमें स्थित कपिकुञ्जर श्रीहनुमान्‌जीको ॥५१॥ महागाढ प्रहार करके मारा। तब हनुमान्‌जी हँसते हुए कहनेलगे। श्रीहनुमानजी बोले–हे महोदय ! आप बूढे ब्राह्मणके पुत्र मेरे रुँवेंके अग्र भागकोभी ॥ ५२ ॥ नहीं काटसके, अतएव धनुषधारी आपके बलको मैंने भली भाँति जानलिया । श्रीहनुमान्‌जीकी

यह बात सुनकर द्रोणनन्दन अश्वत्थामा महान् क्रोधयुक्त हुआ ॥ ५३ ॥ फिर कपिराज हनुमान्जीको मारडालनेकी इच्छासे उसने शूल छोडा तब अर्जुनने उस आतेहुए त्रिशूलको (बाणोंद्वारा) काटकर आठ टुकडे करदिये॥५४॥ उस त्रिशूलके टूटफूटकर व्यर्थ होजानेपर अश्वत्थामाने हनुमान्जीके मारनेको हाथमें बाण लिया किन्तु कुपित अर्जुनने उस बाणकोभी काटडाला ॥ ५५ ॥ तब बाणके कटजानेपर ब्राह्मण अश्वत्थामाकी आँखें लाल लाल होगईं। उस काल महाबली हनुमान्जी भाँति भाँतिसे उसका ठठ्ठा करनेलगे॥५६॥तब तो अश्वत्थामाने (महाक्रोधित होकर)हनुमान्जीका नाशही करडालनेके लिये नारायणबाण चलादिया, जिसका निवारण नारायण बाणके सिवाय दूसरा बाण नहीं कर सकताथा ॥५७॥ उस नारायणास्त्रके मुखसे क्रूर अग्नि निकलनेलगी और उस अग्निने आकाशको आवृत कर घेर लिया तब वह बाण कपिराज श्रीहनुमान्जीके समीपको गया ॥ ५८ ॥ तब उस समय वीर अर्जुनने नारायणनामवाला अस्त्र छोडकर फिर अश्वत्थामाके बाणको अपने बाणसे ढकदिया ॥ ५९ ॥

नारायणास्त्रे उभये संवृते विजयेन च ।
पुनरन्यं शरं यावन्मुमोच द्रोणनन्दनः ॥
तावत्तु पञ्चभिर्बाणैर्विद्धो हृदि पपात च ॥ ६० ॥

इस तरह अर्जुनने दोनों नारायणास्त्रोंको एकत्र कर लिया इसके पीछे फिर ज्योंही द्रोणनन्दन अश्वत्थामा दूसरा बाण छोडनेलगा कि त्योंही अर्जुनने पांच बाणोंसे उसकी छाती वींधडाली जिससे वह (पृथ्वीपर) गिर पडा॥६०॥

इति श्रीभारतसारे विराटपर्वणि भाषायां अश्वत्थामामूर्च्छनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५१.

एकपञ्चाशत्तमे च कुरूणामजयो जयः ।
पार्थस्योत्तरपित्रोश्च संवादस्त्विह कथ्यते ॥ १ ॥

इस इक्यावनमें अध्यायमें अजय कौरवोंका पराजय (हारजाना) अर्जुनकी विजय और उत्तर तथा उनके पिताका संवाद यह कथा कहीजाती है १॥

वैशम्पायन उवाच ।

एतस्मिन्पतिते भूमौ द्रोणपुत्रे कृपस्तदा ।
कोपाविष्टः शरैः षड्भिर्विव्याध हृदि चार्जुनम् ॥ १॥

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाजीके धराशायी होजानेपर कृपाचार्यजी अत्यन्त क्रोधयुक्त हुए और उन्होंने छः बाणोंके द्वारा अर्जुनकी छातीको वींधा ॥ १॥ किन्तु उन बाणोंको काटकर अर्जुनने सौ बाणोंसे कृपाचार्यजीको विद्ध किया और उन बाणोंके आघातसे मूर्च्छित होकर वे पृथवीपर गिरपडे ॥ २ ॥ उस समय राजा दुर्योधन सब योधाओंसे बोला—हे वीरो ! आप लोग अकेले अर्जुनको नहीं जीतसके ॥ ३ ॥ हे कर्ण ! आपके चाप (धनुष) पुरुषार्थ, बल और पराक्रमको धिक्कार है, जो हो अब आप सब वीर एकत्र मिलकर अर्जुनको पकडलीजिये और फिर मारडालिये ॥ ४ ॥ राजा दुर्योधनकी आज्ञा मिलतेही सारे राजा मिलगये । यथा भगदत्त, कलिंग, सोमदत्त और जयद्रथ ॥ ५ ॥ तथा धृतराष्ट्रके एकसौ बेटेभी आपसमें मिलगये । यह सब इकट्ठे होकर अर्जुनकी तरफ दौडपडे और भाँति भाँतिके अस्त्र शस्त्रोंसे मारनेलगे ॥ ६ ॥ तब महाबलवान् अर्जुनने उनके बाणोंद्वारा अपने रथको छाया (ढका) हुआ देखकर अनेक शस्त्रोंसे उस बाणोंके जालको काट डाला ॥ ७ ॥ हे जनमेजय ! उन दुर्योधनके भेजेहुए अधर्मके वशीभूत राजाओंको तरह तरहके करोड परिमित अस्त्रोंद्वारा नाश करडालनेमें अर्जुन समर्थ हुए ॥ ८ ॥ फिर महावीर अर्जुनने मोहन अस्त्र धारण किया और उसके द्वारा सबको मोहित करना चाहा । यद्यपि उनको वैसेही मार सकतेहैं, तथापि अर्जुनने किसी कामकी सिद्धिके अर्थ उनको नींद उत्पन्न करनेवाले मोहनास्त्रको शीघ्रसे चलादिया ॥ ९ ॥ उस अस्त्रके छोडतेही सारे राजा रथोंमें, हाथियोंपर, घोडोंपर और भूमिपर सोगये तथा यथावत् अपने अपने छत्र चाम-

रादि चिह्नोंसमेत तसबीरकी तरह वेसुध होगये ॥ १०॥ इस प्रकार जब वे सब मोहित अर्थात् नींदके वशीभूत होकर वहां तसबीरकी तरह होगये तब अर्जुनने शीघ्रतासहित उत्तरसे कहा ॥ ११ ॥ हे उत्तरकुमार! अब आप रथसे उतरकर अपनी बहनके माँगेहुए इनके विचित्र वस्त्रोंको निडर होकर उतारलीजिये ॥ १२ ॥ अर्जुनकी यह बात सुनतेही उत्तरकुमार रथसे उतरे और उन लोगोंके बहुमूल्य वस्त्रोंको उतारलिया ॥ १३ ॥ फिर उस समय अर्जुनने रुधिरमें भीजेहुए बाणद्वारा उन सब राजाओंपर यह अक्षर लिखे ॥ १४ ॥ मुझ कृपालु अर्जुनने दयाके वशीभूत हो यहाँ आपलोगोंके प्राण नहीं लेकर आपका सारा यशही हरण कियाहै। इस तरह अक्षर लिखनेपर अर्द्धचन्द्राकृतिवाले बडे बडे बाणोंद्वारा ॥ १५ ॥ अर्जुनने उनके शिरोंके आधे बाल और चुटिया तथा गहनोंको काटडाला और फिर एक महापैने बाणसे उनके गलेपर एक लकीर खेंचदी ॥ १६ ॥ इसका हेतु यही है कि मैंने कृपाके वशीभूत होकर आप लोगोंका गला नहीं काटा। इसके सिवाय भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य इत्यादि तथा अश्वात्थामा और राजा दुर्योधन ॥ १७ ॥ इन सबको बडा और भारी भर कम समझकर ही मैंने कुरूप नहीं किया अर्थात् इनके बाल और चुटिया इत्यादि नहीं काटी. क्योंकि मैं इनको देवतास्वरूप जानताहूँ अत एव यह मेरे सदा मान्य और पूज्य हैं ॥ १८ ॥ इसके पीछे (महावीर) अर्जुन सिंहसमान गर्जतेहुए नगरकी तरफ चले और उन्होंने महासंग्राममें सारे वैरियोंको परास्त(जीत) कर अपने देवदत्तनामवाले शंखको मुखसे पूर्ण किया उसकी ध्वनि करी १९

चौपाई।

देवदत्त जब पार्थ बजायो। सुनि आनन्द सेनमें छायो॥
जय जय कार करै सब भारी। अर्जुन राखि लिये वनवारी॥

तत्पश्चात् अर्जुनने (उसी) शमीवृक्षके पास पहुँचकर उन सारे हथियारोंको वहाँ पहलेकीही तरह रखदिया। और फिर (पवननन्दन) श्रीहनुमानूजी महाराजसे सन्मति करके बार बार प्रणाम किया ॥ २० ॥ और उन

कपिराजसे पुनर्वार आनेकी प्रार्थना करके बिदा करदिया । उनके चलेजानेपर वीर अर्जुनने उत्तर कुमारको रथपर बैठालिया ॥ २१ ॥ और फिर स्वयं वस्त्रोंद्वारा बनायेहुए स्त्रीरूपधारी सारथी हो नगरमें घुसे ॥ २२ ॥ और फिर दूतको यह सिखाकर महाराज विराटके पास भेजदिया कि कुमार उत्तरने कौरवोंके देखते देखते उनकी सारी सेनाको जीतलिया ॥ २३ ॥ इस तरह सिखा समझाकर दूत भेजागया तब वह दूत महाराज विराटके पास पहुँचा और जिस प्रकार इसको अर्जुनने सिखाया था, वह सब ज्योंका त्यों उनसे कहदिया ॥ २४ ॥ उस दूतकी यह बात सुनकर सभामें बैठेहुए सब जनोंसमेत महाराज अत्यन्त हर्षित हुए और फिर गर्व करतेहुए कंकसे कहनेलगे ॥ २५॥ हे कंक ! इस समय उत्तरकुमारने विनाही सेनाके प्रथम गोधनको यहाँ भेजकर फिर कौरवोंकी सारी सेनाको जीतालिया ॥ २६ ॥ जिन सब भीष्मपितामहआदि धर्मपण्डित कौरवोंने पहले सारे पांडवोंको परास्त करदियाथा उन सबको रणस्थलमें मेरा पुत्र लीलापूर्वक ही जीतआया ॥ २७ ॥ तीनों लोकमें विख्यात मेरी समान दूसरा राजा इस भूतलपर नहीं है, जिसके पुत्रने देवताओंसे अजीत सब कौरवोंको जीतालिया ॥ २८ ॥ उसी समय पाँसे खेलते कंक (युधिष्ठिर) हँसपडे और फिर उन्होंने महाराजको दुःखदेनेवाली (यह) बात कही ॥ २९ ॥

दोहा–विजय बृहन्नट जेहि कटक, सो किमि वृतो जाय ।
जुरै युद्ध संग्राम थल, कालहु देइ भगाय ॥

चौपाई ।

इतनी सुनत भूप उर जरेऊ । राते दृग कारि अति रिस भरेऊ ॥
तत्क्षणही नर नाह विराटा । हन्यो कंक ऋषि पंस ललाटा ॥

कंकने कहा–हे राजन् ! जिस युद्धमें महाबल और पराक्रमशाली बृहन्नट चलाजाय, उस जगह अवश्यही विजय हुआ करतीहै, इसमें संशयही किस बातका है ॥ ३० ॥ तब महाराज विराटने महान् क्रोधित होकर

पासोंको फेंका; तिनमें एक फाँसा कंकके पैरपर लगकर वहाँसे उछला और उनके (कंकके) माथेमें जा लगा॥ ३१॥ उसके लगनेपर कंकके माथेसे खूँन बहनेलगा तब उसी समय उन्होंने मालिनी (सैरन्ध्री द्रौपदी) से पानी माँगा ॥ ३२ ॥ फिर वह मालिनी पानी लाकर ज्योंही उनके सामने बैठनेलगी कि त्योंही उसने धर्मराज युधिष्ठिरके माथेपर खूँन देखा ॥ ३३ ॥ तब उस खूँनको डरके मारे घबराईहुई मालिनीने जलके एक बरतनमें लेलिया क्योंकि उसने सोचा यदि इस खूनको इस समय भीमसेन अर्जुन देखलेंगे ॥ ३४ ॥ तो वे तत्काल महाराज विराटके वंशका अन्त (नाश) करडालेंगे, जिनके घरमें हम लोगोंने बहुत दिनों अर्थात् एक वर्षपर्यन्त निवास किया है ॥ ३५ ॥ उनका तो निरन्तर मंगलही होवे, इस तरहका विचार करके मालिनी घबरागई । तब दुर्बुद्धि विराटने क्रोधितहोकर मालिनीसे कहा ॥ ३६ ॥ हे मालिनी ! तैंने यह कंकका खून इस बरतनमें क्यों रक्खा है ? इस प्रकार तरह तरहके वचनरूपी बाणोंसे वह उस मालिनीको वींधने लगा ॥ ३७ ॥ उनकी ऐसी बातें सुनकर सैरन्ध्री बोली—हे महाराज ! आप इस समय वृथा कोप क्यों कररहेहैं ॥ ३८ ॥ मैंने जिस लिये इनके खूनको बरतनमें रखलियाहै, उसका कारण सुनिये इन कंकका रुधिर जिस देशमें गिरेगा वहाँ ॥ ३९ ॥—

चौपाई ।

भूतल रुधिर परै जो येहूं । द्वादश वर्ष न वरसे मेहू ॥
यह कहिं पुनि निज भवन सिधाई । पर विराटके मन नहीं आई॥

दुर्भिक्ष (अकाल) मृत्यु (महामारी) और अनावृष्टि होगी अर्थात् पानी नहीं बरसेगा इस बातमें सन्देह मत करना । इस तरह कहकर फिर मालिनी अपने भवन (घर) को सिधार गई ॥ ४० ॥ हे राजन् ! उसी अवसरमें वहाँ उस सभामें बृहन्नटसमेत उत्तरकुमार आये और फिर उत्तर धर्मनन्दन युधिष्ठिरका ॥ ४१ ॥ दर्शन करके नमस्कार पूर्वक खडे होगये । तब महाराज युधिष्ठिरने भी अशीश देकर उनकी बडाई करी । फिर उत्तर

कुमार डरेहुए आदमीकी तरह युधिष्ठिरके पास पहुँच ॥ ४२ ॥ प्रीतिसे नम्र होकर बार बार प्रणाम करनेलगे, और वारवार उनके पैरोंमें झुककर 'रक्षा करो ! रक्षा करो' इस तरह कहनेलगे ॥ ४३ ॥ धर्मनन्दन युधिष्ठिरके प्रति अपने पुत्रकी ऐसी नम्रता देखकर महाराज विराट बडे अचंभेमें हुए और विचार करनेलगे ॥ ४४ ॥ कि यह उत्तरकुमार क्या मेरे धोखेमें कंकको वारंवार प्रणाम कररहेहैं ? या श्रेष्ठ ब्राह्मण समझकर कररहेहैं? अथवा इसको बूढा समझकर ऐसे नमस्कार कररहेहैं ? ॥ ४५ ॥ अथवा कौरवोंकी सेना देखकर इस मेरे बेटेको भ्रम होगयाहै ? इस प्रकार अचंभेमें भरेहुए महाराज विराटसे उनके बालक उत्तरने कहा ॥ ४६॥ उत्तर कुमार बोले—हे पिताजी इन (माहात्मा) कंकके माथेपर यह खूँन कैसा दिखाई देरहाहै ? हे तात ! मालूम होताहै कि आप अवश्य अधर्मयुक्त हुएहैं इसमें संशय नहीं ॥ ४७॥ तब अपने पुत्रको इसतरह विह्वल (घबरायाहुआ) देखकर राजा विराटने कहा, हे पुत्र ! यह क्या (तमाशा) करते हो ! और ऐसे घबरा क्यों रहेहो सो तो बताइये ॥ ४८ ॥

इति नानावदन्तं तं पितरं ह्युत्तरः करे ।
धृत्वाप्युत्थाय चैकान्ते नीत्वा सर्वं न्यवेदयत् ॥ ४९ ॥

इस तरह अनेक बातें कहते हुए पितका हाथ पकडकर उत्तरकुमारने उठाया और फिर एकान्तमें लेजाकर उनसे सब हाल कहदिया ॥ ४९ ॥

चौपाई ।

उत्तर तब इकान्तमें आयो । भूपतिसों यह वचन सुनायो ॥
आज बृहन्नट सब दल जीती । कौरव गयो युद्धसों रीती ॥
मारि शूर सब दीन्ह भगाई । प्रबल पवन जिमि मेघ उडाई ॥
भयो मौज नृप धाम सिधावा । भीतर उत्तर बोलि पठावा ॥
युद्धकथा सिगरी कहिं दीनी । सारथिकी शरजाल प्रवीनी ॥

है अर्जुन जिन कौरव मारे । दिवस इते इहि ठौर निवारे ॥
याहि प्रकार सुत कहि समुझाये । सुनि विराट तब अति सुखपाये ॥

इति श्रीभारतसारे विराटपर्वणि भाषायां विराटोत्तरसं-
वादे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५२.

द्विपञ्चाशत्तमेऽध्याये मानप्राप्तिर्विराटतः ।
युधिष्ठिरादिपञ्चानां साधुत्वं चापि कथ्यते ॥ १ ॥

इस बावनवें अध्यायमें महाराज विराटसे युधिष्ठिरादि पाँचों पाण्डवोंको मान मिलना और उनकी सज्जनता यह कथा कहीजाती है ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

विराटो विस्मितस्तत्र पुत्रेणैवं प्रबोधितः ।
जगाम त्वरया राजा धर्मपादारविन्दयोः ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! जब पुत्रने यह बातें समुझाईं, तब तो महाराज विराट बडे अचंभेमें हुए और उन्होंने जाकर शीघ्रतासहित धर्मराज युधिष्ठिरके चरण कमल पकडलिये ॥ १ ॥ और फिर साष्टांग प्रणाम करके सान्त्वनासहित अर्थात् उनको सन्तोष देतेहुए इस तरह कहनेलगे । विराटने कहा हे देव ! आपही मेरे स्वामी, आपही प्रभु, आपही देवता और आपही मेरे मातापिता हैं ॥ २ ॥ हे धर्मनन्दन ! मैंने मूर्खतासे जो अपराध किया है, उसको आप क्षमा करदीजिये । यह सप्तांग (सात अँगोंवाला) राज्य आपकाही है और मेरे प्रति करुणा कीजिये ॥ ३ ॥ आप हमारे स्वामी हैं, अत एव हम सबको सेवकके काममें नियुक्त कीजिये। किन्तु हे नाथ ! मैं आपसे एक बातकी प्रार्थना करताहूँ आशा है कि, उसको आप अन्यथा नहीं करेंगे ॥ ४ ॥ अर्थात् मेरी जो यौवनवती उत्तरा नामवाली पुत्री है वह अर्जुनके सन्तोषार्थ उनको अर्पण करना चाहताहूँ अत एव मेरे प्रति आप प्रसन्न होजाइये ॥ ५ ॥ जब महाराज विराटने

युधिष्ठिरसे इस तरह कहा, तब विराटके वचनोंको मना करतेहुए अर्जुन धर्मराज युधिष्ठिरके प्रति कहनेलगे॥ ६ ॥ अर्जुन बोले—हे भाई ! यह उत्तरा मुझको नृत्य घरमें पिताके समान मानचुकी है, और मैंनेभी इसको शिष्यभावद्वारा कन्याकी तरह मानलिया है ॥ ७ ॥ अर्जुनकी यह बात सुनकर विराटने कहा—हे पार्थ ! हे नाथ ! हे लम्बी भुजावाले ! आप मेरा निश्चय (संकल्प) सुनिये ॥ ८ ॥ यदि आप मेरी इस कन्या उत्तराको स्वीकार नहीं करेंगे, तो मैं अपने प्राण त्यागदूँगा । विराटका यह निश्चय जानकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने ॥ ९ ॥ कृपा युक्त हो वाणीद्वारा महाराज विराटको सन्तुष्ट करतेहुए कहा—हे राजन् ! अब आप मेरी बात सुनिये । हे प्रभो ! विषाद मत कीजिये ॥ १० ॥ हे राजन् ! अर्जुनका षोडशवर्षीय (सोलहवर्षकी अवस्थाका) एवं बडा बलवान् युवा पुत्र है, जो कि सुभद्राका बेटा और श्रीकृष्णका भानजा है ॥ ११ ॥ हे महाराज ! यह वर अत्यन्त उचित है अत एव आप इसको छोडकर दूसरा विचार मत कीजिये। विराटने कहा 'यही हो' यह देखकर महाराज युधिष्ठिरने आदरसहित वह सारा समाचार लिखकर दूतको श्रीकृष्णके निकट द्वारकापुरीमें भेजदिया कि हे कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे नारायण ! हे जगद्गुरो ॥ १२॥१३॥ हे शरणागत दीन और दुखियोंकी रक्षा करनेमें तत्पर ! हे परमानन्द ! मैं धर्मपुत्र युधिष्ठिर आपकी शरणागत हूँ अत एव आप मेरी रक्षा कीजिये १४॥ आपके सिवाय न मेरा दूसरी देवता है और न भाई है, इस कारण हे नाथ ! आप सब तरहसे मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये ॥ १५ ॥

चौपाई।

दीनानाथ दयालु गोसाई । करी हमारी सदा सहाई ॥
कृपासिंधु देवन सुरसाई । द्रुपद सुताकी लाज बचाई॥
करी आश प्रह्लाद पुकारे । हरी त्रास हिरानाकुश मारे॥
कही भूप यह त्रिभुवन राई । सदा रहत तुम मोर सहाई ॥

तुम्हरी कृपा विपति भइ दूरी। ह्वै दयालु कीन्हो सुख भूरी॥
अभिमनु व्याह रचो है राजा। आइये यहाँ समेत समाजा॥
दोहा–करि आये हो करत हो, करिहौ सदा सहाइ।
सहित मातु अभिमन्यु लै, आपुहि पहुँचो आइ॥
दूत द्वारका नगरको, भेजो अति सुख पाय।
वार न लागी बाटमें, कही कृष्ण सों जाय॥

हे तात! पूर्वमें हमने जो प्रतिज्ञा करीथी, वह तेरहवें वर्षमें नष्टचर्या-रूपी प्रतिज्ञाभी यहाँ विराटपुरीमें आपकी आज्ञासे पूरी होचुकी ॥ १६ ॥ अब इसके पीछे महाराज विराट आपके भानजे और सुभद्राके पुत्रको अपनी कन्या प्रदान करनेके लिये तइयार हुएहैं अर्थात् अभिमन्यु कुमारके साथ अपनी उत्तराकुमारीका विवाह करना चाहतेहैं॥ १७॥ अत एव हे विष्णो! इस कामको आप सम्पादन कीजिये, क्योंकि हमलोगोंका दूसरा पालक कोई नहीं है, इस कारण पुत्रसहित सुभद्रा और बहन इत्यादि आप सब जनोंको ॥ १८ ॥ जैसी विराट राजाकी सामर्थ्य (सम्पत्ति) है, तदनुसार ही आना उचित है, हे राजन्! महाराज युधिष्ठिरने इस तरहकी और भी बहुतसी बातें पत्रमें लिखकर दूतको (द्वारका पुरीमें) भेजदिया ॥ १९ ॥ हे महाराज! इसके पीछे राजा युधिष्ठिरने राजा द्रुपदके विषयमें विराटको विदित करके उनके बुलानेकोभी दूत भेजा ॥ २० ॥ इसी बीचमें विभव (सम्पत्ति) युक्त उत्तम सहायवाले, सामर्थ्यवान् और महान् महाराज विराटने आनन्दित होकर उत्सव किया॥ २१ ॥ फिर पाण्डवोंको बैठालकर उन राजा विराटने तरह तरहके, गहने कपडे और भाँति भाँतिके रत्नोंद्वारा॥ २२ ॥ उनकी पूजा करी (इस प्रकार) उनको विभूषित करके मान देनेवाले महाराज विराट अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदनन्तर धर्मात्मा नृपश्रेष्ठ और भाइयोंके सहित विराजमान युधिष्ठिरको ॥ २३॥ सिंहासनपर बैठालकर उनको अभिषेक किया। और उनको अपना सप्ताङ्ग राज्य निवेदन करके आप दास होकर खडे होगये ॥२४॥ तब उनकी इस तरह नम्रता और विनय देखकर धर्मराज युधिष्ठिर

कहनेलगे। धर्मराज बोले—हे महाप्राज्ञ ! हे साधो। आप सत्यसन्ध और महारथी हैं॥२५॥हम लोगोंने आपका अन्न खायाहै और सुखपूर्वक यहाँ निवास कियाहै और नष्टचर्यामें हमने तेरहवाँ वर्ष निकालदियाहै॥२६॥ हे राजेन्द्र ! आपके घर रहतेहुए हमारा एक वर्ष आधे पलकी नाई बीतगया। अत एव हे प्रभो! आपकी तरह हमारा हितकारी राजा दूसरा कोईभी नहीं है॥२७॥

इति नानाविधैर्वाक्यैर्विराटं तोषयन्नृपः।
धर्मस्तस्थौ च तत्रैव नृपरीत्या सुखेन वै ॥ २८॥

महाराज युधिष्ठिर इस तरह भाँति भाँतिके वचनोंसे राजा विराटको सन्तुष्ट करतेहुए वहाँ राजाओंकी रीतिके अनुसार सुखपूर्वक रहनेलगे॥२८॥

इति श्रीभारतसारे विराटपर्वणि भाषायां युधिष्ठिरराज्याभिषेको नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५३.

त्रिपंचाशत्तमेऽध्याये वासुदेवागमस्तथा।
अभिमन्योरुत्तराया उद्वाहश्चैव कथ्यते ॥ १ ॥

इस तेरपनवें अध्यायमें भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णका (विराट नगरमें) आना तथा अभिमन्यु और उत्तराका पाणिग्रहण (विवाह) होना यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

एवं च समये राजन्कृष्णः सात्यकिना सह।
सुभद्रां रथमारोप्य सपुत्रां सपरिच्छदाम् ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे राजन् जनमेजय ! उसी समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज, यादव सात्यकी, पुत्र और बहुतसी सामग्री समेत सुभद्रादेवीको रथमें सवार कराकर ॥ १ ॥ बहुत सारी सेनासे युक्त और बहुतसे यादवोंद्वारा (चारों ओरसे) घिरे हुए आनंदमें भरे मांगलिक उत्सववाली विराटपुरीमें आनकर उपस्थित हुए ॥ २॥ तब महाराज विराटने तरह

तरहकी भेंट सामग्री और बहुतसे रत्नोंद्वारा उन भगवान् माधवका स्वागत किया ॥ ३ ॥ अनन्तर अमृतरूपी वचनोंद्वारा उनको प्रेम उत्पन्न करते हुए भगवान् श्रीहरिसे कहने (विनती करने) लगे कि, हे देवदेव ! आप कृपालु हैं और हम आपके दीन दास हैं अत एव हमारी रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥

चौपाई ।

दोउ कर जोर कृष्णके आगे । विनय करन विराट नृप लागे ॥
श्रीयदुनन्दन मुनिजन वन्दन । कल्मष हर सब दुष्ट निकन्दन ॥
जगतारण खल वदन विदारण । दुख टारण गजराज उबारण ॥
जग पावन सन्तन मन भावन । व्रजछावनगिरिवर नख लावन ॥
जन मन रंजन भवभय भंजन । दनुज विमर्दन भव धनु गंजन ॥
कंस विनाशन प्रभु गरुडासन । यदुबंशी अवतंस प्रकाशन ॥
असुर निवारण मुनिजन पारण । कुंज विहारण गणिका तारण ॥
जगधर नगधर पीताम्बर धर । हरि दामोदर हलधर सोदर ॥
सिन्धु सुतावर श्रीराधा वर । सर्व निवारण सर्व-देव पर ॥
जनक सुताभूषण भव भूषण । सुररिपु दूषण खलजल पूषण ॥
भक्तन हितकर हरि निशिचारी । शुभगति कारी भव भयहारी ॥

दोहा-करि अस्तुति श्रीकृष्णकी, भूपति अति सुखपाय ।
बार बार प्रभुचरणमें, रहिगो शीश नवाय ॥

हे देव ! आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये । और हमारा पालन कीजिये । हे जनमेजय ! इस तरह राजा विराट स्तुति कर रहेथे कि इसी बीचमें महाराज द्रुपदभी अपनी रानी, सेना और कुटुम्ब समेत अपने देशसे चलकर विराटनगरमें आपहुँचे ॥ ५ ॥ तब महाराज युधिष्ठिरने राजा विराट और श्रीकृष्णके सहित महीपति द्रुपदकी पूजा करी अर्थात् उनका आदर सत्कार किया और फिर श्रीकृष्णने तरह तरहके(सुन्दर) घरोंमें महाराज द्रुपदको सेना समेत टिकाया ॥ ६ ॥ इसके पीछे वहां राजा विराट और धर्मनन्दन युधिष्ठिरने

उत्तरा तथा अभिमन्युका विवाह किया और फिर श्रीकृष्णनेभी उस समय-पर महामहोत्सव किया ॥ ७ ॥

अनुरूपं वरं लब्ध्वा कृतार्थाऽभूत्तदोत्तरा ।
विराटेन च ते सर्वे विधौ ये ये समागताः ॥
पूजिता वैष्णवास्तत्र वासोऽलंकारवाहनैः ॥ ८ ॥

तब कुमारी उत्तरा भी अभिमन्यु कुमारको अपने अनुरूप वर पाकर कृतार्थ होगई । इसके पीछे जो सब वैष्णव पुरुष इस विवाहमें आयेथे, महाराज विराटने वस्त्र, गहने और वाहनों(हाथी घोडे पालकी रथादि) के द्वारा उन सबका पूजन किया ॥ ८ ॥

दोहा-शुभघटिका शुभलग्न गणि, शुभवारहि सो पाय ।
रचो व्याह अभिमन्युको, मंगल चार कराय ॥
भाँवरि पारथ देखि कृत, पांचों भाय हुलास ।
करयो व्याह विधिवत सकल, धौम्य सहित ऋषि व्यास ॥
दोऊ कुलकी रीतिसों, करि विवाह सुख दानि ।
वाजी गज रथ हेम मणि, दीन्हों नृप सुख खानि ॥

इति श्रीभारतसारे विराटपर्वणि-मुरादाबादनगरनिवासि कान्यकुब्जवंशावतंस-स्वर्गीयमिश्रसुखानन्दात्मजपंडित-श्रीकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायामभि-मन्युविवाहो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इति श्रीभाषाभारतसारे विराटपर्व समाप्तम् ॥

भारतसार-भाषा।

उद्योगपर्व ५.

जय जय जय सुखमा सदन, भक्तन प्रान अधार।
कृपा करहु मो दास पहँ, अपनी ओर निहार ॥
तुम्हरी कृपा कटाक्ष सों, भोगत बहु विधि भोग।
सो प्रभु तुमकूँ सुमिरि अब, कहूँ पर्व उद्योग ॥
जिन हरिको निर्गुणसगुण, एक अनेक विधान।
बहुमत बहुश्रुति बहुस्मृति, करत विविधविध गान ॥
वर्णत विविध विधान सब, नहिं पावत कछु पार।
तातें यह निर्णय कियो, नेति नेति निरधार ॥
शीश नाय बिनती करत, मिश्र कन्हैयालाल।
करहु मनोरथ पूर्ण मम, व्रज जीवन नँदलाल ॥

चष्पतुश्चाशत्तमोऽध्यायः ५४.

चतुष्पञ्चाशत्तमे च राज्यार्थे प्रार्थना हरौ।
पाण्डवानां वरप्राप्तिर्विदुरस्य च कथ्यते ॥ १ ॥

इस चौवनमें अध्यायमें श्रीकृष्णके सन्मुख राज्यके निमित्त पाण्डवोंकी प्रार्थना और विदुरजीको वर मिलना यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच।

एवं विवाहे सञ्जाते धर्मः कृष्णमथाब्रवीत्।

धर्म उवाच ।

कृष्णकृष्णाप्रमेयात्मन् यदैवं त्वं न चान्यथा ।
सर्वज्ञः सर्वदः सर्वः सर्वाधारो महीधरः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! इस प्रकार विवाहकार्य समाप्त होजानेपर धर्मराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे कहा । धर्मराज बोले, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रेमयात्मन् ! जिस समय देखो उस समय मेरी रक्षा करनेवाले आपही हैं, दूसरा कोई नहीं है, सर्वज्ञ (सब बातके ज्ञाता) सर्वद अर्थात् सारी अभिलाषाओंको देनेवाले, सर्व अर्थात् विश्वरूपी, सर्वाधार (सबके सहारे) और धरणीधर ॥ १ ॥ सब किसीके एकही स्वामी और सारे देहधारियोंके नाथ आप मेरे शरणस्थल हैं हम बारहवर्षपर्यन्त वनमें गुप्त रीतिसे निवास करते रहे ॥ २ ॥ और हे प्रभो ! इस तेरहवें वर्षमें हमने विराटपुरीमें गुप्तरूपसे टिकेरहकर अपनी प्रतिज्ञाको पूरा किया ॥ ३ ॥ किन्तु अब यह चौदहवाँ वर्ष आनकर उपस्थित है अत एव इस समय हमको क्या करना चाहिये ? इसकी आज्ञा दीजिये । धर्मराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण कहनेलगे ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे महापण्डित ! आपने अति उत्तम बात कही । हे सत्यभाषी ! हे दृढव्रत ! सत्य बातसे परम तुष्टि और सत्यके द्वाराही परम गति हुआकरतीहै ॥ ५ ॥ आपने बारह वर्षतक वनमें निवास करके अपनी प्रतिज्ञाको पाला और फिर तेरहवें वर्षमें आपने यथोक्त नष्टचर्याभी करी ॥ ६ ॥ हे महाराज ! अब आप मेरी देशकालोचित बात सुनिये । प्रथम ऐसी सम्मति (सलाह) है कि, प्रतीतिके संग सन्धि (मेल अथवा सुलह) करलीजावे ॥ ७ ॥ और यदि उस मेलके द्वारा पृथ्वीका आधा अंश (हिस्सा) भी प्राप्त होजावे अथवा आधेकाभी आधा अंश प्राप्त हो जावे तो इतनीही पृथ्वीसे आपका ठीक काम चलजायगा, हे साधो! इस मिलापको छोडकर दूसरी तरहसे तो गोत्रका नाश हुआजाताहै ॥ ८ ॥ किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि संग्राम करनेपर आपको सारी पृथ्वी मिलजायगी इस कारण आप दुर्योधनके पास किसी उत्तम (चतुर) मन्त्रीको भेज-

दीजिये ॥ ९ ॥ वह वहाँ पहुँचकर आधा राज्य माँगे, फिर उसका आधा अर्थात् चतुर्थ अंश माँगे और कदाचित् चौथा अंश राज्य देनाभी स्वीकार न करे तब केवल पांचही ग्राम माँगलेनें चाहिये ॥ १० ॥ हे युधिष्ठिर ! अथवा वह दुर्योधन माँगनेपर एक ग्रामभी आपको देनेमें राजी नहीं होगा, तो मुझको प्रायः दीखता है कि, यह सारा राज्य आपके अधिकारमें आजावेगा ॥ ११॥ और धृतराष्ट्रके सब बेटे मारेजाँयगे इसमें सन्देह नहीं। श्रीकृष्णकी ऐसी बातें सुनकर युधिष्ठिरने कहा ॥ १२ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे स्वामिन् ! हे प्रभो ! आपके समान हमारी भलाई करनेवाला दूसरा कोई नहीं है, हे पुरुषोत्तम ! जिसके निकट पहुँचकर हम अपने हृदयका दुःख सुनावें ? आपके अतिरिक्त हमारा ऐसा हितू और कोई भी नहीं है ॥ १३ ॥ हमारे आपही स्वामी, आपही हितू, आपही सुखकी परामर्श देनेवाले बान्धव और आपही सर्वस्व (सब कुछ) हैं। हे प्रभो ! आपके सिवाय मेरा दूसरा कोईभी नहीं है ॥ १४ ॥ आप सारे कामोंमें कुशल (चतुर) हैं अत एव हे नाथ ! मुझपर प्रसन्न हूजिये और आपही सर्वान्तःकरणसे राजा दुर्योधनके पास जाइये ॥ १५ ॥ हे परमानन्द ! दुर्योधनके निकट अवश्य आपही जानेलायक हैं दूसरा नहीं, हे विभो ! अब आपके चित्तको जो रुचे सो कीजिये ॥ १६ ॥ और प्रायः जिस प्रकार युद्ध नहीं करना पडे, आपको शीघ्रतासे वही काम करना चाहिये। क्योंकि युद्धके विना मुझको जो कुछ भी मिलजायगा वही पदार्थ मेरे लिये सुखका देनेवाला होगा॥ १७॥ धर्मराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर भीमसेनने कहा। भीमसेन बोले—हे धर्मसागर ! हे सत्यवादिन् ! आप वृथाही भीख किस लिये माँगतेहैं?॥ १८॥ यदि खड्ग (तलवार) की धारद्वारा मोल लियाहुआ एक घासका वीडाभी मिलजाय तो वह अति उत्तम है। हे देव ! युद्ध विना तो सारी भूमिभी मुझको नहीं रुचती है ॥ १९ ॥ इस तरह भीमसेनके कहनेपर धर्मराज युधिष्ठिरने प्रार्थना करके श्रीकृष्णको भेज दिया। तब श्रीकृष्णजी बहुतसे

हलकारों (दूतों) समेत हस्तिनापुरको गये ॥ २० ॥ फिर सब जनोंको बाहर खडा करके आप विदुरजीके घरमें पहुँचे तब श्रीकृष्ण भगवान्को आयाहुआ देखकर विदुरजी अपने मनमें बडेही आनन्दित हुए ॥ २१ ॥ और अपने आपको हर्षरूपी समझा, जिस तरह कंगाल आदमीको किसी भाँतिका खजाना मिलजानेपर वह बहुत आनंदको प्राप्त होताहै उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके आजानेसे भक्त विदुरजी अत्यन्त आनन्दित हुए। विदुरजी बोले—हे देवदेव ! आपका आगमन दासका पालन करनेके निमित्त हुआ है सो अति उत्तम है ॥ २२ ॥ २३ ॥ जिन देवताकी कृपा प्राप्त करनेके लिये योगीजन वनमें वास करते महान् दारुण तपस्या करके भाँति भाँतिसे अपनी कायाको क्लेश दियाकरते हैं ॥ २४ ॥ अत एव जो देवता उनके भी नयनगोचर नहीं होते अर्थात् योगीजनोंकोभी जिनका दर्शन नहीं मिलता; वही देवता मेरे घर आयेहैं, अस्तु आपके चरणकमलोंसे अंकित होनेके कारण आज मेरा घर पवित्र होगया ॥ २५ ॥ आपका दर्शन मिलनेसे आज मेरा जन्म सफल होगया, आज मेरे पितर तृप्त होगये और आज मेरे पितामहभी तृप्त हुए ॥ २६ ॥ हे गोविन्द ! जो कि आज आप मेरे घर आयेहैं इसलिये मेरे मातामह तृप्त हुये इस प्रकार विनती करके विदुरजीने उनको वहाँ यथाविधि अर्घ्य दिया ॥ २७ ॥ फिर चरण धोकर वह चरणामृत भक्तिपूर्वक अपने मस्तकपर छिडका और गोविन्दभगवान्को स्नान कराकर चन्दनसे अनुलिप्त (चर्चित) किया ॥ २८ ॥ फिर उत्तम अन्नका भोजन कराय ताम्बूल दिया और उनके आगे मस्तक झुकाय प्रणामपूर्वक विदुरजी कहनेलगे ॥ २९ ॥

दोहा—मोतें को संसार महँ, महा अधम यदुवीर ।
अधम उधारन नाम तव, सुनत होत उर धीर ॥
भक्तवच्छल तव नाम सुनि, तव मन बडो डराय ।
सुने पतित पावन बिरद, हर्ष न हृदय समाय ॥

चौपाई ।

पूरब नाथ पाप हम कीन्हा । दासी योनि जन्म विधि दीन्हा ॥
अब भाजन नहिं भवन तुम्हारा । केहि विधि नाथ मोर निस्तारा॥

विदुरजीने कहा—हे प्रभो ! हे देव ! आप मुझ दीनके प्रियकारण अप्रिय कारण सत्कार अथवा भोजनको आप क्षमा करके स्वीकार करलीजिये क्योंकि आप तो चिरकाल सारे पदार्थोंसे परिपूर्ण रहाकरतेहैं ॥ ३० ॥ हे जगन्नाथ ! हे नरोत्तम ! मैं इस पृथ्वीतलपर दरिद्रियोंमें शिरोमणि हूँ, तब फिर आपका आतिथिसत्कार क्या करसकताहूँ ॥ ३१ ॥

चौपाई ।

परम अधीन विदुर मुख बानी । सुनि श्रीकृष्ण भक्ति रस सानी॥
कीन्ह प्रबोध नाथ विधि नाना । हृदय लाय कीन्हो सन्माना ॥
तुम हो विदुर धर्म अवतारा । परम भक्त अरु ज्ञान उदारा ॥
पुनि बोले श्रीकृपानिधाना । चहै विदुर सो ले वरदाना ॥

श्रीकृष्णजी बोले—हे विदुरजी ! मैं आपकी भक्तिसे इस समय बहुतही प्रसन्न हुआहूँ, क्योंकि साधु महात्मा पुरुष साधु महात्माओंका दर्शन करके ही सन्तुष्ट हुए जहाँ तहाँ विचरण किया करतेहैं ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण भोजनसे सन्तुष्ट हुआकरतेहैं, मोर बादलोंके गर्जनसे सन्तुष्ट हुआकरतेहैं, साधु जन पराये कल्याणसे संतुष्ट हुआकरतेहैं और दुष्ट खल पराई विपत्तिको(देख कर) सन्तुष्ट हुआकरतेहैं ॥ ३३ ॥ साधु महात्माजनोंका दर्शनही पुण्यस्वरूप है क्योंकि वे साधु महात्मा तीर्थस्वरूप हैं फिर तीर्थ तो समयपरही फल दियाकरताहै,किन्तु साधुका समागम तत्काल फलीभूत होताहै अर्थात् साधुका दर्शन होजानेपर मनुष्यको उसी समय फल मिलजाया करताहै॥ ३४॥ विदुरजीने कहा—हे जगन्नाथ ! मेरे सामने आप ऐसी बात मत कहिये आपके चरणारविन्द त्रैलोक्यवन्दित हैं अर्थात् उनमें तीनों लोक शिर झुकातेहैं फिर मैं जीव तो एक (तुच्छ) कीडा हूँ ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णजी बोले—अहो विदुर

भक्त ! मैं आपकी भक्तिसे सन्तुष्ट होगयाहूँ, अत एव जो वर आपके मनको रुचिकारक हो, उसीको माँगलीजिये मैं आपको वही दूँगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ विदुरजीने कहा–हे नाथ ! हे जगन्नाथ ! (आपके चरण-कमलोंमें) मेरा मन जिस तरह अब विद्यमान है, हे स्वामिन् ! उसी तरह चिरकाल आपमें विद्यमान रहे, किसी समयभी आपसे अलग नहीं होवे ॥ ३७ ॥ हे केशव ! यदि आपके प्रति मेरी अचल (अटल) भक्ति है तो मेरा चित्त आपके चरणारविन्दोंमें निरंतर लगारहे और मेरी आँखें आपके स्वरूपका दर्शन करनेमें चिरकाल (नित्य) लगी रहें । हे मधुदैत्यका नाशकरनेवाले ! आप मुझको (कृपापूर्वक) यही वरप्रदान कीजिये ॥ ३८ ॥ हे नाथ ! हे विभो ! आपकी प्रसन्नताके सिवाय दूसरा वर मुझको कुछ नहीं माँगना है, केवल मात्र यही माँगताहूँ कि आप मुझपर (निरन्तर) प्रसन्न रहें । तब भगवान् जनार्दनने विदुरजीको अपना दृढभक्त देखकर 'एवमस्तु' कहा ॥ ३९ ॥

चौपाई ।

देखि प्रीति सुनि वचन अमोले । एवमस्तु करुणा निधि बोले ॥
फेर बिदुर संग चले मुरारी । पहुँचे कुरुपति सभा मँझारी ॥

इति तस्मै वरं दत्त्वा विष्णुर्हि विदुरस्तथा ।
दुर्योधनसभायां तु जग्मतुश्च मुदान्वितौ ॥ ४० ॥

भगवान् विष्णु श्रीकृष्णचन्द्रने इस तरह विदुरजीको वर दिया और प्रसन्नतासहित विदुरजीको संग लेकर दुर्योधनकी सभामें गये ॥ ४० ॥

इति श्रीभारतसारे उद्योगपर्वणि भाषायां विदुरवरप्रदानं नाम चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५५.

पञ्चपञ्चाशत्तमे च सभायां विदुरेण च ।
श्रीकृष्णसंगतिर्धाष्टर्यं कौरवाणां च कथ्यते ॥ १ ॥

इस पंचपनवें अध्यायमें श्रीकृष्णका विदुर समेत दुर्योधनकी सभामें पहुँचना और कौरवोंकी ढिठाई यह कथा कही जाती है ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

श्रीकृष्णमागतं दृष्ट्वा विदुरेण समन्वितम् ।
प्रेषितं पाण्डवैर्मत्वा सम्मुखे नाभवन्नृपः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! अनन्तर श्रीकृष्णजीको विदुरसमेत आयाहुआ देखकर राजा दुर्योधनने समझलिया कि, यह पांडवोंके भेजेहुए आये हैं, इसलिये वह सामने नहीं आया ॥ १ ॥ और भीष्म द्रोणादि सारे सभासदों समेत सामने पहुँचकर दूरसे आयेहुए श्रीकृष्णकी शीघ्रता सहित पूजा करी ॥ २ ॥ फिर भाँति भाँतिके उपहारोंद्वारा पूजा करके उनको सभामें लेआये और वहाँ आसन प्रदान करके उनके सुखसे बैठजानेपर सब कोई स्तुति करनेलगे ॥ ३ ॥ तब महामति विदुरजीभी श्रीकृष्णजीके निकट विराजमान होगये, इस प्रकार श्रीकृष्णके सुखपूर्वक बैठजानेपर राजा दुर्योधन कहनेलगा ॥४॥ दुर्योधन बोला—हे कृष्ण ! आप किस निमित्त आये हैं ? और आपने किसके घरमें निवास किया है ? हे विष्णो ! और आप (इस समय) कहाँसे आरहे हैं ? सो आप प्रारंभसे लेकर अन्ततक सत्य सत्य वर्णन कीजिये ॥५॥ श्रीकृष्णने कहा—हे राजन् ! हे सुयोधन ! मुझको आप विराटनगरसे चलकर पाण्डवोंके कार्यके निमित्त विदुरजीके घर आयाहुआ जानिये॥६॥दुर्योधन बोला-हे मधुसूदन!हेपुण्डरीकाक्ष!आप भीष्म,द्रोण,कृपाचार्य और मुझको छोडकर (दासीपुत्र) विदुरके घर क्यों रहे ? ॥ ७ ॥ और हे नरोत्तम ! भोजन भी आपने उसीके घर क्यों किया ? श्रीकृष्णने कहा कि हे राजन् ! आपतो भोजनकी बात तो पूछरहेहैं, किप्तु आदरकी बात क्यों नहीं पूछते ॥ ८ ॥ क्योंकि भोजन तो पचकर निकलजाता है, सम्मान अजर अमर रहता है। यद्यपि प्राण त्यागदेना तो उत्तम है किन्तु मान खंडित होनेपर जीवित रहना उत्तम नहीं ॥ ९ ॥ क्योंकि प्राणत्यागनेमें तो क्षणभरकाही दुःख होता है, किन्तु मानभंग होनेपर दिन दिन दुःख होता है । यदि मुझको आदरपूर्वक अनेक तरहका शाकभी निवेदन किया-जाय ॥ १० ॥ तो वह मेरे शरीरको प्रसन्न करता है अर्थात् उसके द्वारा

मेरे आत्माकी तृप्ति होती है, किन्तु मानहीनतासे निवेदन कियाहुआ अमृत भी मेरे प्राणोंकी तृप्ति नहीं कर सकता. क्योंकि जो आदमी बिना बुलाये पराये घर जायाकरता है, विना पूछे बात कहता है ॥ ११ ॥ और विना दिये आसनपर बैठता है, उसको पुरुषोंमें अधम जानना चाहिये । वह विना मानके जो भोजन किया है उसकी अपेक्षा तो मरजाना उत्तम है परन्तु वह भोजन उत्तम नहीं ॥ १२ ॥ हलाहल विषका पीजाना तो अति उत्तम बात है, क्योंकि वह शीघ्रही प्राण नाश करडालता है, किन्तु बाँके टेढे धनी आदमीके घरमें भोजन करना ठीक नहीं ॥ १३ ॥ अधम (नीच) आदमी धनकी इच्छा किया करता है, मध्यम (मझोला) आदमी धन व मान दोनोंकी कामना कियाकरता है, और उत्तम आदमी केवल मानकीही चाहना कियाकरता है, क्योंकि वह मानही महत् पुरुषका धन है ॥ १४ ॥ हे दुर्योधन! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनमें विवेकही (ज्ञानही) श्रेष्ठ पुरुषोंका सार है, हे मनुजाधिपति ! कुलहीनता करकेभी विवेक (ज्ञान) हुआ करता है तिसमें श्रेष्ठ पुरुषोंका सार समझना चाहिये ॥ १५ ॥ और भी जो सत्यवादी तथा पवित्रतामें तत्पर रहनेवाले उन शूद्रोंके घरभी भोजन करना उचित है, फिर विदुरजी तो निरन्तर पवित्र रहनेवाले हैं ॥ १६ ॥ क्योंकि जो निरन्तर श्रेष्ठ मनुष्योंके आचारमें तत्पर है और सदैव दुष्टोंके संगसे हीन हैं, जो कुलहीन ज्ञानी हैं, यदि उनके घर आहार कियाजाय तो किसी तरहका दोष नहीं लगा करता है ॥ १७ ॥ देखिये तप करकेही कमलोत्पन्न सर्वलोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी ब्राह्मण हुए हैं, अतएव जाति कुलीनताका कारण नहीं होसकती॥ १८॥ फिर देखिये महामुनि श्रीवेदव्यासजी महाराज कैवर्तीके गर्भसे उत्पन्न होकर तपस्याके द्वाराही ब्राह्मण हुए हैं, अत एव जातिको कुलीनताका कारण नहीं समझना चाहिये॥ १९ ॥महामुनि श्रीवाल्मीकिजी महाराजभी भीलनीके पेटसे जन्म लेकर तपस्याद्वाराही ब्राह्मण हुए हैं, इसलिये जातिको कुलीनताका कारण नहीं जानना चाहिये ॥ २० ॥ फिर देखिये क्षत्राणीके उदरसे उत्पत्ति लाभ करके महामुनि (तपोधन)

विश्वामित्रजी महाराज तपस्याद्वाराही ब्राह्मण और (ब्रह्मर्षि) हुए हैं, इस कारण जातिको कुलीनताका हेतु नहीं जानना ॥ २१ ॥ महामुनि ऋष्यशृङ्ग अर्थात् शृंगीऋषि हिरनीके जठरसे उत्पन्न होकर तपस्या द्वाराही ब्राह्मण हुएहैं, अत एव जातिको कुलीनताका कारण नहीं समझना॥ २२॥ फिर देखिये महामुनि मांडव्यऋषि मंडूकीके पेटसे जन्म पाकर तपस्याद्वाराही ब्राह्मण हुएहैं, अत एव जातिको कुलीनताका कारण नहीं मानना ॥ २३ ॥ फिर देखिये अगस्त्यनामवाले महामुनि तो कुंभयोनि हैं अर्थात् इनका जन्म घडेसे हुआहै,किन्तु यह भी तपकरकेही ब्राह्मण हुएहैं,अतएव जातिको कुलीनताका कारण मत समझिये ॥२४॥ महामुनि वशिष्ठजीभी उर्वशीके उदरसे उत्पन्न होकर तपस्याद्वारा ही ब्राह्मण हुएहैं,अतएव जाति कुलीनताका कारण नहींहै ॥ २५ ॥ फिर देखो महामुनि द्रोणाचार्यभी कंचनके कलशसे उत्पन्न होकर तपस्याद्वाराही ब्राह्मण हुएहैं, अत एव जाति कुलीनताका कारण नहीं होसकती ॥ २६ ॥ हे दुर्योधन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंमें आचारही पहला धर्म कहागयाहै और अनाचारकोही अधर्म कहाहै ॥ २७ ॥ अन्यान्य जो सत्यभाषी और पवित्र रहनेवाले शूद्रहैं उनके घरभी भोजन करलेना चाहिये फिर विदुरजी तो बहुश्रुत और ज्ञानवान् आदमी हैं॥२८॥ अब आप पांडवोंकी ओरका हाल सुनिये, आप एकसौ भ्राता और हम पांच भ्राता हैं, सो यह संख्या तो आपसमें शत्रुता रहनेतक है, क्योंकि हे महाराज ! मिलाप होजानेपर हम और आप एकसौ पांच भ्राता हैं ॥ २९ ॥ वह पतिव्रता द्रौपदी दिन दिनमें स्वामीसे मिलकर अग्निमें प्रविष्ट हुआ करती है, अत एव अग्निस्नाता द्रौपदी पुण्यपापमें लिप्त नहीं होती ॥ ३० ॥ और दूसरे किसी आदमीकी बुराई करना वह जानतीही नहीं, क्योंकि वह तो निरन्तर भगवान् विष्णुकी भक्तिमें निरत रहतीहै, उसका जन्म विना मैथुनके हुआहै और पांडवभी पापरहित हैं ॥ ३१ ॥ सत्य—बात कहनेवाले, पवित्रताचारी, ज्ञानवान्, पक्के व्रतवाले और संपूर्ण शास्त्रोंके वक्ता महात्मा विदुरजीको कौन उल्लंघन करसकताहै ? ॥ ३२ ॥ दुर्योधन बोला।हे कृष्ण !

मानहीन राज्य मानहीन धन और मानहीन ठकुराई भी उत्तमहै, किन्तु मानहीन जीवन उत्तम नहीं ॥ ३३ ॥ घोर वनमें निवास करना अच्छा है, भीख माँगना अच्छा है और पराये घरकी सेवा (टहल) करनीभी अच्छी है, किन्तु मानरहित जीवन अच्छा नहीं ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णने कहा—हे राजन्! अब जिस लिये मैं आयाहूँ, वह मेरा प्रयत्न सुनिये । हे निराधिप ! मुझको धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिरने आपके पास भेजाहै ॥ ३५॥ यदि आप बहुत समयतक राज्य करना चाहतेहैं तो मेरा कहना कीजिये । पांडवोंने बारह वर्षतक तपस्या करी है और तेरहवें वर्षमें नष्टचर्या करीहै ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! वे पांडव इस समय आपसे केवल पांचही ग्राम मिलजानेकी चाहना करतेहैं, और यदि इतनेपरभी संधि (सुलह) न होवे, तो भवितव्य अर्थात् होनेवाली बात नहीं टलती (यही मानना पडेगा) ॥ ३७ ॥ जो कि, कोप सत्यका नाश करडालताहै,तपस्याको नष्टकरडालताहै, पूर्वपुण्योंको नष्ट करडालताहै, एवं धर्म और मोक्षका सत्यानाश करडालताहै, अत एव कोपकी सदृश दूसरा वैरी कोई नहीं है॥३८॥ आप एकसौ एक भ्राता और पांच पांडव हस्तिनापुरमें इस सारी भूमिको परस्पर आधी आधी बाँटके भोगिये ॥ ३९॥

चौपाई ।

विग्रह आपसको नहीं नीका । छाँडहु अब सब बात अलीका ॥
सो अब कहा हमारो कीजे । आधी भूमि बाँट नृप दीजे ॥
उन वनवासि बहु सहे कलेशू । तेहिते तुम कहँ उचित नरेशू ॥
पंच ग्राम पांडव कहँ देहू । कलह निवारण होय सनेहू ॥
इनके दिये मिटत हे रारी । नातर होइहि अनरथ भारी ॥

दोहा–चित्रवीर्यके पाण्डु नृप, चित्राङ्गदके आप ।
हो एके कछु भेद नहीं, तातें करहु मिलाप ॥

हे महाराज ! आपको अपने गोत्रका नाश नहीं करना चाहिये । क्योंकि (संधि होनेपर) आप एकसौ पांच भ्राता हैं और आप सब भ्राता तीनों भुवनमें भली भाँति शोभाको प्राप्त होतेहो ॥ ४० ॥पैने व तीखे बाणोंकी तो

बातही क्या है ? आपको फूलोंसेभी तो युद्ध नहीं करना चाहिये क्योंकि लडा-ईमें मुख्य मुख्य वीरोंका नाश होनेपरभी विजयमें संदेहही रहा करता है॥ ४१॥ राम और रावण, कंस और नहुष यह चार मूढ तो प्रथम हो चुकेहैं किन्तु हे दुर्योधन ! इस समय पांचवें मूढ आप हुए हैं॥ ४२॥ हे महाराज ! जब (पहिले) चित्रांगदनामक गन्धर्व आपको पकडकर चित्रकेतुवनमें लेगया था, तब उस अर्जुननेही आपको छुडायाथा सो इस बातको आप किस तरहसे भूलगये ? ॥ ४३ ॥ हे दुर्योधन ! मैं आपके भलेकी बात कहताहूँ, सो सुनिये उसको सुनकर आप (तदनुसार) करना या मत करना, किन्तु फिर मुझको दोष मत देना ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! यदि आप (पांडवोंको) आधा राज्यभी देना नहीं चाहते हैं तो आधेका आधा अर्थात् चौथा हिस्सा वा उसकाभी आधा (आठवाँ हिस्सा) ही देदीजिये॥ ४५॥ हे महाराज ! यह मैंने आपसे धर्मराज युधिष्ठिरका संदेशा कहा, किन्तु अब भीमसेनका संदेशाभी सुनिये। अर्थात् उन्होंने ऐसा कहाहै कि, दुर्योधनादि कौरव राज्यको त्यागकर वनमें चले जावें ॥ ४६ ॥ नहीं तो मैं उनको बन्धुसमेत, बलसमेत और सेनासमेत यमालयको प्रेरण करूँगा अर्थात् मारडालूँगा । यह मेरी बात सत्यही जानना ॥ ४७ ॥ हे राजन् । अब जो सहदेवजीने सँदेशा कहा है, उसको भी आप सावधान होकर सुनलीजिये । हे कौरवपति ! यदि आप महाराज युधिष्ठिरकी बातको स्वीकार नहीं करेंगे तो आपका सत्यानाश होजावेगा (इसमें सन्देह नहीं) ॥ ४८ ॥ आप यह सारी बातें मनमें सोच समझकर मेरा कहना कीजिये क्योंकि जो आदमी मेरी बातको स्वीकार करके (तदनुरूप) काम किया करता है, उसको कभी दुःख नहीं होता ॥४९ ॥ इस कारण हे नृपोत्तम ! आप सर्व प्रयत्नसे संधि करलीजिये । दुर्योधनने कहा—हे कृष्ण ! आपने जो बात कही, सो वह मेरे कानोंमें ही नहीं घुसी ॥ ५० ॥ भीष्मपितामह, गुरु द्रोणाचार्य अथवा कर्ण और शल्य इत्यादि शूर (योधा) तथा महावीर दुःशासन जो कि लोहेकेभी सौ भीमसेनका नाश करनेवाला है ॥ ५१ ॥ मद्रराज परमप्रसिद्ध जयद्रथ, तथा और भी

महाबलवान् अनेकानेक सुभट मेरे यहाँ प्रस्तुत हैं, हे कृष्ण! इन सब शूरोंकी बात क्या आपने नहीं सुनी है ? ॥ ५२ ॥ हे जगन्नाथ ! आप तो सर्वज्ञ अर्थात् सारी बातें जाननेवाले हैं फिर अब आप जडता (मूर्खता) को प्राप्त होरहे हैं ? पांडवोंका बल तो द्रौपदीका वस्त्र (सारी) खींचनेके समय ॥ ५३ ॥ मैंने प्रथमही भली भाँति देखलिया है, अब फिर आप वृथा अज्ञानीकी तरह किसलिये बकवाद कररहे हैं ? श्रीकृष्णने कहा—हे दुर्योधन ! द्रौपदी आपके खूनसे अपने बालोंको धोवेगी ॥ ५४ ॥ उस काल आपकी माता गाँधारी देखकर खुले बालोंसे विलाप कलाप करेगी और आपके किरीट और राज्यभंगका दर्शन करूँगा ॥ ५५ ॥ और यह जो भीष्मपितामह द्रोणाचार्य हैं सो निरन्तर धर्मकी सेवा करनेवाले हैं, अतएव वे धर्मके निमित्त अपनी आत्मा प्रदान करदेंगे। इस बातको आप झूँठ मत मानना ॥ ५६ ॥ फिर हे राजन् ! कर्ण इत्यादिका बल पुरुषार्थ विराटका गोधन ग्रहण करनेके समय देखालियागया कि वहाँ अकेले अर्जुनने उनकी रुईके समान धज्जी धज्जी उडादी ॥५७॥ और दयायुक्त अर्जुनने उस समय उनका प्राण न हरकर केवल यशही हरण किया, आप यह (सबकुछ आँखोंसे देखकर भी) फिर मूर्ख आदमीकी तरह बात करतेहो ?॥ ५८ ॥ रही द्रौपदीके वस्त्रहरणकी बात । सो चीर खेंचनेके समय यदि महाराज युधिष्ठिर भीम और अर्जुन इत्यादिवीरोंको निवारण (मना) नहीं करते, तो आपका उसी समय वे सत्यानाश करडालते ॥ ५९ ॥ महाराज धर्मराज युधिष्ठिरके साधुपनसे आप लोग अबतक जीवित हैं, क्योंकि यदि उनका साधुपन नहीं होता, तो अबतक पहलेही अर्थात् कभीके आप सब लोग कालके कराल गालमें चलेगयेहोते ॥ ६० ॥ अत एव महाराज युधिष्ठिरमें आपकी जीवरक्षाके निमित्त सत्य विद्यमान हैं, सो यदि आप राज्यके आधे अंशको देना स्वीकार नहीं करतेहैं तो पाँच ग्रामही देदीजिये॥ ६१ ॥अर्थात् इन्द्रप्रस्थ,तिलप्रस्थ, वारुणपुर,वाराणसी और पांचवाँ हस्तिनापुर (उनको) प्रदान कीजिये ॥ ६२ ॥ दुर्योधनने कहा कि, हे कृष्ण ! मैं इन्द्रप्रस्थ तो गुरु

द्रोणाचार्यजीको देचुका हूँ, तिलप्रस्थ पुरोहित कृपाचार्यजीको देचुकाहूँ, वाराणसी भीष्मपितामहको दे चुकाहूँ और वारुणपुर रविनन्दन कर्णको देचुकाहूँ ॥ ६३ ॥ इसके अतिरिक्त हस्तिनापुरमें मैं स्वयं रहताहूँ । हे केशव हे यदुश्रेष्ठ ! इस भूमिपर पांच ग्राम भी खाली नहीं हैं ॥ ६४ ॥

पुनि रिसाय बोलो कुरुराई । सुनिये कृष्णचन्द्र यदुराई ॥
सुई अग्र महि उठे जो जेती । विना युद्ध हौं देउँ न तेती ॥

फिर मैंने जो कुछ निश्चय कियाहै, उसको आप आदरसे सुनिये । हे देव! अत्यन्त पैने अग्रभागवाली सुईको नोकसे जितनी भूमिभी वेधी जासकतीहै उतनी भूमि विना युद्धके मैं नहीं देना चाहता फिर एक ग्रामकी बात तो दूर रही, क्योंकि वे पांडव म्लेच्छकी समान धर्मकरनेवाले पापी हैं, अर्थात् एक भार्याको पांच भर्त्ता भोगतेहैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ अत एव हे मधुसूदन ! आप उनकी बातभी मेरे आगे मत कीजिये । श्रीकृष्णने कहा–आप अंधेके पुत्रभी अंधेही हुएहैं और आपके निकट स्थितहुए यह सब जड हैं ॥ ६७ ॥ क्योंकि मरनेवाला आदमी निकट आईहुई मृत्युको नहीं देखाकरताहै, सत्य है विनाशकाल उपस्थित होनेपर मनुष्यकी मति मारी जायाकरतीहै ॥ ६८ ॥ दैवदंशित होनेपर अर्थात् प्रारब्धके दुष्ट होजानेपर आदमी क्षण भरमें मूर्ख होजायाकरताहै, पुरुषका इसमें दोष नहीं है, होनेवाली बात अपने आपही होजायाकरतीहै ॥ ६९ ॥ देखिये श्रीरामचंद्रजी महाराज कंचनके हिरनको नहीं जानकर उसके पीछे दौडपडे, नहुषने अपनी पालकी उठानेके लिये सात ऋषियोंको जोतदिया, सहस्रार्जुनको यह कुबुद्धि हुई कि, उन्होंने ब्राह्मण जमदग्निसे बछडेसमेत गायको छीनलेना चाहा, और फिर महाराज युधिष्ठिरने जुएमें अपने चारों भाई तथा रानी द्रौपदीको हारदिया, अत एव अनर्थ काल उपस्थित होनेपर प्रायः अच्छे पुरुष अर्थात् बुद्धिमानोंकी मतिभी मारीजायाकरतीहै ॥ ७० ॥ देखो कंचनका हिरन पहले कभी नहीं हुआ और न कभी किसीने देखा, तथा न उसकी बातही कभी किसीने सुनी, तथापि रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी महाराजको उसकी तृष्णा हुई । सत्य

है विनाशकाल उपस्थित होनेपर आदमीकी बुद्धि विपरीत होजायाकरती है ॥ ७१ ॥ भूमण्डलके नरेशोंमें आप सरीखे महान् राजा, विदुरसरीखे प्रधान, भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा कृपाचार्यसरीखे सभापति होनेपरभी और मेरे आने तथा पांडवोंके तनुफलार्थी अर्थात् थोडेसे फलकी कामनावाले होनेपरभी यदि संधि (सुलह) नहीं होवे, तो अहो ! इसको विधाताकाही कठिन बल (अमिट होनहार) समझना चाहिये ॥ ७२ ॥ हे महामूर्ख दुर्योधन ! आप अपने बन्धुबाँधवोंका सत्यानाश करनेवालेहैं क्योंकि रणस्थलके बीच हाथमें गदा लियेहुए क्रोधित यमराजकी समान भीमसेनको ॥ ७३ ॥ जिस समय आप देखेंगे तो अपने मनमें दीन होकर उनको सारी पृथ्वी देनेके लिये तइयार होजावोगे फिर महावीर धनुष व तरकस युक्त, लीलापूर्वक वैरीके बाणोंका ग्रास करनेवाले और ध्वजाके अग्रभागमें साक्षात् रुद्ररूपी तथा भ्रूभंगमात्रसे प्रलय करडालनेवाले कपिकुंजर श्रीहनुमान्‌जीवाले महाबलवान् वीर अर्जुन और भीमसेन इन दोनों जनोंका संग्राममें दर्शन करके आप सारी पृथ्वीके देनेको राजी होजाँयगे । श्रीकृष्णकी ऐसी निठुर बात सुनकर सब कौरव महान् क्रोधित हुए ॥ ७४–७६ ॥

चौपाई ।

सब कुरु वंशी उठे रिसाई । एक एक सन कहैं सुनाई ॥
श्रीकृष्णको मारि निकारो । यामें तनकहु नाहि विचारो ॥
ग्वाल वंश है जातिको नीचा । आबैठत राजनके बीचा ॥
कि तौ पकरि कारागृह दीजै । मिटै प्रपञ्च बात यह कीजै ॥
वे हमते सरवरि कब करते । जों यह उनकर पक्ष न भरते ॥
इनहीके बल वे बरियारा । यह अहीर है बडो गँवारा ॥
नृपरुख लखि हरि अन्तर्यामी । भये अतिउग्र उरग अरिगामी ॥
उठे तुरत तब शारंगपानी । कहि तव मृत्यु निकट नियरानी ॥

और "इस कृष्णको वध करडालो ! वध करडालो " इस प्रकार भगवान् केशवके प्रति कहने लगे और फिर श्रीकृष्णको मारडालनेकी काम-

नासे वे कौरव हाथमें खड्ग लेकर खडे होगये ॥ ७७ ॥ इसी बीचमें प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण हँसे और फिर अपने कामको प्रकट हुआ जान अपने पदाघातसे उस मंडपको कौरवों पर गिराय प्रसन्नतापूर्वक अन्तर्धान होगये। उसके आघातसे किसीका शिर टूटगया, किसी किसीका होठ नेत्र और नासिका टूगफूट गई ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ किसीके हाथ पैर टूटगये और किसी किसीका तो दमही निकल गया। तब उस समय भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य इत्यादिने दुर्योधनसे कहा ॥ ८० ॥ हे दुर्योधन ! श्रीकृष्णकी कही बात सच्ची है. आप निःसन्देह अंधेके अंधेही पुत्र हैं, इसी कारण कालरूपी भगवान् श्रीकृष्णके सन्मुख आजानेपर भी उनको आप नहीं पहिचानसके ॥ ८१ ॥ अरे मूर्ख ! तैंने उनकी पूजा नहीं करी, न मीठे वचनों द्वारा प्रसन्न किया और न हे मंदभागी ! सर्वलोकोंके पितामह श्रीकृष्णकी तैंने स्तुतिही करी ॥ ८२ ॥ सुरासुरगण उनकी स्तुति किया करतेहैं, तुम्बुरु और नारद इत्यादि उनका यश गाया करतेहैं तथा लक्ष्मीजी भी उन देवकी निरन्तर प्रसन्नता चाहती रहती हैं ॥ ८३ ॥ अत एव आप उन पूर्ण परमात्माके सम्मुख क्या चीज हैं ? अर्थात् तिनकेकी समान भी नहीं हैं, भूमिका भारी भारस्वरूप राजाओंको नाश करनेके लिये ॥ ८४ ॥ और साधु महात्माओंका पालन करनेके निमित्त (वे भगवान् श्रीकृष्ण) इस पृथ्वीतलपर अवतीर्ण हुए हैं। रे मूर्ख ! अब बहुत कहनेसे क्या है? जो कुछ तुझसे कहागया इसको सत्यही समझलेना ॥ ८५ ॥ जो कि श्रीकृष्ण यहाँसे अकृतार्थ अर्थात् विफल मनोरथ होकर गयेहैं, इस कारण आपका सर्वनाश होजायगा। हे पुत्र ! यह राज्यसे प्रकट हुई लक्ष्मी किसको बुरी लगा करतीहै ? अर्थात् इसका मिलना सभी कोई चाहतेहैं ॥ ८६॥ हे तात ! जिस समयतक आदमीका भाग्य उदय रहताहै तबतकही यह लक्ष्मी स्थिर (अचल) रहाकरतीहै फिर सर्वनाश उपस्थित होनेपर बुद्धिमान् पण्डित लोग आधी वस्तुको त्याग दिया करतेहैं ॥ ८७ ॥ और आधीके द्वारा अपना काम चलालिया करतेहैं क्योंकि आधी वस्तुके नहीं देनेपर सारी वस्तुका नाश हो-

जाना संभव है। वह अत्यन्त दुस्त्यज है; जिस तरह शरीरोत्पन्न व्याधि (रोग) वैरी होतीहै और वनोत्पन्न औषधी हित करनेवाली हुआ करतीहै, ऐसेही जो दूसराभी हित करनेवाला होता है वह मित्र और जो भाईभी अहित (अनभल) करनेवाला है, उसको वैरी जानना चाहिये। पितामह भीष्म इत्यादिकी इस प्रकार बातें सुनकर महात्मा विदुरजीने कहा ८८॥८९॥

विदुर उवाच।

एष दुर्योधनो राजा मध्यपिंगललोचनः।
न केवलं कुलस्यान्तं क्षत्त्रियान्तं करिष्याति ॥ ९० ॥

विदुरजी बोले—हे सभागण ! यह पिंगलनेत्रवाले राजा दुर्योधन केवल अपनेही वंशका अन्त (सर्वनाश) नहीं करेंगे वरन् संपूर्ण क्षत्रियोंकाही अन्त करेंगे ॥ ९० ॥

इति श्रीभारतसारे उद्योगपर्वणि भाषायां कृष्णागमनिर्गमो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५६.

षट्पञ्चाशत्तमेऽध्याये पुनः श्रीकृष्णमेलनम्।
पाण्डवानां कुरूणाञ्च युद्धोद्योगश्च कथ्यते ॥ १ ॥

इस छप्पनवें अध्यायमें युधिष्ठिरादिसे श्रीकृष्णका फिर मिलना और कौरव पांडवोंके युद्धका उद्योग अर्थात् युद्धकी तैयारी करना यह कथा कही जातीहै ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच।

ततः स केशवो देवो यत्र राजा युधिष्ठिरः।
तत्र गत्वा तु तत्सर्वं जगाद धर्मनन्दनम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! इसके पीछे भगवान् केशव श्रीकृष्ण जहाँ महाराज युधिष्ठिर थे, वहाँ गये और उन्होंने वहाँ पहुँचकर सारा हाल धर्मराजको सुनादिया ॥ १ ॥ कि हे महाराज ! वह दुर्योधनराजा आपको

आधा राज्य नहीं देना चाहता, न पाँच ग्राम देना चाहता है और न एक खेटक इत्यादिकी पृथ्वीकाही देना स्वीकार करताहै ॥ २ ॥ हे धर्मराज ! मैंने दुर्योधनके सम्मुख अनेक धर्मोंको वर्णन करके तरह तरहसे प्रार्थना करी, किन्तु वह आपके लिये एक खेडा और एक खेतभी देना नहीं चाहता॥३॥ इस कारण हे मनुजेश्वर ! आप तलवारकी धारके द्वारा राज्य कीजिये क्योंकि वह मूर्ख दुर्योधन विना संग्राम किये जितनी पृथ्वी तीखी सुइसे विंधजाय, उतनीभी देनी नहीं चाहता ॥ ४ ॥ हे धर्मनन्दन ! उसके सब मूर्ख सभासद भी उसीकी बातका अनुमोदन कररहेहैं तब महामना युधिष्ठिरने भगवान् विष्णु श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर ॥ ५ ॥ वहाँ युद्धका निश्चय करके उद्यम किया और फिर अपने मित्र राजाओंको बुलानेके लिये देश-देशमें दूत भेजदिये ॥ ६ ॥ और हे जनमेजय ! उनको यह पत्र भी लिखा कि हे राजश्रेष्ठगण ! हममें और कौरवोंमें संग्राम होनेवाला है अतएव आप लोग उसको कैसे नहीं सुनतेहैं ? ॥७॥ इस लिये आप तैयार होकर शीघ्रही विराट नगरमें चले आइये । जनमेजयने कहा—हे स्वामिन् ! अब मैं यह जानना चाहताहूँ कि इस तरहका वह अद्भुत युद्ध किस स्थानमें हुआथा ? ॥ ८ ॥ आपसमें युद्ध करनेवाले सब पिता, पुत्र, गुरू और शिष्य कौनसी पृथ्वीपर स्थित होकर लडे ? हे सुव्रत ! यहभी आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ वैशंपायनजीने कहा—हे जनमेजय ! एकदिन अर्जुन और श्रीकृष्ण युद्ध करनेको भूमि देखनेके लिये दुर्योधनसमेत गये ॥ १० ॥ तब उन्होंने सारे देशोंमें देखते घूमतेहुए काठिन पेडोंवाले और क्रूर जन्तुओंसे सेवित अर्थात् हिंसक जीवोंसे भरेहुए बहुत लम्बे चौडे कुरुक्षेत्रको देखा ॥ ११ ॥ जिस स्थानमें सब दयाहीन और धर्मरहित अधर्मी दुष्ट प्राणी निवास किया करते हैं, वहाँ जैसेही यह तीनों जने जाकर खडेहुए कि वैसेही खेतके जोत-नेवाले दो किसान ॥ १२ ॥ पिता पुत्र उस खेतमें घुसकर हलकी नोकको भूमिके भीतर चलाने लगे कि उसी समय खेतमें एक सांपने आकर उस पुत्रको काटखाया॥ १३ ॥ ऐसा होनेपर वह पुत्र प्राण त्यागकर गिरपडा ।

तब उस मरकर गिरेहुए पुत्रको देखकर पिताने सोचा कि कृषिकार्यमें कहीं देर न होजाय इसलिये उसने हलके ऊपर खडा करके हल जोतते जोतते हलके अग्रभाग (फल) द्वारा उस मृतक पुत्रको खेतसे बाहर फेंकादिया और फिर पहलेकी तरहही अपना काम करनेलगा ॥ १४ ॥ वहाँके आदमियोंकी ऐसी कडी (छाती) देखकर फिर यह तीनों जने आगेको चलदिये और अभी यह मार्गमें जाहीरहेथे कि इन्होंने एक सुन्दर वधू देखी ॥ १५ ॥ वह भोजनके लिये बने (पके) हुए अन्न समेत और जल समेत शीघ्रता सहित आपहुँची उसको देखकर श्रीकृष्ण इत्यादिने पूछा कि आप किसकी भार्या हैं ? किसकी कन्या हैं ? और यह पानी तथा भोजन किसके ताँई लिये जारहीहैं ? ॥ १६ ॥ उस नारीने उत्तर दिया—हे महाशय ! मेरा पति खेतीका काम किया करता है और मेरा ससुरभी खेतीका काम किया करता है, मैं उन्हीं दोनों जनोंके लिये यह पानी और भोजन लिये जारहीहूँ ॥ १७ ॥ तब उससे श्रीकृष्णने कहा कि आपके पतिको तो सांपने डसलिया और उसके मरजानेपर तेरे ससुरने उठाकर उसको खेतसे बाहर फेंक दिया ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर उस स्त्रीने अपने स्वामीके हिस्सेका भोजन आप करलिया, यह बात देखकर इन तीनोंको बडाही अचंभा हुआ ॥ १९ ॥ तदनन्तर यह तीनों सोच विचार और यह चरित्र देखकर बडेही आश्चर्ययुक्त हुए और फिर यह तीनों जने उस खेतसे चलकर ॥ २० ॥ अपने अपने घर आये और युद्धकी तैयारी करनेलगे तथा विराटपुरीमें जो नरेश आयेथे वे अति आनन्दित हुए ॥ २१ ॥ महाराज युधिष्ठिरके बुलानेसे आयेहुए वहाँ अनेक राजा आपसमें मिले और फिर महाराज विराटभी पुत्र सेना और युद्धके सामान सहित लडनेके निमित्त सजगये । युयुधान, युधामन्यु, उत्तमौजा, और पुत्र, सेना तथा सामग्री समेत महाराज द्रुपद ॥ २२ ॥ २३ ॥ हर्षित मनसे महाराज विराटके नगरमें आपहुँचे । फिर हिडिम्बाके बर्बरीक और घटोत्कच नामक दोनों महावीर पुत्रभी विराट नगरमें आनकर उपस्थित हुए ॥ २४ ॥

चौपाई।

द्रुपद नरेश साजि सब याना। भयो अरूढ बजाय निशाना॥
धृष्टद्युम्न शिखंडी आवत। रथारूढ हो शंख बजावत॥
युद्धमान सेना सब साजे। पणव मृदंग भेरि बहु बाजे॥
पुनि रथ साजि सात्यकी आयो। सेन संग निज शंख बजायो॥
काशिराज सेना संग लीन्ही। रथ अरूढ ह्वै दुन्दुभि दीन्हीं॥
जरासन्धसुत नृप सहदेऊ। लै निज कटक चल्यो पुनि तेऊ॥
चालिस सहस्र छत्रधर राजा। भये अरूढ बाजे पुनि बाजा॥
दोहा-साजे सकल नरेश पुनि, गज रथ तुरंग पदात।
रथी महारथ गजपती, कटक क्षोहिणी सात॥

इनके अतिरिक्त और भी सब महावीर विराटनगरमें स्थित हुए तथा और दूसरे भी धर्मराज युधिष्ठिर योधा कुरुक्षेत्रमें आनकर प्राप्त हुए॥ २५॥ वहाँ कौरव और पाण्डवपक्षीय राजा एकत्र मिलित हुए और फिर श्रीकृष्णने महाराज युधिष्ठिरसे आज्ञा लेकर द्वारकापुरीको गमन करतेहुए कहा ॥ २६ ॥ हे धर्मनन्दन युधिष्ठिर ! मैं अपनी सेनाको संग लेकर शीघ्रही कुरुक्षेत्रमें आनकर उपस्थित हूँगा। और आपका सारा काम करूँगा अत एव आप निर्भय होजाइये ॥ २७॥ क्योंकि मेरा और आपका काम भिन्न (अलग) नहीं है, उन धर्मराज युधिष्ठिरको उस प्रकार सन्तोष देकर विश्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपने घरको चले गये ॥ २८ ॥ उनके चलेजानेपर धर्मराज युधिष्ठिरने अपने (सब भाइयों) से कहा, कि आप लोगोंमें किसका कैसा तेज और पराक्रम है सो मुझे बताइये ? ॥ २९ ॥ तब हे राजा जनमेजय ! भीमसेन दिशाओंको गर्जित अर्थात् शब्दायमान करतेहुए शीघ्रता सहित धर्मराज युधिष्ठिरसे सब राजाओंके देखते देखते यह भक्तियुक्त वचन बोले ॥ ३० ॥ हे महाराज ! मैं इस महारण (युद्ध) में कौरवोंका नाश करूँगा. और दुःशासनकी भुजाओंको उसके कन्धोंसे उखाडूँगा ॥ ३१ ॥

और वहीं उनका खूनपीकर द्रौपदीके ऋणसे उरिण हूँगा. तथा इसके पीछे युद्धमें दुर्योधनको नाश करके गदाघातसे भूतलशायी करूँगा ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! सब राजाओंके देखतेहुए (सामने) यह जो मैंने प्रतिज्ञा करीहै उसको मैं भगवान् विष्णुकी सहायतासे अवश्य पालन सत्य करूंगा ॥ ३३॥ भीमसेन इस प्रकार कहतेही थे कि अर्जुनने कहा कि, मेरे साथ जो क्षत्री महासंग्राम करेंगे ॥ ३४ ॥ उनको मैंभी विष्णुकी सहायतासे अवश्य मारडालूंगा। क्योंकि मनुष्यके भगवान् विष्णुही परम देवता हैं, इसमें झूंठ नहीं है ॥ ३५ ॥ अर्जुनकी इस प्रकार यह बात सुनकर सहदेवने यह बात कही जब कि इस मूर्ख धृतराष्ट्रके पुत्रने ॥ ३६ ॥ भगवान् विष्णुकी बातका निरादर किया और धर्मराजकी बातकाभी आदर मान नहीं किया, इस कारण युद्ध आरंभ अठारह दिनके बीचमें ही यह राजा दुर्योधन ॥ ३७॥ अवश्य माराजायगा इसमें सन्देह नहीं है। पांडवोंकी यह प्रतिज्ञा सुनकर दूत चलेगये ॥ ३८ ॥ उन्होंने हस्तिनापुरमें जाकर दुर्योधनसे सारा हाल कहदिया। वे नमस्कार करके वहाँ जो जो बातें हुई थीं, उनको इस तरह कहनेलगे कि ॥ ३९ ॥ भीमसेन और अर्जुनने इस भाँति प्रतिज्ञा करी, फिर उस प्रतिज्ञाको सुनकर सहदेवने यह कहा॥ ४० ॥ कि युद्धारंभसे अठारह दिनके बीचमेंही राजा दुर्योधन माराजायगा. इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ दूतकी कही बात सुनकर दुर्योधन घबरा-गया (और सोचकर निश्चय किया कि,) मैं वैरियोंके संग अठारह दिन-तक संग्रामही न करूंगा ॥ ४२ ॥ अपने जीमें यह निश्चय करके डर रहते हुएभी निडर व्यक्तिकी तरह सूरत बनायकर दुर्योधन प्रीतिपूर्वक और शीघ्रता सहित भीष्मपितामहके मन्दिरमें गया ॥ ४३ ॥ वहाँ जाय राजा दुर्योधनने भीष्मपितामहके प्रति वचन कहकर बहुत भाँतिसे उनकी पूजा करी और अपनी भक्तिद्वारा उनको संतुष्ट करके कहा ॥ ४४ ॥ दुर्योधन बोला, हे विभो ! मैं आपका दास और पोष्य हूँ और निरन्तर पालनेयोग्य हूँ तो फिर जिस किसीकी पालीपोषीहुई वस्तुका नाश होताहै तो पालनकर्त्ता मनु-

ष्यको अवश्यही दुःख हुआकरताहै ॥ ४५ ॥ दुर्योधनकी यह बात सुनकर भीष्मपितामहने कहा। भीष्म बोले—हे दुर्योधन! हे महावीर! आप पृथ्वी तलपर एकही राजा हैं ॥ ४६ ॥ अत एव हमारे बालरूपभावमेंभी निरन्तर पूजा करनेके लायक हैं। भीष्मजीकी यह बात सुनकर राजा दुर्योधनने कहा ॥ ४७ ॥ कि हे तात! आप भीमसेन व अर्जुनकी करीहुई प्रतिज्ञा और मेरे नाशको सूचितकरनेवाला सहदेवका वचन सुनिये ॥ ४८ ॥ इस कारण हे पितामह! आप सर्व प्रयत्नसे हमारा पालन कीजिये। तब गंगापुत्र भीष्मपितामहने दुर्योधनकी यह बात सुनकर ॥ ४९ ॥

नरनारायणाभ्यां वै युद्धं कार्यं मया ध्रुवम्।
मनस्येवं विचिन्त्यासौ भीष्मो वचनमब्रवीत् ॥ ५० ॥

विचार किया कि मुझको नर नारायणके साथ युद्ध अवश्यही करना चाहिये। इस प्रकार अपने मनमें चिन्ता करके भीष्मजीने कहा ॥ ५० ॥

इति श्रीभारतसारे उद्योगपर्वणि भाषायां दुर्योधनभीतिर्नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५७.

सप्तपञ्चाशत्तमे च कुरुपाण्डवयोर्बलम्।
अष्टादशाक्षौहिणीकं प्राप्तं तदिह कथ्यते ॥ १ ॥

इस सत्तावनमें अध्यायमें कौरव और पांडवोंकी अठारह अक्षौहिणी सेनाका आनकर प्राप्त होना, यह कथा कहीजाती है ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच।

भयत्रस्तं हि राजानं भीष्मो वचनमब्रवीत्।

भीष्म उवाच।

दिनानां दशकं राजँस्तव रक्षां करोम्यहम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय! तब मारे डरके घबरायेहुए दुर्योधनसे भीष्मजी कहनेलगे। भीष्मजीने कहा—हे राजन्! दशदिनतक तो मैं

आपकी रक्षा करूँगा ॥ १ ॥ हे महाराज ! मुझ भीष्मके हाथमें धनुष लिये खडे होनेपर कालभी असमर्थ होगा, इस मेरी बातको आप लेशमात्रही झूंठ मत समझना ॥ २ ॥ फिर राजा दुर्योधनने वहाँसे उठ गुरु द्रोणाचार्यजीके पास जाकर कहा हे गुरो ! हे द्रोण ! हे महावीर ! मैं शिष्य होनेसे आपके पुत्रकी समान हूँ ॥ ३ ॥ हे तात ! इसलिये आपको मेरा पालन करना चाहिये । क्योंकि इस भूतलपर मेरा दूसरा नाथ (स्वामी) कोई नहीं है, इतना कहकर भीमार्जुनकी प्रतिज्ञा और जो सहदेवने बात कहीथी ॥ ४ ॥ वह सारी बातें कहकर फिर भीष्मपितामहसे जो बात चीत हुई थी, वह सब भी सुनाई, तब द्रोणाचार्यजीने उन सारी बातोंका कारण जानकर कहा ॥ ५ ॥ द्रोणाचार्यजी बोले—हे राजेन्द्र ! हे मनुजेश्वर ! यदि यह बात है, तो मैं चार दिनतक सर्वप्रयत्नद्वारा यमराजसेभी आपकी रक्षा करूँगा ॥ ६ ॥ फिर गुरु द्रोणाचार्यजीकी आज्ञा लेकर राजा दुर्योधन सूर्यपुत्र कर्णके घर गया और वहाँ पहुँच कर्णकी वाणी द्वारा श्लाघा (सराहना) करताहुआ कहने लगा ॥ ७ ॥ हे रविनन्दन ! पहला सारा वृत्तान्त जानकर आप हमारा पालन कीजिये । दुर्योधनकी यह बात सुनकर कर्णने उत्तर दिया ॥ ८ ॥ कर्णने कहा—हे राजन् ! यदि यह बात है तो दो दिनतक मैंभी आपकी रक्षा करूँगा, तब फिर राजा दुर्योधनने शल्यके पास जाकर कहा ॥ ९ ॥ दुर्योधन बोला—हे शल्य ! हे महावीर ! हे प्रभो ! आप मेरी रक्षा कीजिये । फिर राजा दुर्योधन पूर्ववृत्तान्तको जानकर ज्योंही उसके आगे स्थित (खडा) हुआ ॥ १० ॥ कि त्योंही शल्यने भयशंकित मनसे दुर्योधनके प्रति कहा कि हे राजेन्द्र ! एकदिनतक मैंभी आपकी रक्षा करूँगा ॥ ११ ॥ तब फिर राजा दुर्योधनकी एकदिन (अपनी) रक्षा करनेके लिये दूसरा कोई वीर दिखाई नहीं दिया, तब तो वह मनमें चिन्ता करनेलगा ॥ १२ ॥ कि इसके उपरान्त अब क्या करना चाहिये ? किसके पास पहुँचकर एक दिनकी रक्षाके लिये प्रार्थना करूँ ? मुझको तो ऐसा कोईभी वीर दिखाई नहीं देता ! ॥ १३ ॥ इस तरह भाँति भाँतिसे अपने मनमें तर्क वितर्क करके निर्बल होजानेपर वह

पापी राजा दुर्योधन फिर किसीके पास नहीं गया और एक दिन अपनी रक्षाके लिये अपनपेको ही रक्षक मानकर स्थित रहा ॥ १४ ॥ इसके पीछे राजा दुर्योधन अपने बन्धु बाँधव सारे कौरवोंको संग लेकर अपने आपही कुरुक्षेत्रको चलागया ॥ १५ ॥ और पीछे महाराज युधिष्ठिर भी युद्धके निमित्त निश्चय कियेहुए अपने बन्धु बाँधव और सारी सेना समेत कुरुक्षेत्रको गये ॥ १६ ॥ इसी बीचमें भगवान् श्रीकृष्णभी द्वारका पुरीसे अपनी सारी सेना, तथा बलभद्र और यादवोंसे घिरे हुए वहाँ आपहुँचे ॥ १७ ॥ तब उस स्थानमें कौरव और पाण्डव परस्पर मिलेहुए सुखसे स्थित रहे। फिर राजा दुर्योधन और बलवानोंमें उत्तम भीमसेनने ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णके पास पहुँचकर हे नृपोत्तम जनमेजय ! युद्धके लिये प्रार्थनाकरी किन्तु श्रीकृष्णको सोताहुआ देखकर (जानकर) मानी (घमँडी) दुर्योधन ॥ १९ ॥ उनके शिरहाने बैठगया, और भीमसेन पांयतोंमें बैठगये, फिर जब श्रीकृष्ण निद्राभंग होनेपर उठे, तो उन्होंने प्रथम भीमसेनकोही देखा ॥ २० ॥ और कहा कि यह मैं आपका सहायक हुआहूँ, आप मेरी बात निश्चय समझिये। यह कहकर फिर ईश्वर श्रीकृष्णने अपने पीछेकी तरफ देखा ॥ २१ ॥ तो दुर्योधनको देखकर (पूछा) कि हे राजन् ! आप कब आये ? हे भूपाल ! मैं भीमसेनको वचन देचुका, अत एव अब क्या करसकताहूँ ? ॥ २२ ॥ हे महाबुद्धिमान् ! आप बलभद्र इत्यादि मेरी सारी सेनाको लेलीजिये। श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर राजा दुर्योधनने कहा ॥ २३ ॥ दुर्योधन बोला—हे विभो ! यह आपकी सारी सेना भीमसेनके पास जावे, और मेरे हिस्सेमें आप आवें, उस दुर्योधनके इस प्रकार कहतेहुएही श्रीकृष्णने उसको भ्रममें डालतेहुए कहा ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे नृपसत्तम ! न तो मैं युद्धही करूँगा, और हथियार कोई हाथमें पकडूँगा ऐसा मानकर जो आपको मनको रुचे ॥ २५ ॥ सोही कीजिये क्योंकि दो कामोंमें एकही काम किया जाताहै; श्रीकृष्णजीने इस तरह दुर्योधनको भ्रमाते हुए वही बात भीमसेनसे कही और फिर सौगन्ध (कसम) खाई ॥ २६ ॥ कि जो आदमी छल

कपट किया करता है और पूजा करनेलायक आदमीकी पूजाके नष्ट करने-पर जो पाप लगाकरताहै, यदि शस्त्र पकडूँ तो मुझको भी इन सब पापोंमें लिप्त होनापडे ॥ २७ ॥ जो आदमी विश्वासघातका करनेवाला और कृत-कार्योंका घात करनेवाला है, यदि मैं शस्त्र पकडूं तो मुझकोभी इन लोगोंके पापमें लिप्त होनापडे ॥ २८ ॥ इस भाँति तरह तरहकी बातोंसे श्रीकृष्णने उसको विश्वास करादिया, और तब उस मन्दबुद्धिने बलराम इत्यादि सारी सेनाकोही लेलिया ॥ २९ ॥ इस प्रकार भीमसेन तथा दुर्योधनने कहकर अपना अपना भाग प्राप्त किया और इधर श्रीकृष्णने बलरामजीसे कुछ मन्त्रण (सलाह) करके उनको तीर्थयात्रा करनेके लिये आज्ञा दी ॥ ३० ॥ कारण कि सेनापति बलरामजीके होनेपर भारतमें सेना कदापि संग्राम नहीं कर सकेगी । तब महाराज युधिष्ठिरको कौरवोंके सैन्यसागर बीच श्रीकृष्ण-स्वरूप सुन्दर नाव मिलगई ॥ ३१ ॥ अत्यन्त मजबूत (पक्की) और साबत (छिद्रहीन) और विना सुकृत (पुण्य) के प्राप्त नहीं होनेवाली जिस श्रीकृष्ण-स्वरूप नौकाका सहारा लेकर महात्मा पुरुष संसारसमुद्रसे तरजाया करतेहैं ॥ ३२ ॥ इस भाँति महारथी युधीष्ठिर अपना भाग एकत्रित होनेपर सात अक्षौहिणी सेनाके अधिपति (मालिक) हुए ॥ ३३ ॥ और उधर राजा दुर्योधन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी हुआ । इस तरह अपने अपने भागमें स्थित होकर सब कोई युद्धके आरंभमें गर्जना करने लगे ॥ ३४ ॥

सिंहवच्छंखनादांश्च कुर्वन्ति गर्जनां तथा ।
नेदुर्दुन्दुभयस्तत्र सर्वसैन्यसमागमे ॥ ३५ ॥

और शंखध्वनि करके सिंहकी तरह दहाडने लगे और वहाँ दोनों सेना-ओंके एकत्र होनेमें दुन्दुभी (धौंसे) इत्यादि बाजेभी बजनेलगे ॥ ३५ ॥

इति श्रीभारतसारे उद्योगपर्वणि भाषायां सैन्यसमागमो नाम
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५८.

अष्टपञ्चाशत्तमे च शूरश्लाघा द्विसेनयोः।
वर्वरीकशरीरस्य बलिदानमिहोच्यते ॥ १ ॥

इस अट्ठावनवें अध्यायमें दोनों सेनाओंमें योधोंकी बडाईका होना और वर्वरीकके देहका भूमिको बलिदान होना यह कथा कहीजाती है ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

दुर्योधनस्य सैन्ये ये शूराः सन्ति महारथाः ।
ताञ्शृणुष्व महाभाग कथयिष्ये तवाग्रतः ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाभाग जनमेजय ! अब जो दुर्योधनकी सेनामें महारथी और महाशूर हैं, उनका आपके सम्मुख वर्णन करताहूँ श्रवण कीजिये ॥ १ ॥ भीष्मपितामहको अतिरथी कहागयाहै, द्रोणाचार्यजीको अतिरथी कहाहै, द्रोणाचार्यजीका बेटा अश्वत्थामाभी अतिरथी और उसी-प्रकार कृपाचार्यजीकोभी अतिरथी जानना चाहिये ॥ २ ॥ यह चरोंजने समान अतिरथी वर्णित हुए हैं, उसी तरह बलवान् कर्णकोभी अतिरथी जानना चाहिये । हे महाराज ! अन्यान्य सारे भूपाल भी महाबलशाली हैं और बलवान् महारथी कहलातेहैं ॥ ३॥ शकुनि, सौबल, शिंव, विक्रम, उलूक, सोमदत्त और महाबलवान् विष्वक्सेन ॥ ४ ॥ वैकर्त्तन, कलिंग और बाह्लीक यह महारथी हैं । भगदत्त, विकर्ण, दुःशासन और जयद्रथ ॥ ५ ॥ यह सब कौरवोंके दलमें महावीर कहेगयेहैं । अब जो पांडवोंके दलमें शूर हैं, हे महाबुद्धिमान् जनमेजय ! उनकोभी आप सुनिये ॥ ६ ॥ अर्जुन, सात्यकी, विराट, द्रुपद्र, अभिमन्यु, भीमसेन, वर्वरीक और घटो-त्कच ॥ ७ ॥ नकुल, सहदेव और महाराज युधिष्ठिर यह सब वीरोंमें मुख्य हैं और उनमेंभी इतने अतिरथी कहेगये हैं ॥८॥ अर्थात् पुत्र समेत (अर्जुन और अभिमन्यु) और वर्वरीक व घटोत्कच इन दोनों बेटों समेत भीमसेन पांडवोंमें यह पाँचों अतिरथी कहेगयेहैं और भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण इन

सबके अग्रणी होकर विराजमान हैं ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णके प्रभावसे वे सारे पांडव उन्हींकी तरह विक्रमशाली (पराक्रमकरनेवाले) हैं और. उधर सब कौरवभी भीष्मादिके प्रभावसे रुद्रके सदृश विक्रमवान् होरहेहैं ॥ १० ॥ वैशम्पायनजी बोले–हे जनमेजय ! इसके पछि श्रीकृष्णने भीमसेनके पुत्र वर्वरीकके हाथमें तीन शर (बाण) देखकर उसके नाश करनेकी कामनासे हँसते हँसते इसप्रकार कहा ॥ ११ ॥ हे भीम अर्जुन इत्यादि महावीरो ! आप सब लोग इस वर्वरीकके पौरुष (पराक्रम) धनुषके रूप और तीन बाणोंको देखिये ॥ १२ ॥ यदि इनके यह बाण भग्न (टूट) होगये तो फिर काहेसे लडेंगे तब अर्जुनादि महान् वीर इतने बाणोंके धारण करनेवाले वृथाही उनका बोझ लादरहेहैं ? ॥ १३ ॥ भगवान् विष्णु श्रीकृष्णके इस-प्रकार कहनेपर वर्वरीकने हँसकर उत्तर दिया । वर्वरीकने कहा–हे विष्णो ! मैं अपने इस एक बाणसे सारे प्रधान प्रधान राजाओंका नाश करडालूँगा ॥ १४ ॥ यदि मेरा एक बाण टूटगया तो मैं अखंड बलमें स्थित होकर दोनों बाणोंसे कृत्या सिद्ध करूँगा. अर्थात् ग्यारह अक्षौहिणी सेनाको नाश कर-डालूंगा । वर्वरीककी यह बात सुनकर श्रीकृष्णने हँसते हँसते उन भीमनन्दन वर्वरीकसे पूछा, हे लम्बीभुजावाले वर्वरीक! आप (इन दो बाणोंके द्वारा) किसतरह कृत्या सिद्ध करलेंगे ? ॥५॥ वर्वरीकने उत्तर दिया, हे मधुसूदन! मैं एक बाणसे योधाओंकी मृत्युको भलीभाँति देखरहाहूँ और फिर एक बाणसे उन योधाओंके प्राणोंको तत्क्षण निकाललूंगा ॥ १६ ॥ तब भग-वान् विष्णु श्रीकृष्णने हँसते हुए छलमिश्रित वाणीसे कहा, कि यदि आप मेरी मृत्युकोभी जानलेवें तो मैं आपकी बातको पक्का (सच्चा) मानूं ! ॥ १७ ॥ विष्णु श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर वर्वरीकने आकाशमें अपना बाण छोडा जो कि सातलोकोंतक चलागया किन्तु वहाँ मृत्युको नहीं देखा ॥ १८ ॥ फिर वह बाण चारों दिशाओंको देखताहुआ पछि पतालमें जा घुसा, और वहाँ सात पातालोंमें पहुँचकर मृत्युको देखा ॥ १९ ॥ अन-न्तर विष्णुकी पार्ष्णि (एडी) को प्राप्त हो और सिन्दूरयुक्त मुखसे एडीमें

निशान कर फिर वह बाण वर्वरीककेही पास लौट आया ॥ २० ॥ फिर दूसरे बाणको जैसेही आदर सहित छोडने लगा कि इसी बीचमें श्रीकृष्णने देखा तो वर्वरीक हँसनेलगा ॥ २१ ॥ फिर जब श्रीकृष्णने अपनी एडीको सिन्दूरसे चिह्नित देखा तो वे वर्वरीककी महिमाको जानकर (आश्चर्यमें हो) चुपचाप रहगये ॥ २२ ॥ फिर दूसरे दिन श्रीकृष्णने युधिष्ठिरादि पांडवोंको भ्रमातेहुए और भीमात्मज वर्वरीकका नाश करनेकी कामना करते हुए उनसे कहा ॥ २३ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे पांडवों ! वैरीको विजय करनेके निमित्त इस रणभूमिकी बलिदानसे पूजा करनी चाहिये क्योंकि यदि इसकी पूजा नहीं कीजायगी, तो यह सारे पांडवोंको भोजन करजायगी ॥ २४ ॥ पाण्डवोंने कहा—हे विभो ! इस पृथ्वितलपर आपके आतिरिक्त हमारी भलाई करनेवाला दूसरा कोईभी नहीं है अत एव आप अब यह बतलाइये कि हाथी, घोडा और नर उन प्राणियोंके बीच किसका बलिदान होना चाहिये ? ॥ २५ ॥ यह हमसे सब इस समय कह दीजिये कि जिससे लडाईमें हमारी विजय हो, श्रीकृष्णने उत्तर दिया कि, बत्तीस लक्षणोंसे युक्त जो वीर योधा हो ॥ २६ ॥ उसी योधाको बलिके रूपमें समर्पण करना चाहिये मनुष्योंमें विजयकी कामना करनेवाले उन वीरोंको उस शूरकी बलि त्याग करदेनी चाहिये। तब पांडवोंने कहा—हे भगवन् ! हमारे कटकमें बलि देनेके लायक कौन व्यक्ति है ? सो बताइये ॥ २७ ॥ उनकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण आंखोंमें आंसू भरलाये और फिर वे विद्वानोंकोभी भ्रममें डालनेवाले (श्रीकृष्ण) बोले ॥ २८ ॥ श्रीकृष्णने कहा—हे वीरो! यहां (इसयोग्य) एक तो मैं हूँ और दूसरा वर्बरीकभी मेरेही तुल्य वीरहैं, अथवा तीसरा अर्जुन है, इन तीनोंके बीच एकको हनन करना चाहिये इस बातमें संशय नहीं करना ॥ २९ ॥ क्योंकि एक व्यक्तिके नष्ट होनेपर शेष सब जीवित रहेंगे, और नहीं तो सबकी ही मृत्यु होजायगी, और यदि (यथोचित) बलिदान होगया तो फिर बृहस्पतिजीसे रक्षक होनेपरभी अवश्य शत्रुओंका नाश होजायगा ॥ ३० ॥ संसाररूपी भगवान् श्रीकृष्णकी यह बातें सुनकर उस वर्वरीकने हँसते हँसते सब पाण्डवोंसे कहा ॥ ३१ ॥ वर्वरीक बोला

कि, हे महोदय ! इस लडाईमें श्रीकृष्ण और अर्जुन यदि न हुए तो समस्त पांडव निष्फल हैं, इस कारण आप मेरे ही शिरको काटडालिये, जिसमें आपकी विजय होवे ॥ ३२ ॥ (ऐसा होनेपर सब पांडव राज्य करेंगे फिर इससे अधिक मेरा अहोभाग्य क्या होगा ?) यह, कहते कहतेही वर्वरीकने एक हाथसे तो अपनी चुटिया पकडी ॥ ३३ ॥ और फिर दूसरे हाथसे तो अपना मस्तक काटकर भगवान् श्रीकृष्णसे इस तरह प्रार्थना करनेलगा कि हे कृष्ण कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे प्रभो ! आप भूमिका भारी भार उतारनेवाले हैं ॥ ६४ ॥ अत एव यहाँ जिस प्रकारका युद्ध हो उसको मैं देखनेकी कामना करताहूँ, सो मुझको आप अपनी प्रसन्नतासे वह सारा संग्राम दिखादीजिये । इसके अतिरिक्त दूसरी अभिलाषा मेरी कुछ नहीं है ॥ ३५ ॥ हे विष्णो ! मैं आपका दास हूँ अत एव मुझको मोक्षरूपी अपना परमपद प्रदान कीजिये । भगवान् श्रीहरि अपने भक्तकी यह बात सुनकर अत्यन्त ॥ ३६ ॥ उद्विग्न (उदास) हुए फिर हे राजेन्द्र ! उन्होंने एवमस्तु अर्थात् (ऐसाही होगा) कहा इसी बीचमें वर्वरीकका मस्तक भगवान् श्रीकृष्णके पैरोंमें आगिरा ॥ ३७ ॥ तब श्रीकृष्ण अपने दोनों हाथोंसे उस शिरको उठाकर पर्वतपर रखादिया और कहा—हे वीर ! आप जिस तरहका युद्ध हो उसको यहाँसे देखते रहिये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णने कहकर सारा काम सिद्ध कराया तब युद्धके निमित्त निश्चय किये हुए पांडव शोकहीन मनुष्यकी समान स्थित हुए । हे राजेन्द्र ! यह एक अचंभासा होगया ॥ ३९ ॥

हेमन्ते प्रथमे मासि त्रयोदश्यां सिते दले ।
भौमवारे भरण्यां च संगरोऽभूत्तदा महान् ॥ ४० ॥

यह महासंग्राम हेमन्तऋतुके प्रथम महीने अर्थात् अगहनमास, तिसमें शुक्लपक्षकी तेरस और मंगलवार तथा भरणी नक्षत्रमें (आरंभ) हुआ ४० ॥

इति श्रीवेदव्यासकृते श्रीभारतसारे उद्योगपर्वणिमुरादाबादनगरनिवासि कात्यायन-कुमारपंडित श्रीकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायामष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५८॥

इति श्रीभाषाभारतसारे उद्योगपर्व समाप्तम् ॥

श्रीकृष्णाय नमः ।

भारतसार-भाषा ।

भीष्मपर्व ६.

एकोनषष्टितमोऽध्यायः ५९.

दोहा—आनन्दकन्द मुकुन्दकी, पदरजको शिरनाय ।
भाषा भीषमपर्वकी, निजमति लिखत बनाय ॥
नन्दनन्दन पद वन्दि पुनि, राधाको धरि ध्यान ।
चरण कमल रज कृपासे, कहुँ शुभ चरित बखान ॥
व्रजजन जीवन मूरि प्रभु, राधा नन्दकिशोर ।
करहु कृपा मो अधम पहँ, देखि आपुनी ओर ॥
जयति जयति प्रभु जगत पति, नटवर मदन गोपाल ॥
भजन करत तुम्हरो सदा, मिश्र कन्हैयालाल ॥
ज्यों बारनकी बार प्रभु, छिनकी करी न वार ॥
तैसेही मो दासको, भवतें लेहु उबार ॥
विनय कन्हैयालालकी, सुनिय कन्हैयालाल ।
कृपा दृष्टि करि भक्तके, काटहु जग जंजाल ॥
और वस्तु कछु जगतकी, मुहि चहिये प्रभु नांहि ।
यह बांकी झांकी सदा, वसी रहे उरमांहि ॥
वृन्दावन वासी सदा, भक्तनके आधार ।
मिश्र कन्हैयालालके, कारज देहु सँवार ॥

चरित ललित नँद नंदके, हरन ताप त्रय शूल ।
मिश्र कन्हैयालाल पहँ, सदा रहो अनुकूल ॥

एकोनषष्टितमे च फाल्गुनस्य महामते ।
स्वजनानां दयाकामो धर्मरूपश्च कथ्यते ॥ १ ॥

इस उनसठवें अध्यायमें अपने स्वजनोंके ऊपर अर्जुनका धर्मरूपी दयाकी कामना करना यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि भीष्मपर्वमनुत्तमम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण देहाध्यासः प्रमुच्यते ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय ! अब मैं इसके पीछे अति उत्तम भीष्म-पर्व वर्णन करताहूँ जिसके केवल श्रवण करतेही शरीरका अज्ञान नष्ट होजाता है ॥ १ ॥ जिस समय कौरव और पांडवोंमें यह भारत युद्ध प्रवृत्त(आरंभ) हुआ, उस काल गुरु, भाई और पितामहको देखकर ॥ २ ॥ वीर अर्जुन विषादसे दयायुक्त होकर यह कहनेलगे । अर्जुनने कहा—हे अच्युत ! आप दोनों सेनाओंके बीचमें मेरे रथको खडा कर दीजिये ॥ ३ ॥ जो लडनेकी अभिलाषासे यहाँ वर्त्तमान हैं जबतक मैं उनको देखलूँ कि इस रणके उद्य-ममें मेरे संग कौन लडनेलायक हैं ? उस समयपर्यन्त आप रथको खडा रहने-दीजिये ॥ ४ ॥ दुर्बुद्धि दुर्योधनको संग्राममें प्रसन्न करनेकी कामनावाले जो यहाँ आनकर उपस्थित हुएहैं, मैं इन संग्रामकरनेवालोंको देखूँगा ॥ ५ ॥ संजय बोले—हे धृतराष्ट्र ! गुडाकेश अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर श्रीकृष्णने दोनों सेनाओंके बीचमें उस उत्तम रथको खडा करदिया ॥६॥ फिर भीष्म, द्रोण तथा सारे राजालोगोंके सम्मुख श्रीकृष्ण बोले कि हे अर्जुन ! अब आप इन सब मिलेहुए कौरवोंको देखिये ॥ ७ ॥

चौपाई ।

पारथ आनि सबै दिशि देखेउ । सबके अग्र पितामह लेखेउ ॥

श्वेतवर्ण रथ सरस सुहायो। श्वेतवर्ण तनु शोभा पायो॥
गुरु द्रोण रथ श्याम सुहायो। श्यामवर्ण घोडे छबि पायो॥
कृपाचार्यको अर्जुन देख्यो। मनमहँअतिविस्मयकारिलेख्यो॥
देख्यो दुर्योधन सौ भाई। धवल छत्र शिर शोभा पाई॥
सिन्धु राज देख्यो बहनोई। मामा शल्य जान सब कोई॥

दोहा–गुरु पितामह बन्धु सुत, देख्यो सब परिवार।
इन्हें मारि जय का करौं, दियो धनुष शर डार॥

तब अर्जुनने वहाँ खडेहुए पिता, पितामह, आचार्य और मामा, भाई बेटे, पोते, सखा॥८॥ ससुर तथा सुहृद दोनों सेनाओंमें देखे, तब कौन्तेय उस अर्जुनने उन सब बाँधवोंको वहाँ खडाहुआ देखा॥ ९॥ अत्यन्त दयाके वशीभूत हो खेदसहित यह कहा। अर्जुन बोले–हे कृष्ण! इन संग्राम करनेकी अभिलाषासे खडेहुए स्वजनोंको देखकर॥ १०॥ अंग दग्ध होते हैं और मुख सूखजाता है मेरे देहमें कम्प होता है और देहके रुँवें खडेहुए जाते हैं॥ ११॥ गांडीव धनुषभी मेरे हाथसे छूटापडताहै, शरीरकी त्वचा (खाल) चारों ओरसे दग्ध होरहीहै, अब एव अब मैं यहाँ ठहरभी नहीं सकता क्योंकि मेरा मन भ्रमरहाहै॥१२॥ हे केशव! सारे निमित्त (लक्षण) विपरीत दिखाई देरहेहैं, अत एव मैं संग्राममें स्वजनोंको वध करके उत्तम फल नहीं देखरहाहूँ॥ १३॥ हे कृष्ण! मुझको (अब) विजयकी आकांक्षा नहीं है और न राज्यके सुखकोही चाहताहूँ। हे गोविन्द! हम लोगोंको राज्य, भोग और जीवनसे क्या (प्रयोजन) है?॥ १४॥ क्योंकि जिनके लिये राज्यभोग और सुखकी इच्छा की जातीहै, वेही लोग यह प्राण और धनको त्यागकर वहाँ युद्ध करनेको खडेहुए हैं॥१५॥ आचार्य, पितर, पुत्र, तथा पितामह, मामा, ससुर, पौत्र, साले तथा सम्बन्धी॥ १६॥ हे मधुसूदन! चाहें यह लोग मुझको मारही क्यों न डालें तो भी मैं इनको मारना

नहीं चाहता। मैं त्रैलोक्यका राज्य मिलनेके कारणभी इन लोगोंको नहीं मारना चाहता तब फिर थोडीसी पृथ्वीकी तो बात ही क्या कहूँ ?॥१७॥

चौपाई।

अर्जुन कह्यो सुनहु जगतारण। गोत्रवधन कीजे केहि कारण॥
बाढै पाप पुण्य सब नाशहि। पावौं अन्त अधोगति वासहि॥
गुरु परिवार बधौं केहि काजहि। जैहौं वनहि छांडिकै राजहि॥

हे जनार्दन ! हमलोगोंको धृतराष्ट्रके बेटोंका नाश करनेसे क्या प्रसन्नता होगी ? किन्तु इन आततायियोंके मारडालनेसे केवल पापही लगेगा॥१८॥ इस कारण मैं धृतराष्ट्रके पुत्र अपने बांधवों (भाइयों) को नहीं मारूँगा, क्योंकि हे माधव ! इन स्वजनोंका नाश करके मैं कैसे सुखीहूँगा ?॥१९॥ यद्यपि लालचसे हतचित्तवाले यह कौरव कुलके नाश करनेका दोष और मित्रद्रोहसे उत्पन्नहुए पातकको नहीं देखते हैं॥ २० ॥ तो भी हे जनार्दन ! कुलक्षयके किये दोषको देखतेहुए हमलोगोंकरके इस पापसे निवृत्त होना कैसे जाननेयोग्य नहीं हैं ?॥२१॥ कुलका क्षय होनेपर कुलका सनातन धर्मभी नष्ट होजाता है, फिर धर्मके नाश होजानेपर संपूर्ण कुलमें अधर्म फैलजाया करता है ॥ २२ ॥ और हे कृष्ण ! अधर्म फैलजानेसे कुलकी स्त्रियां दूषित होजाती हैं और हे वार्ष्णेय ! स्त्रियोंके दुष्ट होनेपर वर्णसंकर संतान उत्पन्न हुआकरती है ॥२३॥ उन वर्णसंकरोंकी उत्पत्ति वंशका नाश करने और वंशको नरक प्राप्त करानेके लिये हुआकरती है, अत एव लुप्तपिंडजलाञ्जलिक्रियावाले इन वर्णसंकरकारकोंके पितर नरकमें पतित हुआ करते हैं॥ २४ ॥ वंशका नाश करनेवालोंको इन वर्णसंकरकारक दोषोंसे जातिका धर्म भ्रष्ट होजाताहै और सनातन कुलधर्म भी भ्रष्ट होजाया करताहै॥ २५॥ हे जनार्दन ! मैं यह बात सुनचुकाहूँ कि नष्टकुलके धर्मवाले आदमियोंको अवश्यही नरकमें निवास करना पडताहै॥ २६ ॥ अहो ! हम लोगोंने बडे भारी पाप करनेका निश्चय कियाहै, जो कि राज्य और सुखके लालचसे स्वजनोंका नाश करनेको तैयार हुएहैं ॥ २७ ॥ जो

संग्रामका यत्न नहीं करनेवाले और शस्त्रहीन मुझको शस्त्रपाणी अर्थात् हाथमें हथियार लियेहुए धृतराष्ट्रके बेटे संग्राममें मारडालें तो ऐसा होनेपरभी मेरा अत्यन्तही कल्याण (भलाई) होवे ॥ २८ ॥

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ १ ॥

संजय बोले—हे महाराज ! इस तरह कहनेपर अर्जुन रथपर बैठगये और धनुष बाणको हाथसे छोडकर शोकसे अत्यन्त उद्विग्न(उदास)मन होगये २९॥

इति श्रीभारतसारे भीष्मपर्वणि भाषायां श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादो नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

षष्टितमोऽध्यायः ६०.

षष्टितमे नृणां धर्मः कथं स्यान्निरयाद्गतिः ।
प्रतिज्ञा भीष्मदेवस्य श्रीकृष्णकृपयोच्यते ॥ १ ॥

इस साठवें अध्यायमें मनुष्योंका धर्म और नरकसे छुटकारा किस तरह होताहै और भगवान् श्रीकृष्णके अनुग्रहसे भीष्मदेवजीकी प्रतिज्ञा यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच ।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

संजय बोले—हे महाराज धृतराष्ट्र ! तब भगवान् मधुसूदन श्रीकृष्णने तैसे कृपायुक्त और आँसूभरी आकुल आँखोंवाले तथा विषादित (खेदित) अर्जुनसे कहा ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन ! अनार्यसेवित, कीर्त्तिका नाश करनेवाला, नरक देनेवाला यह कश्मल (कष्ट) आपको कहाँसे मिल-गया ? ॥ २ ॥ हे पार्थ ! आप क्लीब मत बनिये अर्थात् नपुंसकताको प्राप्त मत हूजिये, कारण कि ऐसा भाव आपमें नहीं होना चाहिये, अत एव हे

वैरियोंको तपानेवाले ! आप अपने हृदयकी इस तुच्छ दुर्बलताको त्यागकर उठ खडे हूजिये ॥ ३ ॥ अर्जुनने कहा—हे मधुसूदन ! हे अरिसूदन ! जो भीष्मपितामह और गुरु द्रोणाचार्यजी महाराज पूजा करनेलायक हैं, उनके संग हम बाणोंसे किस तरह युद्ध करें ? ॥ ४ ॥ यदि इस लोकमें हम गुरुजनोंका नाश करके उनके रक्तसे सिंचित भोगोंको भोगनेकी इच्छा करें तब इसकी अपेक्षा तो इन गुरुजनोंका नाश न करके इस लोकमें भीखका मिला अन्नही भोगना उत्तम बात है ॥ ५ ॥ अत एव हे हरे ! मैं गुरु, पितामह, पुत्र, आप्त, नातेदार और बन्धु बाँधवादिको वध करके उनके खूनसे सिंचित भोगोंको किसतरह भोग करूँ ? ॥ ६ ॥ यदि संग्रामके अवसानकालमें स्वजनोंसमेत लक्ष्मीको भोगनेके निमित्त तथा लालचके लिये इन लोगोंके मारडालनेपरभी मेरी विजय नहीं हुई तो केवल पातकही मेरे मस्तकपर चढा रहेगा ॥ ७ ॥ अत एव हे केशव ! जिससे मेरा मंगल (भला) हो, वैसेही दयायुक्त हो आपसे पूछताहूँ आप धर्मसंकटके उत्पत्ति समयमें इसका निर्णय कहिये ॥ ८ ॥ संजय बोले—हे परंतप धृतराष्ट्र ! इस तरह गुडाकेश अर्जुनने हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णजीसे कहकर फिर कहा । हे गोविन्द ! मैं संग्राम नही करूंगा, इस भाँति कहकर अर्जुन चुप होगये ॥ ९ ॥ हे भारत ! तब हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णने दोनों सेनाओंके बीच विषाद (शोक) करतेहुए अर्जुनसे इस प्रकार हँसते हँसते कहा ॥ १० ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन ! जिनका शोच नहीं करना चाहिये, आप उनकाही सोच कररहेहैं, और बुद्धिमानोंकी समान बातें करतेहो ? क्योंकि पण्डित जन तो मरे तथा जीवित पुरुषोंके लिये सोच नहीं कियाकरते हैं ॥ ११ ॥ फिर अपना धर्म देखकर भी आपको कम्पायमान (विचलित) नहीं होना चाहिये, क्योंकि क्षत्रियके पक्षमें धर्मरूपी संग्रामके अतिरिक्त कल्याणकारक दूसरा कोई उपायही नहीं है ॥ १२ ॥ हे अर्जुन ! खुलेहुए स्वर्गको द्वारस्वरूप तथा दैवेच्छाद्वारा ही प्राप्तहुए ऐसे युद्धको सुखवाले प्रतापशाली क्षत्रियलोकही लाभ किया करतेहैं ॥ १३ ॥ यदि आप

अपने धर्मस्वरूप संग्रामको नहीं करेंगे तो धर्म और कीर्त्ति (यश) का नाश करके पापही प्राप्त करेंगे ॥ १४ ॥ सारे प्राणी (जीव) आपके अटूट अपयशको वर्णन कियाकरेंगे फिर समर्थवान् और प्रतिष्ठित आदमीका अपयश होजाना तो मृत्युसेभी अधिक कष्ट कारक होताहै ॥ १५ ॥ यद्यपि आप दयाके वशीभूत होकर युद्धको त्यागरहेहैं, किन्तु मनुष्य यही समझेंगे कि आपने डरके मारे ऐसा किया, जिनके बीचमें आप प्रथम अत्यन्त माननीय होकर पीछे तुच्छताको प्राप्त होजाँयगे ॥ १६ ॥ अत एव आपके वैरी आपके समर्थ भावकी निन्दा करते हुए अयोग्य वचनोंको कहाकरेंगे, इसकी अपेक्षा और महान् दुःख क्या होगा ? ॥ १७ ॥ हे कुन्तीके पुत्र ! यदि युद्धमें मृत्यु हुई तो स्वर्गको प्राप्त होगे, और जो जीत गये तो पृथ्वीका (राज्य) भोगोगे, अत एव अब आप उठकर सावधानीसे युद्ध कीजिये ॥ १८ ॥ आप यदि सुख, दुःख, लाभ, हानि और जीत, हार इनको समान जानकर संग्रामके निमित्त तैयार होजाँयगे, तो ऐसा होनेपर फिर आपको पातकभी स्पर्श नहीं करेगा ॥ १९ ॥ मैंने यह बुद्धि तो आपसे सांख्यके द्वारा कही, अब फिर इसी बुद्धिको योगमें कहताहूँ सुनिये । यदि आप इस बुद्धिसे काम करेंगे तो आपको कर्मबन्धनसे छुटकारा मिलजायगा ॥ २० ॥ यह जो बुद्धि मैंने दी है; आप इसीके अनुसार आचरण कीजिये और मैंने यह काम किया मैंने यह भोजन खाया, इस तरह कदापि न कहना अर्थात् अहंभाव (मैं मेरा) को सर्वथा त्याग दीजिये ॥ २१ ॥ हे कुन्तीके पुत्र ! आप जो कर्म करें, जो भोजन करें, जो पदार्थ होम करें, जो दान करें और तपस्या करें, वह सर्व मुझको अर्पण करदीजिये ॥ २२ ॥ कर्मारंभमें तो आप अपना अधिकार रखिये, किन्तु फलमें कदापि न रखना और न फलके लिये आप कर्म करें और न कर्मके त्यागमें आपका संग होना चाहिये ॥ २३ ॥ हे धनंजय ! आप संग छोडकर और सिद्धि असिद्धिमें समान होकर योगमें अवस्थित होकर कर्म करते रहिये । क्योंकि सिद्धि असिद्धिका जो समानभाव है उसीको योग कहागयाहै ॥ २४ ॥

बुद्धिमान् पण्डितजन कर्मजनित फलको छोडकर और फलोंके बन्धनसे मुक्त हो अनामय (रोगहीन) पद पाजाया करतेहैं ॥२५॥ आप दुःखमें दुःखी और सुखमें हर्षित नहीं हूजिये, बरन् सुख और दुःख एकसा समझकर कर्म कीजिये, ऐसा होनेपरभी आप कर्मके फलमें नहीं लिपटेंगे ॥२६॥

चौपाई ।

कही कृष्ण पारथ सुनि लीजे । क्षत्रिय धर्म त्याग नहिं कीजे ॥
रण देखे क्षत्री जो डरहीं । अन्तकाल सो नरकन परहीं ॥
प्रथम क्रोधकारि रणमें आयहु । अब यह ज्ञान कहांते पायहु ॥
गहहु शस्त्रकर युद्ध सँवारहु । छांडहु सोच शत्रु संहारहु ॥
काल वश्य है सब संसारा । यामें कछु नहिं दोष तुम्हारा ॥
दोहा-मुख विस्तारचो कृष्ण तब, पारथ देखेउ नैन ।
जूझे सब सेना मृतक, रणमें कीन्हे शैन ॥

चौपाई ।

सर्व मृतक पारथ जब देखेउ । अपने जिय अचरज करि लेखेउ ॥
त्रसित भयो तनु कम्प जनायो । मूँदेउ नैन बचन नहिं आयो ॥
अर्जुनको त्रासित हरि जाना । काठिन रूप छांडेउ भगवाना ॥
अर्जुन तब युग नैन उघारो । सखा रूपसो प्रभुहि निहारो ॥
तब पारथ देखेउ बनवारी । जोंती[1] गहे पिताम्बर धारी ॥
अर्जुन पुनि कमलापति आगे । अस्तुति करन जोरि कर लागे ॥
तुम प्रभु तीन लोकके करता । दाता जन्म प्राणके हरता ॥
अब संशय प्रभु मिटी हमारी । करिहौं युद्ध सुनहु गिरिधारी ॥
यह कहि धनुषहाथ गहिलीन्हो । देवदत्त शंखध्वनि कीन्हो ॥
दोहा-दोऊ दल बाजे बजे, गरजे सिंह समान ।
क्षत्रियगण रण हांकदे, साधे शारंग बान ॥

---

१ घोडोंकी लगाम ।

परवीरघाती अर्जुन इस प्रकार भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णकी बातें सुन और उनसे प्रेरित होकर आरंभके फलसे विरक्त हुए और फिर युद्धका आचरण (उद्यम) किया ॥ २७ ॥ हे महाराज ! अनन्तर भीष्म पितामहने रणाङ्गनमें आठ दिनतक युद्ध करके पाण्डवोंकी बहुतसी सेनाको लीलापूर्वकही धराशायी करदिया ॥ २८ ॥ इसप्रकार महाबली भीष्म पितामहका पराक्रम देखकर श्रीकृष्णको बडाही अचंभा हुआ । तब फिर भीष्मजीने नवाँ दिन उपस्थित होनेपर श्रीकृष्णसे कहा ॥ २९ ॥ भीष्मजी बोले— हे कृष्ण ! कृष्ण ! हे महावीर ! हे कालरूप ! आपको नमस्कार है । आप सरीखे महाराजाधिराजके आगे दासानुदास रंक (दरिद्री) भीष्मकी क्या बात है ? ॥ ३० ॥ हे प्रभो ! आप आधे पलमें इस विश्व (संसार) को उत्पन्न करतेहैं, पालन करतेहैं और फिर संहार करडाला करतेहैं, हे देवेन्द्र ! तथापि पिता तुल्य आपके आगे मैं बालककी तरह कुछ विनती करताहूं ॥ ३१ ॥ कि इस समय मैं अस्त्रविद्याद्वारा आपके समीपही अर्जुनको विजित करूँगा।इस प्रकार कहकर भीष्मपितामह अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ३२ ॥ फिर कहा—हे नारायण ! मेरे बाणोंसे ढकेहुए नर (अर्जुन) की आप रक्षा कीजिये। इस तरह जतलाकर गंगापुत्र भीष्मजीने अपने पांच बाण अर्जुनकी छातीमें वींधदिये ॥ ३३ ॥ तब अर्जुनने तीन टूक करके उन बाणोंको काटडाला, फिर भीष्मजीने अत्यन्त फुरतीसे हाँक मारतेहुए तीन बाणोंद्वारा अर्जुनका ललाट वींधडाला फिर उन्होंने गृध्रके पंखके पाँखोंवाले दो बाणोंद्वारा अर्जुनकी दोनों कनपटी बहुतही वींध डालीं ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ इस तरह भीष्मजीके द्वारा हत अर्थात् बाणवर्षा होनेपर अर्जुन रथसे भूमिपर गिरपडे, फिर भीष्मजीने गर्जना करतेहुए कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीको सहस्रबाणोंसे मारा ॥ ३६ ॥ तब वे हनुमान्जीभी उन हजार बाणोंका प्रहार होनेपर ध्वजाके अग्रभागसे भूमिपर आगिरे और फिर भीष्मजीके पास पहुँचकर हनुमान्जीने कहा ॥ ३७ ॥ हे भीष्म ! हे महावीर ! यद्यपि आप बूढे हैं, तथापि समरमें महाबलवान् हैं ! हे

सखे ! मैं दशानन (रावण) के बाणोंकोभी सहारगया और उससे त्रस्त नहीं हुआथा ॥ ३८ ॥ हे महावीर ! अब फिर आप मुझको बाणोंसे किस तरह वेधतेहो ? इतना कहकर कपिकुंजर हनुमान्‌जी तडित् (बिजली)की तरह उछले ॥ ३९ ॥ तब उन उछलेहुए हनुमान्‌जीको फिरभी बहुतसे बाणोंद्वारा भीष्मजीने बींधा, जिससे कपिकुंजर हनुमान्‌जीके सारे अंग छिन्न भिन्न होगये और वे संभ्रान्त होगये ॥ ४० ॥ फिर देश देशमें घूमते घूमते वे वीर हनुमान्‌जी एक बडे भारी पहाडपर पहुँचे जो कि सारे पहाडोंमें शिरमौर था, तब महान् क्रोधसे जलतेहुए रुद्रके अंश हनुमान्‌जीने उस पहाडको उखाडलिया ॥ ४१ ॥ और उन्होंने बाणधारियोंमें उत्तम भीष्मपितामहके निकट पहुँचकर ज्योंही उनको मारना चाहा, कि वैसेही भीष्मजीने पर्वतसमेत उन हनुमान्‌जीको घोर बाणोंसे मारा ॥ ४२ ॥ तब हनुमान्‌जी उन बाणोंके प्रहारसे समुद्रकी वेलामें जा गिरे, किन्तु फिरभी वे वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी शीघ्रतासे उठे और पहाडको हाथमें उठाकर ॥ ४३ ॥ जबतक यह आवें, तबतक भीष्मजीने महान् दुष्कर (कठिन) कर्म किया। इसके पीछे यमराज (काल) की समान भीष्मदेवने सर्वेश्वर श्रीकृष्णसे कहा ॥ ४४ ॥ हे सबके ईश्वर ! अब आप अपनेकी रक्षा कीजिये क्योंकि मैं बडे तीखे अथ च पक्के बाणोंसे आपको मारताहूँ । यह कहकर भीष्मजीने एक लाख बाणोंसे श्रीकृष्णकी छातीको बींधडाला ॥ ४५ ॥ फिर जैसेही भीष्मदेवने श्रीकृष्णके ललाट और दोनों कानोंको वेधन किया कि तैसेही कालात्मा ईश्वर श्रीकृष्ण (महान्) क्रोधमें भरगये ॥ ४६ ॥ हे महाराज ! उस काल श्रीकृष्णने भाल देशके वेधनसे भीष्मके प्रति क्रोधको प्राप्त करके तथा दोनों आंखोंको विकराल करके दाँतोंसे होठोंको चाबते हुए भीष्मजीको मारना आरंभ किया ॥ ४७ ॥ अनन्तर श्रीकृष्णजीके केवल मात्र स्मरण करतेही उनका सुदर्शन चक्र आगया, उसको लेकर भगवान् श्रीकृष्ण जैसेही छोडनेको उद्यत हुए कि वैसेही देवतालोग (महात्मा वीरवर) भीष्मजीपर फूलोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ४८ ॥ तब उसकाल गंगापुत्र भीष्मने श्रीकृष्णसे

कहा कि, हे नाथ ! मैं आपका अवश्य पराजय करचुका, क्योंकि हे विश्वात्मन् ! आपने पूर्वमें प्रतिज्ञा कीथी, सो अब उसको कैसे भूलगये? ॥ ४९ ॥ पूर्वमें आप कहचुकेहैं कि 'मैं शस्त्र नहीं पकडूँगा यह मेरा निश्चित वचन है' सो हे विष्णो ! आपका वह वचन इस समय किधर चलागया ? जो हो, इस चक्रको आप त्यागिये, नहीं तो मैं इस चक्रकोभी काटडालूँगा, आपकी भक्तिसे प्राप्त पराक्रमवाला मैं आपको सन्तुष्ट करूँगा, इस बातमें कुछभी संशय नहीं कीजिये । इस तरह कहकर भीष्मजीने पाँच बाणोंके द्वारा रथपर प्रहार करके रथको तोड फोडडाला ॥ ५० ॥ ५१ ॥ तदनन्तर भीष्मजी मन्द मन्द मुसकुरातेहुए श्रीकृष्णके पासगये और फिर उनके चरणोंमें गिर कहा हे विष्णो ! मैंने यह (कठिन) काम आपकेही अनुग्रहसे सम्पन्न कियाहै ॥ ५२ ॥ (फिर भीष्मजी इस प्रकार श्रीकृष्णकी स्तुति करनेलगे)

चौपाई ।

जय वृन्दावन विपिन विहारी । श्रीधर श्रीपति श्रीवनवारी ॥
चढे आय हरि पारथ स्यन्दन । जोती गहे आप जगवन्दन ॥
साधु साधु श्रीपति वनवारी । सदा भक्त प्रण रक्षा कारी ॥
विप्र सुदामा दारिद भञ्जन । भक्त वश्य गोपिन मनरञ्जन ॥
गणिका व्याध गीध गज तारण । गोरक्षक गोवर्द्धन धारण ॥
ध्रुवको अचल कियो परतक्षक । द्रुपद सुताकी लज्जा रक्षक ॥
महा कष्ट प्रहलाद उबारो । निकसि खम्भतें दनुजहि फार्‌यो ॥
रावण कुल समेत वध कीन्हो । लङ्का राज्य विभीषण दीन्हो ॥
शाप शिला गौतमकी नारी । परसत चरण अहल्या तारी ॥
तब भीषम यहि विधितें भाख्यो । दीनबन्धु मेरो प्रण राख्यो ॥

दोहा—प्रभु अपनो प्रण टारिकै, कियो मोर सम्मान ।
भीषम प्रण पूरण कियो, भक्तवश्य भगवान ॥
ब्रह्मा शंकर देवमुनि, करत चरण तव ध्यान ।
जय जय श्रीयदुवंशमणि, जय जय परम सुजान ॥

तेनैव कर्मणा नाथ प्रसन्नो भव माधव ।
एवं कृष्णश्च भीष्मश्च यावद्वदति प्रीतितः ॥
हनूमानर्जुनस्तावत्प्राप्तौ चास्तंगते रवौ ॥ ५३ ॥

हे नाथ ! हे माधव ! आप उसी कर्मके द्वारा मेरेपर प्रसन्न हूजिये इस प्रकार श्रीकृष्ण और भीष्म प्रीतिपूर्वक कहतेहीथे कि उसी अवसरमें हनुमान् और अर्जुन सूर्यके अस्त समयमें आपहुँचे ॥ ५३ ॥

इति श्रीभारतसारे भीष्मपर्वणि भाषायां षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः ६१.

एकषष्टितमेऽध्याये शूराणां श्लाघिनां तथा ।
धनञ्जयेन भीष्मस्य युद्धे पतनमुच्यते ॥ १ ॥

इस इकसठवें अध्यायमें शूरप्रशंसित भीष्मजीको रणस्थलमें धनंजयने भूमिपर गिराया यह कथा कहीजाती है ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

दिननां नवकं भीष्मो युयुधे लीलया नृप ।
तस्यां रात्र्यां गताः सर्वे पांडवा भीष्मसन्निधौ ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले–हे महाराज जनमेजय ! जब भीष्मपितामहने नौ दिन-तक लीलापूर्वक युद्ध किया, तब रातके समय युधिष्ठिर इत्यादि सब पांडव भीष्मजीके निकट गये ॥ १ ॥ अनन्तर पाण्डवलोग प्रतिदिन उनकी सेवाके लिये जानेलगे, एक समय मार्गमें श्रीकृष्णसे युक्तहुए पाण्डवोंने आपसमें परामर्श करके भीष्मजीकी मृत्युके विषयमें विचार किया ॥ २ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णको आयाहुआ देखकर भीष्मपितामहने भक्तिसहित दण्डवत् भूमिमें गिरकर उनको वारंवार नमस्कार किया ॥ ३ ॥ तब श्रीकृष्णने कहा–हे वीर ! आपकी समान इस पृथ्वीतलपर दूसरा वीर नहीं है, इसके पीछे युधि-

ष्ठिरने भक्तिद्वारा प्रसन्न करके भीष्मसे कहा ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर बोले । हे पितामह ! हे लम्बीभुजावाले ! हे महाबलपराक्रमशाली ! आप इच्छामृत्यु वाले हैं, अर्थात् जब आप इच्छा करेंगे तभी मरसकते हैं, अन्यथा नहीं, अत एव हे भगवन् ! आपकी समान पृथ्वीतलपर दूसरा कोई नहीं है ॥५॥ हे पितामह ! आपने हमारी समस्त सेनाका नाश करडाला, हे तात ! अब हम सबजने आपकी शरणमें आये हैं, सो हम कौरवोंको कैसे जीतसकेंगे ? ॥ ६॥ हे नाथ ! हे पितामह ! हम पितृहीन बालक हैं, सो इस समय हमारे माता पिता और रक्षक आपही हैं, दूसरा रक्षा करनेवाला कोई नहीं है . अत एव हमारा पालन कीजिये ॥ ७ ॥ हे स्वामिन् ! यदि आपने अपने मनमें हमारे मारही डालनेका निश्चय किया है, तो आप वह बात हमको बतला-दीजिये जिससे हमलोग प्रथमही रण छोडकर भागजावें ॥ ८ ॥ हे धर्मा-त्मन् ! हम और कौरव दोनोंही आपके बालक हैं किन्तु कौरव इस समय बडे बलवान् हैं क्योंकि उनको बलवान् पुरुषोंका सहारा मिलगया है ॥९॥ हे देव ! इस अवसरमें वे लोग प्राप्तराज्यवाले हैं, अर्थात् राजा हैं, अतएव हे तात ! आप देखिये कि उनके समान भूमण्डलपर इस समय दूसरा कोई नहीं है ॥ १० ॥ और हे प्रभो ! हम लोग बलहीन हैं, स्वल्प हैं, अर्थात् वे तो एक सौ भ्राता हैं, और हम केवल पाँचही भ्राता हैं, तिसपर भी हमको किसी वीरका सहारा नहीं, तथा नष्ट राज्यवाले हैं अर्थात् हमारा राज्यभी छिनगया है, और इसके अतिरिक्त इस समयमें आपनेभी हमको बहुत घायल करदिया है ॥ ११ ॥ अत एव हे तात ! हे प्रभो ! आप तलवार उठाकर हमलोगोंके मस्तक काटडालिये और नहीं तो हे तात ! विजय होनेका उपाय बताइये इस विषयमें श्रीकृष्णजीकीभी यही सम्मति है ॥ १२ ॥ हम सरीखा हीन इन तीनों लोकमें दूसरा कोईभी नहीं है । हे पालक ! इस कारण हमारा भागही जाना ठीकहै, अथवा अवश्य अवश्य मरजाना उचित है ॥ १३ ॥ श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरकी इस प्रकार सम्मति

जानकर भीष्मदेवने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा, भीष्मजी बोले—हे धर्मराज ! हे महाबाहो ! इस भूतलपर आपकी समान दूसरा कोइभी नहीं है ॥ १४ ॥ क्योंकि ब्रह्मादि देवता जिनके चरणोंकी वन्दना करतेहैं, वे श्रीकृष्ण आपके पालक हैं, यह बात आप निश्चित समझिये, अत एव फिर अपनेको हीन कैसे कहतेहैं ? ॥ १५ ॥ सुतरां आप श्रीकृष्ण सरीखे नाथवाले हैं, इस कारण श्रीकृष्ण दुष्टोंका नाश करके और आपको केवल कण्टकहीन राज्य दिलाकर आपका अवश्य पालन करेंगे ॥ १६ ॥ क्योंकि जो आदमी धर्म, गौएँ और ब्राह्मणोंकी रक्षा किया करताहै, उसकी जीतही होती है हार कभी नहीं हुआ करती, किन्तु हे धर्मपुत्र युधिष्ठिर ! श्रीकृष्णजीकी भक्तिसे मैं जो कुछ कहताहूँ वह आपको सुनलेना उचित है ॥ १७ ॥ कि सेनापति धनुष हाथमें लिये मुझ भीष्मके खडेरहनेपर अठारह दिनपर्यन्त आपकी विजय नहीं होगी यह बात मैं इस समय सचीही कहरहाहूँ ॥१८॥ और आपके कहनेसे मैं रणकोभी नहीं छोडसकता,क्योंकि यदि मैं रणको छोडदूँगा तो लोग मेरी बुराई करेंगे ॥ १९ ॥ और जो अब दुर्योधनको छोडकर आपका सहारा लूँ तो ऐसा होनेपर देवता कहेंगे कि डरके मारे भीष्म पाण्डवोंकी शरणमें चलागया ॥ २० ॥ और शास्त्रमें भी क्षत्रियके लिये पक्ष छोडनेका निषेध कियागयाहै,क्योंकि जिसका पक्ष जिनसे स्वीकार करलिया पुरुषोत्तम क्षत्री उसका पालन(निर्वाह)किया करतेहैं॥२१॥देखिये अबतक भी दुरासद उस समुद्रसे निकलेहुए कालकूट विषको श्रीमहादेवजी महाराज पालनकर रहेहैं, किन्तु मुझको धर्मके नष्ट कालमें पापियोंको राज्य देना अच्छा नहीं लगताहै॥२२॥इस लिये हे महाराज! सर्वान्तःकरणसे विचार करके मुझको अपना पतन (मरकर गिरजाना) ही अच्छा लगताहै, क्योंकि हे धर्मनन्दन! मेरी मृत्युको छोडकर आपके विजयका दूसरा उपाय मुझको दिखाई नहीं देता ॥ २३ ॥ हे धर्मराज ! अब मेरे पतनका उपाय आप एकाग्रमनसे सुनिये । हे तात ! एक शिखण्डी नामक पुरुषत्वहीन व्यक्ति आपकी सेनामें है ॥ २४ ॥ उसको देखकर मैं विमुख होजाऊँगा,

कारण कि मैं षंढ (नपुंसक) को नहीं देखाकरताहूँ। युधिष्ठिरने कहा-हे महात्मन्! हमारी सेनामें पुरुषत्वहीन शिखंडी नामक कौनसा राजा है ? ॥ २५ ॥ जिसकी पापरूप कायाको आप नहीं देखना चाहतेहैं। भीष्म-जीने कहा-हे राजन् ! हे पृथानन्दन ! काशीके राजाकी अत्यन्त सुभग सुंदरी तीन कन्याओंको ॥ २६ ॥ मैं स्वयंवरसे सारे राजाओंको परास्त करके चित्र विचित्र दोनों भाइयोंके लिये लेआया ॥ २७ ॥ तिनके बीच अंबा नाम्नी कन्या मुझसे रास्तेमें बोली कि मैं तो अपने मनमें अनुशाल्वको वरचुकीहूँ, यह बात सुनकर मैंने उसको छोडदिया और वह अनुशाल्वके निकट चलीगई ॥ २८ ॥ किन्तु इस अनुशाल्वने जब उसको स्वीकार नहीं किया, तब वही कन्या फिर मेरे पास पलट आई और मैंनेभी जब उसको निकाल बाहर किया तब वह शोभायमान गंगाजीके किनारेपर जाप हुँची ॥ २९ ॥ वहाँ महर्षि वशिष्ठजीने उस अश्रुपूर्णआँखों वालीको रोतेहुए देखा। वशिष्ठजीने कहा-हे बाले ! आप क्यों रोरहीहैं ? और इस वनमें कैसे आई हैं ? ॥ ३० ॥ आपको क्या दिन क्या रात किसी समयभी सुख दिखाई नहीं देता ? क्योंकि आप लम्बे लम्बे श्वास छोडरहीहैं, हे बाले! आपको किस बातका दुःख है ? सो मुझस-मेत पूछते हुए ऋषियोंको बतादीजिये । हे बाले ! क्या किसीने आपको पीडित कियाहै ? अथवा किसीने आपका मान भंग करदियाहै ? ॥ ३१ ॥ अबलाने कहा-हे स्वामिन् ! हम महाराज काशिराजकी सुता तीन बहने थी सो हम तीनोंको उन गंगापुत्र महावीर भीष्मजीने जीतलिया ॥ ३२ ॥ उन भीष्मजीने बलकरके अधिक ऐसे स्वयंवरमें भूमिके सारे नरेशोंको परास्त करके उत्तम शीलस्वभावयुक्त हम तीनों कन्याओंको लेलिया ॥ ३३ ॥ उन तीनोंमेंसे एक तो चित्रको प्रदान करी और दूसरी विचित्रको अर्पण करदी किन्तु मुझको उन्होंने छोडदिया, इसी लिये मैंने इस दीन भावको स्वीकार कियाहै ॥ ३४ ॥ और मेरी वे दोनों बहन सारे सुखोंको प्राप्तहुई उनको राज्य तथा अभिलषित पति मिला, और मुझे पूर्वकर्मके विपाक

(फलसे) ऐसा दारुण दुःख मिला ॥ ३५ ॥ हे विप्र ! मुझको शन्तनुके पुत्र भीष्मने पतिहीन करदिया है, हे विप्रेन्द्र ! उसी दुःखसे मैं इस वनमें रोरहीहूँ ॥ ३६ ॥ क्योंकि जो नारी पतिहीन है वह सुख पानेके योग्य नहीं है, तथा इस लोकमें उसका जन्म लेनाभी निरर्थक है हे द्विजोत्तम ! मैं तो यही कहतीहूँ ॥ ३७ ॥ वशिष्ठजीने कहा—हे महारानी ! हे सुन्दरी ! आप दुःखको छोडकर स्थिर हूजिये और हे बाले ! आप महाबलवान् जमदग्निपुत्र पशुराम ऋषिके निकट चली जाइये ॥ ३८ ॥ वे श्यामशरीर-वाले जमदग्निनंदन परशुरामजी अत्यन्त सुन्दर हैं, तब उस बालाने मुनिवर ! परशुरामजीके निकट जाकर अपना दुःख निवेदन किया और महान् रोदन करतीहुई घोर हाहाकार करनेलगी ॥ ३९ ॥ परशुरामजीने कहा—हे पुत्रि ! तू किसलिये रोरहीहै ? दुःख छोडकर स्थिर हो । महारानी ! हम तुझपर सन्तुष्ट हुएहैं इस कारण तू अपना उत्तम वर माँगले ॥ ४० ॥ अम्बाने कहा—हे नाथ ! गंगापुत्र भीष्मजी महाराज जो कि देव दानवोंसेभी अजेय हैं उन्ही महावीरने मुझ स्त्रीके निमित्त ग्रहण करके मेरा गृह भंग करदियाहै ॥ ४१ ॥ हे राम ! यदि आपके प्रसादसे वे गंगापुत्र भीष्मजीही मेरे स्वामी होवे अथवा यदि गांगेयजी मुझको पतिरूपसे नहीं मिलें तो मेरा मरजाना ठीक है ॥४२॥ऋषिने कहा—हे सुन्दरी ! मैं स्वयं हस्तिनापुरमें जहाँ भीष्मजी स्थित हैं चलताहूँ और तू भी मेरेसंग चल, तेरे संग भीष्मको विवाह करना चाहिये यदि वे इस बातको नहीं मानेंगे तो मैं उनको मारडालूँगा ॥ ४३ ॥ तब वह बाला सहसा ब्राह्मण परशुरामजीके संग मेरे नगर हस्ति-नापुरमें आपहुँची, तब मैंने जमदग्निनन्दन पुरुषोत्तम प्रभु परशुरामजीका दर्शन किया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर उनको मैंने अर्घाञ्जलि देकर आसनपर बैठाला और प्रार्थना करी हे ब्राह्मणोत्तम ! आप किस निमित्त और कहाँसे आयेहैं ? ॥४५ ॥ परशुरामजीने कहा—हे महापण्डित गाँगेयजी ! एक मेरी हितकर अर्थात् अपने भलेकी बात सुनिये । इस अति उत्तम सुन्दरी अम्बा-नामवाली बालाको आप विवाहके लिये ग्रहण कीजिये ॥ ४६ ॥ आपने

एक कन्या तो चित्रको दी और एक विचित्रकी समर्पण करी अत एव हे महाराज ! इस एकको आप लेलीजिये । और यदि आप इस बातको स्वीकार नहीं करें तो हे शन्तनुनन्दन ! आप मुझको संग्राम दीजिये अर्थात् मेरे संग युद्ध करनेको तैयार होजाइये॥४७॥हे द्विजसत्तम !यदि आप इस यशस्विनी, रूपवती, सुभग, सुन्दरी स्त्रीको ग्रहण नहीं करेंगे तो मैं आपके साथ महान् संग्राम करूंगा ॥ ४८ ॥ क्योंकि इस बालाने मुझको वनमेंही सूचित किया था कि, यदि मुझको भीष्मजी स्वीकार नहीं करेंगे, तो फिर आप क्या (उपाय) करेंगे तब मैंने उत्तर दिया कि, उनके संग संग्राम करूँगा। सो यदि आप इसको अंगीकार नहीं करना चाहें तो मेरे संग सावधानीसे संग्राम कीजिये ॥४९॥ हे पांडवो ! फिर जब मैंने उस कन्याको स्वीकार (ग्रहण) नहीं किया तब उन पशुरामजीने मेरे साथ निर्मल प्रातःकाल समय, आकाशमें भगवान् दिवाकरके उदय होनपर महान् महाघोर और देवासुरोंको भयंकर ऐसा कठिन संग्राम किया। फिर जब मैंने महारौद्र और प्रज्वलित पावक (अग्नि) की समान संहारकारक दारुण अस्त्र छोडा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ उस अवसरमें सारे देवता और सारे पन्नग (सर्प) काँप गये, तब फिर संपूर्ण देवता जमदग्निनन्दन परशुरामजीके पास आनकर प्राप्तहुए ॥ ५२ ॥ और आकाशमें समस्त योगीजन तथा नारदादि ऋषि और सारे देवता महामुनि जमदग्निजीको युद्धस्थलमें लिवालाये ॥ ५३ ॥ और बोले—हे ऋषिवर ! आपके पुत्र गाँगेय भीष्मजीके बाणोंसे शीघ्रही (अभी) मृत्युको प्राप्त होजाँयगे । जमदग्निने कहा—अहो पुत्र ! हे महापण्डित ! आप मेरी हितकारी बात सुनिये ॥ ५४ ॥ अर्थात् यदि मेरी बात सुनो और मानो तो अब आप संग्राम नहीं कीजिये नहीं तो मैं आपको मृत्युशोक तथा भय देनेवाला महारौद्र (दारुण) शाप दूँगा ॥ ५५ ॥ मैंने एक क्षणभरके संग्राममें भार्गव परशुरामजीको परास्त(विजय) किया। परशुरामजीने कहा—हे गांगेय भीष्मजी ! आप मेरी बात सुनकर अब सावधान होजाइये ॥ ५६ ॥ फिर कुशमुष्टि परिप्लुत हाथमें जल लेकर कहा, कि, कुरुक्षेत्रके बीच जिस समय अर्जुन

आपके संग संग्राम करेंगे ॥ ५७ ॥ तब उस काल यही अम्बिका षंढ (नपुंसक) होकर अर्जुनके रथपर विराजित रहेगी जिससे आप महाभयानक काल प्राप्त होनेपर बाण नहीं चलासकेंगे ॥ ५८ ॥ तथा उसी समय मुझ जमदग्निके पुत्र परशुरामद्वारा मृत्यु प्रेरित होगी, उस काल अर्जुनके बाणोंसे आपकी मृत्यु होगी, इसमें जराभी संशय मत समझना ॥ ५९ ॥ महाराज द्रुपदके घरमें शिखंडीभावको प्राप्त होकर यह काशिराजकी कन्या जन्म लेगी वहीं आपका मरण होगा ॥ ६० ॥ इस तरह कहकर अर्थात् शाप देकर परशुरामजीने पृष्ठच्छेद करके स्थित उस महादर्भको छेदन करडाला । इस कारण हे पांडवो! मैं आपसे विमुख हुआ स्थित रहूगा ॥ ६१ ॥ हे अर्जुन ! मेरे वधके लिये मुझको गुरु परशुरामजीने यह शाप दिया है, अत एव मैं जैसेही पीठ फेरकर खडाहूँ, उसी समय आप मुझको दारुण बाणोंसे वींधडालना ॥ ६२ ॥ हे युधिष्ठिर ! मेरी मृत्यु अर्जुनके हाथसे पौषमासके कृष्णपक्षकी सप्तमीके दिन होगी, अत एव हे महावीर ! जहाँ मेरा मृत्युदाता है उस स्थानमें आप शीघ्रतासे चलेजाइये॥६३॥ तदनन्तर वे परशुरामजी और कन्याभी कठिन शाप देकर वनान्तरमें चली गई । हे महाप्राज्ञ ! जिस स्थानमें उमामहेश्वर निवास करते हैं, उसी वनमें पहुंचकर वह कन्या तपस्या करनेलगी ॥६४॥ तब उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर पार्वतीजीने कहा—हे पुत्री ! हे काशिराजकी श्रेष्ठ दुहिते ! आप वरकी प्रार्थना कीजिये (तुम जो वरलोगी) उसकी सिद्धि आपको कुरुक्षेत्रमें मिलेगी ॥ ६५ ॥ पार्वतीजीके इस प्रकार कहनेपर अम्बा बोली हे उमे ! (यदि आप वर देनाही चाहती हैं) तो यह दीजिये कि, मैं जिस किसी उपायसे गंगापुत्र भीष्मका नाश करसकूं । पार्वतीने कहा कि, हे पुत्रि ! आपका शिखंडीरूपसे दर्शन करनेपर दूसरे जन्ममें उन भीष्मकी मृत्यु होगी ॥ ६६ ॥ आप महाराज द्रुपदके भवनमें महाबली शिखंडी हो कुरुक्षेत्रके बीच महान् संग्राममें अर्जुनके रथपर स्थित होकर भीष्मजीका वध करादेंगी ॥ ६७ ॥ वही बडे शरीरवाली मुझको मृत्युदायिनी महारानी अम्बा

महाराज द्रुपदकी महासेनामें शिखंडी हुई है ॥ ६८ ॥ द्विजराजके शापसे यह मेरी मृत्युकी सूचक है, इस प्रकारसे महाराज द्रुपदका पुत्र राजा शिखंडी हुआ है ॥ ६९ ॥ युधिष्ठिरने कहा—हे स्वामिन् ! हे मानदेनेवाले ! मुझको कुछ संशय है सो आप छेदन (नष्ट) करदीजिये और वह यही सन्देह है कि महाराज द्रुपदकी कन्या शिखंडीभावको किस तरह प्राप्त होगई ? ॥ ७० ॥ भीष्मजीने कहा—हे युधिष्ठिर ! पाँचालदेशके एक द्रुपदनामक महाराज हैं, उनके घरमें सब लडकियाँही जन्मीं और लडका एकभी नहीं जन्मा ॥ ७१ ॥ हे राजन् ! फिर कुछ दिन बीतजानेपर उनके एक लडकी औरभी पैदाहुई, तब उसकाल उन महात्मा द्रुपदराजाने कुछ सोच समझकर ॥ ७२ ॥ उस लडकीको 'लडका हुआ, लडका हुआ' इस तरह कहकर सबमें प्रकट (प्रसिद्ध) किया । अन्यान्य राजाओंके डरसे महाराजने उसको पुत्रशब्दसे चारों ओर विख्यात किया ॥ ७३ ॥ हे राजन् ! फिर कुछ दिन बीत जानेपर वह पुत्री जवान होगई तब उसका 'शूरसेन' नाम हुआ और वह महा विक्रमशाली शूर हुआ ॥ ७४ ॥ तब तहाँ वंगाधिपति (बंगालके महाराज) ने उसको अपनी कन्या समर्पण करदी अर्थात् उसके सँग अपनी कन्याका विवाह करदिया, तब उस कन्याने यह सारा समाचार अपने पितासे निवेदन कर दिया ॥ ७५ ॥ उस समय उन वंगाधिपतिने अपने मनमें विचार किया कि, अपने जमाईको बुलायकर घायल करना चाहिये। यह सोच विचारकर अपने जमाईको बुलाया ॥ ७६ ॥ तब हे राजन् ! वह उनका जमाई चिन्ता करनेलगा कि मैं कहाँ जाऊँ अथवा क्या करूँ ? इस प्रकार सोचताहुआ वह भ्रममें पडगया ॥ ७७ ॥ इसके पीछे वह अकेलाही घोडेपर सवार होकर गहन बनमें चलागया और वहां एक वडके पेडको देखकर उतरपडा ॥ ७८॥ तब वहाँ एक यक्षराजने इसको देखकर पूछा कि हे महाशय ! आप विह्वल किसलिये होरहेहैं ? तब इसने सारा हाल उस यक्षसे कहदिया ॥ ७९ ॥ अनन्तर उस यक्षने सन्तुष्ट हो तीन दिनकी अवधि करके इसको अपना (पुरुषपना) प्रदान किया, तब

तो यह अपने मनमें बडाही आनंदित हुआ ॥ ८० ॥ फिर घोडेपर सवार होकर अपने ससुरके घर पहुँचा, तब तीन दिनमें उसके एक लडका पैदा हुआ ॥ ८१ ॥ अनन्तर तीन दिन बीतजानेपर यक्षराजने आकर उससे कहा कि अब मेरा पुरुषत्व मुझको देदीजिये ॥ ८२ ॥ फिर जब द्रुपदपुत्रने उसका पुरुषत्व पीछा नहीं दिया, तब यक्षराज और उसमें दारुण संग्राम हुआ ॥ ८३ ॥ और उस यक्षदेवने इस द्रुपदपुत्रको यह शाप दिया ' जो कि तैंने मुझसे छल किया, इसलिये रे दुराचारी ! तू षंढ (नपुंसक) होजा ॥ ८४ ॥ हे महामन्दमति ! तू कृतघ्नी है अर्थात् जो तेरे साथ भलाई करताहै, उसके संग तू बुराई करताहै, अथवा किये हुए उपकारको नष्ट करताहै, इस कारण तू शिखंडीपनेको प्राप्त हो ' तबही वह राजा पुरुषत्वहीन होकर शिखंडी हुआहै ॥ ८५ ॥ अत एव यह प्रत्यक्ष (साक्षात्) नर नारायण इसको रथमें सम्मुख बैठालकर आवें और फिर जब मैं पीठ फेरूँ तब मुझको अर्जुन ॥ ८६ ॥ हे धर्मनन्दन ! भाँति भांतिके बाणोंसे मेरी पीठमें शय्या करे । हे नराधिप ! यह मेरी निश्चित बात है, इस कारण आप इसीके अनुसार कार्यका अनुष्ठान कीजिये ॥ ८७ ॥ भीष्मजीकी यह बातें सुनकर पाण्डव बहुतही सन्तुष्ट हुए और फिर भीष्म पितामहको शिरसे नमस्कार करके अपने स्थानमें गये ॥ ८८ ॥ उसी समय (रात्रि) के प्रभात होनेपर भगवान् सूर्य उदय हुए तब श्रीकृष्णने शिखंडीसे कहा—हे शिखंडी ! आप आइये और मेरे आगे निडर हुए बैठे रहिये ॥ ८९ ॥ हम सब (तीनों) जने संग्राममें चलतेहैं, कारण ऐसा होनेपर अपना कोई काम होजानेवाला है, इसमें आप झूँठ नहीं समझिये । इस प्रकार कहकर तीनों जने डरते काँपते भीष्मजीके निकट गये ॥ ९० ॥

चौपाई ।

भीष्मदेव तब कहने लागे । सारथि रथहि चलावहु आगे ॥
यह कहिकै हांक्यो रथ जबही । अशकुन भये बहुत विधि तबहीं ॥
सिंहनाद करि हाँक सुनायो । मानहुँ जलद घटा घहरायो ॥

क्रोधित ह्वै शारँग कर गह्यो। नमित वचन नर हरितें कह्यो ॥
सावधान हरि जोती गहिये। पारथकी रक्षा महँ रहिये ॥
यह कहि बाण सहस्रप्रहारचो। अर्जुनके तकि ताकिकै मारचो ॥
दश शर श्याम अंग हत कीन्हो। विंशति शर हनुमंतहि दीन्हों ॥
तब अर्जुन लीन्हों कर धनुशर। युद्ध परस्पर होत भयंकर ॥
तीक्ष्ण बाण पांडु सुत डारचो। भीषम अन्तरिक्ष हति पारचो॥
जेते शर अर्जुनने डाटे। गंगासुत बीचहिते काटे ॥
अपर विशिख तीक्ष्ण कर धारचो। ते शर पारथके शिर मारचो॥
अर्जुन सहित भये घायल हारि। तुरंगथकेन चल न लघुगतिकारि॥
श्रीपति कह्यो सुनो हो पारथ। रचहु उपाय तजहु पुरुषारथ ॥
यह कहिके हरि शंख बजायो। तबहि शिखंडी आगे आयो ॥
अर्जुन कह्यो सुनहु यदुकेतू। कपट युद्ध कीजै केहि हेतू ॥
जबहि शिखंडी आगे आयो। भीषम धनुष डारि शिर नायो ॥

दोहा--विना अस्त्र लज्जित वदन, हेरत नीचे नैन।
स्थिर हो रथपर रह्यो, कह्यो कृष्णसौं बैन ॥

चौपाई।

दीनबन्धु पाण्डव हितकारन। कपट युद्ध करि चाहहु मारन ॥
अर्जुन किये शिखंडी ओटहि। भीषम उर कीन्हों शर चोटहि॥
तब पारथनिज शरसन्धानहि। हृदयताकि करि मारचो बानहि ॥
चरणकमल उर कीन्हो ध्यानहि। रसना रटत कृष्णको नामहि ॥
रोम रोम यहि विधि शर मारा। वहै प्रवाह रुधिरकी धारा ॥
रथतें गिरे गंगसुत धरनी। जगमें रही सदा यह करनी ॥
देखत सब कौरव गण धाये। हा हा शब्दाघात सुनाये ॥
द्रोण कर्ण दुःशासन अत्री। धनुष डारि रोवहिं सब क्षत्री ॥

दोहा-पांडवदल आनंद मन, जीति चले मैदान।
अर्जुनके रथ सारथी, सुन्दर श्रीभगवान ॥

तब पांडवोंने अपनी विजयके निमित्त केवल भीष्मजीके कथनानुसारही समस्त कार्य साधन किया, इस प्रकार दशवें दिन संध्याकालमें महाबलवान् भीष्मपितामहजीको धराशायी किया ॥ ९१ ॥ फिर जब भीष्मजी शरशय्या (बाणोंकी सेज) पर सोगये तब उनका शिर नीचे लटकनेलगा, उस समय (उनकीही आज्ञानुसार) अर्जुनने बाणद्वारा शिरस्त्राण किया अर्थात् ऐसा बाण मारा कि जिसने तकियेका काम दिया और वह टेकस्वरूप होगया ॥ ९२ ॥ इस प्रकार भीष्मजीके शरशय्यापर शयन करनेपर यमदूत आनकर उपस्थित हुए, उनको देखतेही भीष्मदेव धनुष लेकर उठे ॥ ९३ ॥ तब वे यमदूत त्राहि त्राहि कहतेहुए भागगये, क्योंकि यह महाबलवान् वीर गांगेय भीष्मजी आठवें वसुदेवताका स्वरूप हैं ॥ ९४ ॥

कृष्णपक्षे तु सप्तम्यामर्जुनेन निपातितम् ।
भीष्मं हि पातितं दृष्ट्वा रुरोद कुरुनन्दनः ॥ ९५ ॥

अर्जुनने कृष्णपक्षकी सप्तमीके दिन भीष्मपितामहको धराशायी किया । तब उनको गिराहुआ देखकर कुरुनन्दन दुर्योधन रोनेलगा ॥ ९५ ॥

इति श्रीवेदव्यासकृते श्रीभारतसारे भीष्मपर्वणि मुरादाबादनगरनिवासिकान्यकुब्जवंशावतंसस्वर्गीयमिश्रसुखानन्दात्मजपंडित-कन्हैयालालमिश्र-कृतभाषाटीकायां भीष्मनिपातो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

इति श्रीभारतसारे भीष्मपर्व समाप्तम् ॥



भारतसार-भाषा।

श्रीकृष्णाय नमः।

द्रोणपर्व ७.

द्विषष्टितमोऽध्यायः ६२.

दोहा—गौरि गिरा गुरु गणपति हिं, व्यास मुनिहि शिर नाय।
द्रोणपर्वकी वचनिका, निजमति लिखत बनाय॥
श्रीपति दीन दयाल अब, तुम पति राखहु मोर।
चरण शरण ली आनिकै, विनय करहुँ कर जोर॥
दीनबन्धु करुणायतन, हरहु कठिन उर शाल।
बार बार विनवत यही, मिश्र कन्हैयालाल॥
अपनी ओर निहारकर, देहु भक्ति वरदान।
प्रणत दीन रक्षहु सदा, यही आपकी बान॥
नाथ न आनहु हृदयमहँ, मो पामरकी भूल।
कृपा दृष्टिकी वृष्टि कर, सदा रहहु अनुकूल॥

द्विषष्टितम अध्याये चक्रव्यूहकथा तथा।
अभिमन्योरधर्मेण विनाशश्चात्र कथ्यते॥ १॥

इस बासठवें अध्यायमें चक्रव्यूहका वृत्तान्त और अधर्मके द्वारा अभिमन्युका माराजाना यह कथा कहीजाती है॥ १॥

वैशम्पायन उवाच ।

ततो दुर्योधनो राजा द्रोणाचार्यस्य तत्र वै ।
अभिषेकं चकाराथ रणेऽप्येकादशे दिने ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले-हे जनमेजय ! इसके पीछे राजा दुर्योधनने रण (संग्राम) में ग्यारहवें दिन द्रोणाचार्यजीको अभिषेक (सेनापति) बनाकर तिलक) किया ॥ १ ॥ तब द्रोणाचार्यजीने वहाँ प्रथमदिन तो विराट इत्यादि मिलेहुए महारथी सुभटोंका नाश किया ॥ २ ॥ और फिर दूसरे दिन हे राजन् ! उत्तरकुमारादि सुभटों (योधाओं) को संग्राममें मारा । तथा भीमसेनने बहुत सारे कौरवपक्षीय वीरोंका नाश किया ॥ ३ ॥ फिर एक दिन रातके समय दुर्योधनने द्रोणाचार्यजीसे कहा । हे गुरो ! वीर ! हे धर्मात्मन् ! हे कौरवोंका पालन करनेवाले ! ॥ ४ ॥ जब कि आपके संग्राम करनेपरभी मेरी जीत नहीं होती, सो यह मेरे ओछे भाग्यका ही कारण है, अस्तु, अब क्या करना चाहिये ? ॥ ५ ॥ दुर्योधनकी यह बात सुनकर द्रोणाचार्यजीने कहा । द्रोणाचार्यजी बोले-हे दुर्योधन ! हे महावीर ! हे शूर ! हे सत्त्वपरायण ! ॥ ६ ॥ हे महाराज ! मैं सबेरा होतेही चक्रव्यूह निर्माण करूँगा और उसके द्वारा सब पांडवोंको जीतकर आपको यश दूँगा ॥ ७ ॥ (किन्तु यह बात भी जबही होगी) जब त्रैलोक्यप्रसिद्ध देवदानवोंसे अजेय महाबलवान् और पराक्रमी अर्जुन नहीं होगा ॥ ८ ॥ क्योंकि अर्जुनके होतेहुए कोईभी पांडवोंको नहीं जीतसकेगा, तथा अर्जुन और केशव चक्रव्यूहका युद्ध भी जानतेहैं ॥ ९ ॥ अत एव जिससे अर्जुन युद्ध छोडकर दूसरे स्थानको चला जाय, आप छल करके वैसाही उपाय कीजिये कि हे महाराज ! आप प्रार्थनापूर्वक राजाओंके संसप्तकको दूसरे स्थानमें पहुँचा दीजिये ॥ १० ॥ तो वे दोनों महावीर संग्राम करनेके निमित्त वहाँ अवश्यही चलेजाँयगे । इस प्रकार द्रोणाचार्यजीने राजा दुर्योधनकी भलीभाँति आज्ञा दी॥ ११ ॥ तब वह विनयसे नम्र दुर्योधन वहां संसप्तकोंके निकट पहुँचा, और उनको आज्ञा दी कि, दूरगामी योधा ऐसे आप अर्जुन और श्रीकृष्णको

युद्धार्थ अन्य स्थानमें लेजाओ तब सबेरा होतेही वे संसप्तक आकर ॥ १२॥॥ १३॥ युद्धके निमित्त अर्जुनको बुलाय दूर लेगये। तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि, जहाँ संसप्तक हैं वहाँको चलना चाहिये॥ १४॥ क्योंकि द्रोणाचार्यसे पहलेही चलाजाना हमारे लिये हितकारी होगा और नहीं तो जिनके द्रोणाचार्यजी सहायक हैं, वे कौरव हमारे घातक होंगे ॥ ॥ १५॥ यह अति उत्तम काम प्रकट होगयाहै, अत एव आप चलकर संसप्तकोंका नाश कीजिये। कपिध्वज अर्जुन श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णसमेत वहाँ गये जहाँ संसप्तक थे। हे राजन्! इसी बीचमें महाराज विराटकी पुत्री सती ॥ १७॥उत्तराको लेनेके निमित्त अक्रूर और सात्यकी गये थे और उन दोनोंने विराटके मंदिरसे उसको पतिके पास पाया॥१८॥ वह सुन्दरी उस समय वहाँ पतिके साथ एकान्तमें सुखपूर्वक क्रीडा कर-रहीथी। कामना स्वरूप सुखको प्राप्त हुई अत एव उससे विष्णुरात (परी-क्षित्) पुत्रने जन्म ग्रहण किया ॥ १९ ॥ इधर रणस्थलसे अर्जुनके दूर चलेजानेपर कौरव अत्यन्त हर्षित हुए और तब वहाँ द्रोणाचार्यजीने चक्र-व्यूहकी रचना करी ॥ २० ॥ वह चक्रव्यूह दुष्प्रवेश अर्थात् योधाभी जिसमें महा कठिनाईसे घुससकें, महाघोर, दुर्जय (जो जीता न जाय) और जिसको महारथीभी नहीं भेदसकें, तब ब्राह्मण द्रोणाचार्यजीने कुछेक मुसकराते २ वहाँ पाण्डवोंको बुलाया ॥ २१ ॥ तब महावीर महाराज युधिष्ठिर अपनी सारी सेनासे घिरेहुए उस महादारुण चक्रव्यूहपर आये ॥ २२ ॥ उसके देखनेपर महाराज युधिष्ठिर चिन्तातुर होकर भीमसेनसे कहने लगे। युधिष्ठिर बोले–हे भीमसेन! हे महाबाहु! इस चक्रव्यूहके विष-यमें मैं क्या करूँ? ॥ २३ ॥ मैं इस चक्रव्यूहका युद्ध नहीं जानता,इसको तो अर्जुन और केशव श्रीकृष्णही जानते हैं अब मेरे संग आपको वहाँ चलना चाहिये इसमें संशय नहीं ॥ २४ ॥ यदि अर्जुन नहीं आसका और हमने इस चक्रव्यूहमें प्रवेश नहीं किया, तो क्षत्रियोंको अधर्म स्पर्श करेगा इस प्रकार धर्मराजके कहनेपर भीमसेनको महामूढ समझकर अर्जुनके पुत्र

वीर अभिमन्युने कहा ॥ २५ ॥ अभिमन्यु बोले—हे तातगण ! जब मैं गर्भमें स्थित था, तब आगे मैंने चक्रव्यूहमें प्रवेश करनेका हाल श्रीकृष्णके मुखसे सुना है किन्तु प्रवेश करके फिर उसमेंसे निकलनेका नहीं सुना है ॥ २६ ॥ अत एव मैं चक्रव्यूहमें प्रवेश करना तो जानताहूँ, किन्तु उसमेंसे निकलना नहीं जानताहूँ, क्योंकि निकलनेका हाल सुनाही नहीं. तब महाराज युधिष्ठिरने प्रसन्न होकर अभिमन्युसे कहा ॥ २७ ॥

चौपाई ।

तुम्हैं कवन विधि आज्ञा दीजे । व्यूह युद्ध वीरनते कीजे ॥
पन्द्रह वर्ष वीर सुकुमारा । तुम हम सबके प्राण अधारा ॥
अभिमन्यू इहि भाँति बखाना । नृप हम कहँ बालक करिजाना ॥
अर्जुन—पुत्र सुभद्रा—नंदन । आजु करौं रिपुसैन्य निकन्दन ॥
द्रोण कर्ण सब वीर घनेरे । आज देखिहहु भुज बल मेरे ॥
मारि सबै सरदार गिरावौं । तो अर्जुनका पुत्र कहावौं ॥
बाँधौ भुज बल बली पुरन्दर । सेना उदधि होइ किमि मन्दर ॥
इहि विधि बाण बुन्द झरिलैहौं । शोणित नदी अथाह बहैहौं ॥
शोच करत नृप आपु अकारथ । देखहु आजु मोर पुरुषारथ ॥

दोहा—भीमसेन बोले तबहि, राजा सुनहु विचार ।
छहौं द्वार भेदन कहेउ, सतवाँ मो शिर भार ॥

हे महावीर अभिमन्यु ! यह हम सब जने तुम बालकोंके लियेही बुढापेको प्राप्त हुए हैं अत एव हम आपके निकाललानेके लिये आपकी पीठमें लगेहुए चलेंगे ॥ २८ ॥ तब अभिमन्युने युधिष्ठिर इत्यादिको पीछे करके चक्रव्यूहको भेदन किया किन्तु वहाँ पांडवोंका बडा शत्रु सिन्धुराज जयद्रथ अडाहुआ था ॥ २९ ॥ तदनन्तर चक्रव्यूहमें प्रविष्ट होनेके समय महाबली अभिमन्यु वीर अपनी दादी कुन्तीको नमस्कार करनेके निमित्त निडरतासे निकला ॥ ३० ॥ और फिर अपनी दादीके पास पहुँचकर अभिमन्युने कहा । हे मइया ! आप मुझको आज्ञा दीजिये क्योंकि मैं महारणमें

संग्राम करनेके लिये जाताहूँ । अभिमन्युके इस प्रकार कहनेपर दादी कुन्तीने अशीश देकर उसके हाथमें एक रक्षाका डोरा (रक्षाबधन) बाँध दिया ॥ ३१ ॥ और फिर बोली—हे प्रियपुत्र ! जिस समयतक यह डोरा आपके हाथमें बँधारहेगा, तबतक आपकी कुशल रहेगी अर्थात् युद्धमें कोई आपका बालभी बांका नहीं करसकेगा, तब फिर अभिमन्यु अपने मनमें जीतकी आशा धारण कियेहुए मार्गमें निकला ॥ ३२ ॥ अनन्तर अभिमन्युके हाथमें यह डोरा बँधा हुआ देखकर वीर श्रीकृष्णने पूछा कि हे पुत्र ! यह क्या पदार्थ है ? और इससे क्या काम सिद्ध होगा ? सो मुझको बतादीजिये ॥ ३३ ॥ अभिमन्युने कृष्णसे कहा—हे मामा ! इसको बाँधकर दादी कुन्तीने मेरी रक्षा की है, अर्थात् इसको रक्षाबन्धन समझिये । तब श्रीकृष्णने शिर हिलाकर कहा कि हे पुत्र ! वीरके लिये रक्षाबन्धन कैसा? ॥ ३४ ॥ वीरकी तो शूरता और पराक्रमही निरन्तर रक्षा करता है, श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर अभिमन्युने उस डोरेको तोडडाला और आगे बढा ॥ ३५ ॥ तब मार्गमें आईहुई महाराज विराटकी पुत्री उत्तरा वहाँ इनको देखकर बोली कि यह कौन वीर आरहा है ? ॥ ३६ ॥ इसके ऐसा पूछनेपर लोगोंने उत्तर दिया कि हे विराटकन्ये ! यह आपके पति हैं । यह सुनकर उत्तराने कहा—अहो कृष्ण ! अहो कृष्ण ! आपने मुझसे छल किया ॥ ३७ ॥ यह मेरे प्रिय स्वामी इस तरहके रूपसे आरहे हैं और आप फिर किसभाँति ऐसी बात कहते हैं ? इसके पीछे अभिमन्युनेभी उस विराटनन्दिनी रूपवती उत्तराका दर्शन किया ॥ ३८ ॥ तब अभिमन्युनेभी लोगोंसे पूछा कि मार्गमें यह कौन दिखाई देती है ? इनके ऐसा पूछनेपर उन लोगोंने उत्तर दिया कि क्या आप अपनी प्यारी उत्तराको नहीं देखते (पहचानते) हैं॥ ३९ ॥ तब अभिमन्युने एक लम्बा श्वास छोडकर कहा कि हे कृष्ण ! यह आपने किया अर्थात् मुझसे आपने क्यों छल किया ? क्योंकि हे कृष्ण ! आपने मेरे सम्मुख कहा था कि उत्तरा विषम कन्या और कुरूपवाली है ॥ ४० ॥ यह कहकर उन दोनोंने आपसमें एक दूसरेको देखा, तब अभिमन्युके देखनेपर उनकी दृष्टिसे उस

देवी उत्तराने तत्काल गर्भ धारण किया ॥ ४१ ॥ अनन्तर दृष्टिसे पुत्र उत्पन्न करके वह अभिमन्यु रणमें चलागया उससे विष्णुरात परीक्षितका जन्म हुआ ॥ ४२ ॥ जो कि गर्भकालमेंही भगवान् विष्णुने इनकी रक्षा की थी, इस कारण यह परीक्षित्के नामसे प्रसिद्ध हुए। यह सत्यधर्मपरायण परीक्षित् निरन्तर भगवान् विष्णुकी भक्तिमें निरत रहते थे ॥ ४३ ॥ इस तरह महावीर अभिमन्यु पुत्र उत्पन्न करके वहाँसे निकला और द्रोणाचार्यके संग्राममें जाकर गर्जना करनेलगा ॥ ४४ ॥

चौपाई ।

भीमादिक सब रणमें आये। सिन्धुराजने ते अटकाये ॥
अभिमन्यू क्रोधित हो रनमें। मारे बाण कर्णके तनमें ॥
ऐसी कठिन कीन्ह पुनि करणी। रुंड मुंड तोपी सब धरणी ॥
कुरुपति तबहिं क्रोध अति कीन्हें। मारु मारु यह आज्ञा दीन्हें ॥
लाखन वीर पार्थसुत काटे। ते दिश विदिश गगनमहँ पाटे ॥
सप्तरथी भागे शत बारा। हाहाकार कराहिं चिक्कारा ॥
शोणित सरिता दीन्ह बहाई। योगिनि पीपी रक्त अघाई ॥
जूझी अनी भभरिकै भागे। हँसिके द्रोण कहन अस लागे ॥
धन्य धन्य अभिमन्यु गुणसागर। सब क्षत्रिनमहँ बडो उजागर ॥
धन्य सुभद्रा जगमें जाई। ऐसे वीर जठर जनमाई ॥
धन्य धन्य जगमहँ पितु पारथ। अभिमन्यु धन्य धन्य पुरुषारथ॥

दोहा—दुर्योधन या विधि कह्यो, कर्ण द्रोण सों बैन ।
बालक सब सैना वधी, तुम सब देखत नैन ॥

तब वहाँ अभिमन्यु भाँति भाँतिके अस्त्र शस्त्रोंसे वैरियोंका नाश करके आगे चला और फिर वैरियोंको भेदकर चक्रव्यूहको भेदन करडाला॥४५॥ इसके पीछे अपनी बडी भारी सेनासे युक्त वीर जयद्रथभी उस अभिमन्युके सम्मुख आकर युद्ध करने लगा। तब द्रोणपक्षीय उस जयद्रथको देखकर युधिष्ठिर और भीमादि सब पाण्डव ॥ ४६ ॥ श्रीमहादेवजीसे उसके तपकी

सिद्धिको प्रत्यक्ष समझकर डरके मारे उसके पास नहीं जासके, क्योंकि उस जयद्रथने पूर्वमें पांडवोंसे परास्त होकर तपस्या करीथी ॥ ४७॥ तब ईश्वर श्रीमहादेवजीने तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उसको वर दिया, और तब उसने प्रणाम करके उनसे यही वर माँगा कि मैं रणमें पांडवोंको जीतूँ ॥ ४८ ॥ उसकी यह प्रार्थना सुनकर श्रीमहादेवजीने कहा कि, हे जयद्रथ ! आप रणमें अर्जुनके सिवाय और सब पांडवोंको जीतेंगे ॥ ४९ ॥ हे जयद्रथ ! जो मनुष्य तेरा शिर काटकर भूमिपर गिरावेगा तो पहले उस गिरानेवालेकाही शिर काटकर भूमिपर जा गिरेगा इसमें संशय नहीं समझना ॥ ५० ॥ श्रीमहादेवजीके उसी वरसे डरेहुए भीमसेन इत्यादि वीर जयद्रथके सामने नहीं गये और महावीर उस अभिमन्युने अकेलेही चक्रव्यूहमें प्रवेश कियाथा॥५१॥ और सम्पूर्ण बडे बडे महाबलशाली योधा और सुभटोंको उसने धराशायी किया अर्थात् मारगिराया, हजारों घोडे, घुडसवार, हाथी और उनपर बैठे-हुए वीरोंका नाश किया ॥ ५२ ॥ जब चक्रव्यूहमें घुसकर महावीर अभि-मन्युने इस प्रकार वैरियोंको मथन करना आरंभ किया, तब उस (षोडश-वर्षीय)बालक अभिमन्युकुमारके उन जयद्रथ इत्यादि महारथियोंने॥५३॥ फुरतीसे युद्ध करनेके कारण दिक्ज्ञान रहित और विह्वल (घबरायाहुआ) देखकर उसके ऊपर भांति भाँतिके अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करी । तब उन योधा-ओंको तरह तरहके शस्त्रोंद्वारा क्रोधमें भरेहुए सव्यसाचीनन्दन महाबलवान् अभिमन्युने भेदन किया । इस भांति शस्त्रों द्वारा प्रहार करनेवाले अभिम-न्युके निकट मूढ जयद्रथ इत्यादि ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ संपूर्ण क्षत्रियगण बलमें अकेलेही बालकसे हारकर भागनेलगे । इस तरह वे सारे योधा छिन्न भिन्न होकर भागनाही चाहतेथे, कि इसी बीचमें जो कि चक्रव्यूहसे बाहर नहीं निकलाथा ॥ ५६ ॥ उस पापमति जयद्रथने पीछेसे आकर खड्ग (तलवार) द्वारा अभिमन्युका शिर काटडाला । इस दुष्टात्मा जयद्रथने छलसे अभिमन्यु कुमारको मारा ॥ ५७ ॥ किन्तु शिर कटजानेपरभी उस धैर्यवान् वीर अभि-मन्युने अनेक भाँतिके अस्त्र शस्त्रोंद्वारा सैकडों योधाओंको बींधडाला तथापि

पृथ्वीतलपर नहीं गिरा ॥ ५८ ॥ तब फिर सब जनोंने एकत्र मिलकर उसको गिरानेकी इच्छासे वींधडाला और दूसरे भाँति भांतिके बाणोंको मारकर उस बालक अभिमन्युको भूतलशायी किया ॥ ५९ ॥

दोहा—कुरु पांडव फिरिके चल्यो, भयो युद्धको शेष ।
भीमादिक क्षत्रिय सबै, रोवत धर्म नरेश ॥

चौपाई ।

हाहा अभिमन्यु इमि भाखेउ । देखे विना प्राण किमि राखेउ ॥
सुत सपूत तो सों नहिं पावों । अर्जुनको किमि वदन दिखावों ॥
रोवत भीम नकुल अरु मन्त्री । सैनिक सकल महाबल क्षत्री ॥
रोवत सबै भवन कहँ आये । ऊर्द्धबाहु केशहि छिटकाये ॥
अभिमन्यु कहिकै सबहि पुकारत । दोऊ हाथ शीशपैं मारत ॥
अन्तःपुर पहुँची यह बानी । श्रवणन सुना सुभद्रा रानी ॥
कुन्ती सुनत महा दुखपाई । रोदन करत शूल उरछाई ॥
सुनत सुभद्रा जननी कैसे । बिना जीव कठपुतरी जैसे ॥
वहत प्रवाह नयनको पानी । हिम ऋतु मनहुँ कमल कुँभिलानी ॥
हाहा पुत्र परम सुखकारी । सुन्दर मुख पै मैं बलहारी ॥
ठोकि ललाट कर्म विधि सोये । सुनि दुख पशु पक्षी सब रोये ॥

दोहा—पुत्र मरण श्रवणन सुनत, धरणी परी अचेत ।
नयन नीर कज्जल सहित, मनहुँ तिलाञ्जलि देत ॥

अभिमन्युकुमारके पृथ्वीमें गिरजानेपर कौरव अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुए और संपूर्ण पाण्डव हाहाकारशब्दसे रोनेलगे ॥ ६० ॥ पापात्मा तथा आत्मा नहीं जीतनेवाले अक्षत्र जयद्रथने उस बालकका वध किया कि जिसके मामा तो गोविंद अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं और पिता धनञ्जय (अर्जुन) हैं ॥ ६१ ॥

अभिमन्युर्वधं प्राप्तः कालो हि दुरतिक्रमः ।
अधर्मत्वात्तदा सूर्यो ययौ चास्ताचलं प्रति ॥ ६२ ॥

इस प्रकार अर्जुननन्दन अभिमन्यु कुमार मृत्युको प्राप्तहुए । यह काल अत्यन्तही दुर्लंघ्य है अर्थात् समयको कोई उल्लंघन नहीं करसकता। तब इस अधर्मके मारे भगवान् सूर्यभी शीघ्रतासहित अस्ताचलकी ओर चलगये ६२॥

दोहा–कीन्हों सबनि अधर्म सों, बालकको संहार।
इहि अघके परतापसों, कुरुकुल होइ हि क्षार ॥

इति श्रीभारतसारे द्रोणपर्वणि भाषायां अभिमन्युवधो
नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः ६३.

त्रिषष्टितम अध्याये प्रतिज्ञा फाल्गुनस्य च ।
जयद्रथस्य पञ्चत्वमधर्मादेव कथ्यते ॥ १ ॥

इस तिरसठवें अध्यायमें फाल्गुन (अर्जुन) की प्रतिज्ञा और अधर्मसे (बालक अभिमन्युका नाश करनेके कारण) जयद्रथका वध होना, यह कथा कही जाती है ॥ १ ॥

जनमेजय उवाच ॥

अभिमन्यौ वधं प्राप्ते किमकार्षीद्धनञ्जयः ।
तदाचक्ष्व द्विजश्रेष्ठ शोकेनोद्विग्नमानसः ॥ १ ॥

महाराज जनमेजयने पूछा–हे द्विजश्रेष्ठ ! जब अभिमन्यु कुमार मारे गये, तब फिर पुत्रशोकसे उदासमनहुए अर्जुनने क्या किया ? यह आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ वैशंपायनजी बोले–हे राजन् ! उधर जब अर्जुनने भी रणमें संपूर्ण संसप्तकोंको जीत लिया तब देवदत्तनामक अपने शंखकी ध्वनि करते तथा जयको धारण करतेहुए आये ॥ २ ॥ तब इन्होंने वहाँ पहुँचतेही सब जनोंको विस्मित (अचँभेमें) देखा यह देख आश्चर्यमें मग्न धर्मराज युधिष्ठिरसे अर्जुनने कहा ॥ ३ ॥ उनको दुःखसे आर्त देखकर अर्जुन पूछने लगे । अर्जुन बोले–हे धर्मात्मन् ! मेरे जीतेजी आप किस बातका वृथा सोच कररहेहैं ? ॥ ४ ॥ मैं भगवान् वासुदेवके प्रसादसे कौर-

वोंको रणमें जीतूँगा इस बातमें कुछ भी संशय मत कीजिये फिर अब आप शोकसे किसलिये कर्शित (दुर्बल) होरहेहैं ?॥५॥ तब वहाँ जितने आदमी बैठे हुएथे,वे सब अर्जुनके लिये दुःखी होनेलगे।और शोकसंतप्त पांडवोंके प्रति तहाँ अर्जुनके इस प्रकार कहतेहुए ॥ ६ ॥ उन सबजनोंने उत्तर दिया कि, आप शोकका कारण नहीं पूछिये। हे पार्थ ! आपके पुत्र अभिमन्युके मारे जानेका कारण जयद्रथही हुआहै ॥७॥ यह सुनतेही अर्जुनने क्रोधित होकर प्रतिज्ञा करी कि, जो ब्राह्मण शीतसे डरताहै,अर्थात् जाडेके मारे स्नान नहीं करता है और जो क्षत्री रणसे डरताहै ॥ ८ ॥ तो उनको जो पाप लगताहै यदि (कल) मैं जयद्रथको नहीं मारडालूँ तो मैं उसी पापमें लिप्त हूँ।जो अज्ञानी आदमी कामी होकर रजस्वला नारीसे भोग करनेकी कामना करतेहैं जो कूट साक्षी अर्थात् झूँठी गवाही देनेवाले, कृतघ्नी और विश्वासघाती हैं॥९॥ यदि मैं (कल) जयद्रथको नहीं मारूँ, तो इन सबके पापमें लिप्त हूँ, मैं सूर्यास्तके प्रथम २ ही जयद्रथको हनन करडालूँगा १०॥

चौपाई।

जयद्रथहि कल अवशि संहारौं। ना तरु देह अग्निमहँ जारौं॥
यह प्रण मैं कीन्हौं अपने मन। वधौं शत्रुकी देहुँ अपन तन॥

नहीं तो मैं स्वयं अग्निमें प्रवेश करजाऊँगा। यह मेरी निश्चित (अटल) प्रतिज्ञा है। तब अर्जुनकी करीहुई यह प्रतिज्ञा द्रोणाचार्य और दुर्योधनने सुनी॥ ११ ॥ फिर वह पापबुद्धि हर्षयुक्त हो हँसताहुआ द्रोणाचार्यजीसे कहनेलगा। दुर्योधन बोला कि, अर्जुनने इस जयद्रथके मारडालनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ १२ ॥ अत एव हे गुरो ! हे महावीर ! आप जयद्रथकी रक्षा कीजिये। क्योंकि हे तात ! यदि आपने उसकी रक्षा करली तो अर्जुनका नाश होजायगा ॥ १३ ॥ और उसके नाश होजानेपर तब पांडवोंकी सारी सेना भी भागजायगी और फिर हे विभो ! हमको विना संग्राम किये लीलापूर्वकही जय मिलजावेगी ॥ १४ ॥ राजा दुर्योधनकी यह बात सुनकर द्रोणाचार्यजीने उसकी रक्षा की, फिर जयद्र-

थको बुलाकर कहा ॥ १५ ॥ हे लम्बीभुजावाले मद्रराज जयद्रथ ! मैं आपकी रक्षा करूँगा, अत एव उस रणस्थलमें इच्छापूर्वक अपने आपको छिपाये रहिये ॥ १६ ॥ जिस समयतक भगवान् सूर्य अस्ताचल चूडावलम्बी होंगे अर्थात् छिपेंगे, उस समयपर्यन्त मैं अर्जुनके संग्राम करके आपकी रक्षा करूँगा, इसमें कुछभी संशय मत समझना ॥ १७ ॥ अब मेरे विशेष कहनेसे क्या होगा? इतनाही कहदेना बस है कि, यदि इस विषयमें श्रीकृष्णने कुछ छल कपट नहीं किया, तो मैं अवश्य आपकी रक्षा करूँगा। क्योंकि ब्रह्मादिक देवताभी उन भगवान् श्रीकृष्णके छल कपटको नहीं जानसकते तब फिर मेरी तो बातही क्या है? ॥ १८ ॥ वहाँ गुरुजीके इस तरह कहनेपर संभ्रमसे मत्त व स्थूल (मोटे) हाथीको प्राप्त होकर दरवाजेकी सदृश उसकी पीठमें ॥ १९ ॥ मद्रराज जयद्रथको भयाकुल जीवकी रक्षा करनेके निमित्त बैठाला। इसके पीछे द्रोणाचार्यजीनेभी युद्धार्थ अर्जुन और श्रीकृष्णको बुलाया ॥ २० ॥ तब श्रीकृष्णने सारे राजाओंके मध्य बातचीत करतेहुए शोकग्रासित अर्जुनसे कहा कि पछिसे संग्रामके निमित्त अर्जुनको ही द्रोणाचार्यजी बुलायरहेहैं ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णजीकी यह बात सुनकर अर्जुन द्रोणाचार्यजीके निकट गये, तब महावीर द्रोणाचार्यजीने नरव्यूह युद्ध करना आरंभ किया ॥ २२ ॥ जिस व्यूहको महाबलवान् और पराक्रमी महावीर भी भेदन नहीं करसकते, ऐसे नरव्यूहके मुखपर अवस्थित तथा बाण संधान करनेमें पण्डित द्रोणाचार्यजी संग्राम करनेलगे ॥ २३ ॥ तब महावीर अर्जुनने भी शरसमूहद्वारा संग्राममें द्रोणाचार्यजीको संतुष्ट करके नरव्यूहको भेदन किया ॥ २४ ॥ अतुलित तेजस्वी उस अर्जुनने वहाँ द्रोणाचार्यजीसे संग्राम करते करते अनगिन्त हाथी, घोडे और पैदलोंको गिरादिया २५

चौपाई।

तब गुरु द्रोण क्रोध जिय कीन्हो। महामार पारथपर कीन्हो ॥
ऐसे बाण द्रोणगुरु जोरे। शरते पग ठहरात न घोरे ॥

दोऊ वीर भिरे मैदाना । सरस निरस कहि जात न माना ॥
इन्द्र अस्त्र पारथ तब कीन्हेउ । पढिके मन्त्र छाँडि शर दीन्हेउ ॥
छूटत बाण शब्द घहरायेउ । अचरज सबहींके उर आयेउ ॥
हँसिके द्रोण किये सन्धाना । तजेउ स्वामि कार्तिक कर बाना ॥
तातैं इन्द्र अस्त्र हनि दीन्हेउ । तब पारथ यम अस्त्रहि लीन्हेउ ॥
मृत्युक अस्त्र द्रोण परिहारेउ । तब यम अस्त्रहि पारथ मारेउ ॥
अस्त्र अस्त्र सौं कीन्ही निवारण । तब लागे तीक्षण शर मारण ॥
पारथ बाण कीन्ह सन्धाना । इत गुरु द्रोण सरिस मैदाना ॥

दोहा—अर्जुन वर्षत बाण इमि, जिमि सावन जलधार ।
सघन सैन भेदन करत, निकर जात शर पार ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! हे महाबुद्धिमान् ! इसी बीचमें संग्राम करते हुए भीमसेनके संग जो भगदत्तने पुरुषार्थ किया सो सुनिये ॥ २६ ॥ प्रतापी अभिमानी और महावीर भगदत्तने हाथीपर सवार होकर युद्धके लिये भीमसेनको बुलाया ॥ २७ ॥ तब भीमसेनभी हाथीपर सवार होकर क्रोधसहित आये और फिर दोनों महावीरोंका आपसमें संग्राम होने लगा ॥२८॥ तब वीर भगदत्तने भीमसेनके हाथीके शिरमें गदाघात करके उसको रणभूमिमें गिरादिया ॥२९ ॥ फिर भीमसेननेभी बडी भारी गदाके आघातसे उसके हाथीपर आक्रमण किया और नहीं मराहुआ समझकर दूसरी बार फिर मारा ॥ ३० ॥ किन्तु दूसरी बार मारनेपर भी वह हाथी पृथ्वीपर नहीं गिरा, क्योंकि वीर भगदत्तने उसको जंघापर धारण करलियाथा ॥ ३१ ॥ तब महाबलवान् भगदत्त वहाँ उस मृत हाथीके द्वारा भीमसेनके संग संग्राम करनेलगा किन्तु तब उस हाथीने भगदत्तका कहना नहीं माना ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार सेवकलोग अपने निर्धन स्वामीका कहना नहीं करते, और जिस प्रकार स्त्री अपने दरिद्री पतिका कहना नहीं मानती उसी प्रकार उस हाथीने भगदत्तका कहना नहीं माना ॥ ३३ ॥ तब तो भीमसेननेभी

महान् कोप करके उस मतवाले हाथीको हाथसे पकडकर भगदत्तसमेत पृथ्वी-तलपर दे पटका ॥ ३४ ॥ जब भगदत्त और उसका हाथी पृथ्वीपर पछड-गया तब तो अर्जुनभी महाक्रोधित होकर द्रोणाचार्यजीके संग संग्राम करने लगे ॥ ३५ ॥ उस काल अर्जुनके संग्राम करते करते एक घडी दिन बाकी रहगया, तब भगवान् श्रीकृष्णने उस एक घडी दिनको बाकी देखकर उपाय किया ॥ ३६ ॥ अर्थात् उन्होंने चक्रके द्वारा सूर्यको ढकदिया । तब रात्रि होगई । हे नृपोत्तम ! तब दोनों वीर (द्रोणाचार्य और अर्जुन) सन्ध्या-काल देखकर युद्धसे विरत हुए ॥ ३७ ॥ उस समय अर्जुनने जयद्रथको मार डालनेके लिये शीघ्रतासे दुर्योधनकी सेनामें घुसकर जयद्रथको इधर उधर देखा ॥ ३८ ॥ किन्तु जब वहाँ वह जयद्रथ अर्जुनको दिखाई नहीं दिया तब द्रोणाचार्यजीने अपने शिष्यसे कहा । द्रोणाचार्यजी बोले—हे अर्जुन ! हे महावीर ! आप सत्यवादी और सच्चा युद्ध करनेवाले हैं ॥ ३९ ॥ हे मन्द ! अब आप किस लिये दौडधूप कररहेहैं ? क्या आप सूर्यका छिप जाना नहीं देखते हैं ? प्रतिज्ञा भंग होनेपर आपसरीखे आदमी वृथाही जन्म लिया करतेहैं, इसमें संशय नहीं ॥ ४० ॥ इस कारण बुद्धिमान् पुरुषको सर्व प्रयत्नसे निरन्तर अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करनी चाहिये । गुरु द्रोणा-चार्यजीकी यह बात सुनकर अर्जुन निवृत्त होगया ॥ ४१ ॥ फिर अपनी सेनामें प्रविष्ट होकर काष्ठराशि विस्तृत करी अर्थात् बहुतसी लकाडियां मँगा-कर चिता बनाई और फिर उसमें अग्नि लगाकर अर्जुनने जैसेही उसमें प्रवेश करना चाहा ॥ ४२ ॥ उसी समय सब पांडव दुःखसे आर्त्त होकर पृथ्वीपर गिरगये और तैसेही श्रीकृष्णजीने आकर सब कौरवोंके देखते हुए छलसे इस प्रकार वचन कहे । श्रीकृष्ण बोले—हे पार्थ ! पार्थ ! हे महाबुद्धे ! आपका अपराध नहीं है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ क्योंकि जब विनाशकाल उत्पन्न होताहै तो उत्तम जनोंकोभी बुद्धि छोडकर चलीजायाकरतीहै, वीरेश, गुरु और ब्राह्मण द्रोणाचार्यजीके संग्राम करतेहुए आपके सदृश ॥ ४५ ॥ कौन मूर्ख उनको परास्त करनेकी अभिलाषाके निमित्त प्रतिज्ञा करेगा ? जो हो,

अब उत्पन्न कार्यकी सिद्धि करनेमें देरी नहीं करनी चाहिये ॥ ४६ ॥ अत एव हे बन्धु ! आप यहाँ आइये और मुझको मिलाप दीजिये इसके उप-रान्त फिर आप अग्निमें प्रवेश कर जाना, अब मुझे किसी समयभी आपकी समान योग्यरूपवाला मित्र नहीं मिलेगा ॥ ४७॥ इस प्रकार कहकर जितने कौरव (अर्जुनके अग्निप्रवेशका तमाशा) देखने आये थे, उन सबको भ्रमाया अर्थात् धोखादिया और फिर मिलनेके समय श्रीकृष्णने अर्जुनके कानमें सब (गुप्त) वृत्तान्त कहदिया ॥ ४८ ॥ फिर मिलचुकनेपर श्रीकृष्णने कहा कि, अब आप शीघ्रतासे अपनी आत्माके कल्याणार्थ अग्निकी परिक्रमा कीजिये इस प्रकार श्रीकृष्णजीके द्वारा सब बात जानाहुआ अर्जुन अपने मनमें सन्तुष्ट हुआ ॥ ४९ ॥

दोहा-चिता चढन अर्जुन चलेउ, कहेउ कृष्ण समुझाय ।
धनुष बाण लेकर चढहु, क्षत्रिय धर्म न जाय ॥

चौपाई ।

हरि आज्ञा पारथ मन बढेऊ । लेकर धनुष चितापर चढेऊ ॥
कुरुपति तब निरखनकूँ लागे । कही शकुनि जयद्रथके आगे ॥
तुवकारण मारेउ सब सैना । पारथ मरण देखिये नैना ॥
यातें और न है सुख कोई । देखत नयन शत्रुक्षय होई ॥
उठि जयद्रथ निहारै जबही । श्रीहरि गगन तकायो तबही ॥
कार्षि सुदर्शन तब ढिग आये । रवि प्रकाश भा दिवस लखाये ॥
चकृत सबहि अचंभा मानै । तब श्रीहरि पारथहि बखानै ॥
अर्जुन गहरु करत केहि काजा। देखत तुमहिं सिन्धुके राजा ॥
तब अर्जुन कीन्हेउ सन्धाना । कंठ ताकिकैं मारचो बाना ॥
जूझे शीशपरन महि चहेऊ । तब अर्जुन सौं माधव कहेऊ ॥

दोहा-अन्तरिक्ष शिर ले चलहु, सुनहु वचन परिमान ।
नहीं मरन तब होयगो, विहँसि कही भगवान ॥

फिर अर्जुन तीन परिक्रमा करताही था, कि उसी समय जयद्रथ प्रकट होगया। तब अर्जुन मरनेमें प्राप्त जयद्रथको प्रकट देखकर ॥ ५० ॥ जैसेही भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करते थे, उसी समय श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्रको वहाँसे अलग हटालिया। तब तो सूर्यको देखकर शीघ्रता सहित ॥ ५१ ॥ अर्जुनने अर्द्धचन्द्र बाणके द्वारा उस जयद्रथका मस्तक काटडाला। वह कटा-हुआ मस्तक उछलकर जहां उसके पिता बैठे थे वहाँ पहुँचा ॥ ५२ ॥ वे पिता उस समय आँख मूँदेहुए वहां सन्ध्यामें जलाञ्जलि देरहेथे, तब जयद्र-थका मस्तक उनके हाथमें जागिरा ॥ ५३ ॥ अनन्तर उसके पिताने अत्यन्त अचंभेमें होकर उस मस्तकको भूमिमें डालदिया तब उसके पिताका मस्त-कभी उसके संगही भूमिपर गिरा ॥ ५४ ॥

एवं वै कृष्णपार्थाभ्यां मद्रराजो निपातितः।
पाण्डवा हर्षितास्तत्र कौरवाः शोकनिर्भराः ॥ ५५ ॥

इस प्रकारसे भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने मद्रराज जयद्रथका वध किया तब वहां पांडव आनन्दित और कौरवगण शोकसे परिपूर्ण होगये॥५५॥

दोहा—धर्मराज भाषनलगे, श्रीहरिसौं यह बैन।
पारथ प्रणरक्षक सदा, तुमही पंकजनैन ॥
अर्जुन प्रणरक्षक सदा, श्रीवर दीनदयाल।
जाके तुमसे सारथी, ताहि न जीतै काल ॥

इति श्रीभारतसारे द्रोणपर्वणि भाषायां जयद्रथवधो
नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः ६४.

चतुःषष्टितमेऽध्याये कुरुसैन्यविमर्दनम्।
घटोत्कचेन वीरेण वधस्तस्यापि कथ्यते ॥ १ ॥

इस चौसठवें अध्यायमें वीर घटोत्कचने कौरवोंकी सेनाका मर्दन(नाश) किया और उसकीभी मृत्यु हुई, यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

एतस्मिन्समये कृष्णो घटोत्कचमुवाच ह ।

कृष्ण उवाच ।

घटोत्कच महावीर कन्यावत्किं स्थितो गृहे ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! इसी समय भगवान् श्रीकृष्णने घटोत्कचसे कहा । श्रीकृष्ण बोले—हे घटोत्कच ! हे महावीर ! आप कन्याकी समान घरमें कैसेहो ? ॥ १ ॥क्या आप युद्ध करना नहीं जानते? जो संग्राममें नहीं गये ? श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर उस घटोत्कचने गर्जकर श्रीहरिसे कहा ॥ २ ॥ घटोत्कच बोला—हे कृष्ण ! कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! मैं तो आपका दासानुदास हूँ । हे नाथ ! रात्रिकालके समय युद्ध करनेको मैं बलवान् हूँ, दिनमें नहीं ॥ ३ ॥ हे जनार्दन ! मैं हिडिम्बाका पुत्र राक्षस हूँ । हे विश्वात्मन् ! आपकी आज्ञासे मैं एक क्षणभरमें कौरवोंको ॥ ४ ॥ अदृश्य होकर पर्वतोंके आघातसे मारडालूँगा । उसकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णने भीमनन्दन घटोत्कचसे कहा ॥ ५ ॥ हे महावीर ! आप युद्ध करके कौरवोंका नाश कीजिये । आपको राक्षसपनेसे और मेरी आज्ञासे रातमेंभी दोष नहीं लगेगा ॥ ६ ॥ भीमपुत्र बलवान् घटोत्कचने श्रीकृष्णकी आज्ञा शिरपर चढाकर कौरवोंको मोहित करनेवाली माया फैलाय आकाशमें उछालमारी ॥ ७ ॥ और वहाँ बादलकी तरह गर्जना करके घोर अंधकार करदिया,जिससे कौरवोंके दलमें किसीको कुछ दिखाई नहीं दिया ॥ ८ ॥ फिर आकाशसे पर्वताकार महान् पत्थरोंकी अत्यन्तही वर्षा करनेलगा कि जिनके आघातसे हाथी, घोडे, रथ और पैदलोंसमेत सारे कौरव भूमिपर गिरपडे ॥ ९ ॥ किसीका बिलकुलही चूरा करदिया और किसीका वहाँ शिर फोडदिया और किसी किसीके हाथ, पैर, नाक बिलकुल भंग (तोड) दिये ॥ १० ॥ हे राजन् ! तब तो वे सैनिक पत्थरोंसे अंगभंगताके प्राप्त होनेपर अत्यन्तही डरगये और फिर कर्ण व

दुर्योधनके निकट पहुँचकर 'त्राहि ! त्राहि!' अर्थात् रक्षा कीजिये ! बचाइये ! इस तरह कहनेलगे ॥ ११ ॥ कोई अदृश्यरूप आकाशमें स्थित होकर कौरवोंका नाश कियेडालता है यह सुनकर कौरवपक्षीय वीरोंने बाणोंके जालद्वारा ॥ १२ ॥ गगनमण्डलको पूरदिया, तथापि उनका पराक्रम विफल हुआ तब फिर अपने आदमियोंकी घबराहट देखकर दुर्योधनने कर्णसे कहा ॥ १३ ॥ दुर्योधन बोला—हे कर्ण ! हे वीर ! हे लम्बीभुजावाले ! मेरी सेनाका कौन नाश कररहाहै ? विना देखे और विना जाने हम किसको मारें? ॥ १४॥ कर्ण बोला—हे राजन् ! घटोत्कचनामक वीर आपकी सेनाका नाश कररहाहै । वह राक्षसी माया फैलाय और उसके द्वारा अन्तर्धान होकर घोर युद्ध कररहाहै ॥ १५ ॥ दुर्योधनने कहा कि, जिसने हमको विकल कररखाहै, वह घटोत्कच मुझे दिखाई नहीं देता । हे कर्ण ! मैं उस हिडंबानन्दनसे नष्ट हुआ जाताहूँ, अत एव उसके हाथसे आप हम लोगोंको बचाइये ॥ १६ ॥ कर्णने कहा, हे महाराज ! मैंने भगवान् सूर्यसे पञ्चघातिनी अर्थात् पांच जनोंका नाश करडालनेवाली शक्ति प्राप्त की थी, किन्तु मेरी विनती करके माता कुन्तीने हठपूर्वक वह शक्ति मुझसे लेली ॥ १७ ॥ तदनन्तर मैंने परीक्षाके निमित्त भगवान् दिवाकरसे पाँच बाण लिये, किन्तु मइया कुन्ती स्तुति करके मुझसे उन पाँच बाणोंको भी लेगई ॥ १८ ॥ मैंने अर्जुनके लिये संग्रह कर रक्खी थी, सो अब वह मेरे निकट नहीं है क्योंकि इसके उपरान्त इन्द्रने ब्राह्मणरूपसे मेरी प्रार्थना करके ॥ १९॥ मेरे शरीरका कवच मुझसे लेलिया और मेरा साधुपना (सज्जनता) देख मुझपर सन्तुष्ट हो एक वीरका नाश करनेवाली ॥ २० ॥ शक्ति मुझको अर्पण करी सो हे महाराज ! वह मेरे पास है जिसको मैंने केवल अर्जुनको मारनेके लियेही धर छोडा है ॥ २१ ॥ दुर्योधनने उत्तर दिया हे कर्ण ! यदि हम जीतेरहजाँयगे तो अर्जुनको फिर मारलेंगे अत एव हे महावीर ! आप उस शक्तिको छोडिये, नहीं तो हम सब जने मारेजाँयगे ॥ २२ ॥ तब दुर्योधनके ऐसा कहनेपर कर्णने तत्काल उस शक्तिको छोडदिया, जो कि ज्वालामालासे

महाभयंकर और जिसके आगे धूमकी पंक्ति और पीछे दारुण अग्नि थी ॥ २३ ॥ ऐसी वह विद्युल्लेखा (विजलीकी समान चमकीली) की तरह प्रकाशमान शक्ति भीमसेनात्मज घटोत्कचपर पहुँची तब महावीर घटोत्कच उसके मुखको त्याग गगन मण्डलमें ॥ २४ ॥ टिककर भाँति भाँतिके पाषाणोंसे उस विचित्र शक्तिको नष्ट करनेलगा, किन्तु वह शक्ति पत्थरोंसे हत होनेपर पत्थरोंको हटाकर सामने ॥ २५ ॥ आपहुँची तब वीर घटोत्कचने उसको पत्थरोंसे फिर नष्ट किया। किन्तु उन पत्थरोंकाभी चकनाचूर करके वह शक्ति घटोत्कचपर पहुँची ॥ २६ ॥ तदनंतर घटोत्कचने उस शक्तिको अपने नाशके लिये आया समझकर जीवनकी कामनासे तरह तरहके बाणोंद्वारा हनन किया ॥ २७ ॥

दोहा--कर्ण कही विधिकी रचित, टारि सकै सो कौन।
मारत हौं अब असुरकहँ, रहैं सबै होइ मौन ॥

चौपाई।

यह कहि वज्रशक्तिकर लीने। सहस नयनको सुमिरन कीने ॥
ताकि असुरको कर्ण चलायउ। छिटकी ज्योति अकाशहि धायउ॥
लागी शक्ति असुर उर कैसे। लगत वज्र गिरिवर गिरि जैसे ॥
परयौ भूमितल असुर भयंकर। मुंडमाल लीन्हेउ सो शंकर ॥
गई शक्ति सुरपतिके हाथा। अति आनन्द भये जगनाथा ॥
रोदन करै हिडम्बी कैसे। बिछुरी गाय वच्छसौं जैसे ॥
भीमसेन करुणा बहु कीन्हे। कृष्ण देवने समझा दीन्हे ॥
करुणा किये कछू नहिं होई। जगमें अमर भयो नहिं कोई ॥

तब वह घटोत्कच शीघ्रतासे इधर उधर भ्रमण करनेलगा इसी बीचमें उस शक्तिने उसको आघात किया। उस काल उसने अभय देनेवाले नारायण श्रीगोविन्दको हृदयमें सुमिरा ॥ २८ ॥ तदनन्तर शक्तिसे विंधनेपर उस शरीरको अत्यन्त विस्तृत करके वह भूमिपर आगिरा और गिरते समयभी

उसने कौरवोंकी सेनाका चकनाचूर करके उनके बलको क्षय किया॥२९॥ जिस समय वह महासामर्थ्यवाला घटोत्कच मरकर भूमिपर गिरा तब हृदयमें स्फोट (पीसने) को प्राप्त होकर बहुतसे योधा संग्राममें नाशको प्राप्त होगये ॥ ३० ॥ कोई कोई भागगये, कोई कोई हाय ! हाय ! ! शब्द करनेलगे और पांडव तथा कौरवोंके मनमें आनन्द और शोक हुआ ॥ ३१ ॥

हयानां दशलक्षं तु योधानामयुतं शतम् ।
रथानां लक्षमेकं तु पातितं भीमसूनुना ॥ ३२ ॥

भीमनन्दन घटोत्कचने दशलाख घोडे और दशलाख योधा, तथा एक लाख रथोंका नाश करडाला था ॥ ३२ ॥

इति श्रीभारतसारे द्रोणपर्वणि भाषायां घटोत्कचवधो नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः६५.

पञ्चषष्टितमेऽध्याये भीमभीमपराक्रमम् ।
द्रौपदीवस्त्रकर्षस्य पञ्चत्वमिह कथ्यते ॥ १ ॥

इस पैंसठवें अध्यायमें भीमसेनका भीम (भयंकर) पराक्रम और द्रौपदीका वस्त्राकर्षण करने (सारी खेंचने) वाले दुःशासनका माराजाना यह कथा कहीजाती है ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

ततः प्रभातसमये चतुर्थेऽह्नि समाययौ ।
द्रोणस्तु सुभटैः सार्द्धं युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले–हे महाराज जनमेजय ! तदनन्तर चौथे दिन प्रातः समय सुभटोंके साथ संग्राम करनेका निश्चय करके द्रोणाचार्यजी आये ॥ १ ॥ तब वहां गुरु द्रोणाचार्य और अर्जुनका युद्ध आरंभ हुआ । फिर द्रोणाचार्यजीने अर्जुनको बींधकर उनकी सेनाको हनन किया ॥ २ ॥ तब तो अर्जुननेभी बडी फुरतीसे द्रोणाचार्यजीको प्रहार करके उनकी सेनाको मारना आरंभ किया और भीमसेनने संग्राममें जीतेहुए महाबली सुभटोंको

हनन किया ॥ ३ ॥ उन भीमसेनने किसीको गदाघातसे मारा, किसीको घूँसा मारकर दम निकाल दिया, किसीको लातोंके मारे मारडाला और बहुतोंका उठाकर भूमिपर पछाडदिया ॥ ४ ॥ उस काल क्रोधित वृकोदर (भीमसेन) का रूप सौगुना भयंकर होगया, तब महाबली राजपुत्र उन भीमसेनको महान् क्रोधमें भरा हुआ देखकर ॥ ५ ॥ हाथी, घोडे और रथोंपर सवार होकर तरह तरहके हथियारोंसे उनको हनन करनेलगे ॥ ६ ॥ तब तो महाबली भीमसेनने सब प्रकारसे क्रोधित हो भाँतिभाँतिके अस्त्र शस्त्रोंसे उन संग्राम करतेहुए राजकुमारोंके समूहको मारना आरंभ किया ॥ ७ ॥ उस युद्धमें भीमसेनने धृतराष्ट्रके पुत्रोंको महान् क्रोधपूर्वक निपात (नाश) किया फिर दुःशासन और भीमसेन एकत्र होनेपर दोनों महावीर आपसमें संग्राम करनेलगे ॥ ८ ॥ ९ ॥ अनन्तर उन वृकोदर भीमसेनने क्रमशः अर्थात् दुःशासनको पैरसे लेकर शिरतक प्रहार किया और दुःशासनने भीमसेनको मारा तथा बलवान् दुःशासनने अपनी गदाके द्वारा भीमसेनके गदाघातको भी लेलिया ॥ १० ॥ फिर भीमसेनने दुःशासनके गदाघातको अपने शरीरपर धारण किया और तब दुःशासनने भी भीमसेनके गदाप्रहारको अपने शरीरपर धारण किया ॥ ११ ॥

चौपाई ।

कर गहि गदा भीम तब धाये । हाँक मारि दुःशासन आये ॥
दोऊ वीर खेतमहँ कैसे । महामत्त गज उरझे जैसे ॥
कर गहि गदा कोप परिहराहिं । एकहि एक कोप करि मारहिं ॥
धमकत घाव लगेउ जब तनमें । बाढत कोप दोऊके मनमें ॥
अस्त्र डारिके दोउ लपटानेउ । क्रुद्धित तरल युद्ध अरुझानेउ ॥
करगहि कच मुष्टिक परिहाराहिं । शीशहि शीश कोपिकै मारहि ॥
उरसो उर पेलतहैं दोऊ । पारि सकत नाहिं टरते कोऊ ॥

दोहा-भीमसेन अति क्रोध करि, अभिरत अमित अनन्द ।
आनि पछारेउ धरणिपहँ, मानहुँ सिंह गयन्द ॥

तब क्रोधितहुए भीमसेनने अपने गदाघातसे वीर दुःशासनकी गदाको ताडित किया जिससे वह गदा तत्काल रेणुभावकी प्राप्त हुई अर्थात् धूरिके समान उसका चूरा होगया ॥ १२ ॥ तब दुःशासनकी गदाको टूटी हुई देख कर भीमसेनने आपनी गदाको पृथ्वीपर फेंक दिया और फिर बाहुसे बाहुको आस्फोटन (चटकाकर) करके महाबली भीमसेन गर्जनेलगे ॥ १३ ॥ तब महाबलवान् दुःशासनभी बाहुसे बाहुको फटकार कर सिंहनाद करने लगा । फिर भीमसेन और दुःशासन दोनों वीर एकत्र मिलकर बाहुयुद्ध करनेलगे ॥ १४ ॥ उस काल वे दोनों जने गर्ज़ना करते हुए अनेक प्रहारोंसे, घूसोंसे और लातोंके प्रहारसे तथा नाखूँन और दांतोंसे आपसमें एक दूसरेको मारनेलगे ॥ १५ ॥ उनकी आँखें लाल लाल होगई और वे परस्पर जीतकी इच्छा करनेवाले दोनों वीर भयंकर भ्रुकुटी करके दीर्घश्वास लेनेलगे ॥ १६ ॥ इस प्रकार सब लोगोंको भयंकर उन दोनोंका घोर युद्ध हुआ तब वहाँ महावीर भीमसेनने उस दुःशासनको ॥ १७ ॥ छल पूर्वक फुरतीसे भूमिपर पटकदिया और फिर भीमसेनने उसकी छातीपर पैर रखकर उच्च स्वरसे गर्जना करी ॥ १८ ॥ उस काल बाहुसे बाहुको फटकार वह भीमसेन अपने विरानेको भूलगये और फिर उन्होंने वीररसमें सराबोर हो कौरवोंसे इस प्रकार कहना आरंभ किया ॥ १९ ॥

दोहा–भीम भयंकररूप धरि, कहे सुनै दोउ सैन ।
हैं कोऊ रक्षा करै, मौंसै कहिये बैन ॥

चौपाई ।

कुरु पांडव जेते हैं क्षत्री । कृष्ण सहित यदुवंशी अत्री ॥
असुर नाग नर सुनहु पुरन्दर । धरणी सिन्धु मेरु गिरि कन्दर ॥
चन्द्र सूर्य तुम दोऊ साखी । तीन लोक देखतहैं आँखी ॥
रक्षा करहु दुःशासन भारत । कही भीम हम भुजा उपारत ॥
सुनि अर्जुनके जिय रिस बाढी । तीक्षण शर निषंगसौं काढी ॥
मानि भीम अब करौं निपाता । कैसेउ सहि न जाय यह बाता ॥

श्रीपति कही उचित नहिं होई। आजु भीम सौं जितहि न कोई ॥
मैं नरसिंह रूप बल दीन्हा। भीम अंगपरवेशित कीन्हा ॥
हाँक मारिके भुजा उपारे। रुधिर द्रौपदीके शिर डारे ॥
शिरसौं परत रुधिरकी धारा। द्रुपद सुता तब बाँधे बारा ॥
अरुण वर्ण तनु सोहत कैसे। असुर युद्ध महँ देवी जैसे ॥
द्रुपद सुता तब भवन सिधारी। अर्जुन कर्ण रचेउ रण भारी ॥

रे रे द्रोण, कर्ण और दुर्योधनादि सब कौरवों ! यदि आप पृथ्वीतलपर वीर कहाते हैं तो मुझकरके ग्रसित अर्थात् पकडेहुए इस दुःशासनकी रक्षा कीजिये ॥ २० ॥ उनसे इसप्रकार कहकर फिर भीमसेनने पांडवोंके प्रति कहा, भो भो अर्जुन और महावीर कृष्ण ! आपही पराक्रमी हैं ॥ २१ ॥ अत एव आर्त्त पुरुषके प्राणोंका पालन करनेके लिये आप मेरी बात सुनिये कि आप जितने वीर आनकर प्राप्त हुएहैं, सो सब दुःशासनको छुडाइये २२॥ भीमसेनकी यह बात सुनकर अर्जुनने क्रोधित होकर इस प्रकार कहा. अर्जुन बोले। रे रे वृकोदर भीम ! तू मूढ आदमीकी तरह वृथाही गर्जरहा है ॥ २३॥ पैरके तले मुँह करके गीधके सदृश नाशकी कामना करके ऐसा कहरहाहै, अब तू स्थिर(सावधा न) होकर गाँडीवधनुषसे छूटेहुए एक सहस्र बाण सह ॥ २४ ॥ इस प्रकार कहते कहते वहाँ अर्जुनने धनुषपर बाण चढाया और जैसेही धनुषको खेंचना चाहा कि, वैसेही श्रीकृष्ण बोलउठे कि, रे मूढ ! ठहर, इस भाँति कहकर निषेध किया ॥ २५ ॥ फिर अपने हाथका झटका देखकर उसका धनुष व बाण गिरादिया। इस तरह अर्जुनको रोककर फिर श्रीकृष्णने भीमसेनकी स्तुति(प्रशंसा) करते हुए कहा ॥ २६॥ श्रीकृष्ण बोले। भो भो भीम महावीर! आपकी समान योधा पृथ्वीतल पर दूसरा कोई नहीं है। इस संग्राममें द्रोणाचार्यजी गर्जन करते हैं, और आप उनके गर्जतेहुए निडर आदमीकी तरह किसप्रकार गर्जते हैं ? ॥ २७ ॥ आप यहाँ शीघ्रतासहित द्रौपदीके वस्त्राकर्षण करने (सारिखेंचने) वाले पापात्मा (दुःशासन) का वध-

करके जिस प्रकार आपने पूर्वमें प्रतिज्ञा की थी उसका पालन कीजिये॥ २८ भगवान् श्रीकृष्णजीकी यह बात सुनकर भीमसेनने कहा। भीमसेन बोले—रे पापी! रे नीच! रे दुष्टात्मन्! रे द्रौपदीके वस्त्र खेंचनेवाले! ॥ २९ ॥ रे दुःशासन! तैंने जिस हाथके द्वारा द्रौपदीके वस्त्रको खींचाथा और उसको पकड कर भरी सभामें ले आया था, अब जरा अपना वह हाथ मुझको दिखा तो सही॥ ३०॥ दुःशासनने (गर्वसहित) उत्तर दिया कि रे भीम! देख यह मेरा हाथीकी शुंडकी समान वही हाथ है कि जिसने अपने अग्रभागसे द्रौपदीका चीर खेंचा, हजारों गायोंका दान किया और क्षत्रियोंका नाश किया ॥ ३१ ॥ जहाँ तहाँ वैरियोंसे घिरेहुए शूर वीरही मृत्युको प्राप्त हुआकरते हैं और यदि वे नपुंसक (हिजडे तथा डरपोक) आदमीकी तरह बात न करैं तो अक्षय लोक लाभ करलियाकरते हैं ॥ ३२ ॥ वैशम्पायनजी बोले, हे महाराज जनमेजय! उस दुःशासनके इस तरह कहतेहुए भीमसेनने उसी समय द्रौपदीका वस्त्र खेंचनेवालेकी दहिनी भुजा उखाडली ॥ ३३ ॥ तब नीचे पडेहुए वीर दुःशासनने महान् क्रोधपूर्वक बांये हाथके घूँसेसे भीमसेनकी ठूडीमें बडे जोरसे ताडना (प्रहार) करी ॥ ३४ ॥ उस घूँसेके आघातसे भीमसेन घबरागये और आँखें मुँदकर बैठगये और फिर आँखें खोलकर उसका बाँया हाथभी उखाडलिया ॥ ३५ ॥ तदनन्तर उस वीर दुःशासनने दाहिने पैरसे उन भीमसेनकी छातीमें बडे वेगसे आघात किया जिससे वे भूमिपर गिरपडे ॥ ३६ ॥ किन्तु फिर महावीर भीमसेन तत्कालही उठे और अपने हाथोंसे दुःशासनके दोनों पैर पकड कर गर्जने लगे ॥ ३७ ॥

नानाप्रवदतस्तस्य शीर्षमुत्पाटयत्तनोः ।
तत्रत्यं रुधिरं पीत्वा सन्तुष्टोऽप्यवदच्छ्वसन् ।
अद्य मे दिवसो धन्यश्चाद्य सिद्धो मनोरथः ॥ ३८ ॥

और फिर तरह तरहके अनेक दुर्वचन कहतेहुए उस दुःशासनका मस्तक धडसे काटडाला तथा शिर काटनेपर जो खून निकला, उसको पीकर भीम-

सेन सन्तुष्ट हुए और पीछे स्वाँस लेते लेते कहनेलगे कि आज मेरा दिन धन्य है और अब मेरी मनोकामना सिद्ध हुई ॥ ३८ ॥

इति श्रीभारतसारे द्रोणपर्वणि भाषायां दुःशासनवधो नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः ६६.

षट्षष्टितम अध्याये द्रोणाचार्यस्य गौरवम् ।
धर्मस्य बलनाशं तद्द्रोणादर्शनमुच्यते ॥ १ ॥

इस छासठवें अध्यायमें द्रोणाचार्यजीका गौरव, युधिष्ठिरकी सेनाका नाश और द्रोणाचार्यजीका माराजाना, यह कथा कहीजाती है ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

भीमेन निहतं वीरं दुःशासनमरिन्दमम् ।
रुदन्द्रोणं समागत्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! जिस समय भीमसेनने वैरि-नाशक वीर दुःशासनका वध करडाला तब राजा दुर्योधनने रोते रोते द्रोणा-चार्यजिके समीप जाकर कहा ॥ १ ॥ राजा दुर्योधन बोला—हे नाथ ! पांडव अर्जुनने आपके देखते देखते हमारे वीरोंका नाश करडाला है, किन्तु आपने एकभी पांडवको क्यों विनाश नहीं किया ? ॥ २ ॥ दुर्योधनकी यह बात सुनकर द्रोणाचार्यजी मारे क्रोधके व्याकुल होगये और फिर अर्जुनके समी-पही पांडवपक्षीय सारी सेनाको मर्दन करनेलगे ॥ ३ ॥ तब तौ क्रोधके मारे मूर्छित होकर अर्जुनभी उस कौरवपक्षीय सब सेनाको तहस नहस करनेलगे और पीछे भाँति भाँतिके अस्त्र शस्त्रोंसे उन दोनोंका परस्पर युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥

दोहा—गुरू द्रोण अति क्रोधकरि, मारे तीक्षण बान ।
पांडवदल जूझे घने, छायो शर असमान ॥

चौपाई ।

अर्जुन बाण वृष्टि झरिलाये । कौरव दल बहु मारि गिराये ॥

उरझे खेत जोरसौं जोरा । लागे करण महारण घोरा ॥
शूल सांग मुदगर परिहारैं । सम्मुख जाय खड्ग शिरझारैं ॥
जहाँ जहाँ अर्जुन मन धावत । तहाँ तहाँ हरि रथ पहुँचावत ॥
पारथ करते जे शर छूटत । अंग भेदि धरनी महँ फूटत ॥
गुरु द्रोण उत बाण चलावत । श्वेत श्याम रथ शोभा पावत॥
अर्जुन कोपि कियो सन्धाना । द्रोण अंग मारे शत बाना ॥
गुरू द्रोण शर कोपि प्रहारे । सौ शर पारथके उर मारे ॥
इहि विधि करहिं युद्धकी करणी । रुंड मुण्ड पाटे सब धरणी ॥
भूत बेताल योगिनी गावहिं । धरु धरु मारु मारु गोहरावहिं॥

दोहा-दोउ दल वीरन रण रचेउ, कहि न सकहिं कवि बैन ।
शर समूह छायो गगन, रवि नहिं सूझत नैन ॥

तब फिर अर्जुनका गला काटडालनेके लिये द्रोणाचार्यजीने बाणको मन्त्रित करके चलाया। किन्तु अर्जुनने उसको अपने बाणसे(लीलापूर्वकही) काट डाला ॥ ५ ॥ तब बीचसे कटजानेपरभी उस बाणका अग्रभाग अर्जुनके प्रति आपहुँचा । फिर फुरतीसे उसके अग्रभागको अर्द्धचन्द्राकृति बाणद्वारा॥ ६॥ अर्जुनने बीचसे काटडाला, तथापि उसका अग्रभाग फिर आया तब बाणकी नोकसे उन अर्जुनने उस बाणके आग्रभागको ॥ ७ ॥ काट दूर फेंकदिया, उस काल 'जय जय' शब्द होनेलगा, हे नृपोत्तम! इस प्रकार गुरु द्रोणाचार्य और शिष्य अर्जुनका घोर युद्ध होने लगा ॥ ८ ॥ किन्तु भगवान् विष्णु श्रीकृष्णजीके आतिरिक्त द्रोणाचार्यजीकी मृत्युके कारणको अर्थात् वे कैसे मरेंगे, इस बातको कोई दूसरा नहीं जानता, अत एव जनार्दन श्रीकृष्णने अर्जुनको श्रमातुर देखकर उसका उपाय बताया ॥ ९ ॥ तब श्रीकृष्णने अत्यन्त वेगसे एक बडे भारी हाथीको मरवाया सो भीमसेनने अश्वत्थामा नामवाले हाथीका विनाश किया ॥ १० ॥ तब संपूर्ण सेनाके मध्यमें श्रीकृष्णने यह शब्द प्रकट किया कि अश्वत्थामा

मरगया। इस प्रकार युद्धको तुरही (बाजे) में घोषित (मशहूर) करादिया ॥ ११ ॥ तब द्रोणाचार्यजीने कहा कि यदि धर्मराज युधिष्ठिर कह देंगे, तो मैं अपने पुत्र अश्वत्थामाको मराहुआ समझूँगा। द्रोणाचार्यजीकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णने धर्मनन्दन युधिष्ठिरसे कहा ॥ १२ ॥

चौपाई।

जबहि द्रोण यह वचन सुनाये। तब हरि धर्मराज ढिग आये ॥
तब हि द्रोण भूपतिके आगे। कर उठायकै पूछन लागे ॥
सत्य वचन तुम सब दिन भाषेउ। हम दृढता तुम ऊपर राखेउ ॥
जूझे सुत तुम देख्यो नैना। हे नृप सत्य कहो यह बैना ॥
श्रीहरि कह्यो भूप कहि दीजे। अपने काज कहा नहिं कीजे॥
कही भूप सुनिये जगतारण। मिथ्या वचन कहहुँ केहि कारण॥
तब श्रीहरि अस कहा बखानी। केहि कारण तुम भारत ठानी॥
जबहि भूप पाँसा मन लाये। तब यह धर्म विचार न आये ॥
राजा द्रुपदसुता पटरानी। गहि कर केश सभा महँ आनी॥
कृष्ण वचन नृपके मन भाये। तब द्रोणहि याविधि समुझाये॥
अश्वत्थामा हत रण भयेऊ। कहि नरकी कुञ्जर कहि दयेऊ॥
आधे वचन द्रोण सुनिपाये। आधें महँ हरि शंख बजाये ॥
सुनिकै द्रोण सत्यकारि जानो। अपनो मरण हृदयमें आनो ॥

श्रीकृष्ण बोले—हे महाराज! अब आपभी उस अश्वत्थामाके मर जानेकी बातको संशय छोडकर कहदीजिये। क्योंकि हे युधिष्ठिर! यदि आप नहीं कहेंगे, तो यह द्रोणाचार्यजी सारे पांडवोंका नाश करडालेंगे ॥ १३ ॥ तब महाराज युधिष्ठिरने उन श्रीकृष्णजीकी आज्ञानुसार कहदिया कि अश्वत्थामा 'मरा नहीं मरा' इस तरह सची और झूँठी दोनों बातें युधिष्ठिरने कहीं ॥ १४ ॥ तब उन वीर द्रोणाचार्यने महाराज युधिष्ठिरके मुखकी बातें कानसे सुनतेही हाथसे तत्काल धनुष छोडदिया॥ १५ ॥ फिर उन्होंने

धर्मराज युधिष्ठिरके मुखसे दूसरी बार यह वचन सुने कि 'अश्वत्थामा निःसन्देह मरगया' वह चाहे नर हो वा हाथी हो ॥ १६ ॥ तब उन युधिष्ठिरकी भर्त्सना (निन्दा) करतेहुए द्रोणाचार्यजी कहनेलगे । द्रोणाचार्यजी बोले । हे राजन् ! आपने जो इस सत्यव्रतोंका सेवन किया ॥१७॥ सो यह आपने केवलमात्र गुरु ब्राह्मण और वृद्धका नाश करनेके लियेही धारण कररक्खाहै, अत एव जिस जगह कुयोनिवाला हो, पण्डितजनोंको उसका विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥ जिस व्यक्तिकी महतारी दुष्टा हुआ-करती है, उसके उदरसे जो बेटा पैदा होता है वह मिथ्यावादी (झूँठ बोलनेवाला) हुआ करता है और महतारी मदसे विह्वल होकर जो काम किया करती है ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र ! उसके कामको बेटा भलीभाँति प्रकाशित (उजागर) किया करता है । जिस व्यक्तिके दादाने कुमारीसे जन्म लिया है, और बाप जिसका गोलक है ॥ २० ॥ और फिर स्वयंही कुंडज है, वह भला मिथ्या बात क्यों नहीं कहेगा ? क्या दुष्टता नहीं जानता है ? हे धर्म ! कलियुगके बीचमें पृथ्वीतल दंभयुक्त होरहाहै ॥ २१ ॥ और आप सरखि महत् पुरुषोंके तेजद्वारा अधर्म समेत लोक प्रकाशित होते हैं, हे महाराज ! असत्यद्वारा मेरी मृत्यु समझकर आपने जिस लिये असत्यका सहारा लिया ॥ २२ ॥ हे राजेन्द्र ! हे धर्मनन्दन ! उस कारण आपभी विकल हो । इस तरह संग्राममें भाँति भाँतिके दोष कहते हुए द्रोणाचार्यजीको ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार अर्जुनने तरह तरहके बाणोंसे मारा।तब योगेश्वरोंके ईश्वर द्रोणाचार्यजीने अपने शरीरको नाश होताहुआ जानकर ॥ २४ ॥ हे राजेन्द्र ! ऊर्ध्वस्फोट करके कपालके द्वारसे प्राण तजदिये तब द्रोणाचार्यजीके मृत्यु पाजाने पर महाबलवान् धृष्टद्युम्नको ॥ २५ ॥ विधाताने द्रोणाचार्यजीके मारडालनेको रचना किया । इस लिये वह हाथमें तलवार लियेहुए पास आया और उस तलवारके द्वारा द्रोणाचार्यजीका मस्तक काटकर जिस तरहसे आयाथा, वैसेही चलागया ॥२६॥

मुखके अग्रभागमें तो चारों वेद हैं और करके अग्र भागमें बाणसमेत धनुष है द्रोणाचार्यजीका दोनों बातोंमें सम भाव था । शापसे और बाणसेभी ॥ २७ ॥ जब राजा दुर्योधन इस प्रकार अनेक जल्पना (बकवाद) कर-रहाथा इतनेमेंही भगवान् सूर्य अस्ताचलको पहुँचे । वहां अश्वत्थामाने क्रोध किया ॥ २८ ॥ प्रिय पिताकी मृत्यु होनेके कारण क्रोधित हो दुःसह (किसीके न सहनेयोग्य) और भयंकर नारायणास्त्रसे पांडवोंका वध कर-नेके निमित्त ॥ २९ ॥ जिस समय उस अस्त्रको अश्वत्थामाने छोडा तब श्रीकृष्णने कहा । हे अर्जुन ! हे अर्जुन ! हे महाबाहो ! आपभी शीघ्रतासे नारायण बाणको साधिये ॥ ३० ॥ और आदर सहित इन दोनों बाणोंको तरकसमें लेआइये।अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर उन्हींकी आज्ञानुसार काम किया ॥ ३१ ॥

अर्जुनास्त्रेण निर्विद्धो ह्यश्वत्थामाऽपलायत ।
तदस्त्राद्रक्षितो राजन्वंशाधारः परीक्षितः ॥
उत्तराजठरे गत्वा हरिणा लघुरूपिणा ॥ १ ॥

तदनन्तर अर्जुनके अस्त्रसे विद्ध होकर अश्वत्थामा मारागया । तब भग-वान् श्रीहरिने अंगुष्ठपर्वकी समान छोटरूपसे उत्तराके गर्भमें प्रवेश कर उस अस्त्रसे वंशाधार परीक्षितकी रक्षा करी ॥ ३२ ॥

दोहा—पांडवदल जय जय करत, जीति खडे मैदान ।
कौरवदलहि मलीन मन, ज्यों संध्याको भान ॥
पांडवके रक्षक सदा, भक्तवश्य भगवान ॥
द्रोणपर्वकी भाषा यह, निजमति कीन्ह बखान ॥

इति श्रीभारतसारे द्रोणपर्वणि मुरादाबादनिवासिकात्यायनगोत्रोत्पन्नपण्डित-श्रीक-न्हैया-लालमिश्रकृतभाषायां द्रोणाचार्यवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

इति श्रीभाषाभारतसारे द्रोणपर्व समाप्तम् ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णाय नमः ।

भारतसार-भाषा ।

कर्णपर्व ८.

सप्तषष्टितमोऽध्यायः ६७.

दोहा—नारायण नर शारदा, व्यास मुनिहि धरि ध्यान ।
कर्णपर्व शुभ पर्वकहँ, निजमति करत बखान ॥
जय यदुपति आनन्द घन, जय वृन्दावन ईश ।
कृपा करहु निज दासपहँ, जय जय जय जगदीश ॥
आनँद कन्द मुकुन्द हरि, प्रभु वृन्दावन चन्द ।
चरण शरण ली आनकर, काटहु मम भवफन्द ॥
तुमरी कृपा कटाक्षतें, सिद्ध होत सब काम ॥
जन मंगल पावें सदा, जपत आपको नाम ॥
श्रीराधावर साँवरे, नटवर मदन गोपाल ।
दीन कन्हैयालालके, काटहु सब जंजाल ॥

सप्तषष्टितमेऽध्याये गोसहस्रस्य पुत्रयोः ॥
युद्धे युद्धे महाश्लाघा सूर्यपुत्रस्य कथ्यते ॥ १ ॥

इस सडसठवें अध्यायमें गोसहस्र अर्थात् सूर्य और इन्द्रके पुत्रोंमें संग्रामक बीच रविनन्दन कर्णकी श्लाघा (सराहन) वर्णन कीजातीहै ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

अथाभिषेकं कर्णस्य चक्रे दुर्योधनो नृपः ।
नानाशस्त्रास्त्रकुशलं शल्यं कृत्वा सुसारथिम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! तदनन्तर राजा दुर्योधनने भाँति भाँतिके अस्त्र शस्त्रोंमें प्रवीण शल्यको सारथी बनाकर (सेनापतिके पदमें) कर्णको तिलक किया ॥ १ ॥ तब कर्णने रथपर सवार हो युद्धस्थलमें पहुँचकर गर्जना करी । इस तरह उस कर्णको आयाहुआ देखकर श्रीकृष्णने पार्थ (अर्जुन) से कहा ॥२॥ कि हे अर्जुन ! आप अनेक रथोंसे युक्त भाँति भाँतिके अस्त्रशस्त्रोंसे सुशोभित बडे शरीरवाले और महाशूर, रथमें बैठेहुए इस कर्णको देखिये ॥ ३ ॥ उधर शल्यभी कर्णसे बोले—हे कर्ण ! श्रीकृष्णद्वारा शोभायमान आप इस पवित्र रथको देखिये; जिसकी ध्वजाके अग्रभागमें वैरीको अत्यन्त भय उपजानेवाले कपीन्द्र श्रीहनुमान्‌जी महाराज अवस्थान कररहे हैं ॥ ४ ॥ और यह अर्जुन भी वैरियोंसे नहीं रुकसकते हैं अर्थात् कोई वैरी इनको निवारण नहीं करसकता है । मेरी इस बातको आप सत्यही सत्य समझिये । तब कर्णने कहा कि ध्वजामें श्रीमहादेवजीके पुत्र साक्षात् हनुमानजी विराजमान हैं ॥ ५ ॥ और रथके अग्रभागमें (सारथीकी जगह) साक्षात् नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज बैठेहुए हैं, तथा स्वयं अर्जुन भी नरस्वरूप हैं, अत एव विष्णुही हैं इस बातमें कुछभी संशय नहीं जानना ॥ ६ ॥ इसी कारण इन अर्जुनको कोई निवारण नहीं करसकता यह कुछ अचंभा नहीं है, इस भांति सत्यसागर और उत्तम संग्राम करनेवाले अर्जुनके निकट मैं जाऊँगा ॥७॥ अत एव हे राजेन्द्र शल्य ! अब आप अर्जुनकी ओर मेरे रथको चलाइये । यह सुनकर महात्मा शल्यने कर्णके रथको रणभूमिमें पहुँचायदिया ॥ ८ ॥

चौपाई ।

शल्य सारथी रथहि चलावा । नन्दि घोष सन्मुख पहुँचावा ॥

अर्जुन कर्ण जुरे हैं कैसे । रघुपति सौं रावण रण जैसे ॥
इकतें एक महा बलधारी । वर्ण शूर दोऊ धनु धारी ॥
कर्ण पांच शर भालुक लीन्हे । लघु सन्धान किरीटन कीन्हे ॥
अर्जुन कर्ण करत रण करणी । रुंड मुंड मंड्यो सब धरणी ॥
अर्जुन बाण कोपि परिहारयो । सहस पैग पाछे रथ टारयो ॥
देखि कर्ण तब शर सन्धाना । मारयो नन्दि घोष ताकि बाना ॥
पैग तीन रथ पाछे टारयो । साधु कर्ण यदुनाथ पुकारयो ॥
अर्जुन कह्यो सुनहु जगतारण । साधु वचन भाष्यो केहिकारण॥
सहस पैग हम रथहि हटायो । तीन पैग मेरो रथ आयो ॥
तब श्रीपति बोले यह वानी । अर्जुन तुम यह भेद न जानी ॥
नन्दिघोष रथ मेरु समाना । ध्वज पर परम भार हनुमाना ॥

दोहा-महाविश्वंभर रूप धरि, हाँकत हैं यह रत्थ ।
टारो रविसुत बाणतें, महावीर समरत्थ ॥

तब धनुषधारी अर्जुनने संग्राम करनेकी कामनासे कर्णके रथको आया-हुआ देखकर अपना शरजाल (बाणसमूह) सन्धान किया ॥ ९ ॥ तब कर्णने अर्जुनके चलायेहुए उन बाणोंको अपने बाणोंसे काटडाला और पीछे श्रीकृष्णसमेत अर्जुनको अपने बाणोंद्वारा व्यथित करदिया ॥ १० ॥ तद-नन्तर कर्णने भाँति भाँतिके बाणोंसे श्रीकृष्ण, अर्जुन और हनुमानूजीको हनन किया तथा उनके आतेहुए बाणोंको काटकर अर्जुनकी सेनाको मारने लगा ॥ ११ ॥ कर्णको इसतरह फुरतीसे मार करतेहुए देखकर क्रोधित अर्जुनने सोचा कि, इस कर्णके रथको रणभूमिसे बाहर निकालदेना चाहिये ॥ १२ ॥ इस प्रकार बुद्धि (निश्चय) करके कर्णके रथको अर्जुनके वेगसे हनन किया तब उन अर्जुनके बाणोंद्वारा हत घोडे, रथी (रथारोही) और सारथी समेत ॥ १३ ॥ दो पताका समेत और सब ओरसे दृढ (मजबूत) होनेके कारण वह रथ नहीं टूटसका, किन्तु बाणोंसे हत होकर बारह कोशकी दूरीपर अवश्य चलागया ॥ १४ ॥ तब फिर कर्णने शीघ्रता सहित आनकर भाँति भाँतिके अनेक

बाणोंद्वारा वहाँ श्रीकृष्णसमेत अर्जुनके रथको हनन किया ॥ १५ ॥ तब वहाँ इस प्रकार कर्णके हनन करनेपर हनुमान्, घोडे तथा अनेक अस्त्रशस्त्रोंके सामान और महाजनोंके भारी भारवाला वह रथ तीन पग पीछे हटगया ॥ १६ ॥ ऐसा होनेपर आकाशमें टिकेहुए देवताओंने तत्काल महावीर कर्णके ऊपर फूलोंकी वर्षा करी तब अर्जुनने बडे अचंभेमें होकर कहा ॥ १७ ॥ अर्जुन बोले—हे केशव ! हे देव ! मेरे हनन करनेपर कर्णका रथ तीन योजन (बारहकोश) पीछे हटगया और मेरे रथको उस कर्णने केवल तीनही पग हटाया ॥ १८ ॥ तब फिर हे प्रभो ! देवताओंने कर्णपर फूलोंकी वर्षा क्यों करी ? श्रीकृष्णने कहा—हे पार्थ ! कर्णने यह बडाही भारी महान् काम कियाहै ॥ १९ ॥ हे अर्जुन ! आप मेरे मुखको देखिये और वृथा विषाद (खेद) मत कीजिये । यह कहकर केशवमूर्तिने वहीं अपने मुँहको फैलाया ॥ २० ॥ उसमें अर्जुनने संपूर्ण चराचरको देखा सात द्वीप और अष्ट पर्वतयुक्त विश्व ॥ २१ ॥ सात समुद्रयुक्त तथा समस्त वनस्पतियोंसे आकुल इस प्रकार विश्व संसारका अर्जुनने वहाँ दर्शन किया । तब वह 'हे नाथ ! रक्षा कीजिये !' इस प्रकार कहनेलगे ॥ २२ ॥ इस प्रकार अर्जुनको अचंभेमें युक्त देखकर श्रीहरिने कहा—हे पार्थ ! इस वीर कर्णको आप नहीं जीतसके ॥ २३ ॥ अत एव इसके साथ आप अत्यन्त दृढ (पक्के) होकर संग्राम कीजिये । तब अर्जुन कर्णके संग बहुत दृढ और सावधान होकर युद्ध करनेलगे ॥ २४ ॥ उन्होंने अनगिन्त बाणोंके मारे कर्णके रथको ढकदिया । उस काल वह अर्जुनके बाणोंका समूह सूईसे भी अभेद्य हुआ ॥ २५ ॥ तब क्रोध पूर्वक कर्णने आग्निअस्त्रको अभिमन्त्रित करके अर्जुनके उस बाण समूहको जलाय सिंहनाद किया अर्थात् शेरकी तरह दहाडने लगा ॥ २६ ॥ तब वह अग्नि महान् शब्द करता हुआ पांडवोंकी सेनामें फैलगया और उसने रथ, घोडे, ऊंट तथा वीरोंके कपडे और बाल ॥ २७ ॥ चामर पताका और छत्र इत्यादि व रथ चक्रकी नेमि तथा युद्धमें लडते हुए वीरोंके बखतर इन सबकोही अग्निने जलाडाला तब अन्यान्य वीरोंने उन

तपते और दग्ध होतेहुए अनेक योधाओंको त्यागदिया ॥ २८ ॥ तब महाबलवान् अर्जुनने कर्णके उस अग्निअस्त्रको देखकर अपना वारुणास्त्र चलाया, जो कि कौरवोंके दलमें फैलगया ॥ २९ ॥ फिर जब वारुणास्त्र (जलअस्त्र)कौरवोंकी सेनामें प्रवृत्त होगया तब उसके द्वारा अग्नि अस्त्र तत्काल लय होगया और जलसमूहसे सहस्रतः सिंचित होकर, हाथी घोडे, रथ और पैदल रथस्थलसे दूर चलेगये ॥ ३० ॥ तब तो राजा कर्णने इस प्रकार उस बाणके घातरूपी जलमें अपनी सेनाको डूबाहुआ निहारकर पवनास्त्र छोडदिया और इस पवनास्त्रने जलास्त्रको नष्ट करडाला ॥ ३१ ॥ तदनन्तर हे नराधिप ! उस अस्त्रके पांडवोंकी सेनामें फैलजानेपर उसके द्वारा हाथी, रथ, घोडे और पैदल रुईकी तरह उडकर आकाशमें चलेगये ॥३२॥ पवनास्त्रके द्वारा तितर बितरहुए मत्त हाथी गगनमण्डलमें पहुँचकर वहाँ वे उत्तम जलभरे मेघकी समान दिखाई देनेलगे ॥ ३३ ॥ तब अर्जुनने उस पवनास्त्रके द्वारा अपनी सारी सेनाको पीडित देखकर महारौद्र (भयंकर) पर्वतास्त्र चलाया उसके द्वारा वह दारुण पवन सब ओरको विलीन होगया ॥ ३४ ॥ तब राजा कर्णने पर्वतोंद्वारा व्याप्त कौरव दलको पीडित देखकर व्याकुलतासे ऐन्द्रास्त्रको धारण किया ॥ ३५ ॥ फिर पहाडोंको तोड फोड डालनेके निमित्त वह अस्त्र पांडवोंकी सेनामें छोडदिया उस ऐन्द्रास्त्रके गिरनेपर सारे पर्वत तत्काल लय (नष्ट) होगये ॥ ३६ ॥ तब अर्जुनने अपने पांच बाणोंसे उस ऐन्द्रास्त्रके दश टुकडे करडाले । इसके पीछे महाबल पराक्रमशाली अर्जुनने कर्णके ॥ ३७ ॥ मुकुटसमेत छत्र और पताकाको तत्काल काटडाला । तब महावीर कर्णनेभी शीघ्रता-सहित अर्जुनका छत्र काटडालनेके निमित्त ॥ ३८ ॥ अर्द्धचन्द्राकृति बाण चलाया तब अर्जुनने दो बाणोंसे उसके तीन टुकडे काटकर करदिये । अभी अर्जुन उस अर्द्धचन्द्रबाणको काटही रहेथे कि इसके प्रथमही कर्णने पांच बाणोंसे उनकी छाती वींधडाली ॥ ३९ ॥ उस छातीके वींधनेसे अर्जुनको मूर्च्छा आगई । तथापि महाबली धनञ्जयने तुरन्तही उठकर अपने बाणोंसे

उस कर्णकी छातीभी वींधडाली ॥४०॥ फिर अर्जुनने फुरतीसे चार बाणोंद्वारा चार घोडोंको हनन किया एक बाणद्वारा रथ वींधडाला और पीछे एक बाणद्वारा सारथीपर प्रहार किया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर महाबलवान् अर्जुन एक बाणसे कर्णकी छातीमें आघात करके गर्जना करनेलगे और गर्जते गर्जते एक बाणकेद्वारा कर्णका धनुषभी काटडाला ॥ ४२ ॥ फिर अर्जुनने अपने धनुषकी प्रत्यंचा अर्थात् धनुषकी डोरीके टंकारका बडा भारी शब्द किया। इस प्रकार सूर्य और इन्द्रके पुत्रोंका परस्पर बडाही भयंकर संग्राम हुआ ॥४३॥ हे राजन् ! तब उस काल भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार भूमी कर्णके रथ चक्र (रथके पहिये) निगलगई फिर उसने उन पहियोंको नहीं छोडा ॥ ४४ ॥

चौपाई ।

कूदि कर्ण रथके ढिग आये । गहि चाका तेहि चहत उठाये ॥
कर्ण वीर कीन्हों बल भारीं । अर्जुनसों भाष्यो वनवारी ॥
मारहु बाण गहरु जनि लावहु । कर्ण शीश अब काटि गिरावहु॥
पारथ कही उचित नाहिं होई । विना अस्त्र नाहिं मारहि कोई ॥
यह अधर्म करिये केहि कारण । यह सुनि कह्यो जगतके तारण ॥
चक्रव्यूह अभिमन्यू मारे । ता दिन कर्ण न धर्म विचारे ॥
आज धर्म तुम सोचहु पारथ । तो भारत रण कियो अकारथ ॥
कुन्ती दिये बाण सो लीजे । अर्जुन कर्ण वधन तेहि कीजे ॥
मारहु तुरत विलंब न लावहु । बहुरि न ऐसो अवसर पावहु ॥
रथ उठाय करिहै धनु धारन । तब अर्जुन तुम सकहु न मारन॥
सुनि अर्जुन कीन्हेउ सन्धाना । श्रवण प्रयन्त शरासन ताना ॥

दोहा—दीन्ही हाँक प्रचारिके, चले वज्रसम बान ।
धन्य धन्य कहनेलगे, रथपर श्रीभगवान ॥

तब पृथ्वीमें रथके पाहिये गडजानेपर कर्णने अहंकार (घमंड) से कहा

कर्ण बोला—हे पार्थ ! पार्थ ! हे लम्बी भुजावाले ! एक क्षणभरके लिये आप ठहर जाईये ॥ ४५ ॥ जब तक मैं पृथ्वीसे अपने रथके पहिये निकालूं । अर्जुनको वहां इस प्रकार निवारण करके फिर कर्ण रथके पहिये निकालनेमें लगगया ॥ ४६ ॥ तब फिर श्रीकृष्णने उसी अवसरमें अर्जुनको छलतेहुए कहा—श्रीकृष्ण बोले कि, जबतक इसके रथके पहिये भूमिमें गडरहेहैं, तबतकही इसकी निगाह नीचीहै ॥४७॥ और उसी समय पर्यन्त हे कुन्तीपुत्र ! जयके अवसरका मलिया भेट करनेवाले इस कर्णको मारडालिये । अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर शतशः बाणोंद्वारा ॥ ४८ ॥ अधोमुख अर्थात् नीचेको मुँह किये शूरवीर और रथके पहियोंके निकालतेहुए कर्णको हनन किया । तब उस काल कर्ण अपने मनमें सोचनेलगा कि यह अर्जुन श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार मेरे नाशकी कामनासे मुझको माररहाहै ॥ ४९ ॥ इस प्रकार जानकर कर्णने श्रीकृष्णसे कहा । कर्ण बोला—भो भो महाबाहु कृष्ण ! मैं मरनेसे जराभी नहीं डरताहूं ॥ ५० ॥ क्योंकि यदि रणमें जीतगया तो लक्ष्मी प्राप्त होगी और जो हारगया तो देवाङ्गना मिलेगी, तब फिर युद्धमें इस क्षणभंगुर कायाके नष्ट होजानेकी क्या चिन्ता है ? ॥ ५१ ॥

एवं चाधर्मतो युद्धं दृष्ट्वा क्रोधपरिप्लुतः ।
कश्चित्सर्पो द्विपात्कर्णं संप्राप्येदं वचोऽवदत् ॥ ५२ ॥

इस प्रकार अधर्म युद्ध देखकर कर्णके निकट क्रोधमें सनाहुआ कोई सर्प आन कर इसतरह कहनेलगा ॥ ५२ ॥

इति श्रीभारतसारे कर्णपर्वणि भाषायां कर्णार्जुनयुद्धं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥६७॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः ६८.

अष्टषष्टितमेऽध्याये नागराजसहायतः ।
कर्णस्य गरुडास्त्रिश्च पातः कर्णस्य कथ्यते ॥ १ ॥

इस अडसठवें अध्यायमें नागराज कर्णकी सहायता करना, गरुडजीका प्राप्त होना और फिर कर्णका (रणस्थलमें) पतन होना यह कथा कही जातीहै ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

पूर्वं कर्णसखा सर्पो दुर्योधनगृहे धृतः ।
मुक्तः कर्णेन पाशाद्धै स सर्पो वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! यह सर्प पूर्वमें कर्णका मित्र था, जिसको कर्णने दुर्योधनके घर धारण करके फिर पाश (बन्धन) से छोडदिया (इस समय) वही सर्प कहने लगा ॥ १ ॥ पुण्डरीक बोला, भो भो लम्बीभुजावाले कर्ण ! आपकी समान पृथ्वीतलपर दूसरा कोई नहीं है। अत एव यदि आप छेदन करने योग्य और अभिमंत्रित बाण चलावें॥ २ ॥ तो उस बाणपर मुझको बैठालकर अर्जुनपर चलाइये ! उसकी यह बात सुनकर कर्णने वैसाही काम किया ॥ ३ ॥ अर्थात् नागको बैठालकर बाण छोडा और उसने अर्जुनके अनेक अस्त्र शस्त्रोंसे ताडित होकरभी श्रीकृष्णार्जुनके शरीरको भेदकर उनके अनेक मर्मस्थलोंमें व्यथा पहुँचाई ॥ ४ ॥ तब धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिरने कृष्णार्जुनको चेष्टाहीन समझकर सावधानीसे विचार किया और फिर दुःखित तथा विह्वलता (घबराहट) के मारे अज्ञानसे रोतेहुए मूढकी समान होगये ॥ ५ ॥ हे जनमेजय ! उसी समय देवर्षि श्रीनारदजी रणमें आपहुँचे और हँसते हँसते धर्मराज युधिष्ठिरसे बोले कि हे राजन् ! आप वृथा क्यों रोरहेहैं ? ॥ ६ ॥ यह अर्जुन और श्रीकृष्ण तो साक्षात् नर नारायण हैं, इनकी मृत्यु हैही नहीं । अत एव आप केशवमूर्त्ति श्रीहरिके वाहन पक्षिराज गरुडजीको स्मरण कीजिये ॥ ७ ॥ देवर्षि नारदजीके इस प्रकार कहनेपर उन्होंने गरुडजीको स्मरण किया और धर्मराज युधिष्ठिरके स्मरण करनेसेभी प्रथमही गरुडजी हाँपते हाँपते तथा साँस छोडते छोडते वहाँ आपहुँचे ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उस काल उन गरुडजीके पंखोंकी हवासे कौरव और पांडव दोनों दलोंकी सेना वारंवार चिल्ली पुकार मचाती

हुई आकाशको जानेलगी ॥ ९ ॥ हे महाराज जनमेजय ! बहुतसे हाथी घोडे, रथ और पैदल नीचेको मुँह किये जिस तरह प्रलयकालमें तिनकोंकी दशा होजाती है उसी भाँति सब व्याकुल होकर भ्रमने लगे ॥ १० ॥ फिर जहाँ केशव और अर्जुन थे, उसी स्थानमें गरुडजी गये तब सब साँप बिल-बिलमें भागगये ॥ ११ ॥ तब तो उन गरुडजीने उन भागते हुए अनेक सर्पोंका नाश किया और फिर कृष्णार्जुनका विषभी चूँसलिया । तब श्रीकृष्ण और अर्जुन नागपाशसे छूटकर उठ खडे हुए ॥ १२ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर गरुडजीने उन भगवान् वासुदेव प्रभु श्रीकृष्णकी तीन प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करके उनके पैरोंमें मस्तक झुकातेहुए यह कहा ॥ १३ ॥ गरुडजी बोले—हे कृष्ण ! कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! अब आप मुझको आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ ! आपकी आज्ञासे मैं कौरवोंकी सारी सेनाको भक्षण कर जाऊँगा ॥१४॥ अथवा विभो ! उस सेनाको अपने पंखोंके आघातसे समुद्रमें गिरा-दूँगा । गरुडजीकी यह बात सुनकर विभु भगवान् श्रीकृष्णने अपनी आँखकी सैनसे ॥ १५ ॥ अपनी बातका पालन करते और अन्यान्य आदमियोंके सम्मुख जनातेहुए उनको निवारण (निषेध) किया अर्थात् उनके इशारेका अभिप्राय यह है कि इस कौरव और पांडवोंके समरमें मैं संग्राम नहीं करूँगा ॥ १६ ॥ क्योंकि हे सुपर्ण ! आपभी मेरे अंग हैं, अत एव मेरी आज्ञासे आप चले जाइये । तब फिर भगवान्की इस आज्ञाको मस्तक पर चढाकर गरुडजी चलेगये ॥ १७ ॥ तदनन्तर कृष्णार्जुन रथपर सवार होकर जैसेही युद्धके लिये निकले कि तब तक वीर कर्णनेभी पृथ्वीसे अपने रथके पहिये निकाललिये ॥ १८ ॥ और फिर वहभी रथपर सवार होकर युद्धके निमित्त तैयार होगया और तब हे राजेन्द्र ! सब राजाओंके सुनतेहुए अर्जुनसे कह-नेलगा ॥ १९ ॥ कर्ण बोला—हे अर्जुन ! हे महाबाहो ! आपका बल केवल कृष्णही हैं और देहका बल नहीं है जिस समय नागसे विद्ध होकर आप दोनों जने भूमिपर पडेहुए थे ॥ २० ॥ उस समय हे वीर ! मैंने धर्मके डरसे आपको नहीं मारा इसमें कुछभी सन्देह मत समझो । किन्तु हे वीर ! जब

मेरे रथके पहिये भूमिमें गडगयेथे तब आप एक क्षणभरको भी ॥ २१ ॥ नहीं ठहरे । अतएव हे अर्जुन ! आपका कैसा पौरुष (पराक्रम) है? कर्णकी यह बात सुनकर चुपचाप रह दृढ बाण ॥ २२ ॥ कोप और लाजयुक्त होकर श्रीकृष्णके देखते देखते अर्जुनने छोडे तब महावीर कर्णनेभी हँसते हँसते अर्द्ध-चन्द्र महाबाण ॥ २३ ॥ अर्जुनका शिर काट डालनेके लिये श्रीहरिके देखते हुए ही छोडा और तब वह बाण अर्जुनके बाणोंद्वारा बीचसे कटजानेपरभी अर्जुनके गलेके धोरे पहुँचही तो गया ॥ २४ ॥ तब सारी बातोंके ज्ञाता श्रीकृष्णने उपाय किया, अन्य बाणको प्राप्त होनेवाले ऐसे बाणको देखकर उस दृढताद्वारा आये हुए बाणको अवलोकन कर तथा कर्ण-केभी फलको देखकर ॥ २५ ॥ अपने भक्तोंका पालन करनेवाले भग-वान् श्रीकृष्ण शीघ्रता सहित पैरोंके आघात—द्वारा रथको तालवृक्ष-मात्र भूमिमें लेआये ॥ २६ ॥ तब वह बाण अर्जुनका मुकुट काटताहुआ कर्णके पास चलागया। इस प्रकार युद्ध करते करते कर्णके रथके पहियोंको ॥ २७ ॥ हे राजन् ! पृथ्वी फिर निगलगई कि जैसे प्रथम निगल चुकी थी, और तब श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार अर्जुनने अत्यन्त दृढ नाशक बाणों ॥ २८ ॥ द्वारा कर्णको मारना आरंभ किया । फिर उसी तरह पहिये निकालनेके लिये नीचेको मुँह करके पृथ्वीपर खडे हुए, फिर 'हे पार्थ ! आप क्षणभरको ठहरजाइये ' इस प्रकार ॥ २९ ॥ अर्जुनसे कहता घबरागया । किन्तु अर्जुन उस रविनन्दन कर्णको मारतेही रहे रुके नहीं, तब कर्णभी गर्जना करताहुआ थकगया ॥ ३० ॥ और फिर भूमिपर खडा होकर अनेक प्रकारके बाण छोडताहुआ संग्राम करनेलगा तथापि वह अर्जुनके दृढ और घोर बाणोंसे मर्ममें अत्यन्तही पीडित हुआ ॥ ३१ ॥ तब उस महावीरने विह्वल होनेपरभी अनेक बाणोंके जाल छोडे । इस प्रकार सूर्य-नन्दन कर्णको भाँति भाँतिके अस्त्रोंसे अर्जुनने निपात किया ॥ ३२ ॥ भूमिने पहियोंको निगललिया, बाणोंको मइया कुन्तीने हरण करालिया और बूढे ब्राह्मणका रूप बनाकर देवराज इन्द्रने कवच (बखतर) लेलिया ॥ ३३ ॥

जमदग्निनन्दन गुरु परशुरामजीने उन रविनन्दन कर्णको शाप दिया था और भूमिका भारी भार उतारनेके निमित्त भगवान् श्रीकृष्णने छल किया ॥ ३४ ॥ और फिर रणाङ्गणमें महावीर अर्जुनसरीखे प्रतिस्पर्द्धी प्राप्त हुए, अत एव हे राजन् ! नाशके इन छः कठिन कारणोंके होते हुए बिचारा वह कर्ण वहाँ क्या करता ? ॥ ३५ ॥

चौपाई।

लाग्यो बाण कर्णके कैसे । इन्द्र वज्र पर्वत पर जैसे ॥
काटो शीश परा तब धरनी । जगमें रही सदा यह करनी ॥
कृष्ण आप जय शंख बजायो । पाण्डव सैन्य देखि सुख पायो ॥
हर्षि इन्द्र तब आज्ञा दीन्हो । पुष्पवृष्टि सब देवन कीन्हो ॥
जयजय शब्द गगनमहँ बोल्यो । चढि विमान आनन्दित डोल्यो ॥
जूझेउ कर्ण जगत् यश पायो । निसरो रथ महि ऊपर आयो ॥
छुटो चक्र धरणीते जबही । फेर्यो शल्य हाँकि रथ तबही ॥
सूनो रथ दुर्योधन देखा । जूझेऊ कर्ण सत्यकरि लेखा ॥
संध्या जानि कियो तब गवना । दोऊ सेना आई तब भवना ॥

गोसहस्रसुतेनाऽसौ गोसहस्रसुतो हतः ।
निश्चितं गोविहीनेन गौश्च हस्ताद्विनिर्गता ॥ ३६ ॥

गोसहस्र (इन्द्र) के बेटे अर्जुनने गोसहस्र (सूर्य) के पुत्र कर्णका वध किया। तब उस काल गोविहीन महाराज धृतराष्ट्रने अपने मनमें निश्चित रूपसे समझलिया कि आज गौ (भूमि) हाथसे निकलगई ॥ ३६ ॥

इति श्रीभारतसारेकर्णपर्वणि भाषायां कर्णवधो नामाष्टषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ६९.

एकोनसप्ततितमे दातृत्वं सूर्यजस्य च ।
वराप्तिः कृष्णहस्तेन देहदग्धत्वमुच्यते ॥ १ ॥

इस उनहत्तरवें अध्यायमें रविनन्दन कर्णका दातापन, कि उनको वर

मिलना और भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे उनके शरीरका जलना यह कथा कहीजाती है ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

अहंकारगतः पार्थो दृष्ट्वा कर्णं निपातितम् ।
सूर्यपुत्रो महावीरो मयैकेन निपातितः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! इसके पीछे कर्णको मृतक देखकर अर्जुनके मनमें यह घमंड हुआ कि, महाबलवान् रविनन्दन कर्णको अकेले मैंनेही वधा है ॥ १ ॥ तब अज्ञानी आदमीके समान अर्जुनकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णने शिर हिलाया और हँसते हँसते अर्जुनसे कहा ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे मित्र ! यह मूर्ख आदमीकी तरह बुद्धि आपमें इस समय कैसे प्रगट हुई कि सूर्यनन्दन कर्णको अकेले मैंनेही रणमें वधा ? ॥ ३ ॥ यदि आप ऐसी बुद्धि करतेहैं तो पृथ्वीतलपर आपकी समान जड कोई नहीं है । यह आपका अभिमान बहुत बुरा है कि ' सूर्यपुत्र कर्णको मैंने मारा ' ॥ ४ ॥ हे अर्जुन ! कर्णके नाश करनेवालोंका आपसे वर्णन करताहूँ । अर्थात् आप, मैं, माता कुन्ती, पृथ्वी, वासव (इन्द्र) और जमदग्निनन्दन श्रीपरशुरामजी, इन छः कारणोंसे (कर्ण) धराशायी हुआहै । इस समय अपना यह दूसरा जन्म इस कर्णके साधनार्थही है ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ हे पांडव ! प्रथम जन्ममें यह महावीर कर्ण हजारकवचवाला था, वहाँ मैंने धर्मरूपसे भाँति भाँतिकी तपस्या करके इसको वध किया ॥ ७ ॥ और यह वीर इस जन्ममेंभी अपनेसे कष्ट मृत्युको प्राप्त हुआहै । अपने तथा पराये दोष और गुणके ॥ ८ ॥ अन्तरको जो नहीं जाना करताहै, हे अर्जुन ! उसको पुरुषोंमें नीच जानना चाहिये। इस प्रकार उन दोनोंकी बात चीत होरहीथी कि उसी समय दुर्योधन कर्णके पास पहुँचा ॥ ९ ॥ और चिन्ता करते करते कहनेलगा कि, हे मानद ! हाय ! अब आपके विना मैंभी मरना चाहताहूँ । हे महाबाहो ! आप कैसे शयन कररहेहैं ? अब उठ खडे हूजिये

और आदर सहित संग्राम कीजिये ॥ १० ॥ हे महावीर ! आप क्या मेरे पालनका काम करतेहुए भग्नहुएहैं ? हे वीर ! जो कि आपने मुझको छोड-दिया है, इस कारण मुझको पांडव (अवश्य) मारडालेंगे ॥ ११ ॥ अत एव हे बन्धु ! आप उठिये और मुझ अपने सखाका पालन कीजिये। क्योंकि जिस प्रकार वेदको नहीं जाननेवाले ब्राह्मण, जिस प्रकार मदहीन हाथी और जैसे जलहीन नदी होतीहै, उसी तरह मेरी सेनाभी आप (कर्ण) के विना हीन होरही ॥ १२ ॥ जिस प्रकार पतिहीन नारी और चन्द्रहीन रात्रि दग्ध हुआ करतीहै, उसी प्रकार रविनन्दन कर्णके विना मेरी सेनाभी दग्ध होरही है ॥ १३ ॥ जिस प्रकार चन्द्रमाके विना नक्षत्र और ग्रहगण शोभा नहीं पाता उसीप्रकार मरगये कर्ण वीर जिसमें,ऐसी धृतराष्ट्रकी सेनाका यह शब्द वीर्यहीन और गर्वरहित हुआ रविनन्दन कर्णके विना शोभा नहीं पाताभया ॥ १४ ॥ जिस तरह पथ्यहीन रोगी, वर्णहीन जैसे कुल और जिस प्रकार श्वासहीन देहकी दशा होतीहै, उसीप्रकार कर्णके विना मेरी सेनाकी दशा होरहीहै ॥ १५ ॥

चौपाई ।

हा हा मित्र परम सुखदायक । महा युद्ध करवेके लायक ॥
तुम पायेउ निज क्षत्री धर्मा । यह सब दोष हमारे कर्मा ॥
बलसों अर्जुन सके न मारन। छल करि वधे जगतके तारण॥
अब काको सेनापति कीजे । जाके बल भारत यश लीजे ॥
इहि विधि करत विलापकलापा।आयउभवनभरयोसन्तापा॥

हे जनमेजय ! कर्णके लिये इस भाँति नानावाक्योंसे विलापकलाप करता युद्धकी स्थिरता होनेके कारण दुर्योधन अपने घरको चलागया ॥ ॥ १६ ॥ उधर जिस समय अकेला कर्ण श्वांस छोडताहुआ रणांगनमें गिर-गया तब भगवान् श्रीकृष्णने कुछेक हँसकर अर्जुनसे कहा ॥ ॥ १७ ॥ हे पार्थ ! आप शिष्य बनकर मेरे साथ चलिये कि जिससे मैं कर्णके धर्मकी परीक्षा करके उसको वर दूं ॥ १८ ॥ क्योंकि वह महान् भक्त, महान्

वीर, सत्यवादी, पवित्र रहनेवाला, जितेन्द्रिय और रणमें शूर है, इस कारण वह सदा शुद्ध कर्ण मुझको बहुतही प्यारा है ॥ १९ ॥ इस प्रकार वहाँ कहकर भगवान् श्रीहरिने बूढे ब्राह्मणका रूप बनाया और अर्जुनरूपी एक चेलेके साथ जडखडाते पैरोंसे कर्णके निकट जा पहुँचे ॥ २० ॥ वहाँ जाकर ब्राह्मणने कहा–हे कर्ण ! हे कर्ण ! हे महावीर ! आप पृथ्वीतलपर निरन्तर दान कियाकरतेहैं, आपने भगवान् विष्णुके प्रसादसे अभिलषित वर पायेहैं ॥ २१ ॥ मैं मँगता अत्यन्त पीडित शरीर और निर्धन मनसे आपके सम्मुख आया हूँ, अत एव आप सौवर्षपर्यन्त जीवित रहें ॥ २२ ॥ आपका मंगल हो आपके यहाँ लक्ष्मी अचल रहे । आपकी कीर्त्ति निरन्तर वर्त्तमान रहे । आपके रोग नष्ट होजायँ अर्थात् शरीर आरोग्य रहे । और आपके वंशमें भगवान् श्रीहरिकी अखंड भक्ति होवे ॥ २३ ॥ हे कर्ण ! आपके स्वर्गमें चलेजानेपर लक्ष्मी तो गोविन्दके पास चलीजायगी, और पृथ्वी महाराज युधिष्ठिरपर जायगी, किन्तु याचकलोग कहाँ जाँयगे ? ॥ २४ ॥ इधर मेरी कन्या विवाह करदेनेके लायक होचुकीहै, पर मेरे पास धन बिलकुल नहीं है, इसलिये मैं आपसे बहुतसा सुवर्ण माँगनेको आपके पास आयाहूँ॥ ॥ २५॥ हे महाराज ! पक्षीगणोंके वनमें निवास करना उत्तम है और पहाडकी चोटीपर वास करनाभी बुरा नहीं है, तथा अपुत्रिणी (पुत्रहीन) महतारीभी भली है, किन्तु याचकके वंशमें जन्मलेना अच्छा नहीं ॥ २६ ॥ देखिये तिनकोंसे हलकी रुई होतीहै, किन्तु याचक उस रुईसेभी हलका होताहै, सो मुझको वायुने किस लिये नहीं उडाया (इसीडरसे कि) कहीं मुझसेभी कुछ न माँग बैठे ? ॥ २७ ॥ मरणकालमें पुरुषके गात्रभंग, दीनस्वर, पसीना और गद्गद कंठका होना इत्यादि जितने चिह्न होते हैं, वेही सारे चिह्न याचकके शरीरमें हुआ करते हैं ॥ २८ ॥ पिनाकपति श्रीमहादेवजीने पंचशर (कामदेव) को जलाकर बहुत अनुचित काम किया और सुन्दर द्रुमलताओंसे मण्डित खांडववनको महाबलवान् अर्जुनने जलाडाला तथा रावणसे पालीजाती हुई सुन्दर लंकापुरीको पवनकुमार श्रीहनुमान्‌जीने

फूँकदिया, किन्तु संसारके बीच ऐसे जनोंको तापदायक दरिद्रको (आज-तक) किसीनेभी नहीं जलाया ? ॥ २९ ॥ उसकी इस प्रकार बात सुनकर कर्णने उस ब्राह्मणसे कहा कि मैं इस अवस्थाको प्राप्त होकर पृथ्वीतलपर पडाहुआहूँ ॥ ३० ॥ इस समय यहाँ मेरे पास कुछभी धन नहीं है, अतएव हे स्वामिन् ! आप कृपा करके मेरी भार्याके पास चलेजाइये ॥ ३१ ॥ मैं आपको अभिज्ञान देताहूँ कि वह आपको धन प्रदान करेगी । कर्णकी यह बात सुनकर उस ब्राह्मणने कहा ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण बोला—हे कर्ण ! बादल समयपरही पृथ्वीपर पानी बरसाया करते हैं, वृक्ष समयपरही फलाकरते हैं, भूमि समयपरही फलती (नाज उपजाती) है और गायेंभी समयपरही दुही-जायाकरती हैं ॥ ३३ ॥ यह सब समयपरही फलते हैं, किन्तु आप (कर्ण) सर्वकाल फलतेरहते हैं अर्थात् फल दियाकरते हैं, आपकी यह ख्याति (कीर्त्ति) सुनकरही मैं आपके समीप आयाहूँ ॥ ३४ ॥ आप निरन्तर सारे पदार्थोंके दाता हैं, आपमें सदैव समय बनारहा करता है, किन्तु वे कर्ण आज मेरेही भाग्यकी दुर्बलतासे (मंदभाग्यसे) जडताको प्राप्त होरहे हैं ॥ ३५ ॥ कर्णने कहा—हे द्विजोत्तम ! हीरोंसहित एक भार सुवर्णसे यह मेरे दाँत बँधेहुए हैं, आप उन सब दाँतोंको तोडकर वे हीरे और सुवर्ण लेली-जिये ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणने उत्तर दिया, हे कर्ण ! मैं बूढा हूँ, अत एव मुझमें इतनी शक्ति (ताकत) नहीं है कि आपके उन दाँतोंको तोडसकूं । कर्णने कहा—हे नाथ ! मुझको पत्थर दीजिये जिससे मैं (स्वयं) दाँत उखाडकर आपको देदूँ ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण बोला—हे कर्ण ! मैं उस पत्थरके देनेमेंभी कदापि समर्थ नहीं हूँ । वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय ! तब उस अवस्थामें (प्राप्त) भी कर्ण पत्थरके समीपगया ॥ ३८ ॥ वहाँ भाँति भाँतिके अस्त्र शस्त्रोंद्वारा छिन्नभिन्न हुए हाथसे पत्थरको उठाकर रविनन्दन कर्णने उन दाँतोंको तोडकर जैसेही देना चाहा ॥ ३९ ॥ वैसेही भगवान् श्रीहरिने अपने (वास्तविक) रूप धारणपूर्वक कर्णका हाथ पकडकर कहा । भो भो महा-वीर कर्ण ! आपके समान पृथ्वीतलपर दूसरा कोई नहीं है ॥ ४० ॥ आपने

जो काम किया, उससे मैं अब संतुष्ट होगया हूँ, अत एव हे महापण्डित ! आपके मनको जो अच्छा लगे वही वर आप मुझसे मांगलीजिये ॥ ४१ ॥ कर्णने कहा—हे मधुसूदन ! ब्राह्मणके निमित्त तो मेरा धन क्षय होवे, मेरी भार्याके साथ मेरी तरुण अवस्था (जवानी) बीतजावे और स्वामीके काममें मेरा जीवन (प्राण) निकलजावे, आप मुझको यही वर प्रदान कीजिये ॥ ४२ ॥ हे मधुसूदन ! पात्रके लिये दान करनेमें मेरी बुद्धि रहे, गंगाजीके किनारेपर मेरी मृत्यु होवे, कृष्णमें मति रहे और योग्य स्थानमें मेरा रहना तथा श्रेष्ठ वंशमें जन्म हो, यह वर दीजिये ॥ ४३ ॥ हे मधुसूदन ! पुत्रोंसहित आसन, ब्राह्मणोंसे युक्त स्थान और मेरा हृदय सब शास्त्रोंसे युक्त होवे। यह वर आप दीजिये ॥ ४४ ॥ हे मधुसूदन ! आप मुझको ब्राह्मणके हाथसे तिलक, माताके हाथसे भोजन और पुत्रके हाथसे पिंड मिलनेका वर दीजिये ॥ ४५ ॥ हे मधुसूदन ! आप मुझको दुर्भिक्षमें अन्नदान, सुकालमें कंचनदान और आतुर (डरेहुए) व्यक्तिको अभयदान करनेका वर दीजिये ॥ ४६ ॥ मेरी बुद्धि पराई नारी और पराये धनमें (लिप्त) न होवे और मेरी जीभ पराई निन्दा करनेवाली कभी न होवे ॥ ४७ ॥ सत्य, शौच (सदाचार) दया दान एकमात्र भगवान् जनार्दन (आप) में भक्ति, इन्द्रियोंको दमन करना और दक्षता (चतुराई) हे मधुसूदन ! यह सब आप मुझको प्रदान कीजिये ॥ ४८ ॥ रोगरहित देह, चिन्ताहीन मन, लक्ष्मीकी स्थिरता और अपनी भक्ति, हे मधुसूदन ! मुझको प्रदान कीजिये ॥ ४९ ॥ क्योंकि हाथोंकी शोभा दान करनेसे हुआकरतीहै, कंकनसे नहीं हुआ करती। शुद्धि ज्ञानसे हुआ करतीहै, स्नानसे नहीं हुआ करती । तृप्ति मानसे हुआ करतीहै, भोजनसे नहीं हुआ करती और मुक्ति भक्तिसे हुआ करतीहै, किन्तु शिर मुंडालेनसे नहीं हुआकरती ॥५०॥ इसके अतिरिक्त समस्त याचकोंकी इच्छानुसार सारे अनाज, कपडे और हेमकर्षण अर्थात् सुवर्णका कर्ष इत्यादि महादान तथा ब्रह्मभोजनमें सामर्थ्य हे मधुसूदन ! आप मुझको यह

सम्पूर्ण वर प्रदान कीजिये ॥ ५१ ॥ हे देव ! यदि आप सत्यही मुझपर सन्तुष्ट होगयेहैं, तो आप मुझको अदग्धस्थानमें अर्थात् जहां प्रथम कोई नहीं जलायागयाहो; जलाइये इस प्रकार कर्णने जिस जिस बातकी प्रार्थना करी विष्णु भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्नतापूर्वक वह सब प्रदान करी ॥ ५२॥ तदनन्तर अर्जुनसहित भगवान् श्रीहरि उसके निकटसे सीधा लेकर वैसेही चलनेलगे कि उसी समय महाराज कर्णने श्रीकृष्णके पादुका (चरणों) को मस्तकसे स्पर्श करके ॥ ५३ ॥ तहाँही प्राण त्याग किया उस काल भगवान् श्रीकृष्णने उसकी प्रशंसा (बडाई) करी । फिर श्रीकृष्ण और अर्जुन उस कर्णका मृतकशरीर जलानेके निमित्त स्थानको ढुँढतेहुए फिरनेलगे ॥ ५४ ॥ किन्तु इनको सब जगह भूमि दग्धही मिली, निर्दग्ध कहीं भी देखाई नहीं दी, तब फिर उन केशवने एक स्थानपर पहुँचकर भूमिसे पूछा कि हे पृथ्वी ! तू मुझे सत्य बता कोई तेरे ऊपर जला है ?॥ ५५ ॥ पृथ्वीने उत्तर दिया—हे केशव ! यहाँ सैकडों तो भीष्म जलचुके, सैकडों द्रोणाचार्य जलचुके, हजारों दुर्योधन जलचुके और कर्णकी तो गिन्तीही नहींहै अर्थात् असंख्य कर्ण भी जलचुकेहैं ॥ ५६ ॥

तदा कृष्णेन कर्णोऽसौ वामहस्ते प्रज्वालितः ॥
दक्षिणो बलिराज्ञे यः पूर्वदत्तस्तु हस्तकः ॥ ७ ॥

तब (पृथ्वीकी यह बात सुनकर) भगवान् श्रीकृष्णने उस कर्णको बाँये हाथपर जलाया । उन्होंने अपना दाहिना हाथ प्रथम महाराज दैत्याधिपति बलिको देदियाथा और वह उसका दान लेनेसे जलचुकाथा ॥५७॥

इति श्रीभारतसारे कर्णपर्वणि मुरादाबादनगरनिवासिकान्यकुब्जकुलभूषण-
स्वर्गीयमिश्रसुखानन्दात्मजपण्डित-कन्हैयालालमिश्रकृतभा-
षायां कर्णवधो नाम एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

इति श्रीभाषाभारतसारे कर्णपर्व समाप्तम् ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णाय नमः ।

भारतसार-भाषा ।

शल्यपर्व ९.

सप्ततितमोऽध्यायः ७०.

व्यासदेव पद वन्दिकै, जा मुख वेद पुरान ।
शल्यपर्वकी भाषा यह, निजमति करत बखान ॥
परम प्रेमनिधि रसिकवर, अति उदार गुनखान ।
कृपा करहु निजदासपहँ, श्री अनन्त भगवान। ॥
ब्रजजन जीवन लाडिले, श्रीराधा चितचोर ।
करहु मनोरथ पूर्ण मम, देखि आपुनी ओर ॥
क्रीट मुकुट कटि काछनी, उर वैजन्ती माल ।
इहि छविसौं मेरे हिये. बसहु कन्हैयालाल ॥
राधावर यह वर सदा, देहु मोहि जनजान ।
नित चितमहँ खटकत रहै, प्रेम भरी मुसकान ॥
सप्ततितम अध्याये नृपशल्यस्य पंचता ।
कृपस्य द्रोणपुत्रस्य पलायनमिहोच्यते ॥ १ ॥

इस सत्तरवें अध्यायमें राजा शल्यका माराजाना और द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यका रणसे भागना, यह कथा कही जातीहै १

वैशंपायन उवाच ।

हते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च निधनं गते ।
आशा बलवती राजञ्शल्यो जयति पांडवान् ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले-हे राजन् ! भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्णसरिखे योधाओंके मरजानेपर अब शल्य पांडवोंको विजय करेगा? अहो ! आशा बडीही बलवान् है ॥ १ ॥ तब दुर्योधन राजाने (सेनापतिके पदमें) शल्यका अभिषेक (तिलक) किया । फिर वह राजा शल्य सबेरेही रथपर सवार होगया ॥ २ ॥ तदनन्तर राजा शल्यको अश्वत्थामा और कृपाचार्य समेत रथमें बैठा देख तथा अर्जुनको थकाहुआ समझ भगवान् श्रीकृष्णने पांडवोंसे कहा ॥ ३ ॥ हे युधिष्ठिर भीमादि सब वीरो ! आप लोग समरमें शल्यके सन्मुख जाइये । तब युधिष्ठिरादि श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर ४

चौपाई ।

धर्मराज कीन्ही असवारी । पारथ रथ जोते वनवारी ॥
चढे कोपि रथ भीम भयंकर । प्रलयकाल महँ जैसे शंकर॥
चढि तुरंगपर नकुल सुहाये । धर्मराज कहँ शीश नवाये ॥
कंचनरथ सहदेव विराजे ।कर असि फरी सारिस छवि छाजे॥
साँग शूल लीन्हे कोऊ कर। कोउ मुदगर ले कोउ धनुर्धर ॥
सेन साजि कुरुखेत हि आये। दोउ दल वीरन शोभा पाये ॥
बंब निशान बाजने बाजे। होत शब्द मानहु घन गाजे ॥
आगे शल्य हाँकि रथ आये। बाणवृष्टि रथ ऊपर छाये ॥
शर अनेक बरसतहै कैसे । जलद मनहुँ श्रावणमहँ जैसे॥
द्रोणी भीम करत संग्रामा । दोऊ जुरे खेत मैदाना ॥
कही शल्य अब स्थिर रहिये । धर्मराज मोंसो रण करिये॥
यह कहि शल्य बाण दस छाँटे । धर्मपुत्र तेहि बीचहि काटे ॥
सात बाण मालुक नृप लीन्हे । ते शर चोट शल्यपर कीन्हे ॥

कोपि शल्य यम अस्त्रहि लीन्हों। पढिके मंत्र फेंकि शर दीन्हों ॥
हाँक मारिके बाण प्रहारहिं। इत नृप इन्द्र बाण सौं मारहिं ॥
भूप युधिष्ठिर हांकै दीन्हो। क्रोधित शक्ति हाथमहँ लीन्हो ॥
मारतहौं अब शल्य सँभारो। आज जानिवो तेज हमारो ॥
क्रोधित शल्य खड्ग कर लीन्हे। शक्ति घाव राजा तब कीन्हे ॥
छूटत शक्ति शब्द भयो भारी। दशों दिशा कीन्हीं उजियारी ॥
वज्रसमान शक्ति जब आई। कुरुपति देखि महाभय पाई ॥
वींध्यों शक्ति शल्य कहँ धाई। जीव हीन करि दियो गिराई ॥
जूझे शल्य परें तब धरनी। जगमें रही सदा यह करनी ॥
धर्मराज जब शल्यहि मारो। देवन सब जय जयति पुकारो ॥

लडनेके काममें चतुर राजा शल्यके पास संग्रामके निमित्त गये। तब भाँति भाँतिके पैने बाण और भालोंद्वारा ॥ ५ ॥ तथा खड्ग गदा और मूशल इत्यादिसे मद्रदेशाधिपति राजा शल्यको मारनेलगे। तब धर्मराज युधिष्ठिरने उस शल्यको भी पृथ्वीतलपर गिरादिया ॥ ६ ॥ मध्याह्नकालमें मद्रदेशाधिपति राजा शल्य स्वर्गको सिधारा। अनन्तर वह घमंडी दुर्योधन शल्यको मराहुआ देखकर ॥ ७ ॥

विलप्य बहुशस्तत्र मन्दिरं निजमाश्रितः।
अश्वत्थामा कृपस्तत्र रणमध्यात्पलायितौ ॥

वहाँ बहुतसा विलाप कलाप करके अपने मन्दिरको चलागया और अश्वत्थामा तथा कृपाचार्य रणभूमिके बीचसे भागगये ॥ ८ ॥

इति श्रीभारतसारे शल्यपर्वणि भाषायां शल्यवधो
नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इति श्रीभाषाभारतसारेशल्यपर्व समाप्तम् ॥

श्रीकृष्णाय नमः ।

भारतसार-भाषा।

गदापर्व १०.

एकसप्ततितमोऽध्यायः ७१.

दोहा-श्रीयदुपति कोमल चरण, वार वार शिरनाय ।
गदापर्वका भाष्य अब, बहु विधि लिखत बनाय ॥
हे राधावर नँद नँदन, हे प्रभु जगदाधार ।
मिश्र कन्हैयालालके, कारज देहु सँवार ॥
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, व्रजजन माखनचोर ।
मोहि सहारो आपको, द्रवहु सो नन्द किशोर ॥
जनरक्षक भक्षक विपति, विघ्न विनाशन हार ।
मिश्र कन्हैयालालके, दीजे संकट टार ॥

एकसप्ततिमेऽध्याये दुर्योधनविलापनम् ।
गान्धार्यास्तस्य सम्वादे दुःखहेतुत्वमुच्यते ॥ १ ॥

इस इकहत्तरवें अध्यायमें दुर्योधनके विलाप कलाप और गाँधारी तथा उस दुर्योधनके सम्वादमें दुःखका कारण, यह कथा कही जाती है ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

ततो दुर्योधनो राजा रवौ चास्तंगते सति ।
धृतराष्ट्रं प्रति ययौ ननाम शिरसा च तम् ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! अनन्तर भगवान् सूर्यके छिपजानेपर राजा दुर्योधन धृतराष्ट्रके निकट गया, और वहां पहुंचकर उनको शिरसे प्रणाम किया ॥ १ ॥ दुर्योधन बोला—हे तात ! आप मेरा हितकारी वह उपाय बताइये जिससे मेरे जीवका नाश न हो । क्योंकि हे विभो ! मुझको रणमें सबेरेही पांडवोंके संग संग्राम करना पडेगा ॥ २ ॥ कौरवाधिपति महाराज धृतराष्ट्रने दुर्योधनकी यह दीन वाणी सुनकर रोते रोते कहा कि, (इस विषयमें) मैं कुछ नहीं जानता इसलिये आप अपनी महतारीसे जाकर पूछिये ॥ ३ ॥ तब फिर राजा दुर्योधनने अपनी महतारी गान्धारीसे पूछा । दुर्योधन बोला—हे माता ! हे निरन्तर पवित्र रहनेवाली ! हे पतिव्रतपरायणे ! हे शुभे ! ॥ ४ ॥ हे पतिव्रताओंमें निरन्तर मुख्य रहनेवाली ! अब आप अपने पुत्रका पालन कीजिये । मुझको रणमें सबेरेही पांडवोंसे लडना है ॥ ५ ॥ हे महतारी ! अब आपको वह काम करना उचित है, जिससे मेरा नाश न होवे । क्योंकि अज्ञानी, दुष्ट, मूर्ख दरिद्री और पितृघाती ॥ ६ ॥ पापिष्ठ और हिंसक बेटेकी भी मइया निरन्तर रक्षा किया करतीहै । इस प्रकार बेटे दुर्योधनकी बातें सुनकर माता उससे कहनेलगी ॥ ७ ॥ गान्धारी बोली—हे वत्स ! मेरी बात सुनिये । आप युधिष्ठिरके पास जाइये और उनके चरणोंमें शिरसे नमस्कार करके 'पाहि ! पाहि !' अर्थात् रक्षा करो ! रक्षा करो ! कहिये ॥ ८ ॥ और तबतक उनके चरणोंको अपने मस्तकपर धरे रहो कभी मत छोडो जबतक वे धर्मात्मा युधिष्ठिर आपको मृत्युके भयसे न छुडावे और उनसे वैसीही बातचीतभी करो ॥ ९ ॥ वे जो कुछ कहें सो करो, उसके विपरीत काम नहीं करो और गुप्तरूप हुए आपको वहां प्रसिद्ध होकर नहीं ठहरना चाहिये ॥ १० ॥ अपनी मइयाकी यह बात सुनकर दुर्योधन धर्मराज युधिष्ठिरके पास गया और उनके चरणोंमें गिरकर बोला ॥ ११ ॥ दुर्योधनने कहा—हे धर्मराज ! आप धर्मबुद्धि हैं, अर्थात् अपनी बुद्धिको निरन्तर धर्ममें रखनेवाले हैं, मैं आपकी शरणमें आया हूँ अत एव मेरी रक्षा कीजिये, क्योंकि साधु महात्मा लोग

महादीन, खल और मूर्ख जनोंकीभी रक्षा कियाकरतेहैं ॥ १२ ॥ दुर्योधनकी यह दीन बात सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने 'हे बन्धु ! हे तात !' इसभाँति सन्तोष देतेहुए उससे कहा ॥ १३ ॥ युधिष्ठिरने कहा–हे सुयोधन ! हे महावीर ! आप मानी, शूर, सबके निरन्तर माननीय, बान्धवोंके पालन और साधुजनोंका पालन करनेवाले हैं ॥ १४ ॥ हे राजेन्द्र ! आप अपने घरको चलेजाइये । अकेले यहाँ कैसे आयेहो ? क्योंकि राजाओंको रण भूमिमें अकेले नहीं फिरना चाहिये ॥ १५ ॥ हे महाराज ! आप यहाँ किस लिये आयेहैं, इस प्रकार अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरकी बात सुनकर दुर्योधनने कहा ॥ १६ ॥ दुर्योधन बोला–आप मेरे माता, पिता, बन्धु, स्वामी वा हितकारी हैं, आपके समान निरंतर शत्रु मित्रको समान समझनेवाला दूसरा कोई व्यक्ति भूतलपर नहीं है ॥ १७ ॥ हे नाथ ! मैं प्रातःकाल उत्तम युद्ध करूँगा । किन्तु हे स्वामिन् ! अठारहवें दिन मेरी मृत्यु प्रकट होतीहैं ॥ १८ ॥ क्योंकि सहदेवजी (जो कि ज्योतिषविद्यामें पूरे पण्डित हैं) की बात कभी झूंठ होनेवाली नहीं है, सो हे प्रभो ! इस बातसे मुझको बहुतही भय लग रहाहै अत एव आप इस भयसे मेरी रक्षा कीजिये ॥ १९ ॥ हे प्रभो ! जिससे रणमें मेरी मृत्यु नहीं होवे, वही उपाय मुझे बताइये । हे दयासागर ! मुझको मेरी माताने आपके पास भेजाहै, अत एव आप मेरा पालन कीजिये २० दुर्योधनकी ऐसी बातें सुनकर युधिष्ठिर भावद्वारा हतेन्द्रिय और अश्रुयुक्त नेत्र होकर इधर उधर दिशाओंको निहारतेहुए कहनेलगे ॥ २१ ॥ धर्मराज युधिष्ठिर बोले–हे तात ! यदि आप मेरी बात करो तो हे विभो ! आप बिलकुल नग्न (नंगे वस्त्रहीन) बालक और टहलुएकी तरह ॥ २२ ॥ अपनी महतारीके सामने खडे होजाओ । हे सुव्रत ! इसमें कुछ भी शंका मत करो । हे सुयोधन ! आप माताके अगाडी अपने सब अंग दिखाइये ॥ २३ ॥ उस मइयाके देखतेही आपका सारा शरीर वज्रकी तरह दृढ (पक्का) होजायगा हे नृप श्रेष्ठ ! जाइये २ और जो कुछ मैंने कहा है उसको कीजिये ॥ २४ ॥ क्योंकि उत्पन्नहुए कामके सिद्ध करनेसे देरी नहीं करनी चाहिये । मेरे इस

वचनानुसार कार्य सम्पन्न करलेनेपर फिर आपका नाश कभी नहीं होगा ॥ २५ ॥ धर्मराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर दुर्योधनने उनकी तीन परिक्रमा करी और फिर प्रसन्नतापूर्वक वस्त्रसे मस्तकको ढककर चलदिया ॥ २६ ॥ तब यह सारी बात जानकर विश्वात्मा ईश्वर हरि भगवान् श्रीकृष्ण मार्गमें मिले और कालसे छुटकारा पानेवाले उसको जानकर दुर्योधनसे श्रीकृष्ण बोले ॥ २७ ॥ हे तात ! आप मानी हैं, इस प्रकार सुखदायक बात कहकर फिर उसको अज्ञान उत्पन्न करना और अनभल करनेकी इच्छा कररहेथे, इस कारण मुसकाते मुसकाते नाशरूपी वचन कहनेलगे ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे दुर्योधन ! हे महावीर ! आपने धर्मराज युधिष्ठिरके समीप पहुँचकर अपना हित करनेवाला कौनसा उपाय पूछाथा ? और उन्होंने जो कहा वह हितकारक कौनसा उपाय है ? ॥ २९ ॥ रणभूमिमें वीरोंके देखनेपर वे युधिष्ठिर तो इस समय विकल होगयेहैं और फिर जिस समय उन्होंने अश्वत्थामा मरा ऐसी झूँठी बात कही ॥ ३० ॥ तब उनको बूढे ब्राह्मण और गुरु द्रोणाचार्यजीने शाप दिया कि, रे दुष्ट आत्मावाले ! जो तैंने सत्यव्रत ग्रहण कर रक्खाहै ॥ ३१ ॥ वह केवल गुरु ब्राह्मण और वृद्धके वधार्थही धारण कियाहै इस कारण हे पापबुद्धि युधिष्ठिर ! तू विकल हो जा ॥ ३२ ॥ इस प्रकार शाप मिलनेपर उस दिनसे युधिष्ठिर झूठही बोलते रहतेहैं, क्या आप इन सब बातोंको नहीं जानतेहैं ? जो उनका सहारा लिया ॥ ३३ ॥ किन्तु तथापि मुझसे उनकी उस अत्यन्त निन्दित बात कहिये तो ? महाराज ! अब आप कभी उनकी बातको ठीक मत मानना ॥ ३४ ॥ भगवान् श्रीहरिने इस प्रकार भांति भांतिकी बातें कहकर उसके मनको भ्रमाया और फिर उन्होंने दांतोंसे अँगुली दाबकर शिर हिलाया ॥ ३५ ॥ फिर वहाँ पांडवपालक श्रीहरिने कुछ नहीं कहा, तब राजा दुर्योधनने इस प्रकार उस विधिको देखकर कहा ॥ ३६ ॥ दुर्योधन बोला—भो भो कृष्ण ! महाबाहो ! उन धर्मराज युधिष्ठिरकी कही हुई बात मेरे मनमें ही नहीं बैठी ! तब फिर मैं उसके अनुसार काम कैसे करूँगा ? ॥ ३७ ॥ उनकी वह बात

मैं आपके आगे कहनेकी समर्थ नहीं हूँ तोभी हे कृष्ण ! आप मेरे बंधु और आप्त हैं, इस कारण आपके आगे कहदेताहूं ॥ ३८ ॥ और आपभी किसीके आगे मेरे दुःखरूपी वह युधिष्ठिरकी बात मत कहना इस भांति कहनेपर मूर्ख आदमीकी तरह युधिष्ठिरकी बताईहुई वह हितकारी बात॥३९॥ इधर उधर देखकर (चुपकेसे) श्रीकृष्णके कानमें कहदी उस भ्रान्त बातके सुननेपर श्रीकृष्णजी हँसनेलगे ॥ ४० ॥ श्रीकृष्णजी बोले–हे महाबाहो ! आप धीरे धीरे भी ऐसी (घृणित) बात न कहिये क्योंकि दूसरे आदमी सुनपावेंगे । हे राजन् ! इस कामको आप अपनी महतारी गान्धारीके आगे कभी मतकरना ॥४१॥ वैशंपायनजी बोले–हे महाराज जनमेजय ! इस तरहकी बातें कहकर श्रीकृष्णने दुर्योधनको भ्रान्त करदिया ॥४२॥ और फिर केशवमूर्त्तिने 'राम ! राम!' शब्द उच्चारण पूर्वक तथा ऊपरी दांतोंद्वारा नीचेके दाँतोंको दाबकर और फिर आधी अँगुलीसे जीभके अग्रभागको छूकर 'हाय ! हाय ! ' करी ॥ ४३ ॥ इसके पीछे पांडवपालक श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिरकी भर्त्सना (बुराई) करनेलगे । उनकी इस प्रकार बातें सुनकर दुर्योधनने श्रीकृष्णसे कहा ॥ ४४ ॥ दुर्योधन बोला–हे महाबाहो ! इसके पीछे अब मुझको क्या काम करना चाहिये ? और जिसके साधन करनेपर मेरा भला होवे सो आप मुझे बताइये, क्योंकि आपकी समान पृथ्वीतलपर मेरा हितू दूसरा कोईभी नहीं है ॥ ४५ ॥ मैं युधिष्ठिरके निकट अपना हित पूछनेके निमित्त अपने आप नहीं गया,बरन् मइयाके भेजनेपर मैं उनके पास जापहुँचा था, अत एव इस विषयमें मेरा अपराध नहीं है ॥ ४६ ॥ फिर जिस समय श्रीकृष्णने यह सुना कि अपने पुत्र दुर्योधनको गान्धारीने युधिष्ठिरके पास भेजाथा, तब उसके पातिव्रतधर्मसे डरकर श्रीकृष्णने दुर्योधनके प्रति कहा ॥ ४७ ॥ श्रीकृष्ण बोले–हे महाराज ! इसके पीछे आपको वह कामभी करना चाहिये कि, जिससे आपकी माता तथा युधिष्ठिरका वचनभी भंग न हो ॥ ४८ ॥ अत एव आप अब मालीके घर चलेजाइये और फूलोंका गुह्यगोपन अर्थात् लँगोटा पहरकर फिर वहांसे निःशंक हो

अपनी मइयाके आगे जा खडे हूजिये ॥ ४९ ॥ किन्तु हे राजन् ! मेरी यह बातें अपनी माताके आगे मत कहना. यदि आप इस तरह काम सिद्ध करेंगे तो माता और युधिष्ठिर दोनोंमेंसे किसीको भी दुःख नहीं होगा॥५०॥ और आपभी कृतार्थ (धन्य) होजाँयगे, फिर कृतकृत्य होनेपर आप वैरियोंका नाश कीजिये । भूमिका भार उतारनेके निमित्त शरीरधारण करनेवाले श्रीकृष्णके कथनानुसार ॥ ५१ ॥ वह दुर्योधन पुष्पादिका लँगोटा पहनकर माताके सामने गया । फिर अपनी मइयासे यह कहा कि हे जननी ! मैं आपके आगे आयाहूँ ॥ ५२ ॥ दुर्योधनकी ऐसी बात सुनकर माताने कहा । माता बोली—आप धर्मराज युधिष्ठिरकेही वचनानुसार आये हैं, अथवा विपरीत भाँतिसे आये हैं ? ॥ ५३ ॥ मइया गान्धारीकी यह बात सुनकर पुत्र दुर्योधन कहा, किन्तु लज्जाके मारे अत्यन्त शांकित होकर कृष्णचरित्र नहीं कहा अर्थात् मार्गमें श्रीकृष्णसे जो कुछ बात चीत हुईथी वह मइयाको नहीं सुनाई ॥ ५४ ॥ हे माता ! मैंने धर्मराज युधिष्ठिरके कथनानुसारही सब काम किया है, दुर्योधनकी यह बात सुनकर गान्धारीने अपनी आँखोंकी पट्टी खोली ॥ ५५ ॥ और फिर अपने भर्त्ताके चरणोंका ध्यान करके बडे कष्टसे नेत्र खोले और फिर जैसेही पुत्रवत्सला गान्धारी दुर्योधनके अंगको देखनेलगी ॥ ५६ ॥ उसी समय उसको युधिष्ठिरके कथनसे कुछ विपरीत लक्षण दिखाई दिया । तब उसने फिर आँखें मीचकर पुत्र दुर्योधनसे कहा ॥ ५७ ॥ हे बुद्धिहीन पुत्र ! मार्गमें तुझको कौन मिलगया ? तुझको मार्गमें कहीं श्रीकृष्ण तो नहीं मिलगये कि जिन्होंने भाँति भाँतिकी बातें कर तेरी मति बौराय दी ॥ ५८॥ दुर्योधन बोला—हे माता ! आपने सत्य कहा, मुझे मार्गमें श्रीकृष्ण मिलेथे । गान्धारी बोली—रे महामूर्ख ! यह तो मुझे बतादे कि तैंने गुह्य अंगको क्यों ढका ? ॥ ५९ ॥ तैंने अपने केवल श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार फूलोंसे मरनेके लियेही गुह्य अंगको ढका है, पुत्र बोला, इस समय क्या मेरा नाश होगया है ? पुष्पाच्छादन रहित ॥ ६० ॥ हे मइया ! आप मेरे अंगोंको (एकवार) फिर देखकर

आँखोंको बांधिये । गांधारी बोली—रे महामूर्ख । अब इसके पीछे (दूसरी बार) मेरा देखना निष्फल है । अर्थात् उस देखनेसे तेरा कोई काम सिद्ध नहीं होगा किन्तु मेरी दृष्टि जहाँ जहाँ तेरे देहपर पडचुकी है ६१

दृष्टिस्तदेकभागे वै भंगो नैव कदाचन ।
कटितो भंगमासाद्य नाशं प्राप्स्यासि केवलम् ॥ ६२ ॥

इस दृष्टिके एक भागमें तेरा भंग कदापि नहीं होगा । केवल मात्र तेरा कटिदेश भंग होकर तेरी मृत्यु होगी ॥ ६२ ॥

इति श्रीभारतसारे गदापर्वणि भाषायां मातापुत्रसम्वादो नाम एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः ७२.

द्विसप्ततितमेऽध्याये गान्धार्याश्च हरिं प्रति ।
शापो दुर्योधनस्यैवं युद्धं भीमस्य कथ्यते ॥ १ ॥

इस बहत्तरवें अध्यायमें भगवान् श्रीहरिकृष्णको गान्धारीका शाप देना और दुर्योधन तथा भीमसेनका संग्राम (युद्ध) होना यह कथा कहीजाती है॥

वैशम्पायन उवाच ।

गान्धारी दुःखिताप्येवमुक्त्वा पुत्रं गतप्रभम् ।
प्रोवाच सहसा कृष्णं पातिव्रत्यबलात्सती ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! गांधारी इस प्रकार कहकर महान् दुःखीहुई फिर वह सती पातिव्रतके बलसे सहसा (शीघ्रतासहित) श्रीकृष्णके प्रति बोली ॥ १ ॥ गांधारीने कहा—हे कृष्ण ! आपने मेरे सारे बेटोंको एक साथही नष्ट कर डाला अत एव आपका कुलभी किसी निमित्तान्तर (कारणविशेष) के प्राप्त होनेपर क्षय (नाश) होजायगा ॥ २ ॥ गांधारीका कहा (दिया) शाप सुनकर सदैव पातिव्रतके प्रभावसे (घबरानेवाले) प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण दुर्योधनकी महतारीसे उत्तमवाक्य बोलते हुए उसका शाप स्वीकार कर मौन होगये ॥ ३॥ वैशंपायनजी बोले—हे महा-

राज ! फिर जब रात्रि बीतनेपर जैसेही भगवान् दिननाथ (सूर्य) उदयहुए कि, वैसेही दुर्योधन डरता हुआ शीघ्रतासे रथपर सवार हुआ ॥ ४ ॥ और कृपाचार्य और अश्वत्थामा इन दोनों आदमियोंसमेत गहरे तथा जलसे भरे हुए पृथूदक नामक तीर्थपर गया और वहाँ रथसे उतरकर उस सरोवरमें घुसगया ॥ ५ ॥ और फिर प्रारंभसे लेकर जलस्तंभमयी विद्याका साधन करनेलगा कि जिससे उसको मरनेका डर न रहे, दुर्योधन वहां ऐसेही मंत्रको जपनेलगा ॥ ६ ॥ अब इधर सब पाण्डवोंको यह बात मालूम हुई कि राजा दुर्योधन जीवनके लिये विद्या साधनेको पृथूदकतीर्थपर चलागया है ॥ ७ ॥ तब हे जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णने शीघ्रतासहित वीर पांडवोंको दुर्योधनके लानेके लिये भेजा और वे सब गुप्तरीतिसे वहां पहुँचे ॥ ८ ॥ तब भीम आदि कितनेही वीरोंने वहां पहुँचकर उस पृथूदकतीर्थके धोरेही बुद्धिमान् कृपाचार्य और द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको देखा ॥९॥ और जब उनको (यह मालूम हुआ कि) वह दुर्योधन इस पृथूदकके भीतर घुसगया है, तब तो भीमसेन उसकी अनेकों निन्दा करतेहुए कहने लगे ॥१०॥ भीमसेन बोले । रे रे गीदड ! तू डरके मारे घबराकर जलमें कैसे घुसगया ? गुरु द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, महावीर कर्ण और दुःशासन इत्यादि अपने भाइयोंको मर-वाकर तथा क्या करनेकी तृष्णा तुझमें अबभी वर्तमान है ॥ ११॥१२ ॥

चौपाई ।

निकरो नृप बूडो केहि काजा । कुरुवंशहि लाजत हो लाजा ॥
सुत बाँधव रण सबहि जुझायो । आपु भागकै जीव बचायो ॥
भारत भूमि धरायो नामा । जलमहँआनिछिप्योकेहि कामा॥
छाँडत हो कत क्षत्री धर्मा । होइहि सोइ लिखा जो कर्मा ॥
महागर्व तुम सब दिन कीन्हों । निकरतनहीं भाजि जललीन्हों ॥
धिक जीवन जलमें है तेरो । इतनी बात अंगवत मेरो ॥
अपने बलते गनत न आना । अब काहे तुम तजत गुमाना ॥
मारहुँ गदा फाटि जल जैहै । गहि करकेश अबहि लैजैहै ॥

तैंने बडे भारी चन्द्रवंशमें और क्षत्रीकुलमें जन्म लिया है अतएव रे मन्द ! तू रण छोड जलमें आ बैठनेसे लजाता क्यों नहीं ? ॥ १३ ॥ क्योंकि क्षत्री लोगोंका तो यही धर्म होता है कि माँगा हुआ रण देवें । वे क्षत्री अपने यशको ही धन समझते हैं, राज्यादि धनकी कामना वे नहीं किया करतेहैं ॥ १४ ॥ रे महामन्द ! रे कौरवोंके वंशमें दूषण ! अब तू जलसे बाहर निकल पड । तब भीमसेनका बुलाया राजा दुर्योधन उस जलाशय (तालाव) से ॥ १५ ॥ क्रोधपूर्वक जपको छोडकर बाहर निकला और वह महाबली दुर्योधन सिंहनाद करता हुआ शीघ्रही रणमें आपहुँचा॥ १६॥ तब भगवान् श्रीकृष्ण और धर्मराज युधिष्ठिरने कुरुनंदन दुर्योधनकी बडाई करी । फिर अमावास्याके दिन सबेरेही वज्रशरीर महाबली ॥ १७॥ दीर्घ-बाहु और हाथमें गदा लिये दुर्योधनने प्रसन्न होकर भीमसेनसे कहा—हे भीमसेन ! हे महाबाहु ! आपने राजा जरासन्धका वध कियाहै ॥ १८ ॥ और मृतक हाथीपर सवार शूर भगदत्तका संहार किया, फिर हिडम्ब नाम वीर दानवका नाश किया तथा और भी बहुतसे शूरोंको मारडालाहै ॥ १९ ॥ तथा मेरे बांधव कीचक और मेघनादकाभी रणमें वध किया और हे भीम! तैंने मेरे दुःशासनादि महावीर सौ भाइयोंको भी मारदिया ॥ २० ॥

चौपाई ।

आजु बैर सब लेहुँ निभाई । जो रण भूमि भाग नहिं जाई॥
आजु करौं खल काल हवाले । परेउ कठिन दुर्योधन पाले ॥

इस समय तू मेरी उस भुजाके बलको देख, जो दूसरोंके पक्षमें असह-नीय है और एक क्षणभरके लिये मेरे हाथके चलाये गदाघातको सहन कर ॥ २१ ॥ (यह कह दुर्योधनने) बाहुसे बाहुको फटकारकर सिंहनाद किया और हे राजन् !भीमसेनभी बाहुओंको आस्फोटन करतेहुए सिंहकी समान गर्जनेलगे ॥ २२ ॥ इस प्रकार आपसमें गदाघात करतेहुए वे दोनों वीर संग्राम करने लगे, उसकाल उन दोनोंकी गदाके बडे भारी शब्दसे दिशायें गर्जनेलगीं ॥ २३ ॥ जो कि दोनोंका शरीर वज्रमय था,इस कारण

गदाका आघात महान् दारुण होताथा और हे राजन् ! उन गदाओंसे आगकी सैकडों चिनगारियाँ उछलतीथीं ॥ २४ ॥ उनके चरणप्रहारसे पृथ्वी (कभी) ऊँची और (कभी) नीची होजाती थी और महान् फुरतीसे एक दोनों बराबर प्रहार करतेथे ॥ २५ ॥

चौपाई ।

गदा प्रहार शब्द भा कैसे । छूटत वज्र इन्द्रकर जैसे ॥
कोपि भीम तब गदा प्रहारा । महावीर कुरुनाथ सँभारा ॥
दोऊ वीर जोरसौं झपटत । महावीर मन नेकु न डरपत ॥
यहि विधि करत युद्धकी करणी । भूमिपाल डोलत हैं धरणी ॥
महामत्त तनु बुरझो दोऊ । प्रलय युद्ध देखत सब कोऊ ॥
गदा गदा सौं लागत जबही । निकरत अग्नि भभूका तबही ॥
चढे विमान देवगण देखत । अपने मत अचरज करि लेखत ॥

दोहा-दुर्योधन तब कोप करि, मारयौं घाव प्रचण्ड ।
गदा रोकि सम्भारिकैं, भीम महाबलबंड ॥

तब फिर युद्धमें दुर्योधनने प्रलयकी समान कोप करके अपनी घोर गदाको घुमाकर भीमसेनकी छातीमें मारी ॥ २६ ॥ उनके आघातसे भीमसेन उलटे होकर पृथ्वीपर गिरपडे । इसके पीछे दुर्योधन जैसेही भीमसेनको दारुहत वृक्षकी समान करनेलगा ॥ २७ ॥ कि वैसेही चैतन्य होकर वह भीमसेन शीघ्रतासे उठ खडेहुए और उन्होंनेभी अपनी गदाको घुमाकर राजा (दुर्योधन) की छातीमें धडाका किया ॥ २८ ॥ उस आघातके लगनेपर पीछा प्रहार करके भीमसेनके हाथसे गदा छूटपडी तब उसको देखा, किन्तु वह गदा फिर नहीं मिली । तब भीमसेनने और एक गदा हाथमें ले ली ॥ २९ ॥ तब भीमसेनके पासकी उस गदाको भी राजा दुर्योधनने ताडित किया, जिससे वह भी चकनाचूर होकर धूरिभावको प्राप्त होगई, तब फिर भीमसेनने और (तीसरी) गदा धारण करी ॥ ३० ॥

सापि चूर्णत्वमापन्ना राज्ञा संताडिता सती ।
एवं गदाशतं भिन्नं राज्ञा दुर्योधनेन वै ॥
भीमस्य च महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३१ ॥

किन्तु राजा दुर्योधनके ताडना करनेपर वह गदाभी टूटगई । इस प्रकार एकसौ गदाओंको दुर्योधनने तोडडाला । तब तो हे महाराज जनमेजय ! भीमसेनके पक्षमें यह एक अद्भुतसी बात हुई ॥ ३१ ॥

इति श्रीभारतसारे गदापर्वणि भाषायां भीमदुर्योधनयुद्धे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ७३.

त्रिसप्ततितमेऽध्याये बलभद्रागमस्तथा ।
भीतेभ्यः पाण्डवेभ्यश्च तस्य मानाप्तिरुच्यते ॥ १ ॥

इस तिहत्तरवें अध्यायमें बलरामजीका आना और उन बलरामजीको डरेहुए पाण्डवोंसे मानका मिलना यह कथा कहीजाती है ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

तदा दुर्योधनो राजा जेष्याम्यद्य वृकोदरम् ।
सिंहवद्व्यनदद्राजा गदाघातैः सुदारुणैः ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! तदनन्तर राजा दुर्योधन 'अब मैं वृकोदर भीमको विजय करलूँगा ' इस प्रकार कह सिंहकी समान दहाडताहुआ सब दिशाओंको शब्दायमान करनेलगा । फिर अपनी गदाके दारुण आघातसे ॥ १ ॥ भीमसेनको ताडित किया । तब तो भीमसेनने भी बडी भारी गदाके द्वारा उस राजा दुर्योधनके माथेमें प्रहार किया ॥ २ ॥ किन्तु उस प्रहारसे वह जरा कंपित (विचलित) नहीं हुआ, बरन् गर्जना करनेलगा । इस तरह उन दोनोंमें परस्पर रोमहर्षण युद्ध होनेलगा ॥ ३ ॥ उस काल शीघ्रतासहित प्रहार करनेके कारण उन दोनों गदाओंकी आवाज वेगसे एकीभावको प्राप्त होकर गुंजारनेलगी ॥ ४ ॥ अनन्तर देवर्षि श्रीनार-

दजी युद्धके प्रथमदिन प्रभासक्षेत्रमें गये और वहाँ उन्होंने बलरामजीको आयाहुआ जानकर उनसे यह (युद्धका) सारा समाचार कहसुनाया॥५॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राम ! हे महावीर ! आप भिक्षुककी तरह क्यों घूम-रहे हैं ? आप शीघ्र आइये और भीमसेन तथा दुर्योधनका रण देखिये॥६॥ उनकी यह बात सुनकर बलरामजीने नारदजीसे कहा—हे देवर्षि ! द्रोणा-चार्य, भीष्मपितामह, कर्ण तथा और भी महाबलवानोंको ॥ ७ ॥ छोड-कर भीमसेनके संग राजा दुर्योधनने युद्ध कैसे किया ? नारदजीने उत्तर दिया कि (जिनकी बात आप कहरहेहैं)उन सबको तो कालरूपी श्रीहरिने विलीन करदिया अर्थात् वे सब युद्धमें मरचुके ॥ ८ ॥ अब एक मात्र राजा दुर्यो-धनही वृकोदर (भीमके) हाथसे मरनेलायक है अत एव संग्राममें वैरियोंसे घिरकर मरनेवाले व्यक्तिका ॥ ९ ॥ जो वीर पालन (रक्षा) नहीं करता है, वह ब्रह्मघाती कहलाता है। देवर्षि नारदजीकी यह बात सुनकर बल-रामजी क्रोधपूर्वक गमन करके ॥ १० ॥ महावेगसे कुरुक्षेत्रकी युद्ध-भूमिमें आनपहुँचे। तब पांडव लोग उन बलरामजीको (असमय) आया हुआ देखकर आश्चर्ययुक्त हुए ॥ ११ ॥ अनन्तर यादवेश्वर बलरामजीको क्रोधसहित आयाहुआ देखकर स्तुतिपूर्वक युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार बलरामजीसे कहा ॥ १२॥ युधिष्ठिर बोले—हे यदुनन्दन ! यदु-कुलमें जन्मेहुए हम सब जनोंका सम्यक् प्रकार बँधाहुआ स्नेहपाश कदापि दूर नहीं होसकता ॥ १३ ॥ हे हलायुध ! आप जो यहाँ दुर्योधनऔर भीमसेनके संग्रामकालमें आनकर प्राप्त हुए,यह अति उत्तम बात हुई ॥१४॥ उनकी यह बात सुनकर बलरामजीने धर्मनन्दन युधिष्ठिरसे कहा कि हे महा-राज ! हमने देवर्षि नारदजीके मुखसे यह समाचार सुना कि भीम और दुर्योधन दोनों जने ॥ १५ ॥ संग्राम कररहे हैं, तब मैं यहाँ उस धर्मरूपी संग्रामको देखनेके लियेही चला आयाहूँ। वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय ! इस तरह वहाँ पहुँचकर बलरामजी श्रीकृष्णके धोरे बैठगये ॥ १६ ॥ तद-नन्तर बलरामजीने हँसतेहँसते भूमिपर कालात्मारूपी उन भगवान् श्रीकृष्णसे

कहा ! बलदेवजी बोले-हे कृष्ण ! आप पृथ्वीका भार उतारनेके लिये उद्यत हुए हैं ॥ १७ ॥

इति वाच ऋषीणां यास्ताः सत्या हि कृतास्त्वया ।
कथमल्पेन कालेन क्षयं नीताश्च कौरवाः ।
बलं युगसहस्रेण देवैरपि सुदुःसहम् ॥ १८ ॥

यह जो ऋषियोंका वचन है, उसको आपने सच्चा किया है किस तरह बहुत थोडे समयमें कौरवोंके बलका नाश करडाला ? क्योंकि कौरवोंकी उस असह्य सेनाका नाश तो देवताओंसेभी हजार युगमें होना कठिन था १८॥

इति श्रीभारतसारे गदापर्वणि भाषायां बलभद्रागमो नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ७४.

चतुःसप्ततितमेऽध्याये पातो दुर्योधनस्य च ।
बलदेवस्य निर्याणं द्वारकां प्रति कथ्यते ॥ १ ॥

इस चौहत्तरवें अध्यायमें राजा दुर्योधनका पतन (माराजाना) और बलदेवजीका द्वारकाकी ओरको चलाजाना यह कथा कही जाती है ॥१॥

बलदेवं वदन्तं तं कृष्णो नोवाच संस्मयन् ।
स्मयमानं हरिं दृष्ट्वा बलो विस्मितमानसः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले-हे महाराज जनमेजय ! इस प्रकार कहते हुए बलदेवजीसे भगवान् श्रीकृष्णने धीरे धीरे मुसकरातेहुए कुछ नहीं कहा । तब श्रीहरिको (केवल) हँसताहुआही देखकर बलरामजीके मनमें (बडा) अचंभा हुआ ॥ १ ॥ हे राजन् ! इस तरहसे बलदेवजी श्रीकृष्णके धोरे बैठे हुए थे कि, इसी बीचमें राजा दुर्योधनने क्रोधसहित ॥२॥ अपनी महाघोर गदाको घुमाकर भीमसेनकी छातीमें ताडन (आघात) किया और उसके आघातसे मूर्छित होकर भीमसेन पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ३ ॥ तब माताका वैभव देखनेवाला महावीर राजा दुर्योधन उन भीमसेनको मुरदा समझकर

'मैंने इसको विजय करलिया' इस तरह कहने लगा ॥ ४ ॥ इधर भीमसेनको मुरदेकी नाई देखकर सब पांडव रोदन करने लगे और फिर उन्होंने 'हा हतोऽस्मि' अर्थात् हाय ! हमलोग भी मरे इस प्रकार कहकर अपने स्थानमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने इस तरह उन पांडवोंको शोकसे पीडित देखकर जिससे उनके शोकका नाश हो ऐसी वाणीसे हँसते हँसते कहा ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे धर्मराज युधिष्ठिर इत्यादि सब पांडवो ! आप मेरी बात सुनिये । यह भीमसेन जीवित हैं और गदा हाथमें लेकर (अभी) उठते हैं, सो आप देखिये ॥ ७ ॥ वैशम्पायनजी बोले कि, हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण इसतरह कहतेही थे कि उसी समय भीमसेन गर्जते गर्जते उट खडेहुए और फिर गदाको उठाकर सबल भीमसेनने दुर्योधनको आह्वान किया अर्थात् ललकारते हुए बुलाया ॥ ८ ॥ और कहा हे वीर ! आप मुझको पृथ्वीपर गिराकर (सूखे) कैसे चले जाँयगे ? अत एव प्रथम आप मेरे गदाघातको सहिये । इस प्रकार कहकर अपने हाथकी गदाको खडे खडे घुमाने लगे ॥ ९ ॥ तदनन्तर दाँतोंसे अपने होठोंको पीसता और अरुणवर्ण आंखोंवाला तथा चलितेन्द्रिय राजा दुर्योधन शीघ्रतासे अपनी गदा लेकर ॥ १० ॥ समरभूमिमें जापहुँचा फिर उस वीर दुर्योधनने संग्राममें भीमसेनसे कहा कि, हे कौन्तेय ! अब आप शीघ्रतासे प्रहार करलीजिये, लो यह मेरा कंधा आपके सामने है ॥ ११ ॥ दुर्योधनकी यह बात सुनकर भीमसेनने गुस्सेमें भर कर गदासे दुर्योधनके कंधेमें प्रहार किया ॥ १२ ॥ किन्तु उस आघातसे राजा दुर्योधन पुष्पहत हाथीकी समान कम्पायमान न हुआ । तब उस अकंपित और हर्षयुक्त दुर्योधनको देखकर ॥ १३ ॥ भीमसेनने फिर उसके ब्रह्मरन्ध्रमें गदाघात किया और उस गदाके आघतने दुर्योधनका शिरस्त्राण (मंदील वा पगडी) को मुकुट समेत चूर्ण कर दिया ॥ १४ ॥ किन्तु राजाके शिरपर लगनेसे वह गदा चकनाचूर होगई तब तो भीमसेनने महाक्रोधपूर्वक दूसरी गदाको हाथमें लिया ॥ १५ ॥ तब दुर्योधनने भीमसेनकी निन्दा करते हुए कहा । राजा

बोला—हे भीम ! हे भीम ! हे मंद ! तैंने मेरे कंधे और उसी प्रकार मस्तकपर गदाके दो प्रहार किये, जिनसे मुझको भ्रमतकभी नहीं हुआ जो हो. अब तू एक मेरे गदाघातकोभी सह. यह कहकर सिंहकी तरह दहाडनेलगा॥ १६॥ ॥ १७ ॥ फिर दुर्योधनने अपनी घोर गदाको घुमाकर भीससेनके शिरपर धडाका किया कि, जिसके आघातसे भीमसेनकी पगडी और शिरकी कलगी चूर होगई ॥ १८ ॥ और उनका शिरभी जर्जर (चलनी) होगया तथा उनको फिर दूसरी वार मूर्छा आगई और वे गिरपडे ॥ १९ ॥ वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय ! तब दयायुक्त चित्तवाले भगवान् श्रीकृष्णने भमिसेनको गिराहुआ देखकर उनका हाथ पकडकर उठाया (और युद्ध कीजिये) इस प्रकार आज्ञा दी ॥ २० ॥ फिर जब भीमसेनको संज्ञा (होश) प्राप्त हुई, तब उन्होंने प्रहार करनेका इच्छा करी और अपनी घोर गदाको घुमाते तथा प्रतिघात (प्रतिपक्षिके प्रहार) से शंकित ॥ २१॥ भीमसेन भग्नगात्र, स्खलितपैर और भ्रमयुक्ताचित्त हुए। इस प्रकार विह्वलताको प्राप्त और प्रहारके सहनमें असमर्थ तथा दीनके समान अपने पैरोंके सम्मुख दाँतोंको काटते भीमसेनको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने उनके निमित्त संज्ञा करके कटि (कमर) में आघात करनेकी आज्ञा दी ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ तब श्रीकृष्णके इशारेको समझकर भीमसेनके हृदयमें महा आनन्द उत्पन्न हुआ और फिर उन्होंने बलपूर्वक दुर्योधनके कमरमें गदा मारी ॥२४॥ तब कमर टूटजानेपर दुर्योधन पृथ्वीपर गिरपडा और फिर बोला कि हाय ! मुझको इस समय यहां केवल श्रीकृष्णनेही वध किया है ॥ २५ ॥

चौपाई ।

गिरि कुरुपति धरणीमहँ ऐसे । काटत मूल परत द्रुम जैसे ॥
पूर्व वैर मनमें सुधि आई । भीमसेन तब लात उठाई ॥
हा हा शब्द युधिष्ठिर कीन्हा । रहहु भीम कहिवे असलीन्हा ॥
अष्टादश क्षौहिणी भुवारा । ताको लात न चहिये मारा ॥

कृष्ण सहित भाष्यो सब राजा। चरण प्रहार करत केहि काजा॥
क्षत्रीधर्म न भीम विचारयो। गदा घाव जंघनपर मार्‍यो॥
कही भीम दुर्योधन वीरहि। जा दिन हरो द्रौपदी चीरहि॥
ता दिनमें सब सौ प्रण भाख्यो। तोर्‍यो जंघ प्रतिज्ञा राख्यो॥

इस प्रकार वीर दुर्योधनके भूतलशायी होनेपर भीमसेनने क्रोधपूर्वक सारे राजा और बलरामजीके देखते देखते उसके शिरमें लात मारनेकी इच्छा करी। तब तो भीमसेनका यह अन्याय देखकर क्रोधसे बलरामजीकी आँखें लाल लाल होआई और वे हलको उठाकर खडे होगये ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ तथा फिर सिंहकी समान दहाडकर उन बलरामजीने भीमसेनको बुलाया और वहाँ कौरवेन्द्र दुर्योधनके देखते हुए भीमसेनसे यह वचन कहनेलगे ॥ २८ ॥ यह जो पांचों पांडवोंका भी भर्त्ता है, सो प्राकृत (साधारण) आदमी नहीं है, हे भीमसेन ! आप मेरे देखते देखते इस ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके अधिपति (मालिक) दुर्योधनको चरणसे मस्तकमें किस तरह स्पर्श करते हैं ? हे मन्द ! वह आपकी नाईं कुयोनिवाला नहीं हुआ है, आप निन्दित योधा, निन्दित वक्ता और निरन्तर कुयोनिमें निरत रहतेहैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ इस प्रकार गुस्सेमें भरेहुए बलरामजीको श्रीकृष्णने समझा बुझाकर शान्त किया। (और फिर भीमसेनसे कहनेलगे) कि हे मन्द ! हे मूर्ख ! हे वृथा पुष्ट। हे बह्वाशी ! अर्थात् अधिक आहार करनेवाले ! हे ज्ञानहीन ! ॥ ३१ ॥ हे भीम ! आप मानवाले और मनुष्योंके निमित्त मान दाता अनेक वीरोंका नाश करनेवाले और महाराजाधिराज इन राजा दुर्योधनको चरणसे कैसे छूते हैं ? ॥ ३२ ॥ इस प्रकार भीमसेनकी भर्त्सना (निन्दा) करके बलरामजीको सन्तुष्ट किया और फिर धर्मपुत्र युधिष्ठिर और अर्जुनसमेत श्रीकृष्णने बलरामजीसे कहा ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णने कहा—हे बलदेवजी ! आप अत्यन्त उत्तम वीर हैं अत एव यह आपके पुत्र पांडव यादव समेत मैं तथा पृथ्वीतलके आदमी ॥ ३४॥ देवलोकमें जो जो इन्द्रादिदेवता और पातालनिवासी विषके समुद्रस्वरूप शेषादि सर्प ॥ ३५ ॥

विष्णु, महादेव वा ब्रह्मा तथा और भी जितने महाबली शूर हैं, यह सब (मिलकरभी) रणमें आपके सामने खडे नहीं होसकते, तब फिर अकेले भीमसेनकी तो बातही क्या है ? ॥ ३६ ॥ इस प्रकार बलदेवजीसे समझाने बुझानेकी बातें कहकर श्रीकृष्णजीने हँसतेहुए पांडवोंसमेत बलरामजीके पैरोंको मस्तकसे ग्रहण किया ॥ ३७ ॥ तब इस प्रकार पैरोंमें पडे हुए ब्रह्मा इत्यादिके ईश्वर और लीलापूर्वकही संसारको उत्पन्न पालन और संहारकर्त्ता भगवान् श्रीकृष्णको देखकर बलरामजीने हलको उतार श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रणाम किया । तब वीरवर बलरामजी उठकर लज्जित हुए ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ फिर उन बलरामजीको लज्जित समझकर मानी दुर्योधनने कहा । दुर्योधन बोला—हे बलदेवजी ! आप वृथाविवाद न करके मेरी बात सुनिये ॥ ४० ॥ जिसप्रकार (मृतक) आदमीके ऊपर कौवे इत्यादि आकर मस्तकादिको स्पर्श किया करतेहैं उसी प्रकार यह भीमसेन मेरे मस्तकको चरणसे स्पर्श करता है ॥ ४१ ॥ हे राजेन्द्र ! यह सुनकर बलरामजी श्रीकृष्णकी आज्ञा लेकर द्वारकाकी ओर चलेगये और पांडव हर्षित हुए ॥ ४२ ॥

कृष्णं प्रणेमुस्ते प्रीत्या पालिताः प्रभुणा वयम् ।
इति नानाविधैर्वाक्यैस्तुष्टुवुस्तं नरेश्वरम् ॥ ४३ ॥

और फिर प्रीतिपूर्वक उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके कहा कि हे प्रभो ! आपने हमलोगोंका पालन किया । इस तरह भाँति भांतिके वचनोंसे श्रीकृष्णका स्तव किया ॥ ४३ ॥

इति श्रीभारतसारे गदापर्वणि भाषायां दुर्योधनपतनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ७५.

पंचसप्ततितमेऽध्याये गान्धार्याश्च विलापनम् ।
अयोभीमस्य चूर्णत्वं धृतराष्ट्रेण कथ्यते ॥ १ ॥

इस पिछत्तरवें अध्यायमें (दुर्योधनकी मइया) गान्धारीके विलाप कलाप और धृतराष्ट्रका लोहेके भीमको चूर्ण करना यह कथा कही जाती है ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

जनमेजय महाराज कौरवाणां बलं तदा ।
निर्नाथं भूयसा त्रस्तं जगाम च दिशो दश ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले–हे जनमेजय ! हे महाराज ! (जिस समय राजा दुर्योधन धराशायी हुआ) तब कौरवोंकी सेना अनाथ हो डरती व काँपती दशोंदिशामें चलीगई ॥ १ ॥ तदनन्तर दुर्योधनके माता पिता पुत्रके समीप आये और उस अपने पापबुद्धिको बुरा कहतेहुए रोदन करने लगे ॥ २ ॥ हे पुत्र ! हे पापमति ! तू साधु महात्माओंको निरन्तर पीडित कियाकरताथा इसीलिये हे पुत्र ! तू ऐसी दशाको पहुँचगया तुझको रणभूमिमें देवनेही पतित कियाहै ॥ ३ ॥ हे महावीर ! अब तू उठ क्योंकि हम सब कोई इस समय घरको प्रस्थान करेंगे। हे तात ! यदि तू नहीं चले तो जिस जगहकी तेरे मनमें इच्छा हो, वहाँ हम दोनों (माता--पिता) को ले चल॥ ४ ॥ हे बेटा ! तू हम दोनों जनोंको ले चल ! क्योंकि, हम दोनों तेरे छोडदेनेके लायक नहीं हैं। तब श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरने उन दोनोंको इस प्रकार विलाप करतेहुए देख ॥ ५ ॥ नम्रतापूर्वक वहां दोनों बूढोंके पास पहुँचकर प्रणाम किया और फिर उनको समझा बुझाकर ढाढस बँधानेलगे कि, यह पांडवभी तो आपके बेटेही हैं ॥ ६ ॥ और आपकी प्रदान कीहुई भूमिको आपकी आज्ञानुसार भोग करेंगे, फिर ये आपके पालन पोषण करनेलायक और आपके दासानुदास हैं ॥ ७ ॥ और हे मानद ! मैंभी यादवों समेत आपका दास हूँ, इस प्रकार सबका चित्त चुरानेवाले श्रीकृष्णने उनको सन्तोष दिया ॥ ८ ॥ फिर पुत्रके प्रति कौतुक दिखातेहुए गान्धारीसे कहा–हे गांधारी ! आपभी उठकर खडी होजाइये और इस बेटेका शोक नहीं कीजिये ॥९॥ आप युधिष्ठिरके घर चलिये और अपने बेटे युधिष्ठिरका पालन कीजिये तथा वहीं वास और वहीं भोजन कीजिये ॥ १० ॥ पहले जब आप भोजन करचुकेंगी तब पीछेसे पांडव भोजन कियाकरेंगे। गान्धारी बोली–हे कृष्ण ! जब कि मेरे बेटे

भूमिमें गिर पडेहैं, तब मैं भोजन नहीं करूँगी ॥११॥ और मैं सारे संगको छोड कर (केवल) काष्ठको भोजन कियाकरूँगी। इस प्रकार कहकर जैसेही वह स्थितहुई कि वैसेही उसकी परीक्षाके निमित्त भगवान् श्रीकृष्णने उसके शरीरमें भूँख फैलादी और फिर पक्के कच्चे फलोंसे लदे हुए, बहुतछाया-वाले तथा विस्तृत आमके पेड उत्पन्न करदिये ॥ १२॥ ॥ १३ ॥ तब तो उस गान्धारीने खानेके निमित्त उन फलोंके लेनेकी अभिलाषा करी क्योंकि वह उस भूँखके मारे विह्वल और पीडित होरहीथी ॥ १४ ॥ इसी बीचमें उसको एक आमका फल दिखाई दिया। किन्तु उसके हाथ उस फलको स्पर्श नहीं करसके केवल दो अंगुल ऊंचा रहगया ॥ १५ ॥ तब वह देवी फलकी कामना करती अपने मुरदे बेटेपर चढगई, तोभी फलको हाथ नहीं लगासकी और वह फल तबही दो अँगुल ऊंचा होगया ॥१६॥फिर गान्धारी अपने सौ बेटी की कतार लगाकर उनके ऊपर चढी,तब फिर उसको वह आमका पेडही दिखाई नहीं दिया, बरन् वैसेही भगवान् श्रीकृष्ण आन-कर प्राप्तहुए ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णने कहा—हे देवि ! आप अपने इन बेटोंपर किस कारण चढरही हैं ? अब भोजन करलीजिये ! तब गान्धारीने उत्तर दिया। हे वासुदेव ! यह वृद्धावस्था (बुढापा) अत्यन्तही कष्टदायक है और उस कष्टसेभी दरिद्री (निर्धन) आदमीको अत्यन्त दुःखी जानना चाहिये ॥ १८ ॥ पुत्रशोक होना महान् कष्टकी बात है और उस पुत्र-शोकके कष्टसेभी अधिक कष्टदायक भूँख है (यह सुनकर श्रीकृष्णने कहा कि) सत्ययुगके बीच अस्थिमय प्राण थे अर्थात् हड्डीमें प्राण रहाकरतेथे, त्रेतामें मांसके सहारे ॥ १९ ॥ द्वापरमें मज्जाके सहारे और कलियुगके बीच अन्नमय प्राण कहेहैं अर्थात् कलियुगमें केवलमात्र अन्नके सहारेसेही प्राण रहा करतेहैं इस कारण मनुष्यको अन्नरूपी ब्रह्मका निरन्तर सेवन करना चाहिये ॥२०॥ इस अन्नके निमित्तही सारे आदमी पराई सेवा कियाकरतेहैं अन्नके निमित्तही मनुष्य मारना, घात करना, छल, कपट इत्यादि अन्यान्य महाभ-यंकर काम किया करते हैं, हे भामिनी ! पृथ्वीपर मनुष्य अन्नके निमित्तही

यह सारे काम किया करतेहैं । उनके यह वचन सुनकर गान्धारीका मानभंग होगया ॥ २१ ॥२२॥ फिर धृतराष्ट्रको पकडकर धर्मराज युधिष्ठिरके घरको चलीगई । तब वीर महाराज धृतराष्ट्रने लोहेके भीमसेनको ॥ २३ ॥ अपनी भुजाओंसे मसलदिया और इस कामसे अपनी आत्माके लिये उन्होंने दूना दुःख करलिया । इस प्रकार होनेपर फिर श्रीकृष्णने जो संग्राममें मृत्युको प्राप्त हो चुकेथे ॥ २४ ॥ उन सबकी उत्तरक्रिया अग्निसंस्कार इत्यादि पांडवोंसे कराया । तब कुरुक्षेत्रमें पाण्डवोंसमेत विजयी श्रीकृष्ण ॥ २५ ॥ तुरही बाजेसहित विजय थंभ स्थापन कराय और सिंहासनपर कपडे व गहनोंसे सुशोभित ॥ २६ ॥

पाण्डवं धर्मराजानं कृतकृत्योऽभवत्तदा ।
कृष्णः कमलपत्राक्षः सर्वानाहूय पाण्डवान् ।
मन्त्रयामास धर्मज्ञो मन्त्रं धर्मपुरःसरम् ॥ २७ ॥

पांडुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिरको विराजित करके कृतकृत्य हुए । इसके पीछे कमलपत्रकी समान नेत्रवाले श्रीकृष्णजीने सारे पाण्डवोंको बुलालिया और उनके साथ सर्वज्ञ श्रीकृष्ण धर्मसहित मन्त्रण (परामर्श) करने लगे ॥२७॥

श्रीयदुपति पदपंकरुह, निज मन मुकुर सम्हार ।
गदापर्वको तिलक यह, पूरण कियो सुखसार ॥
पढहिं सुनहिं जे प्रेमसों, पावहिं पद निर्वान ।
विजय विवेक विभूति नित, तिनहिं देहिं भगवान ॥

इति श्रीभारतसारे गदापर्वणि मुरादाबादनगरनिवासिपरमभागवत-स्वर्गीयमिश्रसुखानन्दात्मजपण्डित-कन्हैयालालमिश्रकृतभाषायां पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

इति श्रीभाषाभारतसारे गदापर्व समाप्तम् ॥

श्रीकृष्णाय नमः ।

भारतसार-भाषा ।

स्त्रीपर्व ११.

षट्सप्ततितमोऽध्यायः ७६.

श्रीवसुदेव कुमारकी, चरण रेणु शिर धार ।
भाषानारी पर्वकी, निजमति लिखत सुधार ।
मुख मुरली करमें लकुट, ग्वालबाल लै साथ ।
सदा बसहु मम हृदयमें, व्रजजीवन यदुनाथ ॥
करहु दया निजभक्तपहँ, श्रीपति दीनदयाल ।
बार बार विनवत यही, मिश्र कन्हैयालाल ॥
'सावित्री' हरिकी प्रिया, जगकी जीवनमूल ।
मिश्र कन्हैयालालपहँ, सदा रहहु अनुकूल ॥

षट्सप्ततितमेऽध्याये कुरुस्त्रीणां विलापनम् ।
द्रौपदीपुत्रनाशश्च ह्यश्वत्थाम्नेह कथ्यते ॥ १ ॥

इस छियत्तरवें अध्यायमें कौरवोंकी नारियोंका विलाप करना और अश्वत्थामाके द्वारा द्रौपदीके बालक पुत्रोंका नाश होना यह कथा कहीजातीहै॥

वैशंपायन उवाच ।

तान्दृष्ट्वा शरसंभिन्नांस्त्रुटितानप्यनेकधा ।
तेषां स्त्रियो रुदंत्यस्ताः समाजग्मुः स्वभर्तृकान् ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले-हे महाराज जनमेजय ! तदनन्तर उन योधाओंको

बाणोंद्वारा छिन्न भिन्न और भाँति भाँतिसे खंडित देखकर उनकी वे सारी नारी रोती पीटती तथा विलाप कलाप करती अपने अपने भर्ताओंके निकट आनकर प्राप्त हुई ॥ १ ॥ तहां अनेक तरहसे कटे फटे अपने भर्त्ताओंके मृतक शरीरोंको आलिंगन करके 'हे राजन्! हे प्रभो!' कहतीहुई ऊंचे स्वरसे रोदन करनेलगीं ॥ २ ॥ हे पृथ्वीपति! इस प्रकार विलाप करतेहुए उन्होंने काष्ठराशि इकट्ठी करके चिता रची और फिर अपने अपने भर्त्ताओंके साथ उन चितामें बैठकर वे सब नारियां जलगईं ॥ ३ ॥

अदग्धान्दाहयामास कृष्णः सर्वांश्च पाण्डवैः ।
श्वापदैर्भक्षितं सैन्यं निशायां कौरवं कियत् ॥ ४ ॥

और जो नहीं जलीं, उनको श्रीकृष्णने पांडवोंसे दग्ध करवादिया। फिर रातके समय कौरवोंकी कुछ सेनाको भेडियोंने खाया ॥ ४ ॥

इति श्रीभारतसारे कन्हैयालालमिश्रकृतभाषायां स्त्रीपर्व समाप्तम् ॥



श्रीकृष्णाय नमः ।

भारतसार-भाषा ।

सौप्तिकपर्व १२.

षट्सप्ततितमोऽध्यायः ७६.

आनंदनिधि घनश्यामके, हियपदपद्म मनाय ।
अब सौप्तिक पर्वकी, भाषा लिखत बनाय ॥
हे गिरिधर हे मुरलिधर, हे वृन्दावनचन्द ।
चरण शरण ली आनकर, काटहु मम भवफन्द ॥
हे व्रज जीवन साँवरे, सन्तन सदा सहाय ।
मिश्र कन्हैयालालकी, सुरति विसारि जनि जाय ॥
सब जानत प्रभुता अमित, कही न काहू जाय ।
तदपि यथामति कहइँ सब, सुमिरहिं यादवराय ॥

वैशंपायन उवाच ।

पतितो यत्र राजा वै भग्नगात्रः सुयोधनः ।
अपश्यदश्वत्थामानं रणमध्ये समागतम् ॥ ५ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! तदनन्तर जिस जगह टूटे फूटे शरीरवाला दुर्योधन पडाहुआ था, वहां उसने रणस्थलमें अश्वत्थामाको आयाहुआ देखा तब राजा दुर्योधन उसको अपने पास बुलाकर कहनेलगा ॥ ५॥ दुर्योधन बोला—हे विप्र ! मुझको रणभूमिमें एकभी पांडव मराहुआ दिखाई नहीं दिया । हे गुरुपुत्र ! इसी दुःखसे दुःखी होकर अब मेरे प्राण

निकल रहे हैं ॥ ६॥ अश्वत्थामाने उत्तर दिया, हे राजेन्द्र ! जिससे आपके प्राण सुखी होकर निकलजाँय, इस कारण मैं संग्राममें पांच पांडवोंका नाश करडालूंगा। आप मेरी इस बातको सत्यही सत्य समझिये ॥७॥ इस प्रकार कहकर अश्वत्थामा ब्राह्मण धर्मराज युधिष्ठिरके डेरेमें जापहुँचा और उस डेरेको छेदसहित देखकर उस छेदके द्वारा डेरेमें घुसगया और वहाँ सोतेहुए पांडवोंके पांच बालक पुत्रोंको मारडाला ॥ ८ ॥ और उनके शिर लेकर फिर राजा दुर्योधनके पास चला आया। तब उन शिरोंके देखतेही उस राजा दुर्योधनने शमनभवनको गमन किया अर्थात् मरगया ॥ ९ ॥ हे राजन् ! फिर जब इस समयके बीचमें द्रौपदी जागी, तब वह अपने बालक पुत्रोंको मराहुआ देखकर हाहाकार करनेलगी ॥१०॥ उस द्रौपदीके रोनेकी आवाज सुनकर तब वे पांडवभी उठबैठे, और वे पांडव कहनेलगे कि, बालकोंके मारनेका यह (कठोर) काम किसने किया ? ॥ ११ ॥ उनकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा कि हे धर्मनन्दन ! द्रौपदीके इन पांचों बेटोंको अश्वत्थामाने मारडाला है ॥ १२ ॥ इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण और अर्जुन गुरुपुत्र अश्वत्थामाकी ओर गये। उनको आया हुआ देखकर अश्वत्थामाने ॥ १३ ॥ वहाँ अर्जुनको मारडालनेके निमित्त अपना नारायणास्त्र छोडदिया। तब उस नारायणास्त्रको पार्थने ॥ १४ ॥ हे महाराज ! नारायणके वचनानुसार अपने बाणसे संहार किया। तत्पश्चात् उस संग्राममें शस्त्रहीन होकर ब्राह्मण अश्वत्थामा भागगया ॥ १५ ॥ किन्तु श्रीकृष्ण व अर्जुन भी रथमें बैठेहुए उसके पीछे लगेहुए चलेही गये और उन्होंने (लगभग) एक हजार कदम जानेके पीछेही उस अश्वत्थामाको पकडलिया ॥ १६ ॥ तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि, इस दुष्टको मारडालो ! क्योंकि बालकोंके मारनेवाले, स्त्रियोंके मारनेवाले, विश्वासघाती ॥ १७ ॥ और जो साधुका विनाश करनेवाले उनके मारडालनेमें कुछ दोष नहीं होता है। श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर अर्जुनने कहा॥ १८ ॥ अर्जुन बोले-

हे मधुसूदन ! एक तो हमने ऐसा निन्दित वही कर्म किया, जो राज्यके भोगनेके लालचसे संग्राममें गुरु द्रोणाचार्यजीका वध करडाला ॥ १९ ॥ फिर अब ब्राह्मणके वध करनेका दूसरा निन्दित कर्म कैसे करूं ? हे स्वामिन् ! बताइये तो गुरुके पुत्र अश्वत्थामाको यहां किस तरह वधूँ ? ॥ २० ॥

दोहा—तन प्रसेद विगलित वदन, चितवन नीचो नैन।
भीमसेन कर खड्ग लै, क्रोधित बोले बैन ॥

चौपाई।

अरे मूढ काटौं अब शीशा। द्रौपदि सुनत वैर लै ईशा ॥
द्रौपदि देखि दया चित आई। तब माधव सन भाष्यो गाई ॥
विप्र वधे कर दूषण भारी। बन्धन छोरि देहु वनवारी ॥
मृतक सुतनकों फेर न पइ हौं। द्विजहत्या परलोक नशैहौं ॥
सो सुनि हरि बहुत हिं सुख माना। धन्य द्रौपदी आप बखाना ॥
शीश चीरि अर्जुन मणि लीन्हों। पाछे छोड द्रोणसुत दीन्हो ॥

एवमुक्त्वा तु पार्थेन च्छिन्ना तस्य शिखा तदा।
तत्रत्यं मणिमादाय चागतः स्वस्य वीणके।
पूर्ववृत्तान्तमावेद्य द्रौपद्यै ह्यर्पितो मणिः ॥ २१ ॥

इस प्रकार कहकर अर्जुनने उस अश्वत्थामाकी चुटिया काटडाली और उसमेंसे निकलीहुई मणिको लेकर अपने डेरेमें चलेगये और पहला सारा हाल जतलाकर फिर वह मणि द्रौपदीको समर्पण करदी ॥ २१ ॥

इति श्रीभारतसारे सौप्तिकपर्वणि मुरादाबादनिवासिपण्डितकन्हैयालालमिश्रकृत-भाषायामश्वत्थाम्नो मणिहरणं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

इति श्रीभाषाभारतसारे सौप्तिकपर्व समाप्तम् ॥

श्रीकृष्णाय नमः ।

भारतसार-भाषा ।

शान्तिपर्व १३.

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ७७.

दोहा-जिनके सुमरन ध्यानतें, सिद्ध होत सब काज ।
मो सम दीन मलीन यहँ, द्रवहु गरीब निवाज ॥
मोहि सहारो आपुको, कृपा करिय भगवान ।
शान्तिपर्वको तिलक जेहि; आदर देहिं सुजान ॥

सप्तसप्ततिमेऽध्याये पाण्डवानाञ्च पृच्छताम् ।
सदसि निस्सृतं ज्ञानं भीष्मस्यास्याच्च कथ्यते ॥ १ ॥

इस सतत्तरवें अध्यायमें पांडवोंके पूछनेपर महात्मा भीष्मजीके मुखसे ज्ञान निकलना यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

एवं कार्यं च सम्पाद्य कृष्णः कमललोचनः ।
पांडवाञ्शान्तिशिक्षार्थमानयद्भीष्मसन्निधौ ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले-हे महाराज जनमेजय ! इस प्रकार कार्य संपादन करके कमललोचन भगवान् श्रीकृष्ण शान्तिकी शिक्षाके अर्थ पांडवोंको भीष्मपितामहके पास ले आये ॥ १ ॥ तब उन लेगोंने वहां भीष्मजीके निकट पहुँचकर मीठी मीठी बातोंसे उनको सन्तुष्ट किया और फिर सबजने उनकी आज्ञानुसार बैठकर सावधानीसे सेवा करनेलगे ॥ २ ॥ तब धर्मात्मा और वाणीके बोलनेमें चतुर भीष्मजीने उन पांडवोंसे कहा । भीष्मजी बोले-हे धर्मराज युधिष्ठिर! आपलोग यहाँ मेरे पास किस निमित्त

आयेहैं और क्या बात पूछना चाहते हैं ?॥३॥ क्योंकि जब मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्ण आपके निकट वर्त्तमान हैं, तब फिर आपको किस बातका संदेह है जिस लिये आप आयेहैं,अत एव हे धर्मात्मन् ! श्रीकृष्णकी भक्तिसे मैं निश्चयकरके (ज्ञान) कहूँगा ॥ ४ ॥ हे धर्मराज युधिष्ठिर ! आप मेरा वचन सुनिये । आप शान्तिमार्गमें चित्त लगादीजिये । क्योंकि यह भार्या, पुत्र, धन इत्यादि जगत् निष्फल है ॥५॥हे धर्मनन्दन ! राज्यको मृगतृष्णाकी समान जानना चाहिये अथवा स्वप्नेकी माया जानिये, इस कारण आप समानचित्तवाले और जगत्में निवास करतेहुए भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णका भजन किये जाओ ॥ ६ ॥ उन भगवान् वासुदेवकी सेवाकरनेपर सब मनुष्योंको भोग मोक्ष तथा सुख मिलजाया करताहै, जिस आदमीने पवित्र चित्तसे उनकी सेवा की है ॥ ७ ॥ उस आदमीको भगवान् श्रीहरिने सुख व सम्पदा प्रदान करीहै और चिन्तारहित अखंड सुख अर्पण किया है इसके उपरान्त हे धर्मराज युधिष्ठिर ! आप मेरा कहना कीजिये ॥ ८ ॥ यह श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्मस्वरूप, संसारके उत्पन्नकर्त्ता पालनकर्ता और संहारकरनेवाले देव हैं सो आपके धोरे बैठेहुए हैं ॥ ९॥ ब्रह्माजीके मानसपुत्र ऊर्ध्वरेतः सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमारादि और ब्रह्मके ज्ञाता, धर्मशील, इंद्रियोंके जीतनेवाले ऋषि ॥ १० ॥ (स्वर्गके) सारे देवता, मर्त्यलोकके मनुष्य, पातालवासी सब पन्नग (सर्प), दैत्य, दानव और राक्षस ॥ ११ ॥ यह सब लोग इन श्रीकृष्णजीकोही सर्वेश्वर जानकर ध्यान किया करतेहैं और यह श्रीकृष्णही श्रीमहादेव और ब्रह्माजीका स्वरूप हैं, तथा यही सृष्टिसंहारके कारण हैं ॥ १२॥ अत एव हे महामते ! आप सर्वप्रयत्नसे भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णका भजन कीजिये । क्योंकि स्थावर और जंगममें इनसे दूसरा और कोई भी विद्यमान नहीं है ॥ १३ ॥ यह भगवान् श्रीकृष्ण न स्थूल हैं, न सूक्ष्म हैं, न छोटे हैं, न मोटे हैं, न यह गलसकतेहैं और न यह मिट सकते हैं वरन् यह आनन्दस्वरूप हैं ॥ १४ ॥ अत एव

कोई भी इनको अव्यय (नाशरहित) परमात्मा नहीं समझतेहैं इस समय उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णने जो मेरे प्रति कृपा करीहै वह मैं अब आपसे कहताहूँ ॥ १५ ॥ उन्होंने मुझे क्षत्रिय समझकर मुझको क्षत्रियकी सामर्थ्य प्रदान करी । हे महाराज ! इनके संग तीनों भुवनको भोग कीजिये ॥ १६ ॥ हे धर्मराज ! आपके निमित्त मुझे ख्याति मिली जो कि, आपके सामने क्या कहूँ ? इन प्रभु श्रीकृष्णने (भारतयुद्धके बीच) अपनी प्रतिज्ञाका तत्काल त्याग कर मेरी प्रतिज्ञाको पाला ॥ १७ ॥

तद्दत्तेन च वीर्येण सन्तोषं प्राप सत्वरम् ।
मुक्तिं दातुं स्थितश्चाग्रे हृदयेन जने स्थितः ॥ १८ ॥

अपने प्रदान कियेहुए वीर्य (पराक्रम) से शीघ्रतासहित सन्तोष को प्राप्त हुए तथा मुक्ति प्रदान करनेको सम्मुख और जनोंमें अवस्थित हैं ॥ १८ ॥

इति श्रीभारतसारे शांतिपर्वणि मुरादाबादनगरनिवासिपंडितकन्हैयालाल-मिश्रकृतभाषायां भीष्मोपदेशो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

॥ इति श्रीभाषाभारतसारे शान्तिपर्व समाप्तम् ॥



श्रीकृष्णाय नमः ।

भारतसार-भाषा ।

अनुशासनपर्व १४.

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ७८.

सुमिर व्यास गणपति चरण, गिरिजा हर भगवान ।
अब अनुशासनपर्वकी, भाषा करत बखान ॥
जय कृपालु आनन्दभवन, जयति कौशलानन्द ।
मोरपक्षधर मुरलिधर, जय जय आनन्दकन्द ॥
जयति सच्चिदानन्द हरि, ईश्वर जगदाधार ।
राखो लज्जा जात निज, जय मम नाथ उदार ॥
मोतें को संसारमहँ, महा अधम यदुवीर ।
अधम उधारन नाम तव, सुनत होत उर धीर ॥
भक्त वछल तुव नाम सुनि, तब मन बडो डराय ।
सुने पतित पावन बिरद, हर्ष न हृदय समाय ॥
मिश्र कन्हैयालाल यहँ, कृपा करिय जगदीश ।
तबलगि उर भक्ती बढै, जबलगि महि अहिशीश ॥
तारा चन्दा जबतलक, रहैं गगनके माँहि ।
तब तक भक्ती आपकी, प्रभु मुहि छोडै नाँहि ॥

अष्टसप्ततिमेऽध्याये प्रजा धर्मेण पालयन् ।
धर्मो राज्यं चकारात्र भ्रातृभिस्तत्तु वर्ण्यते ॥ १ ॥

इस अठत्तरवें अध्यायमें धर्मानुसार प्रजाका पालन करतेहुए महाराज

युधिष्ठिरने भीम, नकुल, सहदेव और अर्जुन इन चारों भाइयोंसमेत राज्य किया, यह कथा वर्णन करी जातीहै ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

शान्तिं वै कथयित्वा तु पांडवेभ्यस्ततः परम् ।
शासनं कथ्यते राजंस्तेन भीष्मेण धीमता ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! बुद्धिमान् भीष्मपितामहने पांडवोंसे शान्ति कहकर फिर तिसके पीछे अनुशासन कहा ॥१॥ भीष्मजी बोले—हे धर्मराज ! युधिष्ठर ! इसके पश्चात् मैं भगवान् श्रीकृष्णके प्रसादसे वैकुंठ जानेकी कामना कररहाहूँ, अतएव आप मेरे शासन (आज्ञा)को कीजिये ॥ २ ॥ अब आप पूजोपहार (पूजाका सामान) लाकर मेरे आगे रखिये और फिर मेरे देखते हुए भगवान् श्रीकृष्णको स्थापन करके मेरी आज्ञानुसार उनकी पूजा कीजिये ॥ ३ ॥ और फिर हे धर्मनन्दन ! उनके पैरोंका धोवन जो जल चुए, उस चरणामृतसे मुझे स्नान कराइये । क्योंकि उनकी पूजासे बचेहुए पदार्थोंद्वारा मैं पावन (पवित्र) हूँगा ॥४॥ प्रथम बाणोंकी सेजपर लेटेहुए मुझको भूमिपर उतारकर भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा कीजिये और ब्राह्मणोंको बुलाकर यथाविधि उनकी भी अर्चना कीजिये ॥ ५ ॥ क्योंकि भगवान् विष्णु ब्राह्मणकी अर्चना करनेसे संतुष्ट हुआ करतेहैं और कार्त्तिक शुक्लपक्षकी एकादशीके दिन विशेष प्रकारसे ॥ ६ ॥ भगवान् विष्णु और ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये और जो व्यक्ति भोजनके लिये आनकर उपस्थित हो, उनको भोजन कराना उचित हे ॥ ७ ॥ वेदपाठ और पुराणोंका पाठ करना चाहिये । फिर सावधान होकर गीता और विष्णुसहस्रनामका पाठभी करना चाहिये ॥ ८ ॥ और सब जनोंको भगवान् श्रीहरिकी कथा सुननी चाहिये ! ब्राह्मणोंका दान देना चाहिये । एकादशीसे आरंभ करके जबतक पूर्णमासीका दिन आनकर प्राप्त होवे ॥ ९ ॥ तबतक मुक्तिकी कामना करनेवाले सर्व जनोंको महोत्सव करना चाहिये और फिर इसके पश्चात् मर्त्यलोक स्थित सारे आदमी

'जय कृष्ण!' इस प्रकारका शब्द उच्चारण करें ॥ १० ॥ इस प्रकार मैं पूर्णमासीके अन्तमें निःसन्देह मोक्ष प्राप्त करूँगा अत एव हे राजेन्द्र! आपको भी सर्वकाल भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करनी उचित है ॥ ११ ॥ आपको यह यादव श्रीकृष्ण मोक्ष तथा जयके प्रदान करनेवाले हैं, इस प्रकार यह सत्यपालक भगवान् श्रीकृष्ण आपका उद्धार करदेंगे इसमें जराभी झूँठ नहीं है ॥ १२ ॥ मैंने यह अनुशासन आपसे भक्तिपूर्वक वर्णन किया। अब अन्तमें मेरा अनशन (अन्न जल भोजन न करनेका) व्रत है, अत एव मैं मौन (चुप) धारण करताहूँ ॥ १३ ॥ यह कहकर भीष्मदेवने दृढ मौन धारण किया। तब युधिष्ठिरादि सब जनोंने 'जयकृष्ण!' इस प्रकार कहा ॥ १४ ॥ फिर उन लोगोंने श्रीकृष्णको परम विष्णु समझकर हर्षित चित्तसे प्रणाम किया। इस भाँति भीष्मजीके कथनानुसार सब काम यत्न सहित संपादन (सिद्धि) करके ॥ १५ ॥ श्रीकृष्णसमेत धर्मराज युधिष्ठिर कुरुक्षेत्रमें रहे, इसी समयमें हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णने भीमसेन इत्यादिकोंको सम्मुख करके यथायोग्य बाँटकर देश भागप्रदान किये। हे राजन्! भीम अर्जुन इत्यादि पांडव वहाँ विभाग होनेके समय ॥ १६ ॥ १७ ॥ लोभ मोहसे ग्रसित होकर स्पर्धा करनेलगे और फिर परस्पर कहने लगे कि मैंनेही सम्यक् प्रकार संग्राम कियाहै, कुछ मिथ्या गर्जनेवालोंने संग्राम नहीं किया है ॥ १८ ॥ इस तरह एक एकसे कहतेहुए वे पांडव गुस्सेमें भरगये फिर मत्सरयुक्त हो एक एकके संग लडनेकी अभिलाषा करने लगे ॥ १९ ॥ इस प्रकार उन पांडवोंको स्पर्द्धासे ईर्षा करतेहुए समझकर उनके घमंडको उतारते हुए भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हँसते कहनेलगे ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे भीमार्जुन इत्यादि वीरो! रणस्थलमें संग्राम करनेवाले आप सबजने मेरी आज्ञानुसार मेरे संग बर्बरीकके निकट चले चलिये ॥ २१ ॥ क्योंकि वह आपका युद्ध देखनेके लियेही वहां स्थित है। अतएव आप लोगोंमें जिस योधाने जैसा संग्राम किया होगा उसी प्रकार ॥ २२ ॥ वह सत्यवादी होनेके कारण सत्य सत्य बतलादेगा, झूँठ कभी नहीं बोलेगा। श्रीकृष्णकी यह

बात सुनकर भीमसेन इत्यादि ॥ २३ ॥ कृष्णके सहित वहाँ गये जहाँ भीमसेनका बलवान् पुत्र स्थित होरहाथा । वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण भीमनन्दन बर्बरीकसे कहनेलगे ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे बर्बरीक हे महावीर ! हे पांडवोंके जय देनेवाले ! आपने अपने आत्माका नाश करके पिताको राज्य प्रदान किया ॥ २५ ॥ अतएव हम जो कुछ आपसे पूछते हैं, उसका सत्यही सत्य उत्तर दीजिये मिथ्या न बोलिये अर्थात् हमको इस युद्धका वृत्तान्त बताइये कि सबसे अधिक वीरता किसकी रही ? देखिये, महीने महीने स्त्रीका जो रज उसकी योनिसे रुधिरके रूपमें बहाकरता है, उस रुधिरको विवादमें झूठ बोलनेवालेके पितर पियाकरतेहैं । भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर बर्बरीकने हँसते हँसते कहा ॥ २६ ॥ २७ ॥ बर्बरीक बोला—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे नाथ ! हे दुष्टनाशक ! मैंने तो कृत्या अर्थात् अग्निस्वरूपिणी नारीके सहित आपके सुदर्शन चक्रकाही दर्शन किया है ॥ २८ ॥ वह योधाओंको काटनेवाला चक्र और उन वीरोंको भोजन करनेवाली कृत्याका मैंने दर्शन किया है । हे नाथ ! मुझे तो दोनों दलोंके बीच वीरोंका संहारकारी दूसरा कोईभी दिखाई नहीं दिया ॥ २९ ॥ हे नाथ ! आपने जो महाभारस्वरूप वीरोंका संहार करनेवाली कृत्या नियुक्त की उसको मैंने देखा और दुष्टोंका विनाश करनेवाले (एकमात्र) चक्रका मैंने दर्शन किया ॥ ३० ॥ इसके अतिरिक्त मैंने महावीर पिता इत्यादि सब सुहृद और मित्रोंको दोनों दलोंके संग्राममें केवल गर्जना करते पटवीजनेकी नाई देखा है ॥ ३१ ॥ इस तरह कहतेहुए उस पुत्र बर्बरीकके मस्तकको भीमसेनने समुद्रमें फेंक देनेके लिये लात मारी, किन्तु वह शिर जौभरभी टससे मस नहीं हुआ ॥ ३२ ॥ हे राजेन्द्र ! तब उस कुछेक हँसतेहुए अत्यन्त अद्भुतस्वरूप बर्बरीकके परम अद्भुत मस्तकको श्रीकृष्ण हाथोंमें उठाकर खडे होगये ॥ ३३ ॥ उसी समय उस बर्बरीकके मुखसे एक तेज निकला, जो कि श्रीकृष्णके मुखमें प्रवेश करगया, तदनन्तर उस कुण्डलद्वारा विभूषित परम मनोहर इधर उधर चलित

शिरको ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णने श्रीमहादेवजीका आभूषण होनेके लिये आकाशमें पहुँचादिया । तत्पश्चात् अपने विक्रमके दाता प्रभु महादेव भगवान् श्रीकृष्णको मानकर भीम अर्जुन इत्यादि संपूर्ण पांडवोंने ईर्षा छोडदी और घमंडहीन होकर चित्तमें सन्तोष प्राप्त किया॥ ३५॥ ३६॥ और फिर उन्होंने श्रीकृष्णकी सराहना करके उनके दियेहुए देशोंको लेलिया, यह काम होचुकनेपर उसी समय भीष्म पितामह वैकुंठ जानेको उद्यत(तैयार) होगये॥ ३७॥ फिर जिस समय पूर्णमासीका दिन आनकर प्राप्त हुआ, तब भगवान् श्रीकृष्णने एक अति उत्तम विमान बुलाया (मँगाया) और उस विमानपर सवार होकर महात्मा भीष्मपितामह निर्मल वैकुंठलोकको चलेगये ॥ ३८ ॥

दोषा—परम हर्ष नारायण, भीषम तज्यो शरीर ।
भये वैकुण्ठ विष्णुपुर, परम अनन्दित धीर ॥

चौपाई ।

धर्मराज तब रोदन कीन्हा । किया कर्म सब करमन दीन्हा ॥
कीन्हा कर्म वेदव्यवहारा । शास्त्रन शान्ती कर संचारा ॥
श्रीपति कही रावसन बानी । पुरी हस्तिनापुरमहँ आनी ॥
श्रीपति संग करहु सब काजा । करहु राज्य हर्षित मन राजा ॥
मोरी भक्ति करहु मन लाई । पुहुमी राज्य करो सब भाई ॥
हमको बिदा दीजिये राई । हमहुँ द्वारिका देखो जाई ॥
हर्षित राजा करैं बखाना । गति हमारि तुमही भगवाना ॥
मैं अनाथ तुम जनके नाथा । अस्तुति करत बहुत नरनाथा ॥
पाँच बन्धु सँग द्रौपदि रानी । मिलेउ सबै सँग शारँगपानी ॥

तदनन्तर विश्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण सब पांडवोंको लेकर पताका और मंदिरोंसे शोभायमान हस्तिनापुरीको चलेगये॥ ३९ ॥वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्णने धर्मराज युधिष्ठिरको वरासन अर्थात् सुन्दर सिंहासनपर विराजमान कर शास्त्र तथा वेदके ज्ञाता और प्रवीण भांति भांतिके ब्राह्मणों सहित॥ ४० ॥

तुरही बाजेके शब्दसहित अभिषेक (राज्यतिलक) किया । उस काल नारियाँ धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिरके निकट बधाइयें बाँटनेलगीं ॥ ४१ ॥ और अपने स्वामी तथा बेटोंसमेत वरांगना (रण्डियाँ) नाचनेलगी । इस प्रकार महामहोत्सवपूर्वक राज्यमें धर्मराज युधिष्ठिरको स्थापन करके॥४२॥ हे नृपोत्तम ! श्रीकृष्णने अपने आपको कृतकृत्य (कृतार्थ) समझा। इस तरह भूमिका भारी भार उतारकर (युधिष्ठिरको) निष्कण्टक राज्य प्रदान किया ॥ ४३ ॥ धर्मके पालक और सर्व गुहाशय इन विष्णु भगवान् श्रीकृष्णने वह (अकण्टक राज्य) युधिष्ठिरको अर्पण किया और फिर कुन्ती, द्रौपदी तथा देवी उत्तरा, युधिष्ठिर ॥ ४४ ॥ गान्धारी और महाराज धृतराष्ट्र इन सबको पृथक् पृथक् सन्तुष्ट करके हे राजन् ! स्नेहयुक्त श्रीकृष्ण द्वारका पुरीको चलेगये ॥ ४५ ॥

दोहा--सात्यकि रथको साजेउ, श्रीपति भये सवार ।
सबतें बिदा होय हरि, द्वारावति पगुधार ॥

चौपाई ।

हर्षित गये देव भगवाना । द्वारावती नगर परमाना ॥
आये द्वारावति यदुराई । यदुवंशी हर्षित सब आई ॥
भारतसमर कथा प्रभु गाई । चाकित भये सुनि लोग लुगाई॥
धर्मराज राजा सुख करहीं । सदा धर्म धर्महिं हित धरहीं ॥
प्रजालोग सब करै अनंदा । जनु चकोर पाये निशि चन्दा ॥

वहाँ पहुँचकर मायाद्वारा कपटरूप धरेहुए मनुष्यकी तरह महाविष्णु भगवान् श्रीकृष्णने वसुदेव और उग्रसेनजीके आगे कौरवपांडोंके (युद्ध) की सब बातें कह सुनाई ॥ ४६ ॥

वैशंपायन उवाच ।

हस्तिनापुरमध्यस्थो राजा धर्मः प्रतापवान् ।
इन्द्राद्यैः पूज्यते नित्यं किं पुनर्मनुजैरपि ॥
धर्मेण पालयन्नुर्वीं राज्यं चक्रे युधिष्ठिरः ॥ ४७ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय ! हस्तिनापुरमें स्थित प्रतापवान् महाराज युधिष्ठिर इन्द्रादि देवताओंसे निरन्तर पूजित होतेहैं फिर मनुष्योंकी तो बातही क्या है ? इस प्रकार धर्मानुसार पृथ्वीका पालन करतेहुए महाराज युधिष्ठिर राज्य करनेलगे ॥ ४७ ॥

इति श्रीभारतसारे अनुशासनपर्वणि भाषायां युधिष्ठिरराज्याभिषेको नाम अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

ऊनाशीतितमोऽध्यायः ७९.

ऊनाशीतितमेऽध्यायेऽन्यायेन द्रव्यसंचयः ।
कुरूणामिव ऐश्वर्यं हन्तीति ह्युच्यतेऽधुना ॥ १ ॥

इस उन्नासी अध्यायमें अन्यायपूर्वक उपार्जित (संचित) द्रव्य कौरवोंके ऐश्वर्यकी तरह नाशको प्राप्त होजाताहै, अब यही कथा वर्णनकरी जाती है १॥

वैशम्पायन उवाच ।

भूतले ये महावीरा वीर्यसैन्यसमावृताः ।
अक्षौहिणीनां दशकं चाष्टौ हत्वा च केशवः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! पृथ्वीतलपर वीर्य औरसेनासे आवृत जो महावीर हैं, तिनकी अठारह अक्षौहिणी सेनाका नाश करके भगवान् केशवने ॥ १॥ धर्मानुसार धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिरको अकण्टक राज्य दिया । इस प्रकार मनमें विचार (पृथ्वीके सब राजा) डरके मारे युधिष्ठिरको कर (मालगुजारी) देनेलगे॥ २॥ और यह कहकर कि 'हमलोग आपके दास हैं' उनके चरणकमलोंमें प्रणाम करनेलगे । जनमेजयने पूछा—हे मुनिवर ! भगवान् विष्णुके दिये विक्रमवाले ऐसे महावीर ॥ ३ ॥ अपनी मृत्युको कहतेहुए किस तरह मृत्युके वशीभूत होगये ? दुर्योधन महावीर जो कि वीरोंसे घिराहुआथा ॥ ४ वहभी किस तरह नाशको प्राप्त होगया ? हे महामुने ! यह बताइये । राजा दुर्योधनको भीमसेनने कैसे मारडाला ? ॥ ५ ॥ कारण कि, जिस प्रकारका बल भीमसेनमें था वैसाही बल दुर्योध-

नमेंभी था यह दुर्योधन दिनमें नहीं सोताथा और रातमें दही नहीं खाया करताथा ॥ ६ ॥ वह गर्भवती तथा ऋतुमती नारीसे सहवास (गमन) नहीं कियाकरता और हे राजन् ! नित्य तीनों कालमें संध्याभी किया करताथा सो वह कैसे मरगया ? ॥ ७ ॥ वह राजा दुर्योधन रथी विद्यामें रथीके समान और अश्वविद्यामें प्रमाण करके भीमसेनके तुल्य था, सो वह ऐसा महावीर किस तरहसे मृत्युके वशीभूत होगया ? ॥ ८ ॥ वैशम्पायनजी बोले–हे राजेन्द्र ! सारे वीरोंके पवित्र कर्त्ता तथा योधाओंको बलदाता उस कुरुक्षेत्रमें महाराज युधिष्ठिर दीक्षित हुए ॥ ९ ॥ वहाँ पाण्डवोंकी विजय हुई और कौरवोंकी पराजय हुई, ऐसे वेदके योधा युद्धस्वरूप यज्ञमें पाठ करनेलगे ॥ १० ॥ कुरुक्षेत्रको वेदी कल्पित करके जनार्दन भगवान् श्रीकृष्णको यूपस्तंभ कल्पित करके और दुर्योधनको यज्ञका बकरा कल्पित करके सारे नरेशोंके रुधिरका वहाँ संग्रामरूपीकुंडमें होम किया ॥ ११ ॥ तथा अष्टादश अक्षौहिणी सेनाका रक्त–हुतद्रव्य अर्थात् साकल्य हुआ । इस प्रकार यह स्वाहा स्वधारहित यज्ञ संपूर्ण कियागया ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने इस भाँति करके युद्धरूपीयज्ञको संपादन किया । क्योंकि धर्मकीही विजय हुआकरतीहै, अधर्मकी नहीं हुआ करती सत्यकीही जय होतीहै. असत्यकी जय नहीं हुआकरती ॥ १३ ॥ क्षमाकीही जय हुआकरतीहै, क्रोधकी नहीं । भगवान् विष्णुकीही विजय हुआकरतीहै असुरोंकी नहीं । राज्य धर्मसेही अटल रहा करताहै और वंशभी धर्मके द्वाराही स्थिर रहता है ॥ १४ ॥ हे नृप ! जो आदमी अधर्ममें निरन्तर रहाकरते हैं उनका नाश शीघ्रही होजायाकरताहै, जो पुरुष ब्राह्मण स्त्री बालक और गायके प्रति शूर होते हैं अर्थात् इनको अपनी बहादुरी दिखायाकरतेहैं ॥ १५ ॥ तो वे लोग जिस प्रकार कच्चा पत्ता सूखकर गिरजाया करता है उसी तरह अकालमेंही कालके कराल गालमें गिरजायाकरतेहैं, और पापस्वरूप पदार्थके द्वारा पुष्टहुए वाहन और आयुध (सवारी तथा हथियार) ॥ १६ ॥ युद्धके समय इस तरह विशीर्ण होजायाकरतेहैं कि,

जिस प्रकार हवासे मेघ विथरजायाकरतेहैं । विषका नाम विष नहीं कहा है, किन्तु ब्राह्मणके धनकोही जहर नामसे कहागयाहै क्योंकि विष तो एकही आदमीका अर्थात् खानेवालेकाही नाश कियाकरताहै, किन्तु ब्रह्म-अंश बेटे और पोतोंसमेत सारे कुलका नाश करडाला करताहै ॥ १७ ॥ देखिये क्रोधयुक्त ब्राह्मणोंने समुद्रमें पीनेयोग्य पानीको खारी करडाला, क्रोधयुक्त ब्राह्मणोंनेही शापके द्वारा नारायण श्रीकृष्णकाभी भार्या पुत्र और सारे वंशसमेत नाश करडाला और क्रोधयुक्त ब्राह्मणोंनेही स्वर्गमें देवो-त्तम श्रीमहादेवजीके लिंगको उन्मूलित करदिया,अत एव ब्राह्मणोंके शापसे ग्रसित होकर किस आदमीका नाश नहीं होताहै ॥ १८ ॥

ब्रह्महत्यादिपापानां स्मरणात्क्षयकारकम् ।
सारमेतन्मयाख्यातं निर्मथ्य भारतोदधिम् ॥ १९ ॥

हे राजन् जनमेजय ! मैंने आपके लिये भारतरूपी समुद्रको मथकर स्मरण करनेसेही ब्रह्महत्या इत्यादि संपूर्ण पापोंका क्षय (नाश) करनेवाला यह सार वर्णन किया ॥ १९ ॥

इति श्रीभारतसारे अनुशासनपर्वणि मुरादाबादनगरनिवासिपंडितकन्हैयालाल-मिश्रकृतभाषायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

इति श्रीभाषाभारतसारे अनुशासनपर्व समाप्तम् ॥

श्रीकृष्णाय नमः ।

भारतसार-भाषा।

अश्वमेधपर्व १५.

अशीतितमोऽध्यायः ८०.

दोहा–वासुदेवके चरणवर, वन्दौं बारंबार ।
जिनको चिन्तन करतही, मिटत कलेश विकार ॥
पराशर सुत भागवत, व्यासदेव भगवान ।
आचारज इतिहासके, करो नाथ कल्यान ॥
कीरतकुँवरि ब्रजेश्वरी, कृपा करहु जनजान ।
यज्ञपर्वको तिलक जेहि, निजमति करहुँ बखान ॥
बार बार विनती करत, मांगत यह वरदान ।
मिश्र कन्हैयालाल कहँ, देहु सदा कल्यान ॥
अशीतितम अध्याये गोत्रहत्यानिवृत्तये ।
राजसूये धर्मकृते व्यासागमनमुच्यते ॥ १ ॥

इस अस्सीवें अध्यायमें गोत्रहत्या निवृत्त होनेके निमित्त धर्मराज युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ करना और व्यासजीका आना यह कथा कही जातीहै ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

एवं पापान्महाराज कौरवाः क्षयमागताः ।
पाण्डवा वर्द्धितास्तत्र पुण्येन हरिसेवनात् ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! इस तरह वहाँ पापके द्वारा कौरवोंका नाश होगया और पुण्य तथा भगवान् श्रीकृष्णकी सेवाके द्वारा पांडवोंकी वृद्धि हुई ॥ १ ॥ जनमेजयने कहा—हे मुनिसत्तम ! मेरे पूर्वपुरुष पितामह युधिष्ठिर महाराज किस प्रकार पवित्र हुएथे ? और किस तरहसे उन्होंने बंधु बाँधवोंसमेत अति उत्तम अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कियाथा ? ॥ २ ॥ वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! सुनिये, मैं धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिरके कर्म आपसे वर्णन करताहूँ । पितामह भीष्मजीके स्वर्ग चलेजानेपर युधिष्ठिर बहुतही दुःखितहुए ॥ ३ ॥ और द्रोणाचार्यसरीखे गुरुजनोंका नाश करके महान् दुःखित हो सोच विचार करनेलगे । उसी समय अपनी इच्छानुसार आनकर प्राप्त हुए भगवान् श्रीवेदव्यासजी महाराजसे उन्होंने आदरसहित पूछा ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! किस उपायद्वारा मेरा गोत्रनाश करनेका सारा भय (पाप) नष्ट होवेगा ? हे तपोधन ! यह आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥ व्यासजीने उत्तर दिया कि, हे कुरुनन्दन ! आप सब यज्ञोंमें उत्तम अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कीजिये । क्योंकि, हे वीर ! पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीनेभी (ब्राह्मण रावणको मारकर) यही तीन अश्वमेध यज्ञ कियेथे ॥६॥ हे वीर ! इसतरहका यज्ञ करके आप राज्यको पालन कीजिये । इसभाँति अमिततेजस्वी व्यासजीकी बात सुनकर ॥ ७ ॥

चौपाई ।

बोले धर्मराज दुखपाई । कैसे यज्ञ करौं मुनिराई ॥
यज्ञयोग मम धन कछु नाहीं । कैसे यज्ञ होय जगमाँही ॥
विनु धन धर्म कहो कस होई । धनसे हीन पुरुष जग जोई ॥
कही व्यास सुनु धर्मकुमारा । अर्थ चहो सुनु वचन हमारा ॥
पूर्व मरुत नृप यज्ञ बनाये । सुर नर मुनि जन हर्ष बढाये ॥
दिये दान बहु विध परकारा । किये अयाचक मग्र अपारा ॥
जैन सके तो ताजि नृप गऊ । गिरि हिमवन्तके बीचहि रहेऊ ॥
सो धन लेय यज्ञ प्रण ठानो । धर्मराज सब भेद बखानो ॥

द्विजधन लैके यज्ञ बनाओ। यज्ञ करत तो अपयश पाओ॥
व्यास कह्यो सुनु धर्मकुमारा। सो सब द्विजन नहीं अधिकारा॥
पूर्व दैत्यवन राजा गयऊ। ताहि विनाश देवधन लयऊ॥
दोहा—सोई धन हरिचंद नृप, दीन्हों मुनिको दान।
पाछे बलि राजा भये, सब धन ताको जान॥

धर्मपुत्र युधिष्ठिरने अत्यन्त दीनवाणीसे कहा—हे भगवन्! न तो मेरे पास धनही विद्यमान है और न कुछ सहायताही है ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा—हे नृपनन्दन! पूर्वकालमें महाराज मरुत्तने यज्ञ करके ब्राह्मणोंको बहुत सारा धन दियाथा तब उसमेंसे बहुत सारे ब्राह्मण कंचनको भूमिपर छोड-गयेथे ॥ ९ ॥ अत एव आप हिमालयमें पडेहुए उस सोनेको उठालाइये। युधिष्ठिरने कहा वे महाराज मरुत्त धन्य हैं कि जिन्होंने इसतरहका यज्ञ ॥ १० ॥ बहुत कंचनके साथ सम्पन्न किया है, जिस यज्ञमें ब्राह्मण ऐसे तृप्त हुए कि बहुतसे कंचनको छोडकर चलेगये। किन्तु मैं उस धनको किस तरहसे ले आऊं? ॥ ११ ॥ क्योंकि ब्राह्मणका धन मेरे पक्षमें अत्यन्त कष्टदायक है, इस समय तो अपने बंधु बाँधवोंके मारडालनेका एकही पाप मेरे शिरपर सवार है॥ १२॥किन्तु अब यदि मैं ब्राह्मणोंका धन लाता हूँ तो वह दूसरी महान् हत्याभी आनकर मेरे शिरपर सवार होजायगी। व्यास-जीने कहा—हे महाराज! जब कि, वे लोग उस धनको त्यागचुके तब फिर उस धनपर उनका स्वामित्व (अधिकार) नहीं रहा ॥ १३ ॥ पूर्वकालमें श्रीपरशुरामजीनेभी महात्मा कश्यपजीको भूमिदान करीथी और दैत्यराज बलिने उस भूमिको विजय करलिया फिर इस सारी भूमिको क्षत्रि-योंने जीतलिया ॥ १४ ॥ इससे ब्राह्मणोंका अधिकार जातारहाहै, अत एव दोष विद्यमान नहीं है क्योंकि जिस समयमें यह भूमि जिसको मिली उसी राजाका वह धनभी (न्यायानुसार) होचुका ॥ १५ ॥ धर्मराज युधिष्ठि-रने कहा हे भगवन्! यज्ञमें ब्राह्मणोंकी कितनी संख्या होनी चाहिये? और किस तरहकी दक्षिणा होनी उचित है? तथा उसमें घोडा कौनसा

उत्तम है ? यह सब बातें आप बतादीजिये ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा—हे युधिष्ठिर ! इस यज्ञमें बीस हजार ब्राह्मण होने चाहिये, अब इस प्रत्येक ब्राह्मणकी दक्षिणा सुनिये—एक हाथी, एक रथ और एक सुवर्ण अर्थात् आठतोले कंचनके सहित धन ॥ १७ ॥ तथा एक एक ब्राह्मणके निमित्त रत्नपुञ्जद्वारा पूजित एक हजार गौ प्रदान करनी चाहिये और कंचनका एक भार दक्षिणारूपी यज्ञमें ब्राह्मणको प्रदान करना उचित है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! यह मैंने दक्षिणाकी बात तो कहदी । अब घोडेके विषयमें कहताहूँ, श्यामकर्ण, सफेद शरीरवाला फिर पीला और सफेद पूँछवाला॥ १९॥ हे राजन् ! ऐसा घोडा चैतके महीनेकी पूर्णमासीके दिन छोडदेना चाहिये और एक वर्षपर्यन्त सब महाबली योधाओंको उसकी रक्षा करनी चाहिये उसकी ॥ २० ॥ रक्षामें पुत्र, बांधव अथवा शूरको नियुक्त करना चाहिये और जो स्वयं यज्ञ करे, उसको असिपत्र नामक व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २१ ॥ फिर वह घोडा जिस किसी स्थानमें मल मूत्र करे, वहां ब्राह्मणोंके निमित्त एक हजार गौ प्रदान करनी चाहिये और ब्राह्मणोंको होम करना उचित है ॥ २२ ॥ उस घोडेके माथेपर अपने नाम समेत तथा भलीभांतिसे लिखेहुए कंचनके पत्तेको बाँधकर यह बात कहनी चाहिये कि ॥ २३ ॥ इस घोडेको मैंने छोडदियाहै, अत एव जो कोई बली हो, वह इसको पकडलेवे, तब मैं उसको जीतकर घोडा छीनलूँगा इस मेरी बातको सत्यही सत्य समझना ॥ २४ ॥ हे वीर ! इस विधानानुसार काम होनेपर इस यज्ञकी उत्पत्ति होती है और असिपत्र व्रतके सहित यह यज्ञ महापुण्यदायक होता है ॥ २५ ॥ और हे राजेन्द्र ! आपकी सहायताके लियेभी कृष्ण भीम नकुल सहदेव तथा अर्जुन उपस्थित हैं । अत एव हे महाराज ! आप इस यज्ञको सर्वथा (सब तरहसे) साधन करसकते हैं ॥ २६ ॥ हे राजन् ! वैसा घोडाभी भद्रावती नामवाली नगरीमें विद्यमान है, जिसकी यौवनाश्वनामक वीर निरन्तर रक्षा कियाकरते हैं॥ २७॥ हे युधिष्ठिर ! वे महाराज यौवनाश्व उस घोडेको दश अक्षौहिणी सेनाके

सहित पाल रहे हैं । तब श्रीवेदव्यासजीकी कहीं यह बातें सुनकर भीमसेनने कहा ॥ २८॥ भीमसेन बोले—हे मानद ! मैं अकेलाही उस भद्रावती नाम्नी नगरीमें चलाजाऊँगा और उस महाबली राजा यौवनाश्वको परास्त (विजय) करके बलात्कार (जबर्दस्ती) उस घोडेको लेकर चलाआऊँगा ॥ २९ ॥ क्योंकि जो आदमी भगवान् वासुदेवका ध्यान करके काम किया करते हैं उनकी सर्वथा सिद्धि होती है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं जानना चाहिये ॥ ३० ॥ किन्तु भगवान् वासुदेवको भूलकर जो तप व यज्ञ इत्यादि कार्य कियेजाते हैं वह सब अभागे आदमीके विचारकी तरह विकल होजाया करते हैं ॥३१॥ यदि मैं उस घोडेको न लासकूँ तो मुझको घोर गति प्राप्त होवे । भीमसेनके इस प्रकार कहनेपर धर्मराज युधिष्ठिरने हर्षित होकर कहा ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे वत्स ! आप अकेलेही भद्रावती नगरीमें कैसे चले जाँयगे ? क्योंकि महाराज यौवनाश्व और उनके सेवक दोनोंही बलवान् हैं ॥३३॥ आप उन दुष्टोंको रणस्थलमें परास्त करके यहाँ कैसे लौटकर आवेंगे ? और वह घोडाभी महान् कठिनाईसे ग्रहण करनेके लायक है अत एव वह घोडा यहाँ किसतरहसे आवेगा ? ॥ ३४ ॥ धर्मराज युधिष्ठिरके इस प्रकार कहनेपर व्यासजीने कहा । व्यासजी बोले—भगवान् वासुदेवको स्मरण करनेसे सारे काम सिद्धि होजाँयगे ॥ ३५ ॥ इस लिये हे धर्मराज ! अब आप शीघ्रही भगवान् वासुदेवको स्मरण कीजिये । इस प्रकार कहकर वे व्यासजी अपने स्थानको प्रस्थान करगये ॥ ३६ ॥ व्यासजीके चलेजानेपर धर्मराज युधिष्ठिरने अपने मनमें उन भगवान् श्रीहरिको स्मरण किया । धर्मनन्दन युधिष्ठिर बोले--हागोविन्द ! इस समय मैं गोत्रके नाशस्वरूप पापसागरमें मग्न हो रहाहूँ ॥ ३७ ॥ हे प्रभो ! यदि आप यहाँ आगमन नहीं करेंगे तो मैं इस यज्ञको किस तरह करसकूँगा । इस प्रकार वाक्य कहकर फिर भगवान् श्रीकृष्णका कथामृत पान करनेलगे॥ ३८॥युधिष्ठिरने जैसेही उनको स्मरण किया कि, वैसेही भगवान् भी आनकर उपस्थित होगये। वैशम्पायनजीने कहा—हे जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णको आयाहुआ

देखकर पांडव अत्यन्त आनन्दित हुए॥ ३९॥ फिर यथोचित आलिंगन करके (मिलभेंटकर) अपनी अपनी कुशल कहनेलगे, तब पीछे श्रीकृष्णने कहा—हे धर्मराज ! मैं आपसे यह पूछताहूँ कि आप भयसे किस लिये विह्वल होरहे हैं?॥ ४०॥ और समरभूमिमें कौरवोंका वध करके अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करते हैं अत एव आपने यह बात कैसे सत्य मानली कि मेरी आत्मामें पाप लग रहा है ? ॥ ४१॥ हे महाराज! (यदि ऐसाही है) तो उस सारे पापोंको आप मेरे हाथमें प्रदान कीजिये मैं उन सारे पापोंको नष्ट कर डालूँगा। किन्तु हे धर्मराज ! आप आनन्दपूर्वक स्थित रहिये ॥ ४२ ॥ भीमसेनने कहा । हे स्वामिन् ! आपके करकमलमें थोडाभी पाप प्रदान करनेपर वह अधिक होजाया करता है, इस कारण हे प्रभो ! हमलोग शीघ्रता सहित यज्ञ करके आपको उसका फल समर्पण करेंगे ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! उनकी यह वाणी-सुन कर भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न मनसे भीमसेनको घोडा लेआनेके आज्ञा दी ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! तब वासुदेव श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार वृष-केतु, मेघवर्ण और महाबलवान् भीमसेन यह तीनजने निकले ॥ ४५ ॥ और निडर होकर भद्रावती नगरीकी ओर चले और राजा यौवनाश्वसे पाली जातीहुई उस नगरीमें जापहुँचे ॥ ४६ ॥ वे वहां पहुँचकर उस पुरीके बाहिरी भागमें एक पर्वतपर स्थित होगये। भीमसेनने कहा—हे पुत्रो ! हम तीनों जने इस पहाडपर उस समयतक यहाँ बैठे रहेंगे ॥ ४७ ॥ कि जबतक यहाँ अश्व-मेध यज्ञका घोडा आवेगा और उस घोडेके आजानेपर हम उसको निःसन्देह लेलेंगे और तब चलेंगे ॥ ४८ ॥ भीमसेन इस प्रकार कहतेहीथे कि इसी बीचमें वह घोडा आपहुँचा जो कि, सब अंगोंमें पूजित और महायोधाओंसे घिराहुआ था ॥ ४९ ॥ तब घटोत्कचके पुत्र महाबलवान् मेघवर्णने उस घोडेको आयाहुआ देखकर मेघके वर्णकी समान अंधकाररूपी मायाके द्वारा उस घोडेको हरण कर लिया ॥ ५० ॥ उस घोडेके हरण कालमें बडाही हाहाकार मचा । तब मेघवर्णने वहां बडे बडे योधाओंका नाश किया॥ ५१॥ और तिस पीछे उस घोडेको लेकर भीमसेनके पास चलाआया, तब जैसेही

महाबाहु भीमसेन युद्धके लिये निकले ॥७२॥ वैसेही हे महाराज ! कर्णका पुत्र संग्राम करनेको उपस्थित हुआ। इसी बीचमें वीरोंका महान् शब्द होने लगा और उन वीरोंने जाकर राजासे कहा ॥ ७३ ॥ हे राजन् ! कोई योधा आनकर आपके उस घोडेको लेगया। उनकी यह बात सुनकर राजा यौवनाश्व अपनी सेनासहित ॥ ७४ ॥ युद्ध करनेका निश्चय करके रणभूमिमें आये। वे महाराज यौवनाश्व जैसेही आये, वैसेही उन्होंनें सम्मुख बडी भुजावाले सूर्यमंडलकी समान वृषकेतुको देखा। तब वृषकेतुने कहा—हे राजन् ! आप जिस प्रकार आयेहैं, वैसेही सेनासमेत पीछेको लौटजाइये और मेरे निकट प्राणत्याग मत कीजिये ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ हे नराधिप जनमेजय ! वृषकेतुने महाराज यौवनाश्वसे इस तरह कहकर अपने बाणोंसे अनेक प्रकारके महारथी और महावीरोंको छिन्न भिन्न और आच्छादित करदिया ७७

चौपाई।

तब राजा दश बाण चलाये। कर्णपुत्र निज शरन उडाये ॥
तीन बाण राजा कहँ मारा। निष्फल कीन्है सबै भुवारा ॥
अर्द्ध चन्द्र कुँवरहि तब छाँटे। चमर छत्र गुण शारंग काटे ॥
तब राजा धनुपै गुण धारा। साठ बाण वृषकेतुहि मारा ॥
रक्तबाण कुँवरहि तब लीन्हा। तीन बाण रिसकरि तजि दीन्हा॥
सारथि अश्व तजे तब प्राना। जूझे राजा सब दल जाना ॥
अग्नि पवनके बाण चलाये। उडिकै सैन्य अग्नि जरि जाये ॥

फिर अपने बाणोंसे हाथियोंको विदारित करके पृथ्वीपर गिरादिया तथा शतशः सवार और पैदलोंको रणमें नष्ट करडाला ॥ ७८ ॥ उस काल कर्णनन्दन वृषकेतुके द्वारा वह सारी सेना इस प्रकार भग्न (छिन्न भिन्न) होगई कि जिस प्रकार भगवान् वासुदेवके स्मरण करनेसे संपूर्ण पापोंका नाश होजायाकरताहै ॥ ७९ ॥ उस सेनाके मारेजानेपर राजा यौवनाश्वने आकर कहा। यौवनाश्वने बोले—हे कर्णपुत्र आपको धन्यवाद है अब आप शीघ्रतासे मुझपर पहिले अपना प्रहार करलीजिये ॥ ८० ॥ क्योंकि मैं आपको बालक

और चपल देखकर (प्रथम) प्रहार करना नहीं चाहता हूँ. वृषकेतुने कहा। हे राजेन्द्र ! जो कि आपके बहुत बेटे हैं इस कारण आप बूढे होगयेहो ॥ ६१ ॥ फिर आप भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे हीन हैं, इसलिये मेरे चित्तसे (विचारसे) आप बालक हैं, उनकी यह बात सुनकर राजा यौवनाश्वने अपने दश बाणोंसे हँसते हँसते ॥ ६२ ॥ वृषकेतुकी छातीमें ताडना (आघात) किया किन्तु वृषकेतुने उन बाणोंको काटकर फिर अपने दश बाणोंसे राजाको मारा ॥ ६३ ॥ वे बाण राजाको भेदकर पाताल के रंध्र (छेद) में चलेगये और फिर अर्द्धचन्द्रबाणसे राजाके धनुष्यको भी काटडाला ॥ ६४ ॥ तब वे दूसरा धनुष लेकर और साधकर नमित पर्ववाले साठ बाणोंकी कतारद्वारा कर्णनंदन महाबली वृषकेतुको वींधनेलगे ॥ ६५ ॥ वे बाण उसकी छातीको फाड और उसका खून पीकर फिर लौट आये, तत्पश्चात् कर्णके वीर पुत्रने फिर एक बाणके द्वारा महाराजा यौवनाश्वकी छाती वींधडाली ॥ ६६ ॥ तब कर्णात्मज वीर वृषकेतुके द्वारा वह राजा यौवनाश्व अत्यन्त कष्टको प्राप्त हुए। इतनेहीमें भीमसेन और सुवेगका परस्पर संग्राम होनेलगा ॥ ६७ ॥ वे दोनों परस्पर घात करते हुए गदायुद्ध करने लगे इसी बीचमें मूर्च्छित राजा यौवनाश्वने ॥ ६८ ॥ मूर्च्छासे जागकर शीघ्रतासे कर्णपुत्रको नमस्कार किया और फिर दीनकी तरह होकर यह वचन कहनेलगे ॥ ६९ ॥ यौवनाश्व बोले—हे महाशय ! आप मेरे प्राणके दाता हैं, अत एव अब दूसरी बार मैं आपसे युद्ध करना नहीं चाहता। आपने मुझको जीवन दान किया है, इस कारण यह मेरा सारा राज्य आप लेलीजिये ॥ ७० ॥

चौपाई ।

हृदय लाय पुनि भेंट्यो राऊ। तुमहीं मेरे प्राण बचाऊ ॥
देश राज्य धन प्राण तुम्हारा। धन्य वीर हौ धर्म भुवारा ॥
अवरनकेर नहीं है कामा। चलो तहाँ जहँ भीम सुठाँवा ॥
यौवनाश्व और कर्णकुमारा। भीम निकट हर्षित पग धारा ॥

हे मारिष! अब मुझे आपके प्रसादसे भगवान् श्रीहरिका दर्शन मिलेगा, अब आप भीमको दिखाइये इस प्रकार कहकर जहां वे दोनों रणमें पडेथे वहाँ पहुँचे ॥ ७१ ॥ उसी समय सुवेग और भीमसेन यह दोनों जनेभी युद्ध छोडकर आगये, तब महाराज यौवनाश्वने भीमसेनकी स्तुति करी और फिर उनको शीघ्रतासे अपनी नगरीमें लिवालाये ॥ ७२॥ तब महाबलवान् भीमसेन मेघवर्ण और वृषकेतु कुछ दिनोंतक वहाँ रहकर यौवनाश्व सेना और पुत्रके सहित हस्तिनापुरमें चलेआये ॥७३ ॥ तब यौवनाश्व, वृषकेतु, मेघवर्ण श्यामकर्ण घोडेके सहित भीमसेनको आयाहुआ सुनकर महाराज युधिष्ठिर उनके सामने गये ॥ ७४ ॥ और फिर संसारके आत्मास्वरूप भगवान् श्रीकृष्णभी अपनी जीवमोहिनी माया ॥ ७५ ॥

कृत्वा जगाम राजानं संमुखं तुरगान्वितम् ।
यौवनाश्वं गृहीत्वा तु पुरं प्रावेशयद्धरिः ॥
यथायोग्यं च संश्लिष्य स्वेस्वे स्थाने न्यवेशयेत् ॥७६ ॥

विस्तार करके अश्वसहित ऐसे महाराज यौवनाश्वके सामने उपस्थित हुए और फिर श्रीहरिने उन राजा यौवनाश्वको लेकर नगरीमें प्रवेश किया तथा उनसे यथायोग्य मिल भेंटकर उनको अपने अपने स्थानमें टिकाया ७६

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां यौवनाश्वपुरप्रवेशो नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः ८१.

एकाशीतितमेऽध्याये मण्डपादश्वमुत्तमम् ।
अनुशाल्वो जहारासौ कृष्णद्वेषात्तदुच्यते ॥ १ ॥

इस इक्यासी अध्यायमें मण्डपसे उस श्रेष्ठ घोडेको अनुशाल्वने श्रीकृष्णकेद्वेष (शत्रुता) से हरण किया. यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

मासमात्रं ततः स्थित्वा कृष्णः प्रोवाच धर्मजम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

चैत्री गता पौर्णमासी धर्मराज निबोधय ॥ १ ॥

श्रीवैशम्पायनजी बोले-हे जनमेजय ! तदनन्तर उस स्थानमें श्रीकृष्णजी एक महीनेतक टिके रहकर धर्मराज युधिष्ठिरसे कहनेलगे। श्रीकृष्ण बोले-हे धर्मराज ! यह चैतके महीनेकी पूर्णमासी आनकर उपस्थित हुईहै, सो आप जानलीजिये ॥ १ ॥ फिर अभी यज्ञका समय बहुत दूर है, क्योंकि उसके ग्यारह महीने हैं, इस कारण मैं उग्रसेनसे पालित द्वारकापुरीको जाताहूँ ॥ २ ॥ हे धर्मनन्दन ! आप यौवनाश्वसमेत घोडेको पालिये । फिर हम सब जने आपके न्योता देनेपर आपके यज्ञमें आजाँयगे ॥ ३ ॥ तब तक आप यथार्थ उस यज्ञका काम करतेरहिये। वैशंपायनजी बोले-भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर धर्मनन्दन युधिष्ठिरने ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णकी इच्छा जानकर उनको चलेजानेकी आज्ञा देदी तब श्रीकृष्णके चलेजानेपर महाराज युधिष्ठिर श्रीवेदव्यासजीके सहित ॥ ५ ॥ उस घोडेका पालन करने लगे, फिर मंडप बनवाया तब धर्मात्मा युधिष्ठिरने श्रीवेदव्यासजीसे उन महाराज मरुत्तकी सुन्दर व उत्तम कथा पूछी ॥ ६ ॥ अनन्तर वहाँ कितनेंही दिनोंतक उस सुन्दर कथाको विस्तारसहित सुनतेहुए धर्मराज युधिष्ठिरसे महामुनि श्रीव्यासजीने आदरपूर्वक कहा ॥ ७ ॥ श्रीवेदव्यासजी बोले-हे पार्थ ! (पृथाके पुत्र !) इस प्रकार मैंने यह कथा आपसे वर्णन करी । अब इसके पीछे कहताहूँ कि आप भगवान् श्रीगोविन्द श्रीकृष्णको बुलाइये जिससे यज्ञ आरंभ होजायगा ॥ ८ ॥ इस प्रकार अमिततेजस्वी मुनिवर श्रीव्यासजीमहाराजकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिरने भीमसेनसे कहा ॥ ९ ॥ तब भीमपराक्रमी भीमसेन महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञा मस्तकपर धरकर श्रीकृष्णको सपरिवार बुलालानेके लिये द्वारकापुरीको गये ॥ १० ॥ तब भीमसेन वहाँ जिस समय दरवाजेपर पहुँचे तो उस काल भगवान् श्रीकृष्ण भोजन कररहेथे, अनन्तर कौतुकी श्रीकृष्णने भीमसेनको आयाहुआ समझकर ॥ ११ ॥ अनेक प्रकारसे सुखका भाव

किया फिर पापड इत्यादि चावनेका शब्द करके उन भीमसेनाको बुलाया और भाँतिभाँतिके भोजन जिमाकर उनको पान दिया ॥ १२ ॥ फिर उनको उत्तम आसनपर बैठालकर श्रीहरिने कुशल पूछी । तब भीमसेनने कुशलसमाचार कहकर प्रीतिदायक वाक्य कहा ॥ १३ ॥ हे पापरहित ! धर्मराज युधिष्ठिरके यज्ञके निमित्त आपको आना उचित है, भीमसेनकी यह बात सुनकर वाणी बोलनेमें चतुर श्रीकृष्णजीने ॥ १४ ॥ दुँदुभी (बाजा) के द्वारा ढँढोरा पिटवादिया कि, सब किसीको महाराज युधिष्ठिरके (यज्ञमें) चलना होगा, और द्वारकापुरीकी रक्षा करनेके लिये बलराम और वसुदेवजी रहेंगे ॥ १५ ॥ और नगरके अन्यान्य आदमीभी हस्तिनापुरको चलें इस प्रकार कहकर श्रीकृष्णने सब मनुष्योंको इकट्ठा किया ॥ १६ ॥ फिर सब स्वजन अर्थात् बन्धुबाँधवोंसे युक्त होकर हस्तिनापुरीमें जापहुँचे और वहाँ कालिन्दी (यमुना) के किनारे अपना डेरा लगाकर ॥ १७ ॥ और उनने सब आदमियोंको टिकाकर अपने आप वे श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिरके पास जाकर उपस्थित हुए। तब युधिष्ठिरादि सब कोई भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार उत्तमोत्तम घोडाको लेकर॥ १८॥मिलनेके लिये सबजने उनके डेरोंपर आये। तब उस स्थानमें वे सारे पांडव और यादव आदि परस्पर एक दूसरेसे मिले॥ १९॥तदनन्तर श्रीकृष्णने उस सभामें घोडेको देखकर कहा कि, यह देवकी इत्यादि सारी नारी कौतुक (तमाशा) देखनेकी कामनासे यहाँ आई हैं,इस कारण इनको तमाशा दिखाना चाहिये ॥ २० ॥ श्रीकृष्णकी कही हुई यह बात सुनकर धर्मराजने कहा। युधिष्ठिर बोले कि, आप सब वीर घोडेके चौतर्फा खडे होजाइये ॥ २१ ॥ और यहाँ ऋषिवर धौम्यको घोडेकी पूजा करनी चाहिये तथा यादवोंकी नारियोंकाभी पूजा करनी उचित है, सारी नारियोंको बलि और पूजोपहारसे इस घोडेकी पूजा करनी चाहिये ॥ २२ ॥ हे महीपति यौवनाश्व ! डेरोंकी खिडकियोंमें बैठीहुई युवतियाँ वहाँ नाचतेहुए घोडेका दर्शन करें ॥ २३ ॥ हे महाराज जनमेजय ! इसी समयमें वहाँ अनुशाल्व

आपहुँचा और उसने पहला वैर याद करके तहाँ उस घोडेको हरण किया ॥ २४ ॥ हे परीक्षित् नन्दन ! वह भाईका नाश करनेवाले श्रीकृष्णकी शत्रुताको स्मरण करके गर्जताहुआ उस घोडेको लेगया अब इसके पीछे हे राजन् ! श्रीकृष्णजीने जो कुछ किया सो सुनिये ॥२५॥ पांडवोंके घोडेको गयाहुआ देखकर भगवान् श्रीहरि अत्यन्तही लज्जित हुए और धर्मराज युधिष्ठिरसे बोले । हे प्रभो ! आप विषाद (शोक) मत. कीजिये ॥२६॥ क्योंकि मैं अनुशाल्वका नाश करके उस घोडेको मँगाऊंगा यह कहकर उन श्रीकृष्णने बीडेको हाथमें उठालिया ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! उस बीडेको हाथमें लेकर श्रीकृष्णने अपने निवासस्थानपर बैठेहुए कहा कि जो कोई शूर हो, वह इस बीडेको ग्रहण करे । तब वे सारे वीर श्रीकृष्णकी यह दारुण (कठिन) बात सुनकर ॥ २८ ॥ संकल्प विचारसे हीन हुए और आपसमें एक दूसरेको देखते हुए चुपचाप बैठेरहे तब भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र श्रीमान् प्रद्युम्नजीने पिताके हाथमें स्थित ॥ २९ ॥ उस बीडेको लेकर इस प्रकार वचन कहे। प्रद्युम्न बोले—हे पिताजी ! मैं अनुशाल्वको वध करके घोडे ले आऊंगा ॥ ३० ॥ मैं उस अनुशाल्वको उसकी सेनासमेत तिनकेकी तरह (नष्ट) करके घोडा ले आऊंगा, आप लोग मेरा पौरुष (पराक्रम) देखिये तब श्रीकृष्णने फिर कहा कि, कोई मेरे हाथके इस दूसरे बीडेको ग्रहण करो ॥ ३१ ॥ और जिसमें पौरुष अर्थात् पराक्रम हो वह प्रद्युम्नके साथ चला जावे भगवान् श्रीहरिके इस प्रकार कहनेपर महाबली वृषकेतुने ॥ ३२ ॥ तहाँ उस बीडेको ग्रहण किया और प्रद्युम्नके सामने गया और कहनेलगा । वृषकतुने कहा—महावीर अनुशाल्वको पकडकर हे गोविंद ! यदि आपके सामने नहीं लेआऊं तो हे प्रभो ! मेरी प्रतिज्ञा सुनिये । हे विभो ! ब्राह्मणीसे गमन (सहवास) करनेपर शूद्रको जो गति मिलती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यदि मैं आज घोडेको नहीं लेआऊं, तो हे कृष्ण ! मुझको वही गति प्राप्त हो.वैशम्पायनजीने कहा, यह कहकर वृषकेतुने प्रद्युम्नके सहित अनुशाल्वके साथ संग्राम करनेके लिये सेनामें प्रवेश किया॥ ३५॥

अनुशाल्वने कहा—हे प्रद्युम्न ! जिस स्थानमें तपस्वी हैं और जिस स्थानमें प्रतिव्रता नारियाँ हैं ॥ ३६ ॥ और जहाँ विवेक (ज्ञान) हीन आदमी हैं वहीं आपका पौरुष है, उसकी यह बात सुनकर प्रद्युम्नने पांच बाणोंके द्वारा ॥ ३७ ॥ युद्धमें अनुशाल्वको सहसा प्रहार किया और अनुशाल्वनेभी वेग सहित उन बाणोंको बीचमेंसेही काटडाला ॥ ३८ ॥ फिर एक बाणके द्वारा हँसते हँसते प्रद्युम्नके हृदयको विद्ध किया। इस प्रकार वह कृष्णपुत्र प्रद्युम्न छाती विंधजाने पर महान् कष्टको प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ और बाण द्वारा संग्राममें भ्रमतेहुए श्रीकृष्णके आगे जा गिरे, तब माधव श्रीकृष्ण प्रद्युम्नको इस तरह गिराहुआ देख अपने मनमें लज्जित हुये ॥ ४० ॥ तब उन्होंने पुत्र प्रद्युम्नको पैरकी ठोकर मारकर इस प्रकार कहा। श्रीकृष्ण बोले, हे मूढ ! उठ ! उठ ! यह द्वारका पुरी नहीं है ॥ ४१ ॥ जहाँ तू क्रीडा (आनन्द-विहार) किया करता है, बरन् यह (परम दारुण) युद्धका स्थान है, भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर भयंकर पराक्रमी भीमसेन ॥ ४२ ॥ प्रद्युम्नके समेत अनुशाल्वके रणमें जाकर प्राप्त हुए। तहाँ पहुँचकर भीमसेनने गदाघातसे ॥ ४३ ॥ इस संग्राममें अनुशाल्वकी बहुतसी सेनाको चकनाचूर करडाला। तब जो वीर अनुशाल्वनेभी एक बाणसे भीमसेनकी छातीमें प्रहार किया, तब वेभी श्रीकृष्णके आगे आपडे, भीमसेनको गिराहुआ देखकर श्रीकृष्ण महान् कोपयुक्त हुए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

चौपाई।

मूर्छित भीम देखि जगतारण। आये द्रुत रणको प्रभु धारण ॥
क्रोधित दारुक रथ लै आये। हाँक मारि राजा पहँ आये ॥
तब अनुशाल्व हाँककर दीन्हा। मैं ही इनको वध है कीन्हा ॥
भीम काम रणमहँ मैं मारा। अब बल देखो नन्दकुमारा ॥
तबही दैत्यराज परचारा। भारी बाण कीन्ह परहारा ॥
चारों बाण तुरंगहि लागे। रथके अश्व तुरंतहि भागे ॥
भो अदेख रथ श्रीभगवाना। तब हरिको आगमन बखाना ॥

और स्वयं युद्ध करनेको चलदिये । हे राजन् ! यह एक अद्भुत बात हुई तब श्रीकृष्णने युद्धमें हँसते हँसते अनुशाल्वको तीन बाणोंसे हनन किया ॥ ४६ ॥ फिर अनुशाल्वनेभी सहसा भगवान् माधवके उन बाणोंको अपने बाणोंसे बीचमेंही काटडाला और फिर इस प्रकार कहा ॥ ४७॥ हे कृष्ण ! आप मेरे बाणोंको नहीं काटसकतेहैं; अत एव आप मेरे बाणोंका प्रहार स्थिर (सावधान) होकर सहिये, मैं आपको अवश्यही हनन करूंगा इस विषयमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ यह कहकर उसने भगवान् वासुदेवकी छातीमें बाण मारे, जिन बाणोंके लगनेसे श्रीकृष्ण संतुष्टकी नाईं मूर्च्छित होगये ॥ ४९ ॥ तदनन्तर उस अनुशाल्वके तेजसे गोविंद श्रीकृष्णको संतुष्ट देखकर दारुक नाम सारथी जहाँ महाराज युधिष्ठिर थे, उस स्थानमें श्रीकृष्णके रथको लेगया ॥ ५० ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णको ऐसी अवस्थामें देखकर महान् हाहाकार मचगया, और पांडवोंके देखते देखते उनकी सारी सेना भाग खडी हुई ॥५१॥ वहाँ सब कोई बेटे, बाप और भाई, हितू, नातेदार, बांधव इनको परस्पर छोडकर भागगये और कुछेक आपसमें इस तरह कहनेलगे ॥ ५२ ॥ हे बेटे ! मैं तेरा बाप लडाईमें गिर गयाहूँ इस कारण तू मुझे दूसरी जगह लेजा । हे नराधिप जनमेजय ! बेटा भागकर दूरखडाहुआ अपने बापसे कहरहाहै कि ॥ ५३ ॥ मैं लडाईसे निकलतेही आपका श्राद्ध गयातीर्थमें जाकर करदूँगा । इस प्रकार वे श्रीकृष्णको मूर्छित देखकर हाहाकार करतेहुए दौडनेलगे॥५४॥ हे नृप ! श्रीकृष्णकी रुक्मिणी इत्यादि सारी पटरानियाँ भी दौडीहुई आईं और फिर श्रीकृष्णको इस अवस्थामें देखकर सत्यभामाने कहा ॥ ५५ ॥

तुम भागे केहि हेतु प्रभु, कह सति भामा बात ।
चण्डिरूप अब धरब मैं, दैत्य वधब विख्यात ॥

सत्यभामा बोली—हे स्वामिन् ! रणपंडित पुत्र प्रद्युम्न कुमारके बाणद्वारा पीडित हो युद्धसे चलेआनेपर आपने उसके शिरपर किसलिये पैरकी ठोकर मारीथी ? ॥ ५६ ॥ हे जगत्पते ! अब आप अनुशाल्वके डरसे पीडित

होकर रणस्थल छोडकर यहाँ किस भाँति चले आये ? और वे सब जनभी मृत्युके भयसे घबराकर पलायन करगये ॥ ५७ ॥

स्वयं गच्छामि किं नाथ चण्डी भूत्वा महाहवे ।
हन्तुं तमनुशाल्वं हि यस्माद्भीतः समागतः ॥ ५८ ॥

हे नाथ ! जिस अनुशाल्वके भयसे घबराकर आप यहाँ चले आयेहैं उस अनुशाल्वको वध करनेके लिये क्या मैं ही स्वयं चण्डीका रूप धारण करके संग्राममें जाऊं ? ॥ ५८ ॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां कृष्णमूर्च्छापत्तिर्नामै-काशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः ८२.

द्व्यशीतितम अध्याये नीलध्वजपराभवः ।
अर्जुनादभवत्तावत्तत्साग्रमिह वर्ण्यते ॥ १ ॥

इस बयासीवें अध्यायमें अर्जुनके द्वारा नीलध्वजका परास्त होना इस युद्धकीही आदिसे अन्ततक कथा वर्णन करी जाती है ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

इति तस्या वचः श्रुत्वा निर्ययौ भगवान्पुनः ।
अनुशाल्वं रणे योद्धुं तस्मिन् काले विशाम्पते ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! सत्यभामाकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण फिर उसकाल रणांगनमें अनुशाल्वसे संग्राम करनेके निमित्त निकलकर चले ॥ १ ॥ किन्तु वृषकेतु श्रीकृष्णसे प्रथम ही रणमें संग्राम करके और उस दैत्य अनुशाल्वके बाल पकडकर घोडेसमेत श्रीकृष्णके निकट ले आया ॥ २ ॥ वृषकेतुको इस अवस्थामें आयाहुआ देखकर जनार्दन श्रीकृष्ण परम संतुष्ट हुए और उसको धन्य ! धन्य ! कहने लगे ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णने कहा—हे कर्णनन्दन ! आप धन्य हैं, क्योंकि आपने जो प्रतिज्ञा करीथी उसको सफल किया । आपके अतिरिक्त दूसरा कौन

आदमी युद्धमेंसे इस अनुशाल्वको यहाँ लासकताहै ? ॥ ४ ॥ वृषकेतुसे इस तरह कहकर घोडे समेत अनुशाल्वको सब जनोंके आगे करके गीत वाद्य इत्यादि मांगलिक उत्सवोंद्वारा ॥ ५ ॥ कमललोचन भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुरमें चले आये । वहाँ श्रीकृष्णने सब जनोंको यथास्थानमें निवास कराया ॥ ६ ॥ भगवान् हृषीकेशको आये हुये वीस दिन बीतगये । तब चैतके महीनेकी पूर्णमासी प्राप्त होनेपर महाराज युधिष्ठिर दीक्षित हुए ॥ ७ ॥ उन्होंने द्रौपदीके सहित अत्यन्त भयंकर असिपत्र व्रतको धारण करके अपने अंगीकार किये हुए घोडेकी यथाविधि पूजा करी ॥ ८ ॥ जहाँ शयनके एक स्थानमें शयन करकेभी स्त्रीपुरुष परस्पर भोग नहीं कियाकरतेहैं, विद्वान् ऋषियोंने उसीको असिपत्रव्रतके नामसे पुकारा है ॥ ९ ॥ तदनन्तर उन महाराज युधिष्ठिरने वहाँ ब्राह्मणोंकी और घोडेकी पूजा करके गहने और चमर बँधेहुए उस घोडेको छोडदिया ॥ १० ॥ और उस घोडेका पालन (रक्षा) करनेके लिये अर्जुनको भेजा और कहा कि हे धनञ्जय ! भगवान् वासुदेवके प्रसादसे आप निर्विघ्न रहें ॥ ११ ॥ हे पार्थ ! हे मारिष ! आप रणमें पितृहीन बालक, भागतेहुए, रोगी और बूढे आदमीको मत मारना ॥ १२ ॥ धर्मराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर अर्जुनने भगवान् केशवको स्मरण किया और फिर समस्त गुरुजनोंको नमस्कार करके जो कि उत्तम सहायक थे, चलेगये ॥ १३ ॥ हे राजन् ! वे अर्जुन ब्राह्मण, गौका झुंड, होमकी सामग्री और घोडेको आगे करके माहिष्मतीपुरीमें गये ॥ १४ ॥ हे भारत ! वहां वीर नीलध्वज किलेकी रक्षा करताहै और मनुष्य नर्मदा नदीके जलको पीतेहुये लिंगाकृति श्रीमहादेवजीका दर्शन कियाकरतेहैं, तब वहाँ अर्जुनने भाँति भाँतिसे संग्राम करके उस वीर नीलध्वजको पुत्रसहित जीतलिया जिस राजा नीलध्वजने वह्निसूत्रमंत्रके द्वारा अपने जामाता (जमाई) अग्नि देवताको बुलाकर पांडवोंके दलमें भेजा । जनमेजयने पूछा कि, हे मुनिवर ! उस राजा नीलध्वजने अग्निदेवताको अपना जमाई किस तरहसे बनाया ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ और उस राजाने उन महात्मा अग्निको अपनी

कौनसी कन्या प्रदान करी ? हे द्विजोत्तम ! यह जो कुछ मैंने पूछा है, सो आप सब वर्णन कीजिये ॥ १८ ॥ वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! सुमध्यमा (पतलीकमरवाली) ज्वाला नाम्नी नीलध्वजकी रानी थी, उसने सुन्दरी और धर्ममें तत्पर रहनेवाली स्वाहानामक कन्याको उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ तब नीलध्वजने उससे पूछा कि तुझको कौनसा भर्त्ता अच्छा लगताहै ? तब उसने अपनो पिताको उत्तर दिया कि, मेरे भर्ता हव्यवाहन (अग्नि) होंगे ॥ २० ॥ सब लोग अवसान (अन्त) में जिनमें शरीर त्यागतेहैं, तब उस स्वाहाने इस प्रकार कहकर तप करनेका निश्चय किया ॥ २१ ॥ अनन्तर इस स्वाहाने वह्निसूक्त मन्त्रद्वारा इन हव्यवाहनका स्तव (स्तुति) किया, तब वे अग्नि ब्राह्मणका रूप बनाकर नीलध्वजके पास आये ॥ २२ ॥ हे राजन् ! नीलध्वजने उन ब्राह्मणरूपी अग्निकी पूजा करके फिर पूछा कि हे महाशय ! आप कौन है ? तथा कहाँसे आयेहैं ? और आप किस पदार्थको शोधतेहैं ॥ २३ ॥ ब्राह्मणने उत्तर दिया कि , हे राजन् ! शांडिल्य गोत्रमें जन्मेहुए मुझको आप कन्यार्थी जानिये अर्थात् मैं कन्या लेना चाहताहूँ अत एव आपके घरमें जो बाला विद्यमान है, सो वह कन्या मुझको प्रदान करदीजिये ॥ २४ ॥ राजाने कहा—हे स्वामिन् ! यह मेरी कन्या प्रथम पावक (अग्निदेव) को वरचुकी है, ब्राह्मणने कहा । हे राजन् ! ब्राह्मणके वेषसे आयेहुए मुझकोही आप अग्नि जानिये ॥ २५ ॥ प्रधानने कहा—हे महाराज ! हे नीलध्वज ! यह ब्राह्मण कन्या लेनेके लिये अब अग्नि बनाजाताहै, अत एव हे नाथ ! आप अग्निके अतिरिक्त यह स्वाहा कन्या दूसरे किसी व्यक्तिको मत देना ॥ २६ ॥ इसके पछि प्रधान उस ब्राह्मणसे बोला कि, हे द्विजवर ! आप मुझको अपने (अग्निदेव) होनेकी (कोई) परिक्षा दिखाइये । प्रधानके इतना कहतेही उस ब्राह्मणके मुखसे ज्वाला (आगका भभूका) निकला. जिससे उस मंत्रीकी दाढी व मूँछें जलगई । हे राजन् ! उस समय बडा विनोद (तमाशा) हुआ ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ तब कन्याकी मातृष्वसा (मौसी) महाराज नीलध्वजसे यह

वचन बोली–हे राजन् ! आप ब्राह्मणके निमित्त कन्या कदापि मत देना ॥ २९ ॥ क्योंकि यह ब्राह्मणके वेशमें कोई इन्द्रजालिक (बाजीगर) दिखाई देताहै । राजाने कहा–हे कल्याणी ! इस ब्राह्मणको अपने घर प्राप्त करो ॥ ३० ॥ हे बडी आंखोंवाली ! यह ब्राह्मण है अथवा अग्निदेवता है इस बातकी परीक्षा कीजिये । तब उस ब्राह्मणसमेत वह देवी घरको चली-गई ॥ ३१ ॥ और उस ब्रह्माणसे वहाँ जाकर बोली–हे विप्र ! अब आप मुझको शीघ्र अपनी परीक्षा दिखाइये, तब अग्निदेवताने कुपित होकर उस घरकोही फूँकदिया ॥३२॥ फिर कपडे जलजानेसे वह रंडा नंगी होकर इस प्रकार कहनेलगी कि हे महाराज ! अब आप अपने जमाईको अपने घर लिवाजाइये ॥३३॥ और इनको वह कन्या देदीजिये,क्योंकि यह निःसन्देह वडवानल (अग्नि) है । तब उसी समय राजाने उन विभावसुको बुलाकर ॥३४॥शुभ समयमें उनके साथ अपनी कन्या स्वाहाका विवाह करादिया हे राजन् ! उसी दिन यह अग्निदेवता महराज नीलध्वजके जमाई हुएहैं ॥३५॥

सोपि नीलध्वजो राजाससैन्यो निर्जितो रणे ॥
अर्जुनेन च वीरेण प्रसादात्केशवस्य च ॥ ३६ ॥

हे राजन् ! उन्ही महाराज नीलध्वजको रणमें सेनासमेत वीर अर्जुनने भगवान् केशवके प्रसादसे जीतलिया ॥ ३६ ॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां नीलध्वजनिर्जयोनाम द्व्यशीतितमोध्यायः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः ८३.

त्र्यशीतितम अध्यायेऽर्जुनेन सौभरेश्च ह ।
उद्दालककथाव्याजात्सर्वं तदिह भण्यते ॥ १ ॥

इस तिरासीवें अध्यायमें उद्दालकऋषिकी कथाके मिस अर्जुनके संग सौभरिऋषिका सारा हाल वर्णन कियाजाता है ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

**नीलध्वजस्य भार्या वै नाम्ना ज्वालेति विश्रुता ।
अर्जुनोपरि क्रुद्धा वै गता भ्रातृनिवेशनम् ॥ १ ॥**

वैशंपायनजी बोले–हे महाराज जनमेजय ! नीलध्वजकी भार्या जो कि ज्वालानामसे प्रसिद्ध थी, वह अर्जुनपर क्रोधित होकर अपने भाईके घरको चलीगई ॥ १ ॥ फिर जिस समय उसको भाईने अपने घरसे निकाल दिया, तब वह श्रीगंगाजीके शोभायमान किनारेपर जाकर जलगई और पीछे वहाँ बाणरूप होकर बभ्रुवाहनके तूण (तरकस) में अवस्थित होगई ॥ २ ॥ तब श्रीमती गंगाजीके शापानुसार अर्जुनके विनाशके कारण ऐसी उत्पन्नहुई तब उन्हीं महाराज नीलध्वजके नगरसे पार्थ (अर्जुन) का घोडा निकला ॥ ३ ॥ तदनन्तर वह घोडा एक बडी भारी चारकोशतक लम्बी चौडी शिलाको देखकर उसपर खडा होगया और वहाँ उसने अपने अंगोंको रगडना आरंभ किया ॥ ४ ॥ तब वह वज्रलेपकी तरह होकर चल नहीं सका, इस भाँति उस घोडेको जड देखकर अश्वपाल (साईस) ॥५॥ अट्टहाससहित गर्जताहुआ महाक्रोधमें भरगया और उनमें कितनोंहीने अर्जुनके आगे जाकर उस घोडेका हाल कहा ॥ ६ ॥ हे राजन् ! वह घोडा उस शिलापर बँधरहाहै इसके पीछे अब क्या उपाय कियाजावे ? उनकी यह बात सुनकर अर्जुन चिन्तामें मग्न होगये अर्थात् सो विचार करनेलगे ॥७॥ फिर अर्जुन इधर उधर देखते ज्योंही आगेको चले कि वैसेही उनको मुनिका एक उत्तम आश्रम दिखाई दिया ॥ ८ ॥ तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने ब्राह्मणश्रेष्ठ सौभरि ऋषिके पास जाकर घोडेके शिलापर लिपटजानेका कारण पूछा ॥ ९॥ सौभरिने कहा–हे राजन् ! सुनिये, मैं इसका कारण कहताहूँ, यह शिला प्रथम ब्राह्मणी अर्थात् उद्दालककी भार्या थी, और यह उद्दालक ऋषिके कहनेके विपरीत काम किया करतीथी ॥ १० ॥ एक दिन उन ब्राह्मण उद्दालकजीके पिताका श्राद्ध आनकर प्राप्त हुआ, हे राजन् ! उस दिन उनके घर कौंडिन्य नामक श्रेष्ठ सुनि ॥ ११ ॥ तीर्थयात्रा करतेहुए

कितनेही शिष्योंसमेत आनकर प्राप्तहुए उनको आया देखकर उद्दालकजी हर्षयुक्त हुए ॥ १२ ॥ और फिर जैसेही उनको अर्घ्य और आसन इत्यादि देकर ग्लानि सहित उनके सम्मुख बैठे उसी समय ऋषिवर कौंडिन्यने कहा हे विप्र ! आप किस बातका शोच करतेहैं ? और कैसा दुःख आपको वर्त्तमान है ? ॥ १३॥ उद्दालकजीने कहा—हे स्वामिन् ! अगले दिनमें यहां मेरे पिताका श्राद्ध होगा, सो उस श्राद्धको मैं कैसे करूँगा ? यही मुझको बडी भारी चिन्ताहै ॥ १४ ॥ क्योंकि हे ब्रह्मन् ! मैं जो बात अपनी प्रिया (भार्या) से कहताहूँ, तो वह उस बातके विपरीत काम कियाकरतीहै । कौण्डिन्यने कहा कि हे उद्दालकजी ! आप जरा यहाँ आइये, मैं आपके कानमें कुछ कहूँगा ॥ १५ ॥ हे विप्रर्षे ! आप जिस जिस कामको करनेकी अभिलाषा करें, उस कामको अपनी भार्यासे विपरीत कहिये अर्थात् यदि उससे भोजन कराना चाहो तो उसके विपरीत यह कहो कि आज भोजन मत बनाना । ऐसा करनेपर फिर आपके सारे काम ठीक होजाँयगे ॥ १६ ॥ और मैं गौतमजीके निकट जाकर सबेरेही यहाँ चला आऊँगा । कौण्डिन्यकी इस प्रकार बातें सुनकर उद्दालकजी परम सन्तुष्ट हुए ॥ १७ ॥ अनन्तर ब्राह्मणश्रेष्ठ उद्दालकजीने सन्तुष्टमनसे उसी प्रकार श्राद्धके सब कार्य सम्पन्न किये ॥ १८ ॥ फिर अपनी भार्यासे कहा कि, तू इन पिंडोंको लेजाकर गंगाजीमें डालआ, तब उस भार्याने उन पिंडोंको शौचकूप (अर्थात् जहाँ मलत्याग पूर्वक गुदा शुद्ध कीजातीहै) में डाल दिया । तब तो उद्दालकजीने महान् कोप युक्त होकर उस चंडिनीसे कहा ॥ १९ ॥ रे रे दुष्टे ! दुराचारिणी ! तू महाभयंकर शिला होजा । फिर जब अर्जुन आवेगा, तब (इस शापसे) तेरा छुटकारा होगा ॥ २० ॥ सो हे महाराज अर्जुन ! यह ऋषिकी शाप दीहुई वही शिलाहै इसको आप छुडाइये । इस प्रकार मुनिके कहनेपर पीछे अर्जुनने वही सब काम किया ॥ २१ ॥ तब शिलाका रूप छोडकर परम सुन्दर नारी होगई और फिर शीघ्रही अपने घोडेको छुडाय वीर हँसध्वजद्वारा भार्याकी समान पालीजातीहुई चम्पावती नगरीमें चले

गये। उन महाराज हंसध्वजके पांच पुत्र वर्णित हुए हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ यथा-सुरत, सुबल, शम, सुन्दरदर्शन और पांचवा सुधन्वा यह सब बेटे तेजस्वी थे ॥ २४ ॥ वह महाराज हंसकेतु घोडेको पकडकर इस प्रकारकी सेना समेत अर्जुनकी सेनाके सामने खडे होगये और राजाकी आज्ञानुसार दरबाजेपर (खौलते) हुए तेलका कडाव रखदिया गया ॥ २५ ॥ फिर कहने लगे कि जो आदमी पिछाडीसे आवेंगे, उन सबको मैं इस तेलके कडावमें गिराऊंगा। तब सारे वीर तो संग्राममें आपहुँचे, किन्तु सुधन्वा पिछाडीसे बाहर निकला ॥ २६ ॥ क्योंकि उसको भार्याने विरमा रक्खा था, अत एव हे महाबुद्धिमान्! आप सुनिये जैसेही अपना रथ दरबाजेपर खडा करके सुधन्वा बाहर निकला ॥ २७ ॥ कि वैसेही अपनी प्यारी नारी प्रभावतीको उसने देखा। प्रभावतीने कहा-हे प्यारे! आप प्रथम मुझको ऋतुदान देकर पीछे संग्राममें जाइये ॥ २८ ॥ क्योंकि हे वल्लभ! ऋतुदानके भंग करनेपर बालककी हत्याइत्यादिके महापापमें लिप्त होना पडता है। प्यारीका यह आग्रह (हठ) सुनकर सुधन्वा बिलमरहा अर्थात् उसने कुछ देर ठहरकर स्त्रीको ऋतुदान किया ॥ २९ ॥ तब महाराज हंसकेतुने उसके इस कुत्सित कर्मकी बात सुनकर पुत्रोंमें आगे गिननेलायक सुधन्वाको किंकरोंकी समान कराया॥ ३०॥ इसी बीचमें महाराजने पुत्रहन्ता (जल्लाद) को पुरोहित शंखके पास भेजा तब इस हालको मालूम करके लिखित क्षुभित हो काँपनेलगा ॥ ३१ ॥ उसी समय वह सुधन्वा तेलभरे कडावके निकट आगया, वहाँ न्याय अन्यायके वक्ता शंख व लिखित ये स्थितहुए ॥ ३२॥ उन्होंने सुधन्वासे कहा आप विलम्ब करके सबसे पीछे क्यों आये ? हे महावीर! आप कैसे मूर्ख हैं, क्या आप महाराजकी आज्ञाको नहीं जानतेथे ?॥ ३३ ॥ गुरुके इस प्रकार कहने पीछे सुमतिनामक मन्त्री आया। सुमतिने कहा। हे महावीर! मैं क्या करूं ? मुझको महाराजका हुकुम वर्तमान होरहा है॥ ३४॥ वैशम्पायनजी बोले-हे जनमेजय! तब उस बुद्धिमान् सुधन्वाको स्नान कराकर अत्यन्त सुन्दर कपडे पहिरायेगये तुलसीदलकी

माला धारण कराई, तब वह हरिनाम उच्चारण करनेलगा तिस समय उस सुधन्वाको उठाकर तेलके कढावमें डालदिया ॥ ३५ ॥ तदनन्तर पुरोहित शंखके सहित महाराज हँसध्वजने उस कढावमें तैरते और 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !' इस भाँति भगवान् श्रीकृष्णके पवित्र नामोंको उच्चारण करतेहुए अपने पुत्रका दर्शन किया ॥ ३६ ॥

चौपाई ।

अस्तुति कुँवर करै करजोरी । दीनदयाल शरण मैं तोरी ॥
ध्रुव प्रहलाद और पंचारी । तुम्हीं विभीषण लिये उबारी ॥
दयानिधान राखि अब लीजे । महिमा प्रकट आपनी कीजे ॥
जैसे ग्रहते गजहि छुडाओ । ताही विधि अब मोहि बचाओ ॥
वरहि देखि पुरोहित कहै । जातें अग्नि बरायि न रहै ॥
की धौं तेल तप्त नहिं आही । की कछु जरी कुँवरमुखमाही ॥
प्रोहित तबहि प्रतिज्ञा धारी । नारियल एक कराहे डारी ॥
परत कराह फूटि छितराई । प्रोहितके माथे लगजाई ॥
ता क्षण प्रोहित बहुत लजाना । भक्त द्रोह मैं कियो निदाना ॥

दोहा—धनि धनि कुँवर सुधन्वा, तोर हृदय हरिवास ।
परें कराहेमें तुझे, राख्यो श्रीनिवास ॥

तब शंखने महाराज हंसकेतुसे कहा कि हे राजन् ! क्या यह तैल जलती हुई अग्निसे (भलीभाँति) खौल नहीं गया है ? अथवा यह किसी औषधी वा मन्त्रका बल समझना चाहिये ? आपके बेटेका छल किसीको मालूम नहीं होता । इस कारण आप इस कढाओंमें एक नवीन नारियल गिरवाइये तो उसके द्वारा अग्नि और तेलकी परीक्षा होजायगी ॥ ३७ ॥ शंखकी इस प्रकार बात सुनकर लिखितने उसमें नारियल गिरवाया । किन्तु वह नारियल उस खौलतेहुए तेलसे फटकर दो टुकडे होगये ॥ ३८ ॥

एकं शंखललाटे हि द्वितीयं लिखितस्य च ।
लग्नं तदा प्रहारेण मूर्च्छितौ पतितौ भुवि ॥ ३९ ॥

उन दो टुकडोंमें एक तो शंख और दूसरा लिखितके माथेपर लगा जिसके प्रहारसे वे दोनों मूर्छित होकर भूमिपर गिरपडे ॥ ३९ ॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां शंखलिखित-
मूर्च्छनं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः ८४.

चतुरशीतितमेऽध्याये वधं पार्थः सुधन्वनः ।
चकार कृष्णकृपया तत्सविस्तरमुच्यते ॥ १ ॥

इस चौरासीवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे पार्थ (अर्जुन) ने सुधन्वाको वध किया इसका विस्तारसहित वर्णन कियाजाता है ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

ततः सुधन्वा सुस्नातः प्रययौ संगरे तदा ।
पार्थसैन्यं तदा घोरं नानाहेतिभिराहनत् ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! तदनन्तर सुधन्वा भलीभाँति स्नान करके संग्रामस्थानमें आपहुंचा, और तरह तरहके दारुण अस्त्र शस्त्रोंसे अर्जुनकी सेनाको मारने लगा ॥ १ ॥ उस काल पैदलसे पैदल, रथीसे रथी, सवारसे सवार और हाथीपर चढे हुए पुरुषोंसे संग्राम करनेलगे, इस तरह परस्पर समान प्रतिद्वन्द्वी संग्राम होनेलगा ॥ २ ॥ उस सुधन्वाने इसभाँति तुमुल युद्ध किया । तब अर्जुनने वहाँ सुधन्वाकी बहुतसी सेनाका नाश करडाला ॥ ३ ॥ तदनन्तर अर्जुनने महान् कोपपूर्वक सौ बाण धारण किये और उनको सुधन्वापर चलाया, तब सुधन्वाने हँसते हँसतेही उन सब बाणोंको काटडाला ॥४॥ और फिर अपने दश बाणोंसे हँसते हँसतेही कुन्तीपुत्र अर्जुनको ताडन किया । फिर सौ बाणोंसे हजार बाणोंसे फिर अयुत बाणोंसे और लाखों॥५॥ बाणोंसे रणमें क्रोधित होकर अर्जुनको ढकदिया और अर्जुननेभी उन बाणोंको अपने बाणोंसे तिल तिल छेदन किया ॥६॥

चौपाई ।

पारथ पावक बाण चलाये । कुँवरके दलको बहुत जराये ॥
वारुण बाण कुँवर तब मारा । अग्नि बुझी बाढी जलधारा ॥
वर्षाकी उपमा जनु पाये । पवन बाण तब पार्थ चलाये ॥
जलगयो सूखि उडन दल लागा । राजहि देखि पुत्र रिस पागा ॥
तीस बाण क्रोधित ह्वै छाँटै । ध्वज पताक पारथके काँटे ॥
कह्यो कुँवर अब पारथ कहिये । सारथि गिरे सारथी चहिये ॥

फिर अर्जुनने आग्नेयास्त्र और सुधन्वाने वारुणास्त्र चलाया । इसके पीछे अर्जुनने पवनास्त्र और कुँवर सुधन्वा बलवान्‌ने उसका संहार करनेके लिये पर्वतास्त्र चलाया ॥ ७ ॥ तब अर्जुनने ऐन्द्र शस्त्र पर्वतास्त्रका संहार करनेके लिये चलाया और सुधन्वाने उस अस्त्रको अपने तीन बाणोंसे हनन किया । इस प्रकार युद्ध होते २ अर्जुनने भगवान्‌ माधवको स्मरण किया ॥ ८ ॥ उसी समय क्लेशविनाशक भगवान्‌ श्रीकृष्ण वहाँ आनकर उपस्थित हुए । तब सुधन्वाने विजय (अर्जुन) से कहा ॥ ९ ॥ सुधन्वा बोला—हे पार्थ ! आप श्रीकृष्णके समीप मेरे मारनेकी प्रतिज्ञा कीजिये । अर्जुनने कहा—मैं अर्जुन तीन बाणोंसे तेरा मस्तक काटकर गिरादूंगा ॥ १० ॥ यदि मैं तेरे मस्तकको काटकर न गिराऊँ तो मेरे पितर नरकमें पडें, मैंने तो यह प्रतिज्ञा करली, और अब आपभी प्रतिज्ञा कीजिये ॥ ११ ॥ सुधन्वाने कहा—हे वीर ! मैं सारे राजाओंके देखते देखते आपके तीनों बाणोंको काटूँगा। यदि मैं यहाँ ऐसा न करूँ तो मुझको घोर गति प्राप्त हो ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे पांडव ! अब आप वीर सुधन्वाका पुरुषार्थ देखिये । आपकी यह प्रतिज्ञा वृथा होगी, तीन बाणोंसे सुधन्वा कैसे माराजायगा ? ॥ १३ ॥ जो ह्नो आपने यह बडा साहस किया जो सुधन्वाको तीन बाणोंसे मारनेकी आपने प्रतिज्ञा करी । यह सुनकर महाबाहु अर्जुनने धनुषपर बाणको साधा॥ १४॥ तब महाप्रतापवान्‌ अर्जुनने अपना कालाग्निकी समान बाण महान्‌ कोपपूर्वक सुधन्वाके ऊपर चलाया उस बाणको देखकर गोविंद भगवान्‌ श्रीकृ-

ष्णने उसमें अपना पुण्य मिश्रित किया ॥ १५ ॥ और कहा कि, पूर्वकालमें मैंने गोवर्द्धन पहाडको धारण करके जो गायोंकी रक्षा करी थी, उसी पुण्यके प्रतापसे यह अर्जुनका बाण निश्चय सन्नद्ध होवे ॥ १६ ॥ देवतालोगभी स्वर्गसे उन दोनोंका युद्ध देखनेके लिये आये, तब सुधन्वाने अपने बाणोंद्वारा अर्जुनके बाणको काट डाला ॥ १७ ॥ फिर अर्जुन जैसेही दूसरे बाणको नियोजित करने (चढाने) लगे कि, वैसेही उस बाणको भगवान् श्रीकृष्णने पुण्यके द्वारा अधिक भारी करदिया ॥ १८ ॥ तब फिर जिस तरह कंजूस आदमी दुःखी होकर अपने धनको छोडदिया करताहै वैसेही क्रोधपूर्वक अर्जुनने सूर्यमण्डलकी समान उस बाणको छोडा ॥ १९ ॥ तब सुधन्वाने उस बाणको देखकर अपना बाण चलाया और गर्जते गर्जते अपने बाणसे अर्जुनके बाणको तीन टुकडे करके काटडाला ॥ २० ॥ उस दूसरे बाणकेभी कट जानेपर बडा हाहाकार मचगया । तब महामना अर्जुनने अपने हाथमें बाण लिया ॥ २१ ॥ और उसके पश्चिममें ब्रह्मा, बीचमें रुद्र और मुखमें भगवान् श्रीहरिको स्थापन किया । फिर ऐसे बाणको अर्जुनने छोड दिया ॥ २२ ॥

चौपाई ।

शरपर आप चले भगवाना । पारथ सो शर करु सन्धाना ॥
कुँवर कहै जाने जगतारन । शरपर बैठे आवत मारन ॥
लाग्यो बाण कुँवरके जाई । राजपुत्र शिर काट गिराई ॥
जूझे पुत्र जगत यश पायो । हरिके चरण शीश उडि आयो ॥
कृष्णहि कृष्ण जपत शिर रहई । धाय कबन्ध अस्त्र कर गहई ॥
शीशहि गहे हँसत भगवाना । पारथ कीन्हों शर सन्धाना ॥
श्रीपति शीश हाथमहँ लीन्हा । राजाके रथ डारि सुदीन्हा ॥
तब हंसध्वज शिर लै हाथा । रोदन करत ठोकके माथा ॥
बहु विलाप तब करत भुवारा । ताको नहिं कीन्हो विस्तारा ॥
तब राजा शिर चुम्बन कीन्हा । प्रभुके रथहि डारि सो दीन्हा ॥

दोहा—हर्षित है हरि शीश गहि, दीन्हो गगन चलाय।
तहँ शिव शंकर मुंडकी, माला लीन बनाय ॥

फिर भगवान् श्रीकृष्णने अपना रामावतारका जो पुण्य था, वह उस बाणमें अर्पण किया। तब उस बाणको देखकर सुन्धवाने कहा ॥ २३ ॥ हे गोविन्द! मुझको शरण देकर अपने चरणोंमें नियुक्त कीजिये। हे मधुसूदन! आप मुझको जन्म जन्मके लिये अपना दासभाव प्रदान कीजिये ॥ २४ ॥ यह कहकर सुधन्वाने अपने अति उत्तम अर्द्धचन्द्रबाणको छोडा और उस बाणसे अर्जुनके बाणको काटडाला ॥ २५ ॥

पश्यतां सर्वभूतानां तथा कृष्णस्य पश्यतः।
मध्यतश्छेदयामास तदग्रं चाग्रतो ययौ ॥
शिरः सकुण्डलं छित्त्वा तदग्रेण मृतोऽभवत् ॥ २६ ॥

फिर सारे आदमियोंके देखतेहुए तथा भगवान् श्रीकृष्णकेभी देखते देखते सुधन्वाने उस बाणको बीचसे काटडाला। तथापि उस बाणका अग्रभाग सुधन्वाकी तरफ आगे बढा और उस बाणके अग्रभागने सुधन्वाका कुण्डलसमेत मस्तक काटडाला। जिससे वह मृत्युको प्राप्त होगया ॥ २६॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां सुधन्ववधो
नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ८५.

पञ्चाशीतितमेऽध्याये सुरथेनाभवद्रणः।
पार्थस्य बभ्रुवाहेन संगमस्त्विह कथ्यते ॥ १ ॥

इस पचासीवें अध्यायमें सुरथके संग पार्थका संग्राम होना और बभ्रुवाहनके संग अर्जुनका संगम (मिलन) यह कथा कही जाती है ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच।

सुधन्वनि हते वीरे भ्राता तस्य महाबलः।
आजगाम रणे योद्धुं हरिपार्थौ गतौ तदा ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय! जिस समय वीर सुधन्वा मारागया। तब उसका महाबली भ्राता संग्राम करनेके लिये रणमें आया। उस काल श्रीकृष्ण और अर्जुन रणसे दूर चलेगये ॥ १ ॥ फिर जब सुरथने उनको नहीं देखा तो वह कहनेलगा। सुरथने कहा—हे सबजनो! श्रीकृष्ण अर्जुन कहाँ चलेगये? सो मुझे बताओ ॥ २ ॥ वह सुरथ इस तरह कहकर पीछे सबको बाणोंसे हनन करनेलगा तब वे सब लोग उस बाणवर्षासे औंधेमुख होकर भूमिपर गिरनेलगे ॥ ३ ॥ तबतक वहाँ रणविशारद कृष्ण और अर्जुन आपहुँचे। सुरथने कहा—हे अर्जुन! आप मेरे मारनेकी निश्चित प्रतिज्ञा कीजिये ॥ ४ ॥ अर्जुनने कहा—हे वीर! मैं आपके पिताके सन्मुखही अर्थात् उनके देखते देखतेही आपको मारडालूँगा, मेरी तो यह प्रतिज्ञा है और हे मानद! अब आपभी प्रतिज्ञा कीजिये ॥ ५ ॥ (यह सुनकर सुरथने कहा कि,) मैं आपको छातीमें हनन करके आपको भूतलपर गिरादूँगा। वे दोनों वीर इस प्रकार प्रतिज्ञा करके परस्पर संग्राम करनेलगे ॥ ६ ॥ बाण, भाले, मुद्गर, मूशल और घूसोंके द्वारा उन दोनोंका परस्पर तुमुल संग्राम होनेलगा ॥ ७ ॥ तब वीर अर्जुनने सुरथका कुण्डलोंद्वारा शोभायमान मनोहर तथा मन्दमुसुकानयुक्त मस्तक भगवान् श्रीकृष्णके समीप ही काटकर गिरादिया ॥ ८ ॥ किन्तु उस मस्तकने अर्जुनकी छातीमें भी आघात करके उनको पतित किया। तब भगवान् श्रीकृष्णने वह मस्तक गरुडजीको समर्पण किया ॥ ९ ॥ अनन्तर गरुडजी उस मस्तकको लेकर गंगाके किनारे गये तब श्रीमहादेवजीने उसको देखकर पूछा कि हे खग! आप यह क्या लेआयेहैं? ॥ १० ॥ गरुडजीने उत्तर दिया कि हे स्वामिन्! यह सुरथका मस्तक है, मैं इसको तीर्थराज प्रयागमें गिरानेके लिये जारहा हूँ, यह सुनकर श्रीमहादेवजीने उस मस्तकके लिये अपने गणको भेजा ॥ ११ ॥ किन्तु हे महाराज! जो कि वह गण बलहीन था, इसलिये उससे बलीवर्द जो नन्दिकेश्वर आये तब उस बलीवर्दकी फुँकारसे गरुड भी भूमिमें लोटनेलगे ॥ १२ ॥ फिर वह गरुड जैसे ही प्रयागराजमें पहुँचे कि, वैसेही

उन्होंने वह शिर श्रीगंगाजीमें डालदिया, तब प्रयागमें गिराये जानेपर उस शिरको नदीने लेलिया ॥ १३ ॥ हे महाराज ! ऐसा होनेके पीछे हंसकेतु आया और वह जबतक रणभूमिमें आनकर प्राप्त हो उसी समय श्रीकृष्णने अर्जुनके लिये कहा ॥ १४ ॥ श्रीकृष्ण बोले, कि आप घोडोंको छोड दीजिये तथा पांडव (अर्जुन) की रक्षा कीजिये क्योंकि मैं धर्मराज युधिष्ठिरके निकट गमन करूँगा तब क्लेशविनाशक भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको पास बुलाकर ॥ १५ ॥ दोनोंमें सन्धि (सुलह) कारकर घोडेको छुडा लिया और फिर उस नगरमें कृष्णार्जुनने पांच रात्रि तक निवास किया ॥ १६ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णने धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिरके पास जाकर यह सारा हाल निवेदन किया । वैशंपायनजीने कहा—हे राजन् ! फिर वह अर्जुनका घोडा देशदेशान्तरोंमें घूमताहुआ ॥ १७ ॥ एक जगह पानी पीनेके लिये जारहाथा कि वैसेही वह घोडा घोडी होगया यह बात देखकर सब कोई बडे ही अचंभेमें होगये ॥ १८ ॥ फिर वह घोडा दूसरे तालाबमें ज्यों ही घुसनेलगा कि त्योंही वह व्याघ्र होगया और फिर दैवयोगसे (अकस्मात्) घोडा होगया ॥ १९ ॥ इस तरह वह घोडा घूमता फिरता किसी समय स्त्रीदेशमें जाकर उपस्थित हुआ । वहाँ यक्षोंकी स्त्रियोंसे युक्त प्रमिलानामवाली रानी॥२०॥चन्द्रानना अपने पराक्रमवाली उस दारुण देशमें राज्य कियाकरती थी तब उन स्त्रियों समेत रानी और अर्जुनका घोर संग्राम हुआ ॥ २१ ॥ इसी बीचमें अर्जुनने आकाशगामिनी वाणी सुनी । आकाशवाणी बोली—हे पार्थ ! आप नारीके मारडालनेकी हठ नहीं कीजिये ॥ २२ ॥ बरन् यदि आप जीवनकी अभिलाषा करतेहैं तो इस रानीसे विवाह करलीजिये आपका मंगल होगा तब उस आकाशवाणीको सुनकर अर्जुनने उसकी आज्ञानुसार यथावत् काम किया ॥ २३ ॥ फिर उन नारियोंको लेकर हस्तिनापुरमें भेजदिया, हे महाराज ! तदनन्तर अर्जुनके घोडेने अनेक देश देशान्तरोंमें भ्रमण किया॥२४॥ फिर अर्जुन अपनी सेनासमेत विभीषणकी लंकापुरीमें गये जहाँ मनुष्यभोजी अनेक निशाचर वास

करतेहैं॥ २५॥ तब उन निशाचरोंके संग महात्मा अर्जुनका दारुण संग्राम हुआ अनन्तर उन दैत्योंको जीतकर अर्जुनने बहुतसा धन लिया फिर बहुतसे घोडे और हाथियोंको ॥ २६ ॥ लेकर घोडे समेत अर्जुन निकले । हे महाराज! फिर अर्जुनका वह घोडा मणिपुरमें गया ॥ २७॥ उस नगरीका अर्जुननन्दन बभ्रुवाहन निरन्तर धर्मानुसार पालन किया करताथा, जहांके आदमी सत्य-संकल्प और नारियां पतिकी टहलनी अर्थात् पतिव्रता थीं ॥ २८ ॥ स्त्रियां अपने बालोंको पुष्पोंसे अलंकृत करती हैं, यह देखकर भगवान् वासुदेव और अर्जुन चिन्ता करने लगे ॥ २९॥ पूर्वकालमें जिसतरह विष्णुने दूसरा वैकुण्ठ स्थापित किया होय, वैसेही इस नगरको देखकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा ३०

द्वितीयमिव वैकुण्ठं स्थापितं विष्णुना पुरा ।
निरीक्ष्य तत्तथारूपं नगरं चार्जुनोऽब्रवीत् ॥
वयं तु कुशलं प्राप्ता मरालध्वजशासनात् ॥ ३१ ॥

पूर्वकालमें जिसतरह भगवान् विष्णुने दूसरा वैकुण्ठ स्थापित किया होय वैसेही इस नगरको निहारकर अर्जुनने कहा कि हे हंसध्वज ! हम सब कुशलपूर्वक आपके शासन (राज्य) में आपहुँचे हैं ॥ ३१ ॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां बभ्रुवाहनपुर-प्रवेशो नाम पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्यायः ८६.

षडशीतितमेऽध्याये बभ्रुवाहनपार्थयोः ।
युद्धेऽर्जुनबलस्यैव भंगस्तदिह वर्ण्यते ॥ १ ॥

इस छियासीवें अध्यायमें बभ्रुवाहन और पार्थ (अर्जुन) के संग्राममें अर्जुनकी सेनाका भंग होना यह कथा वर्णन की जाती है ॥ १ ॥

हंसध्वज उवाच ।

बभ्रुवाहननामाऽत्र वर्त्तते राजसत्तमः ।
यस्यास्ति हेमसंपूर्णं शकटानां सहस्रकम् ॥ १ ॥

हंसध्वज बोले—हे अर्जुन ! यहां सारे राजाओंमें उत्तम बभ्रुवाहन नामवाला राजा राज्य किया करता है। जिसके यहाँ सुवर्णसे भरेहुए एकहजार शकट (छकडे वा गाडी) हैं अथवा कंचन निर्मित हजार गाडी हैं ॥ १॥ हे पार्थ ! मैं प्रतिवर्ष अन्यान्य राजाओंसमेत कर देता हूँ यह सर्वगुणसम्पन्न बभ्रुवाहन नारायण श्रीहरिकी समान है ॥ २ ॥ इस राजाका धर्ममें तत्पर सुमतिनामसे प्रसिद्ध प्रधान (मन्त्री) है, अत एव हे अर्जुन ! आप महान् क्लेश उठाकर इस राजाको जीतसकेंगे ॥ ३ ॥ हंसध्वज इस प्रकार कहते ही थे कि उसी समय अर्जुनके किरीटके अग्र भागपर एक अत्यन्त भयंकर और मृत्युप्रदर्शक गीध आकर बैठगया ॥ ४ ॥ हे विष्णुरातनन्दन जनमेजय ! उसके द्वारा सब जने अचंभेमें होकर घबरागये। इसी बीचमें उस घोडेको बभ्रुवाहनके सेवकोंने देखा ॥ ५ ॥ तब वे सेवक अर्जुनके पुत्र बभ्रुवाहनसे जाकर बोले कि, हमलोगोंने आसानीसे घोडेको पकडलिया है तब वीर बभ्रुवाहनने अर्जुनकी सेनाको देखा ॥ ६ ॥ और वह बभ्रुवाहन उस सेनाको तिनकेकी समान जानकर निर्भय होगया और फिर अपने वीरोंद्वारा सभामें लायेहुए उस श्रेष्ठ घोडेका दर्शन किया ॥ ७ ॥ सारे अंगोंसे पूजित मनोहर तथा समस्त गहनोंसे अलंकृत उस घोडेको चित्रांगदातनय महाबली सिंहासनपर बैठेहुए बभ्रुवाहनने देखकर और पत्रिका (चिट्ठी) के पढनेसे उस घोडेको धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिरका समझकर और अर्जुनको उस घोडेका पालक (रक्षक) जानकर ॥ ८ ॥ ९ ॥ मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ अपने सुमति नामक मंत्रीसे पूछा कि मेरी महतारी अर्जुनकी भार्या है जो कि प्रथम पिताके घर नाचाकरती थी ॥ १० ॥ एक दिन तालहीन होनेपर अर्थात् तालसे डिगजानेपर मेरे महात्मा पिताने इसको शाप दिया कि तू तालभंग करनेके कारण नक्री (ग्राहणी) होकर बहुत समयपर्यन्त जलमें निवास कर। यह शाप देकर पिताने फिर कहा ॥ ११ ॥ कि जब तू दैवयोगसे अर्जुनके चरणोंमें प्राप्त होगी, तब वेही तुझको इस योनिसे छुडाकर तेरे पति होंगे इसमें कुछ भी संशय मत करना ॥ १२ ॥ इस प्रकार जब

अर्जुनके संपर्कसे मैंने सुन्दर मणिपुरमें जन्म लिया तब उस समय महतारीने मुझको त्यागकर कहा कि हे पुत्र ! तू अर्जुनके निकट चलाजा ॥ १३ ॥ किन्तु मुझको तो इसीजगह बडाभारी राज्य मिलगया सो मैं उन्हीं पांडव अर्जुनका बेटा हूँ । हे सुबुद्धे ! मैं इस समय क्या करूँ ? और किसतरह मेरा मंगल (कल्याण) होवे ? ॥ १४ ॥ मैंने विनाही सोचे समझे अपने पिताके इस घोडेको लेलिया है । मंत्री सुबुद्धिने उत्तर दिया इसमें सन्देह नहीं पहले इस बातका कुछभी विचार नहीं कियागया ॥ १५ ॥ अब एक वर्षपर्यन्त आपको ही इस घोडेका पालन करना चाहिये और हे नृपश्रेष्ठ ! इसके आतीरिक्त आप अपना धारण किया सारा राज्य और धन ॥ १६ ॥ अर्जुनको समर्पण करदीजिये और उनके निकट जाकर अपने पिताको प्रसन्न कीजिये । वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय ! मंत्री सुमतिकी ऐसी हितकर बातें सुनकर फिर वह बभ्रुवाहन ॥ १७ ॥ उस घोडेको लेकर अपनी सेनासमेत पिता अर्जुनके पास गये और अपने यहाँसे उनकी भेंटके निमित्त जो सारे पदार्थ लेगयेथे वे सब पदार्थ अर्जुनके सामने रखदिये ॥ १८ ॥ और विजय तथा आचार सहित नमस्कार करके उनके आगे खडा होगया। बभ्रुवाहनने कहा—हे पिता ! मैं उलूपीद्वारा परिवर्द्धित आपका पुत्र हूँ, अर्थात् उलूपीने मेरा पालन पोषण करके मुझको बडा किया है ॥ १९ ॥ पूर्वकालमें जब आप तीर्थयात्रा करते फिरतेथे तब आपके द्वारा मैं चित्रांगदाके गर्भसे जन्मा था इस तरह उत्पन्न हुए मुझको आप (अपने बभ्रुवाहन नामक पुत्रको) जानिये मैंने आपके घोडेको नहीं जानाथा ॥ २० ॥ हे धनंजय ! अब आप मेरे इस सारे राज्यको लेलीजिये । और मुझको आज्ञा दीजिये जब उस बभ्रुवाहनने इस तरह कहा तब अर्जुनके सेवक हे महाराज ! प्रद्युम्न इत्यादि वीरोंने यह बात देखकर अर्जुनसे कहा कि हे वीर ! अत्यन्त हितकर बातें कहतेहुए पुत्रको आप किसलिये ग्रहण नहीं करतेहैं ? ॥ २१ ॥ २२ ॥ यह पुत्र आपके पैरोंमें पडाहुआ है, अतएव हे पाण्डव ! इसको आप उठाइये फिर अमिततेजस्वी अपने पुत्रकी

महामतिको अवलोकन कीजिये ॥ २३ ॥ वैशंपायनजी बोले—हे महाराज! उन प्रद्युम्न इत्यादिकी कही यह बात सुनकर अर्जुन क्रोधयुक्त हुए और फिर उन्होंने होनहाररूपी नाशयोगके द्वारा यह निर्गुण (गुणहीन) वचन कहा ॥ २४ ॥ तू भयसे कम्पायमान देहवाला मेरा औरस पुत्र नहीं है वरन् तू चित्रांगदा नामवाली वेश्याके गर्भसे जन्मा है ॥ २५ ॥ यदि तुझमें बल नहीं था तो प्रथम मेरे घोडेको क्यों पकडा ? मेरा तो महाप्रतापी पुत्र अभिमन्यु था, जो कि सुभद्राके अंगसे उत्पन्न हुआथा ॥ २६ ॥ जिसने द्रोणाचार्य इत्यादि वीरोंको भी संग्रामसे विमुख किया अर्थात् उस अकेले षोडशवर्षीय कुमारने रणसे सप्तमहारथियोंको सात बार भगाया था और महान् विक्रमसे चक्रव्यूह भेदकर धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिरकी रक्षा की थी ॥ २७ ॥ रे मूढ ! अभी तो तू मेरे शरोंसे घायल होकर गिरा नहीं है तेरी सेनाभी नहीं मरकर गिरी है. और न मेरे बाण अभीतक तेरी छातीमें ही लगे हैं, तब फिर रे दुर्बुद्धि ! अभी से तू क्यों घबरागया ? ॥ २८ ॥ तैंने गंधर्वपतिकी कन्याको अपनी महतारी बनाया है, अतएव रे दुष्ट ! उसको तू घरघरमें नचाता गवाता फिर ॥ २९ ॥ अर्जुनकी ऐसी कडी बातें सुनकर बभ्रुवाहन महान् कुपित हुआ और उसने भेंटके सारे पदार्थ लौटा लेकर युद्ध करनेका निश्चय किया ॥ ३० ॥ इसके पीछे वीर बभ्रुवाहनने हाथी घोडे रथ पैदल और वीरोंको लेकर आगमन किया और चारों ओरसे अर्जुनको घेरलिया ॥ ३१ ॥ और तरह तरहके शस्त्रोंका प्रहार करके अर्जुनकी सेनाको घायल किया । तब पीछे सुवर्णनिर्मित सुंदर रथमें चढकर ॥ ३२॥ कार्ष्णि बभ्रुवाहनने अपने पिता अर्जुनसे कहा—हे पिताजी ! अब आप ठहरिये और मेरा पौरुष (पराक्रम) देखिये मैं दारुण बाणोंसे आपको घायल करताहूँ । इस समय आपकी रक्षा करनेवाला कौन विद्यमान है ? अतएव आपही अपना पुरुषार्थ दिखाइये ॥ ३३ ॥ हे तात ! अब आप यत्न करनेपर भी अपने घरको लौटकर नहीं जासकेंगे वरन् पितरोंके स्थानमें प्रस्थान करेंगे । वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! अनन्तर रण-

प्रिय अनुशाल्व रथमें सवार होकर उस बभ्रुवाहनके निकट आनकर प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥ उसको वीरस्थान (रणस्थल) में वीरवर बभ्रुवाहनने सेनासमेत सारे राजाओंके देखते देखते भांति भांतिके अस्त्रशस्त्रोंसे प्रहार करके पराजित किया अर्थात् जीता ॥ ३५ ॥ इसके पीछे उस अनुशाल्वको मूर्छित (बेहोश) देखकर कृष्णतनय प्रद्युम्न संग्राम करनेके निमित्त आये । किन्तु वीर बभ्रुवाहनने उनको बाण और भालोंसे बींधडाला॥ ३६॥ हे राजेन्द्र ! फिर सब किसीके देखतेहुए महान् कष्टको प्राप्तहुए वृषकेतु नीलकेतु और अपने बेटोंसमेत यौवनाश्व पुत्रसमेत हंसकेतु और आधिक बलवाले मेघवर्ण यह सबजने उस अकेले बभ्रुवाहनके संग संग्राम नहीं करसके ॥३७॥३८॥

चौपाई ।

वीर अनेकन पारथ नन्दन । पारथको दल कियो निकन्दन॥
तब अनुशाल्व चेतहुइ धाये । प्रद्युमन चेतत आगे आये ॥
हंसध्वज नीलध्वज राई । यौवनाश्वकी सैन सिधाई ॥
मेघवर्ण आदिक सरदारा । वह अकेल मणिपुरी भुआरा॥
सबै वीर मिलि शर तब छांटे । पारथपुत्र सबै शर कांटे ॥
जूझे वीर खेतते लाखन । महामार भइ सतको भाखन ॥
लडि लडि शूर तजे सब प्राना । गये अमर पुर बैठि विमाना ॥
कुँजर अश्व पदातिक नाना । जूझे बहुत न जाँय बखाना॥

दोहा—जैसे लव कुश रामतें, मारु भई विपरीत ।
पारथसुत अरु पार्थतें, युद्ध होत यह रीत ॥

तदनन्तर उन सबजनोंको बभ्रुवाहनने पांच पांच बाणोंसे हनन किया, तब वे तरह तरहके बाणोंसे घायल होकर भागने लगे ॥ ३९ ॥ उनके बीच कितने ही तो मरेहुए हाथीके शरीरोंमें घुसगये किन्तु यह जीवन रक्षाके लिये वहाँ जैसेही स्थित हुए कि वैसेही महान् भोडियें आपहुँचे ॥ ४० ॥ उन

भेडियोंने बलपूर्वक उनको हाथियोंके शरीरोंसे खेंचकर नेत्रहीन करदिया अर्थात् उनकी आँखें निकाललीं और फिर उनकी छातीको फाडकर वहाँका मांस खाया ॥४१॥ अनन्तर वहाँ शिर कटजानेपर भी युद्ध करतेहुए कितने ही योधाओंको अप्सराओंने वरलिया । इस प्रकार उस अर्जुननन्दन बभ्रुवाहनने वहाँ महाघोर संग्राम किया ॥ ४२ ॥ बभ्रुवाहनने अपनें शरजालसे अर्जुनकी सारी सेनाको पृथ्वीपर डालदिया और उससमय दोनों दलोंके वीर छिन्न भिन्न होगये ॥ ४३ ॥

तेषां किरीटरत्नानि गृहे नीतानि सर्वशः ।
रथवाजिगजद्रव्यं दासीदासगणाश्च ये ॥
ते नीता बभ्रुवाहेन भग्ने पार्थबले गृहे ॥ ४४ ॥

तब बभ्रुवाहन उन सबके किरीट तथा रत्न ले आया तथा और भी जो रथ, घोडे, हाथी, द्रव्य (पदार्थ) दासी, और दास थे, बभ्रुवाहन अर्जुनकी सेना भग्न होजानेपर उन सबको भी अपने घर ले आया ॥ ४४ ॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां बभ्रुवाहनपार्थसैन्यभंगो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः ८७.

सप्ताशीतितमेऽध्याये बभ्रुवाहेन संयुगे ।
वृषकेतोः शिरश्छिन्नं तत्सर्वमिह चोच्यते ॥ १ ॥

इस सतासीवें अध्यायमें बभ्रुवाहनके द्वारा संग्राममें वृषकेतुका मस्तक कटना यह सारी कथा वर्णन करीजाती है ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

संग्रामस्त्वभवद्राजन् बभ्रुवाहनपार्थयोः ।
यथा कुशस्य रामस्य वाजिमेधहये हृते ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय ! तदनन्तर बभ्रुवाहन और अर्जुनका इस तरह संग्राम हुआ, जिसतरह पूर्वकालमें अश्वमेध यज्ञीय घोडेके हरनेपर कुश

और श्रीरामचन्द्रजी महाराजका संग्राम हुआ था ॥ १ ॥ जनमेजयने पूछा कि हे ब्रह्मन् ! श्रीरामचन्द्रजी और उनके पुत्र लव कुशका तुमुल संग्राम कैसे हुआ ? इस बातका मुझको महान् सन्देह है, सो आप उसको छेदन कीजिये ॥ २ ॥ वैशंपायनजी बोले–हे महाराज ! भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाबलवान् रावण कुंभकर्ण और अन्यान्य राक्षसोंको जीतकर सती श्रीजानकीजीको अपने घर लेआये ॥ ३ ॥ और फिर श्रीरघुनाथजीमहाराजने नौहजार वर्षतक (अयोध्यापुरीमें) राज्य किया । पछि बहुत समय बीतजानेपर श्रीमती जानकीजी गर्भवती हुई ॥ ४ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने उनसे पूछा–हे प्रिये ! आपके मनमें क्या रुचि है ? उत्तरमें श्रीजानकीजीने निवेदन किया कि हे स्वामिन् ! मैं ऋषियोंकी सेवा करना चाहती हूँ॥५॥मेरे मनमें यही इच्छा वर्तमान है कि, श्रीभागीरथी गंगाके तटपर जाऊँ । श्रीमती जानकीजीकी यह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजी चिन्ता करनेलगे ॥६॥ उसी अवसरमें दूतके मुखकी बात सुन श्रीरामचन्द्रजी मनमें बडे दुःखी हुए और उन्होंने धोबीकी वह बात मनमें धरली ॥ ७ ॥ और लक्ष्मणजीको श्रीमती जानकीको वाल्मीकिजीके आश्रममें छोडआनेकी आज्ञा दी । तब लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीकी उस बातको हितकारी समझकर आज्ञानुसार काम किया ॥ ८॥ वाल्मीकिजीके आश्रममें त्यागीजानेपर फिर श्रीमती जानकीजीने लव और कुश नामक दो पुत्रोंको उत्पन्न किया । इसीबीचमें हे राजा ! श्रीरामचन्द्रजीभी विरक्त होगये॥९॥और तब उन्होंने ब्रह्महत्याका नाश करनेके निमित्त अश्वमेध यज्ञ किया । उसी समय श्रीरामचन्द्रजीका यज्ञीय घोडा मुनिवर वाल्मीकिजीके आश्रमपर जापहुँचा ॥ १० ॥ तहाँ

(१) किसी धोबीकी धोबन कुछ दिन दूसरेके घरमें रहकर पीछे अपने घरको पलट आई तब उसके धोबीने दपककर कहा-मैं नहिं राजा राम हूँ,जो काम करूँ यह नीच। रावणके घर रही जानकी, फिर रखली घरबीच ॥ ७॥ अर्थात् मैं रामचन्द्र राजा नहीं हूँ जिन्होंने रावणके घरमें रही जानकीको फिर अपने घरमें रखलिया । मेरे घरसे तू अभी निकल ।

महात्मा कुशने उस घोडेको बलपूर्वक पकड बाँधा, तब भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्नके संग महान् संग्राम हुआ ॥ ११ ॥ और तहाँ महात्मा कुशने इन तीनों जनोंको जीतलिया, और महात्मा लवने श्रीरामचन्द्रजीकी सेनाको पृथ्वीपर गिरादिया ॥ १२ ॥ तब तो बलवान् श्रीरामचन्द्रजी भी अपनी बडीभारी सेनासमेत वहाँ संग्राममें आये, किन्तु उनको भी उनके वीरपुत्रोंने क्षणभरमें जीतलिया ॥ १३ ॥ इसीप्रकार बभ्रुवाहनने भी अपने पिता जय (अर्जुन) को जीत लिया। हे महाराज ! आपने जो कुछ पूछा था, हे पापरहित ! वह मैंने आपसे सब वर्णन किया ॥ १४ ॥ अब मैं इसके आगे आपसे बभ्रुवाहनकी चेष्टा वर्णन करताहूँ कि, उसने रणमें जो कुछ करणी करी सो आप सब सुनिये ॥ १५ ॥ जब वीर हंसध्वजने महादारुण संग्राम किया तब वीर बभ्रुवाहनने उसके हजारों रथ तोडडाले ॥ १६॥ इस तरह हंसध्वजको वहां क्षणभरमें बभ्रुवाहने जीतलिया। फिर जिस समय महावीर महात्मा हंसकेतु गिरगया ॥ १७ ॥ तब समरमें बभ्रुवाहनसे युद्ध करनेके लिये कुमार सुवेग आया तब महाबलवान् अर्जुननन्दन बभ्रुवाहनने उसको नौ बाणोंसे हनन किया ॥१८॥ उस काल पकेहुए फलोंकी समान मस्तक गिरनेलगे तब पक्षियोंने छत्ररूपी हाथियोंके पैरोंसे मूशल कल्पित किये ॥ १९ ॥ और वहाँ भैरवने हाथियोंके सूंडकी भेरी बनाई तदनन्तर युद्धमें एकही बाणसे अर्जुननन्दन बभ्रुवाहनने उस सुवेगको भी धराशायी किया। हे महाराज ! यह एक अद्भुत बात हुई। उसी समय अर्जुन और कर्णनन्दन वृषकेतु यह दोनों जने युद्धके लिये स्थित हुए ॥ २० ॥ २१ ॥ हे राजन् ! उस समरमें जो जो निहत हुए वे सब बभ्रुवाहनकी नगरीमें गये तहां भाँति भाँतिकी औषधियोंद्वारा उलूपीने उनका पालन किया ॥२२॥ वैशंपायनजी बोले—हे महाराज ! तब वहाँ अर्जुनने महाबलवान् वृषकेतुसे कहा कि, हे भाई ! इस बलवान् बभ्रुवाहनने हमारी बहुतसी सेना मारडाली है ॥ २३ ॥ इस जगह जो जो वीर दिखाई नहीं दे रहेहैं, वे भागगये अथवा कालके कराल गालमें गिरगये सो भी मुझे नहीं मालुम। हे नृप!अर्जुन

इस प्रकार कह ही रहेथे कि तत्काल उनके सम्मुख ऐसा विघ्न उपस्थित हुआ कि॥ २४ ॥ उस अर्जुनके किरीटपर स्थित गीध पक्षी क्रूरफलकी नाईं वास करनेलगा। यह (कुलक्षण) देखकर अर्जुनने भी वृषकेतुसे कहा॥ २५॥ कि, आप महाराज युधिष्ठिर और भीमसेनके पास जाकर उनसे कहदो कि या तो मेरी मृत्यु होगी और नहीं तो मेरा अंग भंग, वा सारथी और घोडा मरेगा॥ २६ ॥ क्या आपलोग भी मेरे संग निश्चित मृत्युको प्राप्त होंगे, फिर आपलोग मरगये तो वे सेनाके सारे वीर भी मरजाँयगे, इसमें संशय नहीं है॥ २७॥ हमसे यह महा अकार्य उत्पन्न होगया क्योंकि उधर महाराज युधिष्ठिर असिपत्रव्रत धारण कियेहुये यज्ञमें दीक्षित होरहेहैं अतएव यज्ञका कार्य सम्पन्न नहीं होसकेगा ॥ २८ ॥ वृषकेतुने कहा–हे धनंजय! मैं मरनेके डरसे रणको छोडकर नहीं जाऊंगा, क्योंकि मेरे पितामह भगवान् सूर्य प्रकाशित होरहे हैं। यदि मैं संग्रामको छोडदूँगा तो वे सूर्य भी मेरे रूपसे गिरपडेंगे ॥ २९ ॥ वृषकेतुने यह कहकर अपने पाँच बाणोंद्वारा पार्थतनय बभ्रुवाहनको मारा तब तो बभ्रुवाहनने भी कर्णनन्दन वृषकेतुको बाणोंके ओघोंसे पीडित किया ॥ ३० ॥ इस प्रकार कर्णात्मज वृषकेतुने बहुत सारा युद्ध किया। तब बुद्धिमान् बभ्रुवाहनने बडी फुरतीसे ॥ ३४ ॥

दोहा–मार्‍यौ बाण जु कोप करि, बभ्रुवाहन नरेश।
काटि शीश वृषकेतुकर, कीन्ह युद्धकर शेष॥

चौपाई।

उठ्यो कबन्ध अस्त्र पुनि गहेऊ। शिर पारथके रथपर परेऊ॥
हय रथ पैदल रुंड सँभारे। देखा पार्थ रुदन संचारे॥
हा हा कर्णपुत्र धनुधारी। सुन्दर मुखपर मैं बलिहारी॥
कुन्ती नृप भाई यदुराई। इन सबतें का कहिहौं जाई॥
बहु प्रकार ते रोदन करई। मूर्छित होय धरनि पहँ परई॥
हा हरि सारथि कीन्ह हमारा। आवत को नहिं दोष तुम्हारा॥

कर्णपुत्रका वदन निहारी । मोहित भये पार्थ धनुधारी ॥
शीश गोद ले मुरछे पारथ । रसना रटैं श्रीपति सारथ ॥
देखे मूर्छित पारथ आई । बभ्रुवाहन अति सुख पाई ॥
दोहा-मूर्च्छित लखिकैं तातकहँ, धनुषहि अग्र उठाय ।
कछुक वचन कहि मणिपती, भाषत कटुक सुभाय ॥
सुनो पिताजी कानदैं, ताको करौं बखान ।
शोच किये का काम है, गहो धनुष कर बान ॥

बाणेन वृषकेतोर्हि शिरः कण्ठान्निपातितम् ।
पश्चात्कन्दुकवत्प्राप्तं पार्थस्य पादयोः शिरः ॥ ३५॥

एक ही बाण द्वारा वृषकेतुके मस्तकको कंठसे काटकर भूमिपर गिरा दिया । पीछे वह शिर गेंदकी समान उछलता अर्जुनके पैरोंमें प्राप्त हुआ॥ ३५॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां वृषकेतुवधो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥ ८७॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः ८८.

अष्टाशीतितमेऽध्याये बभ्रुवाहनघातितः ।
पुनरुज्जीवितः पार्थः कृष्णेन तदिहोच्यते ॥ १ ॥

इस अठासीवें अध्यायमें बभ्रुवाहनके हाथसे अर्जुनका माराजाना और फिर श्रीकृष्णका उनको जीवित करना यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

वृषकेतोः शिरस्तद्वै संग्रामे तु महत्तदा ।
जय केशव रामेति गोविन्देति मुदाऽवदत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले-हे महाराज जनमेजय ! तदनन्तर वह वृषकेतुका महान् मस्तक संग्राममें आनन्दपूर्वक ' जय केशव ! जय राम ! और जय गोविन्द ' कहताहुआ गिरा ॥ १ ॥ तब कुण्डलोंसे अलंकृत उस वृषकेतुके मस्तकको दोनों हाथोंसे उठाकर और उसके स्वरूपको निहारकर अर्जुन विलाप करनेलगे ॥ २ ॥ अर्जुनने कहा-हा ! महान् कष्ट

प्राप्त हुआ ! ! हे पुत्र ! आपके विना संग्राममें मुझको दारुण दुःख मिला । अब मैं जाकर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरसे क्या कहूँगा ? ॥ ३ ॥ हे वत्स ! मैंने राज्यके लालचसे आपके पिताको वध किया और अब पीछे आपको भी मरवाडाला अतएव आप क्षमा कीजिये ॥ ४ ॥ इसप्रकार कह मुक्तकंठसे रोते २ भगवान् श्रीहरिको स्मरण किया कि हे जगन्नाथ ! आप कहां चलेगये हैं ?क्या आपको मुझ दुःखीहुएकी कुछ खबर नहीं है?॥५॥ यदि आप स्मरण करनेपर भी नहीं आतेहैं तो जानपडता है कि इस समय दूसरे किसी भक्तमें आसक्त होरहे हो ? अर्जुन यह बात कह मूर्छित होकर भूमिमें गिरपडे ॥ ६ ॥ उस महासंग्राममें उस वृषकेतुका मस्तक अपनी छातीपर रखकर गिरपडे तब इन पिताको पडेहुए चित्रांगदानन्दन बभ्रुवाहनने ॥ ७ ॥ धनुषकी कोटिद्वारा पीडित कर हँसते हँसते यह वचन कहा । हे पार्थ ! मैं वेश्यासे उत्पन्न हुआ हूँ इसी कारण तोलनेके निमित्त आया हूँ ॥८॥हे तात ! वृषकेतुको तो तोलचुका हूँ,किन्तु आपको तोलना चाहताहूँ। हे वीर ! धनुष्यकी तराजूके द्वारा मेरे पुरुषार्थसे ॥ ९ ॥ जो कोई बढजायगा और जो घटेगा, उसको मैं अभी देखलूँगा । उसकी यह बात सुनकर क्रोध करके युक्त हुए महाबली अर्जुनने क्रोध किया ॥ १० ॥ तदनन्तर वृषकेतुके उस मस्तकको ऊंचा लेकर और धनुषको झुकाकर धारण किया। फिर शीघ्रतापूर्वक पुत्रसे बोले कि हे बभ्रुवाहन ! आप शूर हैं ॥ ११ ॥ क्यों कि आपने अकेले ही मेरे सारे वीरोंको मारडाला । अतएव मैं इस महासंग्राममें क्रोधपूर्वक आपका वध करके इन सबको ही छुडालूँगा॥ १२॥ हे वीर ! अब आप उसी बाणको धारण कीजिये जिससे वृषकेतुको मारा है और मुझको भी उसी बाणसे मारडालिये । यदि आपने मुझको नहीं मारा तो समझलूँगा कि आप इस भूमिपर शूर नहीं हैं ॥ १३ ॥ और मेरे उस प्रहारको जो कि पहाडका भी भेदनेवाला है आप सहन कीजिये ! यह कहकर बलवानोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने अनेक नाराच (बाण) छोडे॥ १४ ॥जिन्होंने चित्रांगदानन्दन बभ्रुवाहनकी बहुत सारी सेनाको छेदन करडाला और बभ्रु-

वाहनके शरीरको भी भेदकर अर्जुन सिंहनाद करनेलगे ॥ ॥ १५ ॥ फिर जब बभ्रुवाहनने अपनी सेनाको अर्जुनके बाणोंसे व्याप्त देखा तो उसने बाणोंका जाल छोडा जिन्होंने अर्जुनकी सेनाका नाश करडाला ॥ १६ ॥ अनन्तर सेनाका नाश करके फिर शीघ्रतासे अर्जुनको भी मूर्छित करदिया इसतरह अर्जुन और बभ्रुवाहनका घोर संग्राम हुआ ॥ १७ ॥ सारे गंधर्व और देवता यह बडाभारी तमाशा देखनेलगे। तब बभ्रुवाहनने कहा—हे अर्जुन ! पूर्वकालमें आपने द्रोणाचार्यजीसे जिस धनुषकी विद्याको सीखा था ॥ १८ ॥ उस विद्याको आप कैसे भूलगये ? और भगवान् श्रीहरि (कृष्ण) आपके निकट क्यों नहीं आये ? हे अर्जुन ! आपने मेरी पतिव्रता महतारी चित्रांगदाको दुःखी कियाहै ॥ १९ ॥ आपके उसी पापसे सारी बातोंको जाननेवाले जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण नहीं आये हैं, इस प्रकार पुत्रके कहतेहुए अर्जुनने उसको आदरपूर्वक विद्ध किया ॥ २० ॥ तब तो महाबलवान् बभ्रुवाहनने युद्ध करतेहुए उस अर्जुनका मस्तक अपने एक ही बाणसे काटकर पृथ्वीपर डालदिया ॥ २१ ॥ तब अर्जुनके मरनेपर वहाँ महान् हाहाकार मचा, अनेक रत्नोंसे संयुक्त अर्जुनका मस्तक कार्त्तिकमासकी एकादशी सोमवार उत्तरानामक नक्षत्र और संध्या समय 'वासुदेव' उच्चारण करताहुआ छिन्न हुआ ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसीबीचमें हे महाराज ! महाबली अर्जुननन्दन बभ्रुवाहन रत्नोंसे विभूषित परकोटोंवाली अपनी परम मनोहर मणिपुर नगरीमें गया ॥ २४ ॥ वहाँ सिंहासनपर विराजमान होकर भाट चारण इत्यादिकोंसे स्तुतिको प्राप्त होनेलगा। हे नृपोत्तम ! तब देवर्षि नारदजीके मुखसे युद्ध और अर्जुनके मरनेका समाचार सुनकर चित्रांगदा मणिपुरसे आई इसी बीचमें चित्रांगदाके सामने नगरकी लुगाइयोंने कहा ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे देवि ! आप धन्य हैं क्योंकि आपने वीर और महाबलवान् पुत्र उत्पन्न किया है जिस पुत्रने पृथ्वीके चिरविजयी अर्जुनका नाश किया ॥ २७ ॥ उन लुगाइयोंकी यह बात सुनकर वस्त्रालंकारसे अलंकृत पुत्रकी आरती करनेके निमित्त आनकर

वह गिरगई ॥ २८ ॥ ऐसा होनेपर बभ्रुवाहनके महलमें बडा ही हाहाकार मचगया। तब बभ्रुवाहनने अपनी माताके आगे वह सब निवेदन किया ॥ २९ ॥ तब वह बोली–तुमने पूर्वमें जो कुछ किया वह मैं सब सुनचुकी हूँ तब वह चित्रांगदा उलूपीके सहित अर्जुनके समीप आई ॥ ३० ॥ वहाँ अर्जुन और वृषकेतुके मस्तकको ग्रहण करके वह चित्रांगदा उलूपीसमेत स्थित हो अत्यन्त रुदन करनेलगी ॥ ३१ ॥ तब माताको रोतीहुई देखकर वीर बेटा मरनेको तैयार हुआ। उलूपी बोली–हे पुत्र ! हे पिताके मारनेवाले! हे दुर्बुद्धि ! तू क्षणभर प्रतीक्षा कर ॥ ३२ ॥ अब यहाँ वह उपाय करना चाहिये, जिससे धनंजय जीवित होजाय । हे पुत्र ! पातालनगरीमें संजीवकनामक मणि विद्यमान है हे पुत्र ! उसको तू लेआ जिससे अर्जुन जीवित होजाय । महाबलवान् बभ्रुवाहन उलूपीकी यह बात सुनकर ॥ ३४ ॥ पुण्डरीकके बलसहित नागलोकको चलागया । बभ्रुवाहनने वहाँ पहुँचकर मध्वस्त्र (शहतका अस्त्र) चलाया जिससे वहाँके सारे सांप मधुमय होगये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर बभ्रुवाहनने पिपीलिकास्त्र छोडा तब सर्पोंने उस अस्त्रसे व्यथित होकर बभ्रुवाहनकी माँगीहुई मणि उसको समर्पण करदी तब फिर उसको लेकर अर्जुननन्दन अपने घरको लौट आया ॥ ३६ ॥ अनंतर जैसे ही यह बभ्रुवाहन अपने घरको आये कि, उसी समय धृतराष्ट्र नामक सर्पके दो पुत्र वहाँ आये और अर्जुन तथा वृषकेतु दोनों जनोंका मस्तक लेकर चलेगये ॥ ३७ ॥ वह दोनों शिरोंको नागलोकमें लेआये । यह एक अद्भुत बात हुई । इसी समयके बीचमें उधर कुन्ती (अर्जुनकी माता) ने सुपना देखा ॥ ३८ ॥ अनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने उसके भावको सोचविचारकर अपने वाहन गरुडजीको स्मरण किया, तब गरुडजी याद करते ही आनकर प्राप्त हुए । तब क्लेशनाशक भगवान् श्रीकृष्ण उनपर सवार होकर ॥ ३९ ॥ यशोदा, देवकी, भीम और कुन्ती यह सबजनसे वहाँ अर्जुनको देखनेके लिये गये ॥ ४० ॥ इन लोगोंने वहाँ वृषकेतुके मस्तकहीन कलेवरको पडाहुआ देखा और इसीप्रकार अर्जुनके भी

धडको देखा ॥ ४१ ॥ तब महाबलवान् वीर बभ्रुवाहनने इन श्रीकृष्ण, भीम इत्यादिको आयाहुआ देखकर सबको नमस्कार किया और स्वयं ही स्थित होकर कहनेलगा ॥ ४२ ॥ बभ्रुवाहन बोला—हे विभो ! मैं इस समय संजीवकनामवाली मणि ले आया हूँ उसके द्वारा होनहारसे नष्ट हुए अर्जुन जीवित होजाँयगे ॥ ४३ ॥ किन्तु यह मुझको मालूम नहीं कि यहाँ आकर इन दोनोंके मस्तकोंको कौन लेगया ? हे कृष्ण ! मुझको अर्जुन और वृषकेतुका मस्तक दिखाई नहीं देता ॥ ४४ ॥ श्रीकृष्णने कहा—आप सबजने मेरी मंत्रयुक्त बात सुनिये कि, यदि हम पृथ्वीपर ब्रह्मचर्यव्रतसे कहीं भी नहीं डिगेहैं ॥ ४५ ॥ तो उसी पुण्यके प्रतापसे हे कुंती ! अर्जुनका वह शिर आजावे, और जिसने वह शिर लिया है अथवा जो लेगया है, वह मेरी आज्ञासे अभी मस्तकरहित होकर गिरे॥४६॥ देवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार कहते कहते ही वे दोनों शिर लेजानेवाले महाविषधर (सर्प) नष्ट होकर अर्जुन और वृषकेतुके मस्तक समेत गिरे इसतरह उन दोनोंके शिर मणिपुरमें पहुँचे ॥ ४७ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने उस मणिके द्वारा अर्जुनको जिला दिया । और उसी मणिसे फिर कर्णनन्दन वृषकेतुको भी जिलाया ॥४८॥

चौपाई ।

उरमहँ पारथ मणि तब राखे । उठत पार्थ ही श्रीपति भाखे ॥
लागे शीश उठो तब कैसे । चुम्बक माँहि लोह लग जैसे ॥
कर्णपुत्र रणधीर कुमारा । यौवनाश्व अनुशाल्व भुआरा ॥
हंसध्वज नीलध्वज राऊ । जागे सबै चेत तब पाऊ ॥
पारथ आदि प्रेमरस पागे । धाय कृष्णके चरनन लागे ॥
बभ्रुवाहन लज्जा पाये । सभामाँहि नहिं मुख दिखराये ॥

उसकाल आपसमें सबकोई यथा योग्य मिलने भेंटने लगे । तब श्रीकृष्णदेवने अर्जुनसे कहा कि, आप मेरी बात सुनिये ॥ ४९ ॥ हे धनंजय ! आपका यह पतन गंगाके शापसे हुआहै और फिर आप मुझ श्रीकृष्णके प्रसादसे जियेहैं इसमें कुछभी संशय नहीं ॥ ५० ॥

एवं पञ्चदिनान्स्थित्वा रम्ये मणिपुरे तदा ।
भीमादींश्चागतांस्तत्र कृष्णः सर्वान् व्यसर्जयत् ॥ ५१ ॥

इस प्रकार पांच दिन तक सब कोई उस मनोहर मणिपुरमें टिके। इसके पीछे श्रीकृष्णने वहां आयेहुए भीमादि सब किसीको बिदा करदिया॥५१॥

दोहा—पांच दिवस आनन्दबहु, बीते मणिपुर देश ।
कह्यो जान घर सबहि पुनि, कृष्णचन्द्र विश्वेश ॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि अर्जुनसंजीवनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमोऽध्यायः ८९.

एकोननवतितमे द्विजरूपधरो हरिः ।
मयूरध्वजं जिगायासौ सपार्थस्तत्तु भण्यते ॥ १ ॥

इस नवासीवें अध्यायमें अर्जुनके सहित भगवान् श्रीहरिने ब्राह्मणका रूप धारण पूर्वक महाराज मोरध्वजको विजय किया । यह कथा वर्णन कीजातीहै ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

स्वयं कृष्णस्तु भगवानर्जुनेन समन्वितः ।
ररक्ष वाजिनं राजन्मुक्तं मणिपुरात्तदा ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे राजन् ! अनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके सहित स्वयं ही मणिपुरसे निकलेहुए उस घोडेकी रक्षा करी ॥ १ ॥ उसी समय सेनासमेत ताम्रध्वजका घोडा दिखाई दिया । तब वे अतिसुन्दर दोनों घोडे आपसमें मिले ॥ २ ॥ वे दोनों घोडे नाकसे नाकको स्पर्श करके प्रकाशित हुए, तब राजा ताम्रध्वजने अर्जुनको आयाहुआ जाना ॥ ३ ॥ तथा देवोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको भी आया जानकर उस घोडेको पकड बाँधा और भाँति भाँतिके शस्त्रोंसे अनेक प्रकार संग्राम किया ॥४॥ और तत्काल सारे वीरोंको जीतकर उस घोडेको अपने नगरमें लेआये । मोरध्वजने कहा—हे पुत्र ! तुम बहुत अकाज (बुराकाम) करके मेरे पास आये हो५॥

हे मन्दमति ! तुमने घोडेको पकडलिया हा कष्ट ! मैं तुम्हारे द्वारा ठगागया । इसी समयके बीचमें उधर अर्जुनने भगवान् माधव श्रीकृष्णसे कहा ॥ ६ ॥ हे कृष्ण ! कृष्ण ! हे अप्रमेय आत्मावाले ! ताम्रध्वज महान् योधा है, उससे घोडा कैसे छुडायाजाय ? हे प्रभो ! इसका उपाय बताइये । ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णने उत्तरमें कहा—हे अर्जुन ! आप मेरी बात सुनिये । मोरध्वजनामक महाराज धर्मवान् सत्यसागर, दानी, शूर और विद्वान् हैं ॥ ८ ॥ और ताम्रध्वजनामसे विख्यात इनका एक बडा धनशाली बेटा है, आप मेरे साथ चले आइये मैं तुमको इनकी परीक्षा दिखाऊं ॥ ९ ॥ मैं उन धर्मात्मा महाराज मोरध्वजके निकट बूढे ब्राह्मणका रूप धारण करके याचना करूँगा और हे सुव्रत ! आपके हितार्थ तुमको बालकरूप करूँगा ॥ १० ॥ तब निर्मल प्रातःकालमें भगवान् माधव अर्जुनसमेत वरासन (सुन्दर सिंहासन) पर विराजमान महाराजा मोरध्वजका दर्शन करनेको गये ॥ ११ ॥ और रानीके सहित दीक्षित तथा दोनों घोडोंसे युक्त महाराजके निकट पहुँचकर कहा, हे नृपशार्दूल ! आपका मंगल हो आप मुझ आयेहुएको ब्राह्मण समझिये ॥ १२ ॥ हे राजन् ! मैं जिस कारणसे आया हूँ सो कहता हूँ आप सुनिये । हे राजेन्द्र ! आपके नगरमें एक सुशील नामक ब्राह्मण निवास करता है ॥ १३ ॥ उसकी एक रूप यौवन सम्पन्न परमसुन्दरी कन्या है । हे राजन् ! मैं उसीको माँगनेके लिये हस्तिनापुरसे ॥ १४ ॥ अपने बेटे समेत आयाहूँ । किन्तु मैं जैसे ही आपके नगरको ओर चला कि वैसे ही वनके घोर मार्गमें एक क्रोधयुक्त सिंहने ॥ १५ ॥ हे महाराज ! मेरे देखते देखते जवान बेटेको पकडलिया, तब मैंने डरकेमारे काँपते काँपते उस बेटेके छुडानेका यत्न (उद्यम) किया ॥ १६ ॥ मैंने भगवान् नृसिंहजीको याद किया किन्तु मेरे स्मरण करनेपर भी वे नहीं आये । तब हमको दुःखित देखकर आश्चर्ययुक्त चित्त हो सिंहने कहा ॥ १७ ॥ हे विप्रेन्द्र ! आप इस बेटेके छुडानेमें वृथाही परिश्रम कररहे हैं क्योंकि हे प्रभो ! आपकी तो बात अलग रही मेरे पकडे हुए व्यक्तिको तो कालभी छुडानेमें समर्थ नहीं है ॥ १८ ॥

ब्राह्मणने कहा—हे सिंह ! हे महाबलवान् ! आप मुझको जीमजाइये और इस मेरे बेटेको छोडदीजिये क्योंकि यदि आप इसका भोग लगावेंगे तो इसकी आयुका व्यर्थ फल होगा और पुत्र रहित होजानेसे मेरी जिन्दगी भी व्यर्थ होजायगी ॥ १९ ॥ अत एव आप मेरे इस बेटेको किस उपायसे किस दानसे अथवा किस तपस्यासे छोडसकते हैं ? इसके उत्तरमें उस सिंहने मुझसे जो कुछ कहा, उसको हे महाराज ! किसतरह आपके सामने कहूँ ॥ २० ॥ राजा मोरध्वज बोले—हे द्विजोत्तम ! उस सिंहने जो वस्तु भी माँगी होगी, सो मैं दूँगा, इसमें सन्देह नहीं । महाराज मोरध्वजकी यह बात सुनकर उस ब्राह्मणने कहा ॥ २१ ॥ हे राजन् ! अपुत्रका तो भाव भी महान् दारुण है और मुझको अपना प्राण भी कौन व्यक्ति देसकता है ? उस सिंहने मुझसे महावनमें कहा है कि हे ब्राह्मण देवता ! आप वीर मयूरकेतुका आधा शरीर ले आओ तो मैं आपके बेटेको छोडदूँगा और आपका वृद्ध शरीर तो तपसे दग्ध होरहा है सो मुझको रुचिकारक नहीं है ॥ २२ ॥ २३ ॥ अत एव आप मेरे लिये भाँति भाँतिके स्वादिष्ट फलोंसे सेवित और सुन्दर दुग्ध इत्यादि रसोंद्वारा युक्त उस मयूरकेतुको भेदन करके उसका अत्यन्त प्रिय आधा अंग प्रदान कीजिये ॥ २४ ॥ और इस बातको मैं आपसे सत्य-प्रतिज्ञा करके कहताहूँ कि जिस समय पर्यन्त आप उस राजपुत्रका आधा अंग लेकर आवेंगे, तबतक मैं आपके इस बेटेको नहीं खाऊंगा ॥ २५ ॥ ब्राह्मण (मैं) ने कहा । हे मृगेन्द्र ! मेरेलिये राजा अपना शरीर क्यों देगा? सिंहने उत्तर दिया कि शूर लोगोंको दुस्त्यज कुछ भी नहीं है अर्थात् जो व्यक्ति दान करनेमें शूर हुआ करतेहैं उनके पक्षमें कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जिसको वे नहीं देसकें ॥ २६ ॥ उस अमिततेजस्वी सिंहने मुझसे वनमें इस प्रकार कहा है, तब हे महाराज मैं पुत्रशोकसे आतुर होकर अपने चेलेसमेत आपके स्थानपर चला आयाहूँ ॥ २७ ॥ इसके सिवाय किसी दूसरा उपायद्वारा मैं उस सिंहसे अपने बेटेको नहीं पा सकताहूँ । इस प्रकार दारुण बातें कह-ताहुआ वनमें केसरी (सिंह) आविर्भूत हुआ ॥ २८ ॥ उस ब्राह्मणकी

यह बातें सुनकर महाराज मोरध्वजने कहा–हे द्विजोत्तम ! हे विप्रेन्द्र ! आप बैठजाइये मैं आपको इसी मण्डपमें अपना शरीर प्रदान करूँगा । इस प्रकार कहकर महाराजने अपने बेटे ताम्रध्वजको राज्य समर्पण किया ॥ २९ ॥ तदनन्तर गंगाजल और शालिग्रामशिलाके जलसे भलीभाँति स्नान किया और तुलसीदलकी बनी माला कंठमें पहरकर हँसते हँसते ॥ ३० ॥ शरीरमें शंखचक्र अंकित करके प्रसन्नतापूर्वक महाराज मण्डपमें आनकर सबसे इसतरह कहनेलगे ॥ ३१ ॥ महाराज मोरध्वज बोले–हे महोदयगण ! यह कृष्णस्वरूप ब्राह्मण पुत्रके निमित्त मेरे घर पधारे हैं, अतएव मैं इनको अपना देह समर्पण करूँगा, जिससे यह पुत्रयुक्त होवें ॥ ३२ ॥ मेरे यज्ञमें जो पुरुष आयेहैं, वे सब तमाशा देखें और करपत्र अर्थात् करौंतसहित घातक लोग भी आनकर उपस्थित होजावें ॥ ३३ ॥ भूमिमें दो थंभ खडे करदो, वहाँ मेरे मस्तकको भेदन कीजिये और जिनको यह शरीर सदा प्यारा है, उनको दूषण बोलना उचित नहीं है ॥ ३४ ॥ तब उन महाराज मोरध्वजने प्रसन्न होकर अशेष (अनगिन्त) दान किये और फिर उन प्रतिष्ठित खंभोंमें प्रवेश किया ॥ ३५ ॥ और स्वयं ही आरेको लेकर अपने शिरपर रखदिया, फिर ब्राह्मणके चरण धोकर महाराजने कहा ॥ ३६ ॥ राजा बोले–यज्ञपति भगवान् गोविन्द मेरे देहके आधे भागद्वारा मेरे प्रति प्रसन्न हों अत एव हे द्विजवर ! आप मेरे दियेहुए देहके आधे भागको लेलीजिये ॥ ३७ ॥ उन महाराज मोरध्वजने इस प्रकार कहकर अपने देहको आपही भेदडाला । क्योंकि जिन दाताओंमें धनशाली दाता मनुष्योंके अर्थात् परोपकारके निमित्त देहदान करतेहैं ॥ ३८ ॥ और जिस व्यक्तिने जिस जिस चीजको बिचारा है, वह चीज दोनों लोकमें दानके निष्फल भावको प्राप्त होतीहै अतएव मुझे देखकर सारे सभासदोंको आनन्दित होना चाहिये ॥ ३९ ॥ अनन्तर महाराज जैसे ही अपने गात्रको भेदन करनेलगे कि त्योंही उनकी भार्या (रानी) ने कहा । कुमुद्वती बोली । हे ब्राह्मणदेवता ! आप मेरे शरीरको लेकर

उसके द्वारा अपने उस बेटेको छुडालीजिये ॥ ४० ॥ क्योंकि भार्या भी पुरुषका आधा शरीर होतीहै, ऐसी श्रुति प्रसिद्ध है, इसके अतिरिक्त दान भी जीवसहित ही देना चाहिये जीवरहित दान देना कभी उचित नहीं है ॥ ४१ ॥ मेरी मति तो ऐसी है कि जो व्यक्ति दूसरेसे भेदन कियागया है उसको सिंह भी स्वीकार नहीं करता और जो नारी अपने प्राणनाथके सम्मुख मृत्युको प्राप्त होतीहै ॥ ४२ ॥ वह उत्तमगति पालेतीहै इसमें कुछभी सन्देह वा विचार नहीं करना चाहिये। कुसुद्वतीके इस प्रकार कहनेपर ब्राह्मणने उत्तर दिया कि हे महारानी ! सिंहने कहा है मुझे बाँया अंग नहीं रुचता है ॥४३॥ इस कारण मुझको दाहिना अंग देना चाहिये। तब मोरध्वजनन्दन ताम्रध्वजने ब्राह्मणसे कहा ॥ ४४ ॥ हे द्विजोत्तम ! इन महाराजका दाहिना अंग मैं हूँ क्यों कि 'आत्मा वै जायते पुत्रः' अर्थात् अपना आत्मा ही पुत्ररूपमें जन्म लेता है ऐसी बलवती श्रुति है ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणने उत्तर दिया। हे पुत्र ! आपने ठीक कहा किन्तु अब सिंहकी बात भी तो सुनलीजिये। उसका कथन है कि पुत्र और भार्या द्वारा भेदित महाराज मोरध्वजके ॥ ४६ ॥ सारे अंग दो भागमें भिन्न (अलग) हों आप उसीको दाहिना अंग समझ लीजिये अतएव फिर मुझ सरीखा ब्राह्मण उस सिंहकी बातको कैसे अन्यथा कर सकता है ॥४७॥ वैशम्पायनजी बोले। हे राजन् ! तब राजसिंह महाराज मोरध्वजने अपने प्रिय पुत्र (तथा स्त्रीको) निवारण करके प्रसन्नतापूर्वक उन दोनोंके हाथमें आरा दिया ॥४८॥ और आप वहाँ बैठेहुए भगवान् श्रीहरिके गुणानुवाद गानेलगे फिर निरन्तर हरिभक्तिमें निरत रहनेवाले पुत्र ताम्रध्वजने आरा हाथमें लेकर अपने पिताको चीरा ॥ ४९॥ जब ताम्रध्वजने कृष्णार्जुनके सामने ही उनको आरेसे चीरा तब हे जनमेजय ! उस समय महा हाहाकार मचगया ॥ ५० ॥

दोहा-उलटे आरा नयन करि, अर्द्ध शीश गयो चीर।
वामनयन मोरध्वजहि, तुर्त चलो तब नीर ॥

चौपाई ।

देखतही द्विज कह नृपपाहीं । कादर दान लेत द्विज नाहीं ॥
देत शरीर रुदन तुम कीन्हा । हमरे वचन चित्त नहिं दीन्हा ॥
वह मम पुत्र सिंह लै खाऊ । यह कहि तुरत चले द्विजराऊ ॥
संगहि पारथ भी चल दयऊ । लोग सबै अति विस्मित भयऊ॥
तब रानी करवती उतारा । गहे दाबि शिर हाथ भुआरा ॥
बोली नाथ बात सुनिलीजे । विप्रनकहँ सन्तुष्ट करीजे ॥
तेज शरीर विमुख द्विज जाई । अहो कन्त द्विज लेहु मनाई ॥
तब राजा कर शिर धरि लहई । पाछे बात विप्रसौं कहही ॥
अहो विप्र विनती सुनि लीजे । पीछे भलेहि गमन प्रभु कीजे ॥
करवत नाहीं दुःख हमारे । वरन दुःख द्विज विमुख सिधारे॥

दोहा—बाम अंग रोदन करै, हम निष्फल संसार ।
दक्षिण अंगहि हर्ष बहु, तैं द्विज काज सँवार ॥

इसी समय महाराज मोरध्वजकी बाँईं आँखमें पानी (आँसू) भर आया और नेत्र लाल लाल हो आये यह दशा देखकर उस उत्तम ब्राह्मणने राजासे कहा ॥५१॥ हे महाराज ! अब मैं आपके इस अंगको नहीं लूँगा क्योंकि आप रुदन करतेहुए अपने शरीरको छोडते हैं और पण्डित जन अभाव करके नाशहुए दानको नहीं लियाकरते हैं ॥ ५२ ॥ हे पृथ्वीपति ! मुझको पुत्रके विना स्वर्ग भलेही प्राप्त न होवे और मेरे बालक पुत्रको लेकर वह सिंह भी भलेही अपने स्थानको प्रस्थान करे (किन्तु ऐसा दान मैं कदापि न लूँगा) ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणरूपधारी भगवान् जनार्दन इस प्रकार वचन कह और महाराज मोरध्वजको त्याग सबके देखते देखते शिष्य अर्जुन समेत जानेलगे ॥ ५४ ॥ तब महारानी कुमुद्वतीने उस ब्राह्मणको जाताहुआ देख कर अपने पतिसे कहा। हे सत्यव्रत! हे बडभागी ! हे दानियोंमें शिरोमणि ! ॥ ५५ ॥ यह ब्राह्मण आपके आगे शरीरको त्यागकर जारहे हैं, अत एव

हे स्वामिन् ! आप जाकर उन अर्द्धशरीरकी याचना करनेवाले ब्राह्मणको निवारणपूर्वक लौटालाइये ॥५६ ॥ क्योंकि यदि यह ब्राह्मण आपके अर्द्ध-शरीरको विना लिये चलेगये तो आपकी कीर्ति विफल होजायगी । रानी कुमुद्वतीकी यह बात सुनकर महाराज मोरध्वजने ब्राह्मणसे कहा—हे मुनि-शार्दूल ! आप इस तरह मत जाइये किन्तु मेरी बात सुनकर फिर भलेही चलेजाना ॥ ५७ ॥

दोहा—साधु तुम्हें चाहिये नहीं, जो बिन बूझे जात ।
तनक ठहरिये कृपा करि, सुने जाव इक बात ॥

(हे विप्रोत्तम ! मेरे वामांगके रुदन करनेका कारण कुछ और ही है) अर्थात् दाहिना अङ्ग तो ब्राह्मणके निमित्त जायगा और मेरा बाँया अंग पृथ्वीपर गिरकर कैसे वृथा जायगा, (इसीलिये यह बाँया नेत्र रुदन करता हुआ आँसू बहारहा है) ॥ ५८ ॥

चौपाई ।

सुनतहि वचन हर्ष द्विज पाये । हर्षित राजहि रूप दिखाये ॥
चतुर्भुजी है दर्शन दीन्हा । माँग माँग कर हठ बहु कीन्हा ॥
दै शरीर संतोषा मोही । जगमें भक्त देखियत तोही ॥
धन्य पुत्र ताम्रध्वज तेरो । जीतो अर्जुन कटक घनेरो ॥
माथे हाथ मृतकके दीन्हा । सर्व कलेश नाश तब कीन्हा ॥
राजा कहै सुनहु जग देवा । माँगहुँ वर सूनौ हरि भेवा ॥
जैसि परीक्षा हमरी लयऊ । इस्त्री सुत चिंता नहिं भयऊ ॥
कलि महँ होय जु भक्त तुम्हारा । इमि मत जाचहुते जगतारा ॥
प्रभु तथास्तु कहि वर दयऊ । दूनहु अश्व आप संग लयऊ ॥

दोहा—यह भाषेउ जगहेतु कहँ, पाय दर्श भगवान ।
करै यज्ञ हरि दर्श लहि, होय सदा कल्यान ॥

महाराज मोरध्वजके इस प्रकार कहनेपर भगवान् श्रीकृष्ण अपने मनमें प्रेमानन्दसे विह्वल होगये । और वीर उन राजाको आलिंगन करके अपने

वास्तविक स्वरूपका दर्शन करातेहुए कहने लगे ॥ ५९ ॥ श्रीकृष्णने कहा । हे राजसिंह ! हे मोरध्वज ! हे सुव्रत ! आप धन्य हैं, मैंने छद्म वेश (बनावटीरूप) द्वारा आपकी सबतरहसे परीक्षा करली है ॥ ६० ॥ हे महाबाहो ! अब आप पत्नी और पुत्रसमेत यज्ञ कीजिये । मोरध्वजने कहा—हे गोविंद ! आपने ब्राह्मणके स्वरूपसे मेरे वंशको पवित्र करदिया ॥ ६१ ॥

किं मे यज्ञेन गोविन्द यदि दृष्टोऽसि केशव ।
दृष्टे त्वयि जगन्नाथे पुण्यात्मन्यमितेऽस्तु ते ॥
यज्ञकोटिकृतं पुण्यं भविष्यति न संशयः ॥ ६२ ॥

हे गोविन्द ! हे केशव ! जब कि मैंने आपका दर्शन करलिया, तब फिर यज्ञ करनेसे क्या फल है ? क्योंकि हे जगन्नाथ ! आपके दर्शन करनेपर मेरी कीर्त्ति अपरिमित होगई है और करोड यज्ञ करनेका पुण्य मिलगया है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ६२ ॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां मयूरध्वजोपाख्यानं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नवतितमोऽध्यायः ९०.

नवतितमेऽध्याये तु चन्द्रहासकथां वदन् ।
मुनिस्तच्चरितं पार्थमादिदेशेति वर्ण्यते ॥ १ ॥

इस नव्वें अध्यायमें महाराज चन्द्रहासकी कथा वर्णन करते हुए देवर्षि श्रीनारदजीने अर्जुनके प्रति उसका चरित कहा, यह कथा वर्णन करीजातीहै १

वैशम्पायन उवाच ।

तुरगौ तु गतौ राजँस्ततो वै वीरवर्मणः ।
धर्मश्चतुष्पाद्यत्रैव तेन भूपतिना कृतः ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! तदनन्तर वे दोनों घोडे वीरवर्माके नगरमें जापहुँचे जहां उस राजाने धर्मको चतुष्पाद अर्थात् चार पांववाला किया है॥ १॥ और मूर्त्तिमान् यमराज जिन महाराजके जमाई होकर

उस देशमें निवास कररहेहैं तात्पर्य यह है कि उस सारस्वत नामवाली मनोहर नगरीमें सारे आदमी धर्ममें निरत होरहे हैं॥ २॥ अनन्तर महाराज वीरवर्माने उत्तम घोडोंकी रक्षा करतेहुए श्रीकृष्णसमेत अर्जुनको अधिक सेनासहित अपने देशमें आयाहुआ सुना ॥ ३ ॥ तब तो महाबली महाराज वीरवर्माने उन दोनों घोडोंको पकड लिया और फिर अत्यन्त दारुण संग्राम किया और तुमुल युद्ध करके सारे वीरोंको घात किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर धर्मराज यमने अर्जुनकी बहुत सारी सेनाका नाश करडाला । हे नराधिप ! ससुरके आगे वीरोंको हनन करनेवाले ऐसे अत्यंत भयंकर वीर यमराजको देखकर और पीछे वीरवर्माके दामादद्वारा नष्ट कियेगये अपनी सेनाके आदमियोंको भी देखकर हे भारत ! वीर अर्जुनको बडा ही अचंभा हुआ तब उसने केशव भगवान् श्रीकृष्णसे कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे जगन्नाथ ! ऐसा यह कौन देवता है ? जिसने आपके समक्ष मनुष्यरूपसे बाणोंद्वारा मेरी सारी सेनाका नाश करडाला ? ॥ ७ ॥ अर्जुनके ऐसा कहनेपर माधव श्रीकृष्णने उत्तर दिया कि हे महाबाहो ! आप संग्राममें आगे खडेहुए इस व्यक्तिको यमराज जानिये । इनसे महाराज वीरवर्माने कन्याके निमित्त अपने नगरमें रहनेकी प्रार्थना की है ॥ ८ ॥ अर्जुनने पूछा । हे कृष्ण ! यह आपने कैसे अचंभेकी बात कही ? इन महाराज वीरवर्माकी पुत्रीको यमराजने किस तरह व्याहा ? तथा यह सम्बन्ध (नाता) किसभाँति हुआ ? हे केशव ! यह सारी कथा आप मुझसे वर्णन करदीजिये ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णने कहा—हे अर्जुन ! महाराज वीरवर्माके घर मालिनी नामवाली एक कन्या जन्मी तब पिताने (बहुतकालपीछे) उसको युवती (जवानीमें भराहुआ) देखकर उससे पूछा ॥ १० ॥ हे पुत्री ! सब उत्तम मनुष्योंमें तेरे मनको कौनसा भर्त्ता रुचताहै ? तब उस कन्याने पिताको उत्तर दिया मैं यमराजको अपना पति मानचुकी हूँ ॥ ११ ॥ कि चारों दिशाओंके मृतजीव जिनकी शरणमें पहुँचा करतेहैं । तब महाबलवान् वीरवर्मा उस लडकीकी यह बात सुनकर ॥ १२ ॥ यमसूक्त मंत्रके द्वारा निरन्तर धर्मराजकी स्तुति करनेलगे ।

इसीबीचमें देवर्षि नारदजीने यमराजके (पास जाकर) उनसे सारा हाल कहदिया ॥ १३ ॥ कि महाराज वीरवर्माकी धर्मतत्पर जो एक मालिनी नामवाली कन्या है, वही आपके स्तवद्वारा आपका ध्यान कररही है, अत एव आप कृपापूर्वक उसको वरलीजिये ॥ १४ ॥ देवर्षि नारदजीकी यह बात सुनते ही यमराज चल दिये और वैशाख मासके शुक्लपक्षमें उसके संग विवाह करनेको उद्यत हुए॥ १५ ॥ तब यमराजने अष्टोत्तरशत अर्थात् एक सौ आठ महाकाय और महाबली नायकोंको अपने संग चलनेकी आज्ञा दी ॥ १६ ॥ उन नायकोंमें, हे महाराज जनमेजय ! एक क्षय नामवाला नायक कहनेलगा । क्षय बोला—हे स्वामी ! उस राष्ट्र (देश) में हमारा आना किसतरहसे होगा ? ॥ १७ ॥ क्योंकि वहाँके सारे आदमी ब्राह्मण-प्रिय हैं और राजा भी ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाला है । उत्तरमें यमने कहा आप सब विविधाकार अर्थात् तरह तरहके रूप धरनेवाले, बडे शरीरवाले और बलशाली हो॥ १८॥अतएव आप सब जने जिसभाँति मेरी नगरीमें निवास करतेहैं और जिसतरह मेरी आज्ञा पालन किया करतेहो ऐसेही आप सब जने महाराज वीरवर्माके देशमें वास करके उनकी आज्ञा पालन करो॥ १९॥ वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज ! तब कामरूपी अर्थात् इच्छानुसार चाहें जैसा रूप धरनेवाले सेवकोंसमेत यमराज उस राजकन्याको वरनेके निमित्त सारस्वतनाम्नी नगरीमें गये ॥ २० ॥ और वहाँ पहुँचकर उन यमने उस शर्मिष्ठा मालिनी नामवाली कन्यासे विवाह किया तबसे ही धर्मराज (यमराजा) वीरवर्माके जमाई हुए हैं ॥ २१ ॥ श्रीकृष्ण इसतरह, वृत्तान्त कहतेही थे कि वीरवर्मा आपहुँचे । वीरवर्माने कहा—हे अर्जुन ! आप महासंग्राममें चराचरको जीतसकते हैं ॥ २२ ॥ हे वीर ! आपकी इस बातसे मेरा मन प्रसन्न होगया है, वीरवर्माने यह कहकर धनुष छोडदिया और फिर भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें गिरगया ॥ २३ ॥ फिर हाथी घोडे और रथादि बहुत सारे द्रव्य देदिये, पीछे पांच रात्रितक वहां टिककर आप भी उनके संग निकले ॥ २४ ॥ हे नृपोत्तम ! अनन्तर वे

दोनों घोडे सारस्वत नगरीसे निकलकर महाराज कौंतलकी चन्द्रहास नामवाली नगरीमें जापहुँचे ॥ २५ ॥ और उनके पीछे श्रीकृष्णार्जुन इत्यादि सारे योधा गये । तब घोडोंको न देखकर उन योधाओंने कहा कि, अपने घोडे कहाँको चलेगये ? उनको न किसीने लिया और न वे आकाशको गये ॥ २६ ॥ या वे क्या आकाशमें ही जापहुँचे हैं ? इसतरह कहकर सब दुःखितमनसे खडे होगये । उसी समय उन्होंने आकाशमें पुरुषोत्तम श्रीनारदजी महाराजका दर्शन किया ॥ २७ ॥ तब उनसे श्रीकृष्ण और अर्जुन इत्यादि सारे योधाओंने घोडोंका पता पूछा । नारदजीने उत्तर दिया, हे अर्जुन ! आपके वे घोडे कौन्तलनाम्नी नगरीमें चलेगये हैं ॥ २८ ॥ जहाँके महाबाहु चन्द्रहास नामक राजा हैं, जिनकी समान दूसरा कोई योधा विद्यमान नहीं है । यह सब राजा तो उसकी सोलहवीं कलाको भी नहीं पहुँचे हैं ॥ २९ ॥ देवर्षि श्रीनारदजी महाराजकी यह बात सुनकर अर्जुनने फिर कहा, हे नाथ ! उस कौन्तल नगरीमें चन्द्रहास नामक कौनसा राजा है ? ॥ ३० ॥ नारदजीने कहा—हे अर्जुन ! पूर्वकालमें केरलदेशके महाराज अच्छे धार्मिक हुए थे, उन महाराजके परलोकवासी होनेकी खबर सुनकर उनकी महारानी भी अपने भर्त्ताके संग सती होगई ॥ ३१ ॥ तब उस माता पितासे हीन बच्चेको धाय कौन्तल नगरीमें लेआई और वहाँ उसने अपने महाराजके उत्तम बेटेको पाला ॥ ३२ ॥ उस धायने दूसरोंके पैर दाबने इत्यादि टहल और अन्न पीसने इत्यादिके कामोंसे तीन वर्ष पर्यन्त यत्नसहित उस लडकेको कौन्तलनगरीमें पालन पोषण किया ॥ ३३ ॥ वह रातमें अपने महाराजका ध्यान किया करतीथी । तब इसको दिन दिनमें स्मरण करके बालक बिना वह सती धाय मरगई ॥ ३४ ॥ तब फिर किसी और आदमीने अत्यन्त स्नेहसे उसका पालन किया । तदन्तर यह बालक पाँच वर्षका होजानेपर अपनी इच्छानुसार विचरण करनेलगा ॥ ३५ ॥ और बालकोंको देखकर उनके संग वैसेही रमने लगा अर्थात् खेलने कूदने लगा उसको नगरकी स्त्रियाँभी कोई खाना खिलाने और कोई न्हवाने लगीं ॥ ३६ ॥

कितनी ही नारियाँ बडे कीमती कपडे देनेलगीं, कितने ही आदमियोंने पैरोंमें पहरनेको चमडेके जूते दिये और बहुतसे आदमी शिरके लिये सुन्दर लाल पगडी देनेलगे ॥ ३७ ॥ अनन्तर किसी दिन वह बालक अपनी इच्छानुसार दुष्टबुद्धि नामवाले प्रधानके घरको योगेश्वर और मननशील ब्राह्मणोंके संग जापहुँचा तब उस ऐसे सुन्दर बालकको ॥ ३८ ॥ देखकर वे सब मुनि अत्यन्त अचम्भेमें होगये । और पीछे हे पाण्डुनन्दन ! उस बालकके संग भोजन किया ॥ ३९ ॥ इसके पीछे जिस समय वशीभूत हुए दुष्टबुद्धिने उन मुनियोंकी पूजा करी तब प्रसन्नमनसे उन सत्यव्रतवाले मुनियोंने ॥ ४० ॥ आशीर्वादसे बडाई करके कहा कि, आप चिरजीवी और सुखी रहो । तदनन्तर हे अर्जुन उन सब ऋषियोंने दुष्टबुद्धिसे कहा ॥ ४१ ॥ हे महाशय ! यह जो आपके सामने पाँच वर्षका बालक दिखाई दे रहाहै; यह कौन है ? किसका बेटा है ? और कौनसे देशसे यहां आकर प्राप्त हुआ है ? ॥ ४२ ॥ इस प्रकार पूछनेपर दुष्टबुद्धिने उन मुनियोंको उत्तर दिया । दुष्टबुद्धि बोला—हे स्वामिन् ! इस सुन्दर नगरीमें ऐसे कितनेही बालक निवास करतेहैं किन्तु राजकार्यका भारी बोझ मेरे ऊपर अधिक रहता है, इस कारण मैं उनको जानता नहीं हूँ ॥ ४३ ॥ यह सुनकर मुनियोंने कहा हे दुष्टबुद्धे ! जो कि यह बालक मनोहर और सारे शुभलक्षणोंवाला है, इस लिये निःसन्देह राज्यका धारण करनेवाला प्रकाशित है, अतएव आप इसको पालिये. क्योंकि, यह बालक आपके सम्मुखही आपकी सम्पत्तिका पालक होगा ॥ ४४ ॥ इस तरह कहकर मुनिलोग चले गये और वह दुष्टबुद्धि क्रोधयुक्त हो दुष्टबुद्धि करके बालकको देखकर सुखको प्राप्त नहीं हुआ, तथा वे सारे मुनिजन जैसे आयेथे, वैसे ही अपने अपने स्थानपर जापहुँचे । अनन्तर वह राजमन्त्री अत्यन्त ही तापित हुआ ॥ ४५ ॥ इसके पीछे वह अपने मनमें चिन्ता करने लगा कि इन मुनियोंने जो कि पूजा करने योग्य हैं मुझसे कैसी बात कही कि यह बालक तेरी सम्पत्तिका स्वामी होगा । सो मेरी सम्पत्तिका स्वामी

भला यह बालक किसतरहसे होगा? और उन मुनियोंकी वह बात भी किस प्रकार वृथा होगी ? ॥ ४६ ॥ इस भाँति विचार करके उस दुष्ट मन्त्रीने उस बालक राजपुत्रके मारडालनेका निश्चय किया और फिर अत्यन्त आतुरता (जल्दी) से अन्त्यजों (चाण्डाल जल्लादों)को बुलाया। उनको आज्ञा दी कि रे पशुघातको ! तुम लोग इस बालकको महावनके गह्वरमें लेजाकर वध करडालो और मुझको संतोष करनेवाली इसके देहकी कोई निशानी लाकर दिखाओ, ऐसा होनेपर मैं तुम सबलोगोंको एक एक दूधके घडे समेत तरह तरहकी भैंसें ईनाममें दूँगा ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे अर्जुन ! दुष्टबुद्धिकी यह बात सुनकर वे चाण्डाल अत्यन्त हर्षित हुए और फिर सबेरे ही उस बालक पुत्रको लेकर वनके गह्वरमें चलेगये॥४९॥ वहाँ जाकर उन्होंने उस हँसतेहुए धर्मात्मा राजकुमारके मारनेको पैनी धारवाले हथियारोंको ले बाल पकडलिये ॥ ५० ॥

भ्रमता तेन शिशुना या दृष्टा प्रतिमा हरेः।
शालिग्रामशिला रम्या तां मुखे सोर्भकोऽक्षिपत् ॥ ५१ ॥

उस जगह भ्रमण करते करते उस बालक राजपुत्रको एक मनोहर शालिग्राम शिला दिखाई दी, जो कि भगवान् श्रीहरिकी सुन्दर प्रतिमा थी, उसको उठाकर उस बच्चेने अपने मुँहमें डाल लिया ॥ ५१ ॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां चन्द्रहासोपाख्याने नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

एकनवतितमोऽध्यायः ९१.

एकाधिनवतितमे चन्द्रहासस्य श्रीहरौ।
भक्तिर्विद्याग्रहश्चैव वर्ण्यते नरदुष्करः ॥ १ ॥

इस इक्यानवें अध्यायमें भगवान् श्रीहरिमें चन्द्रहासकी भक्तिका होना और नरदुर्लभ विद्याका ग्रह होना यह कथा वर्णन कीजाती है ॥ १ ॥

नारद उवाच।

सोऽर्भकः पार्थ देवेशं दध्यौ नारायणं स्वयम्।
कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ वासुदेव जनार्दन ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले–हे पार्थ ! तदनन्तर वह बालक स्वयं ही देवेश्वर नारायणका ध्यान करनेलगा कि,हे कृष्ण ! कृष्ण ! हे जगत्पति ! हे वासुदेव ! हे जनार्दन ! ॥ १ ॥ हे जगन्नाथ ! यह चाण्डाल जल्लाद मुझको पैनी धारवाले खड्गसे मारता है, अतएव हे परमानन्द ! हे सर्वव्यापी ! उससे मेरी रक्षा कीजिये । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ तब देव भगवान्‌ने उन चाण्डालोंको मोहित किया । तब वे चाण्डाल मोहित होकर आपसमें बातचीत करनेलगे कि भाइयो ! यह कैसा बालक है ? ॥ ३ ॥ यह तो अत्यन्त कोमल अंगोंवाला कुमार बडी बडी आँखोंवाला लम्बी लम्बी भुजाओंवाला और मनको हरनेवाला है इस बालकको दुष्टबुद्धिने वनमें मारडालनेके लिये क्यों कहा ? ॥४॥ पूर्व पापोंके फलसे तो हम लोग चाण्डाल कुलमें उत्पन्न हुए हैं, तब फिर अब बालहत्याके घोर पापसे कैसे होंगे अर्थात् इससे भी नीच किस योनिमें जाँयगे ? ॥५॥ उन चाण्डालोंने परस्पर इसभाँति कहकर उस बालकके शिरस्थानको देखा और फिर उन जल्लादोंको बालकके बाँयें पैरमें एक छठी अँगुली दिखाई दी ॥ ६ ॥

चौपाई ।

वामपाद षट अँगुली देखी । काटि लीन्ह तेहि देखि विसेखी ॥
दुष्ट बुद्धिको दीन्हो जाई । धन सम्पति चाण्डाल हि पाई ॥
भई झूँठ विप्रन मुख बानी । बालक हते होति रजधानी ॥
दुष्ट बुद्धि अति आनँद पाये । घर घर मंगलचार कराये ॥
रोवत बालक वनहि चिल्लाई । पशु पक्षी ढिग बैठे आई ॥
सो वन गयो शिकार हि राजा । नाम कुलिन्द भक्त रघुराजा ॥
ते बालक देखनको धाये । हर्ष गात लै गोद चढाये ॥

तब उन्होंने निश्चय किया कि यही अँगुली निशानीमें लेजाकर उस दुरात्मा दुष्टबुद्धिको दिखादेनी चाहिये । यह कहकर अपने हाथकी तलवारके नोकसे उस बालकके पैरकी (अधिक) छठी अँगुली काटली ॥ ७ ॥ तब वे शीघ्रता सहित हर्षितमनसे वह निशानी लेकर नगरीमें गये और वहाँ

पहुँचकर दुष्टबुद्धिको नमस्कार करके वह अँगुली दिखाई ॥ ८ ॥ तब वह दुष्टबुद्धि अपने मनमें अत्यन्त आनन्दित होकर कहनेलगा कि मुनियोंकी बातको भी मैंने झूठ करदिया। इस भाँति कहकर फिर उन जल्लादोंको भैंसों इत्यादिके द्वारा संतुष्ट किया ॥ ९ ॥ और उधर वनमें वह कटीहुई छठी अँगुलीवाला तथा टपकतेहुए खूनसे सने शरीरवाला बालक राजकुमार हिरनियोंको मोहित करता हुआ अत्यन्त दुःखी होकर महान् रोदन करनेलगा ॥ १० ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करने लगा । हे देवदेवेश ! हे कृष्ण ! हे नाथ ! हे कृपासागर ! हे सर्वव्यापी ! मुझको कष्टसे मुक्त करके मेरी रक्षा कीजिये। हे स्वामिन् ! आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ११ ॥ इस तरह कहते दुःखसे आर्त्त और डरके मारे घबरायेहुए उस बालकको देखकर वहाँ पक्षियोंने अपने पंखोंसे छाया करदी ॥१२॥ इसी बीचमें वहाँ देशाधिपति महाराज कुलिन्द आनपहुँचे। वे उस देशकी रक्षा करनेके निमित्त वनके गह्वरमें आयेथे ॥ १३ ॥ तब वहाँ आनकर उन्होंने कमलकी नाईं मुखवाले उस बालकको 'हे गोविन्द ! हे राम ! हे माधव !' जपतेहुए देखा ॥ १४ ॥ तहाँ उस बालकके मुखसे भगवान् श्रीहरिके नाम सुनकर महाराज कुलिन्द बडे ही अचंभेमें हुए और फिर फुरतीसे घोडेसे उतरकर उस बालकको समझाते बुझातेहुए तसल्ली देनेलगे ॥ १५ ॥ अनन्तर उन बुद्धिमान् महाराजने आँसू दूर करके कहा—हे बालक ! तेरे बाप कौन है ? तथा तेरी महतारी कौन है ? और तेरे हितकारी सुहृद कहाँ पर हैं ? ॥ १६ ॥ और हे बालक ! तू इस विजन (सूने) वनमें कैसे स्थित है सो मुझे बतादे। महाराज कुलिन्दके इस प्रकार पूछनेपर उस बालकने उत्तर दिया—हे महाशय ! मेरे मा बाप भगवान् श्रीकृष्ण हैं और उन्होंने मुझको पाला है ॥ १७ ॥ हे महाराज ! मैं उनको ही न देखनेके कारण रोरहा हूँ। हे जनमेजय ! उस बालककी यह उत्तम बात सुनकर वे महाराज कुलिन्द चिन्ता करनेलगे ॥ १८ ॥ फिर बोले कि, मुझ अपुत्रके यह वैष्णव बालक उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार कहकर उस

बालकको छातीसे लगाय अपने घोडेके पीठपर बठाललिया ॥ १९ ॥ और उसको अपनी मनोहर नगरीके बीच अपने घर लेजाकर महाराज कुलिन्दने वह मिलाहुआ पुत्र अपनी मेधावती रानीको समर्पण करदिया ॥ २० ॥ तब वह रानी हर्षित होकर बोली कि, हे प्राणपति ! आपने मुझको शोकहीन करदिया । श्रीनारदजी महाराज बोले-हे अर्जुन ! इसके पीछे बुद्धिमान् कुलिन्दने (अपने नगरमें) महामहोत्सव कराया ॥ २१ ॥ तदुपरान्त ज्योतिषियोंने कहा-हे राजन् ! यह आपका लडका सर्वगुणसम्पन्न, श्रीमान् भगवान् विष्णुकी भक्ति करनेवाला, महायश-वाला और चन्द्रहासनामवाला महाभूपाल होगा, इसमें कुछ संशय नहीं करना ॥ २२ ॥ तबसे ही हे पार्थ ! वह चन्द्रहास प्रतिदिन महाराज कुलिन्दके विचारके संग इस प्रकार बढनेलगा, जिस तरह शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढाकरता है ॥ २३ ॥ फिर जिस समय चन्द्रहास सात वर्षका हुआ, उस काल वह अक्षरोंका निर्णय पढनेलगा और इसके पीछे वह उत्तमावीधिसे विचार कर 'हरि' इन दो अक्षरोंको ॥ २४ ॥ जपनेलगा तब अक्षरपाठक अर्थात् विद्या पढानेवाला क्रोधित होकर रात-दिन उस बालकसे कहनेलगा कि 'हरि' इन दो अक्षरोंको ॥ २५ ॥ हे बालक ! वर्णोंके मध्यसे तू किसलिये पढता है ? यह सुन चन्द्रहासने उत्तर दिया । मेरे सिद्धवर्णका आम्नाय है और रामआदि गुरुजन हैं ॥ २६ ॥ इस कारण 'हरि' ऐसे अक्षरोंके आलापसे मेरे मुखद्वारा और वर्ण नहीं निकलते. तब गुरुने उस बालक राजपुत्रका हाथ पकडकर शिक्षा दी ॥ २७ ॥ कि हे शिष्य ! तू क का इत्यादि बारहखडीसे आरंभ करके सब विद्या पढ, अन्यान्य वर्णोंको वृथा ही क्यों उच्चारण करता है ? गुरुके इस प्रकार कहनेपर चन्द्रहासने उत्तर दिया कि हे गुरो ! जिस शास्त्र वा पुराणमें भगवान् श्रीहरिका नाम वर्णित नहीं है ॥ २८ ॥ वह शास्त्र चाहे परब्रह्मका कहाहुआ ही क्यों न हो, किन्तु तथापि उसको नहीं सुनना चाहिये । श्रीनारदजी बोले-हे पार्थ ! वह एकादशीका दिन प्राप्त होनेपर

न तो अन्न भोजन करे और न झूँठ ही बोले ॥२९॥ ब्रह्मविद्या और भगवान् श्रीहारीकी भक्तिमें निरन्तर निरत (तत्पर) रहे । इस तरहका बर्त्ताव करनेलगा । फिर आठवाँ वर्ष लगनेपर मेखलाबंधन कर्म ॥ ३० ॥

कृत्वा वेदस्य पठनं कृतं शास्त्रणे संयुतम् ।
चन्द्रहासस्ततः पश्चाद्धनुर्वेदं समभ्यसत् ॥ ३१ ॥

करके सम्पूर्ण शास्त्रों समेत वेदोंको अध्ययन किया और इसके पीछे चन्द्रहासने धनुर्वेदका अभ्यास किया ॥ ३१ ॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां चन्द्रहासव्रतबन्धो नाम एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमोऽध्यायः ९२.

द्विनवातितमेऽध्याये चन्द्रहासस्य प्रस्फुटम् ।
माहात्म्यं विप्रभक्तिश्च कथ्यते सुरदुष्करा ॥ १ ॥

इस बानवें अध्यायमें चन्द्रहासकी प्रत्यक्ष महिमा और देवदुष्कर अर्थात् देवताओंके पक्षमें भी कठिन ब्राह्मणकी भक्ति कही जाती है ॥ १ ॥

नारद उवाच ।

अथोनषोडशाब्देऽसौ पितरं वाक्यमब्रवीत् ।
यदि शिक्षसि चेन्मह्यमाज्ञां दिग्विजयश्रिताम् ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले–हे अर्जुन ! फिर जब चन्द्रहास पन्द्रह वर्षका हुआ तो अपने पितासे यह बात कहनेलगा कि, हे पिताजी ! यदि आप मुझको सीखदेते ही हैं; सबसे पहले दिग्विजय करनेकी आज्ञा दीजिये ॥ १ ॥ जिससे मैं जाऊं और सारे राजाओंको जीतकर धन लाऊँ. यह सुनकर महाराज कुलिन्दने उत्तर दिया हे लाल ! तुम अकेले कैसे जाओगे ? ॥ २ ॥ क्योंकि जिनको तुम जीतने कहते हो, वे राजालोग बडी भारी सेनावाले और महान् कठिनाईसे जीतनेलायक हैं; अथवा तुम भगवान् वासुदेवको स्मरण करके हठसे जाओगे ॥ ३ ॥ और उधर अपना स्वामी

कुन्तलराजाका मन्त्री दुष्टबुद्धि है. आगे उस दुष्टबुद्धिने मुझे देश दिया किन्तु प्रथम मेरे अधिकारमें एकसौ ग्राम थे ॥ ४ ॥ इस प्रकार उन महाराजके महाबलवान् शत्रु तुमको आपसमें सुनकर मेरे देशको पीडित करेंगे अर्थात् भांति भांतिके दुःख देंगे ॥ ५ ॥ अपने पिताजीकी यह बात सुनकर वह चद्रहास प्रसन्नतापूर्वक पांच रथियोंके समेत धनसे भरे हुए उन देशोंको गया ॥ ६ ॥ तब धनुषधारी महाबलवान् राजा चन्द्रहासने उन सारे राजाओंको जीतकर हजारों हाथी, घोडे ॥ ७ ॥ तथा सुवर्ण, रत्न और मोतियोंसे भरेहुए बहुतसे छकडोंको लेकर वह चन्द्रहास अपनी चन्दनावती नगरीमें चला आया ॥ ८ ॥ इसने ज्योंही नगरीमें प्रवेश किया कि त्योंही महाराज कुलिन्दने सामने आकर इसको अभिनन्दन (श्लाघित) किया. फिर उस चन्द्रहासपुत्रको अपने सिंहासनमें अभिषिक्त किया ॥ ९ ॥ महाराज कुलिन्दने वेदके ज्ञाता ब्राह्मणोंसमेत पंचमीके दिन अभिषेचन किया अर्थात् पुत्रको अपने राज्यसिंहासनपर स्थापित करदिया। तदनन्तर क्रमानुसार सब पुरवासियोंने आदरसत्कार महोत्सव किया ॥ १० ॥ इस प्रकार जब पुरवासियोंने आदरसत्कार किया, तब चन्द्रहासने कहा–हे पुरवासियो! आजसे प्रारंभ करके माङ्गलिक दिन और याम प्राप्त होनेपर ॥ ११ ॥ जो व्यक्ति उत्सव और ब्रह्मचर्यव्रतका पालन नहीं करेगा, वह मेरा पूरा वैरी है, और इसी प्रकार जो आदमी विना भगवान् विष्णुका नाम लिये अर्थात् ब्रह्मार्पण किये अन्न भोजन करेगा वह भी मेरा बडाही वैरी होगा ॥ १२ ॥ उन पुरवासियोंको ऐसी आज्ञा दी और उन्होंने भी उस आज्ञाको अपने हृदयमें हितकारी माना तदनन्तर सुवर्ण, रत्न, वस्त्र, धन, धान्य और गहनोंद्वारा ॥ १३ ॥ नृपोत्तम चन्द्रहासने वहाँ ब्राह्मणोंकी पूजा करी। फिर बावली, कुँए, तालाव तथा विष्णुके मन्दिर ॥ १४ ॥ शिवालय विद्यार्थियोंके स्थान, मठ और योगीश्वरोंके आश्रम और बहुत प्रकारकी प्याऊं तथा युद्ध करनेके स्थान बनवाये ॥ १५ ॥ नारदजी बोले–हे अर्जुन! तब धन धान्यसे भरी पुरी महाराज चन्द्रहा-

सकी चन्दनावती नगरीमें देशदेशके आदमी आनकर प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ इस तरह उस चन्दनावतीनामवाली नगरीका पालन करतेहुए उस पुत्र चन्द्रहाससे उसके पिता महाराज कुलिन्दने कहा, हे पुत्र ! मुझे महाराज कुन्तलके निमित्त दश हजार निष्कभार द्रव्य देना चाहिये ॥ १७॥और पाँच हजार निष्कभार सोना अपने स्वामी दुष्टबुद्धिको देना चाहिये, ढाईहजार निष्कभार इस राजपत्नीको देना चाहिये और साढे बारहसौ निष्कभार उस मंत्रीकी भार्याकोभी देना चाहिये अत एव हे उदारबुद्धि ! जिस तरह बुद्धिमान् मंत्रीयोंमें श्रेष्ठ दुष्टबुद्धि प्रसन्नता लाभ करें, आपको उसी प्रकार यत्न करके वह धन शीघ्रही भेजदेना उचित है ॥ १८ ॥ हे वत्स ! इस स्थानसे वह कौन्तलपुर चौबीस कोशकी दूरीपर विद्यमान है, उस नगरीमें महाराज कुन्तल गालवनामवाले पुरोहितसमेत ॥ १९ ॥ और मन्त्री दुष्टबुद्धिके सहित सम्यक् प्रकार राज्य कररहे हैं। तब चन्द्रहास अपने पिताजीकी यह बात सुनकर हर्षित हुआ ॥ २० ॥ तदनन्तर चन्द्रहासने आसानीसेही मंत्री राजा और उनकी रानियोंके निमित्त वह सारा धन पुरोहित गालवजीके पास भेजदिया ॥ २१ ॥ और पीछे सुन्दर विनतीकी पत्रिका (चिट्ठी) भेजी, तब उस पत्रिका और धनको लेकर ॥ २२ ॥ महाराज चन्द्रहासके सेवक कुन्तलनगरीमें जापहुँचे। वे सेवक वहाँ एकादशीके दिन संध्याकालमें पहुँचे ॥ २३ ॥ तब उन सबने स्नान और भगवान् श्रीहरिको प्रणाम करके गीले वस्त्र अथवा चन्दनादिके द्वारा सघन हो उस नगरीमें प्रवेश किया इस भाँति स्नान और चन्दनादिसे शोभितहुए ॥ २४ ॥ उन चन्द्रहासके सेवकोंने मंत्री दुष्टबुद्धिके घरमें गमन किया तब उनके गीले कपडे देखकर दुष्टबुद्धि अत्यन्त संतापित हुआ ॥ २५ ॥ और मनमें समझा कि महाराज कुलिन्द मृत्युको प्राप्त होगये। इसी कारण सेवकोंकी यह दशा होरहीहै. तदनन्तर उस दुष्टबुद्धिने प्रणाम करते हुए महाराज कुलिन्दके सेवकोंसे कहा ॥ २६ ॥ हे सेवको ! महाराज कुलिन्द कब मरे ? यह काम बडाही खोटा होगया यह सुनकर सेवकोंने उत्तर दिया, हे महाशय ! मरें महाराज

कुलिन्दके वैरी और बुराभी उनके वैरियोंकाही हो, महाराज कुलिन्दका अनभल कभी न हो ॥ २७ ॥ महाराज कुलिन्दके बुद्धिमान् पुत्र चन्द्रहासने आपकी प्रसन्नताके लिये दिग्विजय करके यह धन भेजदिया है ॥२८॥ उन सवेकोंकी यह बात सुनकर मंत्री दुष्टबुद्धि बडे आश्चर्यको प्राप्त हुआ और सचिवप्रवरने उन सेवकोंके भोजन करनेको अन्न मँगाया ॥ २९ ॥ सेवकोंने कहा—हे मंत्रिवर ! आज एकादशीका दिन है अत एव हम हरिवासरमें भोजन नहीं करेंगे। उनकी यह बात सुनकर मंत्री अत्यंत तापित हुआ ॥ ३० ॥ मंत्रीने कहा, हे सेवको ! जब कि महाराज कुलिन्द जीवित हैं तो मालूम होता है कि तुम लोग अत्यन्त गर्वित होकर मेरे दिये हुए अन्नको नहीं खाते ॥ ३१ ॥ इस कारण मैं उस कुलिन्दको मजबूत बेडियोंसे बांधकर मारडालूंगा अथवा मरवादूँगा । इस प्रकार कहकर दंडस्वरूप वह धन लेलिया और फिर उन सेवकोंको मारनेके लिये उठा॥३२॥ तब वे सारे सेवक (भागकर) चन्द्रहासके पास चलेगये और उन्होंने मन्द मन्द मुसकुरातेहुए चन्द्रहाससे सारा हाल कहदिया ॥ ३३ ॥ इसी बीचमें दुष्टबुद्धिभी अपने मनमें विचार करके मदननामक बेटेको महाराज कुन्तलके निकट नगरमें नियुक्त कर ॥ ३४ ॥ यह मंत्रिसत्तम दुष्टबुद्धि जैसेही महाराज कुलिन्दकी नगरीको जानेलगा कि, त्योंही विषया नामवाली इसकी कन्याने आनकर कहा ॥ ३५ ॥ विषया बोली—हे पिताजी ! आप किसको लानेके लिये कहाँ जारहे हैं ? यह सुनकर पिताने उत्तर दिया हे पुत्री ! हे विषये ! हे शोभायमान आँखोंवाली ! जाओ तुम घरको चलीजाओ ॥ ३६ हे बालिका ! तुम अपने मनमें संतोष रक्खो. क्योंकि मैं इस समय तुम्हारे लिये वर देखनेके लियेही जारहा हूँ । इस प्रकार कहकर उस दुष्टबुद्धिने अपनी कन्याको समझा बुझादिया ॥ ३७ ॥ फिर अपने बेटेको नगरमें नियुक्त करके स्वयं महाराज कुलिन्दके निकट गया । तब मंत्री दुष्टबुद्धिको अचानक आयाहुआ देखकर महाराज कुलिन्द बडे अचंभेमें हुए और पुत्रसमेत उसको प्रणाम करके अपने घर लिवायलाये और नम्रता-

पूर्वक स्थित होकर पुत्रसहित यथाविधि उसकी पूजा करी ॥ ३८ ॥ ३९॥ तव मंत्री दुष्टबुद्धिने पूछा, हे महाराज ! पुत्र कब हुआ ? कुलिन्दने उत्तर दिया हे मंत्री ! यह मेरा औरस पुत्र नहीं है, बरन् यह मनोरथरूपी पुत्र स्वयंही मिलगया है ॥ ४० ॥ मैं आपके आगे इस सुन्दर पुत्रकी आख्यायिका (कथा) कहताहूँ । मैं एक समय मृगया (शिकार) संयुक्त होकर वनके गह्वरमें गया ॥ ४१ ॥ वहाँ कुन्तलनगरीके सम्मुख दो योजन (आठकोश) विस्तारवाले वनमें घुसा, वहाँ यह छठी अंगुली कटाहुआ बालक मैंने देखा ॥४२॥ हे महामते ! यह सोलहवर्षकी अवस्थाका बालक मुझको औरस पुत्रसेभी अधिक प्यारा है, इस प्रकार इस चन्द्रहासको आप विष्णुका भक्त जानिये ॥ ४३ ॥ हे पार्थ ! महाराज कुलिन्दके ऐसा कहनेपर वह दुष्टबुद्धि योगीकी तरह अन्तर्दृष्टि (ध्यानदृष्टि) युक्त होकर सोचनेलगा कि, हो न हो यह बालक वही होगा, अब यह सोलहवर्षकी अवस्थाका होगया है ॥ ४४ ॥ मुझको अंगुली दिखाकर चाण्डालोंने धोखा दिया, फिर सोचा कि, होनेवाली बात थी सो तो होली, किन्तु मुनियोंका वचन तो मैं अवश्यही मिथ्या करूँगा ॥ ४५ ॥ तदनन्तर हृदयमें चिन्ता कर हाथ जोडेहुए अन्तरमें मलीन वचनको रखकर कहनेलगा ॥४६॥ दुष्टबुद्धि बोला हे महात्मन् ! जो कि आपको ऐसा सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ है, इसलिये आज आपका जन्म सफल होगया और मेरे हृदयमेंभी इस बातसे आपकी बराबर हर्ष होरहा है ॥ ४७ ॥

इत्थं वचः स्माह निगूढभावं क्षुरं प्रलिप्तं मधुनैव तीक्ष्णम् ।
यथा तृणैश्छादितगर्त्त एषः क्षौद्रं यथा विषाविषं विचित्रम् ॥

जिस प्रकार पैनी धारवाली छुरी शहतमें लपेटीगई हो, गढा तिनकोंसे आच्छादित (ढक) होरहाहो, और जैसे विषमिश्रित शहत हो इसी प्रकार वह दुष्टबुद्धि गुप्तभाववाला विचित्र वचन बोला ॥ ४८ ॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां चन्द्रहासोपाख्याने दुष्टबुद्धिसमागमो नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः ९३.

त्रिनवतितमेऽध्याये विषयाचन्द्रहासयोः ।
विवाहश्चाऽभवत्प्रेम्णा तत्स्फुटं वर्ण्यतेऽधुना ॥

इस तिरानवें अध्यायमें विषया और चन्द्रहासका प्रेमपूर्वक विवाह होगया, सो सब स्पष्ट कथा वर्णन करीजातीहै ॥ १ ॥

नारद उवाच ।

पुनर्दध्यौ दुष्टबुद्धिः कुबुद्धीनां शिरोमणिः ।
कथं मुनिवचोतथ्यं कथं पञ्चत्वमेत्ययम् ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे अर्जुन ! इसके पीछे कुबुद्धिपुरुषोंके शिरोमणि उस दुष्टबुद्धिने फिर अपने मनमें विचारा कि मुनियोंकी बात किस तरह मिथ्या हो और यह चन्द्रहास कैसे मरे ? ॥ १ ॥ अत एव महादेवजी महाराजने जिस हलाहलको अपने कंठमें धारण कियाहै उसी गरल (विष) से इस वैरीको नष्ट करडालूंगा क्योंकि इस समय चन्द्रहासके मारनेका दूसरा उपाय मुझको दिखाई नहीं देता ॥ २ ॥ इस प्रकार सोच विचार कर, वह दुष्टबुद्धि अत्यन्त हर्षित हुआ और फिर चन्द्रहाससे बोला कि, हे वत्स ! आप अब विचित्र पत्र और लेखनी (कलम) तो लेआइये ॥ ३ ॥ क्योंकि आपकी जो कुछ अभिलाषा है वह सब एक पत्रमें लिख दो तब मैं आपको कुन्तल नगरीमें भेज देताहूँ. अनन्तर उससेभी एक पत्रको लेकर प्रधानको एकान्तमें बैठाल और पत्र अर्पण किया ॥ ४ ॥ तब वह प्रधान उस पत्रमें अपनी मतिके अनुसार अक्षर लिखनेलगा कि, मदनके निमित्त स्वस्ति (कुशल) और श्री (सम्पात्ति) होय । आगे पत्र लिखनेका कारण इस प्रकार है कि ॥ ५ ॥ चन्द्रहास अपना अत्यन्त ही अनभल करनेवाला वैरी है, और मैंने इसको अपनी सारी सम्पत्तिका मालिक समझलियाहै, इस बातमें आप जराभी संशय न करें, अतएव हे बेटे ! आपको ऐसा काम करना उचित है ॥ ६ ॥ इसका रूप, अवस्था, कुल, शील, पराक्रम, विद्या

तथा धन इन सब बातोंकी तरफ आप आँख उठाकर न देखिये और इस शत्रुके लिये जो कुछ लिखागयाहै उसके अनुसार काम करनेमें एक पलभरकी भी देर मत कीजिये ॥ ७ ॥ हे मदन ! आप इस वैरीको विष देदीजिये । इसप्रकार पत्र लिखकर चन्द्रहासको भेज दिया ॥ ८ ॥ और उससे कहादिया कि, आप शीघ्रही घोडेपर सवार होकर चार नौकरों समेत कुन्तलनगरीमें चलेजाइये और हे धर्मात्मन् ! यह पत्र मेरे पुत्र मदनको दिखा दीजिये ॥ ९ ॥ नारदजी बोले—हे अर्जुन ! तब वह चन्द्रहास पत्र लेकर सुन्दर घोडेपर सवार होगया और फिर माता पिताके आशिर्वाद लेकर कुन्तलनगरीको चलदिया ॥ १० ॥ तदनन्तर प्रातःसमय कुन्तलग्रामके धोरे क्रीडावनमें जो मनोहर तालाब था, वहाँ स्नान और भगवान् श्रीहरिकी पूजा करके पाथेय (मुसाफरी)का भोजन किया॥ ११ ॥ और फिर उस मनोहर तालाबके किनारे थोडी देर विश्राम किया । तदनन्तर कुन्तलपुरमें चंपकमालिनी नामक राजकन्या दासीसमेत और विषयानामक दुष्टबुद्धिकी अच्छे भाग्यवाली सुन्दर कन्या यह दोनों कन्या सौकन्याओंसे घिरी हुई आई ॥१२॥१३॥ वसंतऋतुमें प्राप्त पुष्पोंको ग्रहण करनेवाली वनमें आई, साढे तेरहवर्ष अवस्थावाली युवा अवस्थाके भेदन करनेसे हुशियार वह कन्या और बुरे कपडे पहरनेवाली तथा प्रकाशमान कंचुक पल्लोंवाली इसप्रकार वह चन्द्रहास और उसी समय कमलिनीके खण्डोंद्वारा सुशोभित तालाब पर पहुँची ॥ १४ ॥ १५ ॥ नारदजी बोले—हे अर्जुन ! तब कन्याके उस तालाबके किनारे कि जहाँ मोतीकी तरह बालुका (रेता) है छोडेहुए कपडोंका मर्मर शब्द सुना ॥ १६ ॥ तदनन्तर उन कन्याओंने जलविहार करके अपने अपने कपडे पहरलिये और फिर सब जनी वहाँसे निकलकर अपने अपने सुन्दर घरोंको चली गई ॥ १७ ॥ उन सारी कन्याओंमें मन्त्री दुष्टबुद्धिकी विषया नामवाली कन्या पीछे खडी रहगई और उसने नृपोत्तम कुमार चन्द्रहासका दर्शन किया ॥ १८ ॥ उस काल वह विषया चन्द्रहासके गुणोंद्वारा पकडीहुई आगे नहीं जासकी, हे महाराज ! अनन्तर उस

विषयाने दासी सैरन्ध्रीको बुलाकर अपने पैरोंकी पायजेवें देदीं ॥ १९ ॥ फिर आवाज होनेकी शंका करके दोनों वस्त्रोंको हाथमें ऊंचा धरकर इस प्रकार चली कि जिस प्रकार हंसके पास हंसिनी जाती है अथवा हाथीके पास हथिनी जाती है ॥ २० ॥ इस तरह वह विषया जहाँ नरेश्वर चन्द्रहास सोरहाथा वहाँ पहुँची। विषया पतिको जानकर चारों तरफ निगाह दौडानेलगी ॥ २१ ॥ तब उसने वहाँ चन्द्रहासके कंचुक (पगिया) से निकले सुन्दर पत्रको देखा, फिर उसको शीघ्रता सहित हाथमें लेलिया और उसकी मुहरको देखकर अचंभेमें होगई ॥ २२ ॥ फिर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक पिताके उस पत्रको पढा कि मदनके निमित्त स्वस्ति(कुशल) और श्री (संपत्ति) रहे, आगे पत्र लिखनेका कारण यह है कि, ॥ २३ ॥ चन्द्रहास मेरा अनभल करनेवाला पूरा वैरी है, और मैंने इसको अपनी संपत्तिका मालिक जानलियाहै,इसमें संशय नहीं अत एव हे पुत्र ! आपको ऐसा काम करना उचित है ॥ २४ ॥ कि इसका रूप, अवस्था, कुल, शील, पराक्रम, विद्या और धन इनकी तरफ आप आँख उठाकर न देखिये और जो कुछ इस पत्रमें लिखागयाहै, उसके अनुसार काम करनेमें एक पलभरकी भी देरी मत करना ॥ २५ ॥ हे मदन ! इस वैरीको आप विष देदेना। इस तरह उस पत्रको पढा और फिर उसके मतलबको टटोलतीहुई वह विषया चिन्ता करने लगी ॥ २६ ॥ उसने मेरी सम्पत्तिका मालिक और मित्र तुल्य मदनके समान हितकारी इत्यादि अक्षर पत्रमें अच्छे देखे॥ २७ ॥ नारदजी बोले—हे अर्जुन ! अपनी समान रूपवान् मनोहर वरका दर्शन करके वह विषया हर्षित होकर कहने लगी कि, इनके निमित्त विष देना चाहिये ऐसा मेरा पिता आनन्दसे स्खलित होगयाहै ॥ २८ ॥ बुढापेमें शठजानेके कारण अथवा जडबुद्धिसेही अवश्य मेरा पिता इस तरह लिख गयाहै और मदनभी पिताके पत्रको देखकर इसको मारडालेगा ॥ २९ ॥ इस तरह सोच समझकर सुन्दरी कन्याने नाखूँनसे काजलको ले रसाल जातिके पेडके निर्यासयुक्त करके काजलमें पानी डाल अपने हाथसे मसलकर हर्षित विषयाने

इसको 'विषया देनी चाहिये' इस प्रकार लिखकर पीछेको लौटचली॥ ३०॥ ॥ ३१ ॥ तदनन्तर वह विषया सखियोंसमेत हँसतीहुई अपने घर चली आई और उधर संध्यासमय चन्द्रहासभी मदनकी सभामें ॥ ३२ ॥ प्रसन्नता द्वारा आनन्दित मन होकर प्रतापी चन्द्रहास मिलनेके लिये आपहुँचा। तब उसको देखतेही तत्काल उठकर हर्षपूर्ण हृदयवाला मदन ॥ ३३ ॥ वैष्णव चंद्रहाससे प्रसन्नतापूर्वक मिला, और फिर उसने चंद्रहासके दियेहुए पिताके पत्रको पढा ॥ ३४ ॥

दोहा—हर्षित मदन हृदयमहँ, तुर्त ज्योतिषी लाय ।
सर्व सुयोग सुमंगल, लग्न विवाह धराय ॥

चौपाई ।

विषया तहां मनाव भवानी । चन्द्रहास वर दे कल्यानी ॥
तृतिया व्रत करिहौं मैं तोरी । तुम जो आश पुजावहु मोरी ॥
अन्तःपुरै मदन तब गये । जननिहि मर्म कहत सब भये ॥
गोधन समय व्याह परमाना । चन्द्रहास वर विषया वामा ॥
विषयाते सब सखिन सुनाई । सुनकर विषया रही लजाई ॥
लग्न भये तब बाजन बाजे । मंगलचार सखिन सब साजे ॥
चन्द्रहासको तब अन्हवाये । विषयाको शृंगार बनाये ॥
विविध प्रकार लग्न धरवाये । ब्राह्मण प्रोहित तहँ बुलाये ॥
गोत्र पूछि कह तब मन लाई । चन्द्रहास सब बात सुनाई ॥
माता पिता गोत्र हरि अहई । लै कुलिन्द पारावति कहई ॥

दोहा—शाखोच्चार उचारिकै, वेद जु विविध प्रमान ।
शास्त्रधर्म कुलधर्म मत, मदन देत है दान ॥

चौपाई ।

कन्या दान मदन तब कीन्हा । गज तुरंग मणि मुक्ता दीन्हा ॥
रजत सुवर्ण बहुत तेहि दीन्हा । सब भंडार शून्य निज कीन्हा ॥

होम करी गठबन्धन दयऊ। भाँवरि सात अग्निपर भयऊ ॥
दक्षिण ब्राह्मण सबही पाये। यहि प्रकारतें व्याह कराये ॥
सब द्विज और पुरोहित आये। दान देय सब बिदा कराये ॥
मंगलचार युवति जन गाये। बहुत गुणी जन याचक आये ॥
विष दिवायके मारन चहही। हरि सहाय तो नारद कहई ॥
केवल हरिहि सदा मन लाये। विष देते विषया सो पाये ॥
परम भक्त प्रभु कपट न करई। एक पिता भक्ती मन धरई ॥
ताहि सदा हरि रक्षक अहई। काह करै विष नारद कहई ॥

दोहा-मंगलदायक वही प्रभु, नारद कहा बखान।
वैशम्पायन भाषेऊ, सुनत दुःखकी हान ॥

तब पत्रका मतलब समझकर वह मदन बहुतही सन्तुष्ट हुआ और उसने तत्कालही ज्योतिष शास्त्रके पण्डित ब्राह्मणोंको बुलालिया ॥ ३५ ॥ और उनसे मदनने विषया तथा चन्द्रहासके विवाहकी लग्न पूछी, ब्राह्मणोंने कहा हे मदन ! सर्व दोषोंसे हीन लग्न तो इसी समय सुन्दर है ॥ ३६ ॥ उनकी यह बात सुनकर मदन अत्यन्त हर्षित हुआ और उसने महामाङ्गलिक शब्दोंसे उन दोनोंका विवाहकार्य किया। फिर मदनने वैष्णव चन्द्रहाससे उसका गोत्र पूछा ॥ ३७ ॥ चन्द्रहास बोला-हे मदन ! भगवान् श्रीहरि स्वयं मेरे गोत्रहैं, वेही मेरे पिता हैं, और वेही हरि मेरे दादा तथा परदादा हैं, उनको छोडकर दूसरा कोईभी मेरा सुहृद् (हितकारी) नहीं ॥ ३८ ॥ इसके पीछे मदनने अपनी बहन विषया चन्द्रहासको दान करदी अर्थात् कन्यादान किया और फिर ऊँची आवाजसे बोला कि लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णु मेरे इस दानसे सन्तुष्ट होवें, तदनन्तर गांठ जोडे और कुंकुम चर्चित शरीरवाले वे दोनों वर दुलहिन शीघ्रतासहित वेदीपर पहुँचे । वहाँ उन्होंने अति उत्तम सप्तपदीके विधानानुसार घीकी आहुतियोंद्वारा हुताशन (अग्नि) को सन्तुष्ट किया ॥ ३९ ॥ इसके पीछे मदनने अत्यन्त आनन्दित होकर बहुत सारा धन, प्रदान किया तथा गौ, हाथी, रथ, ऊंट,

भैंसे और दास दासी ॥ ४० ॥ रत्न, माणिक्य और मोती इत्यादि तरह तरहके रत्न और गहने भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके निमित्त बहन और बहनोई चन्द्रहासको (दहेजमें) दिये ॥ ४१ ॥

इदं शिरो मदीयं तु त्वदर्थे यातु निश्चितम् ।
पश्चाद्दानानि दत्तानि याचकेभ्यो बहूनि च ॥ ४२ ॥

(और फिर सौजन्य दिखताहुआ बोला कि) आपके निमित्त मेरा यह शिर निश्चय जावे अर्थात् आपके काममें मैं अपना शिरतक देदूँगा इस प्रकार कहकर पीछे मदनने याचकोंको बहुतसा दान किया ॥ ४२ ॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां चन्द्रहासविवाहो नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः ९४.

चतुर्नवतितमेऽध्याये दुष्टबुद्धिं मृतं तथा ।
पुनरुज्जीवयत्सोऽथ वर्ण्यते कृष्णदर्शनम् ॥ १ ॥

इस चौरानवें अध्यायमें मंत्री दुष्टबुद्धिका मरना और फिर चन्द्रहासका उसको जिलाना तथा भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन यह कथा वर्णन करीजाती है.

नारद उवाच ।

तस्यां तु चन्दनावत्यां कुलिन्दं निगडेऽग्रहीत् ।
दुष्टबुद्धिर्बबंधाथ दण्डयामास तां प्रजाम् ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे अर्जुन! उधर उस चन्दनावती नगरीमें मन्त्री दुष्टबुद्धिने महाराज कुलिन्दको लेकर बेडियोंसे बाँधलिया और उनकी प्रजाको दंड देनेलगा ॥१॥ और महाराज कुलिन्दको भी तरह तरहके कष्ट देताहुआ पीडित करनेलगा । दुष्टबुद्धि बोला—तैंने चन्द्रहास पुत्रके सहित मेरे धनको नष्ट करडाला है ॥ २ ॥ अत एव मैंने पुण्यप्रभावके प्रतापसे अत्यन्त विकारकी भावना मानी है, इस तरह महाराज कुलिन्दको डरा धमकाकर वह दुष्टमतिवाला मंत्री कुन्तलनगरीको चलागया ॥ ३ ॥ यह जैसे ही मार्गमें

जावें कि, तैसेही इसको एक महान् सर्प दिखाई दिया वह पुराना और जर्जर देहवाला सर्प कहनेलगा ॥४॥ साँप बोला कि, मैं दिनरात तेरे बापके खजानेपर रहा करताहूँ आज मुझको उस धनके व्यय (खर्च) करनेवाले तेरे बेटेने निकाल दिया है ॥ ५ ॥ उस साँपकी यह बात सुनकर मंत्री वह दुष्टबुद्धि बहुत क्षुभित हुआ और फिर मुसाफिरोंको वक्रदृष्टिसे घूरता, मार धाड करता और ब्राह्मणोंको ताडना देता ॥ ६ ॥ हे अर्जुन ! इस तरहसे वह अपने घर जापहुँचा । तब मदनने अपने पिताको क्रोधित देखकर कहा ॥७॥ हे पिता ! आप कैसे गुस्सेमें भररहे हैं? मैंने आपकी कौनसी आज्ञाका पालन नहीं किया ? बहनको दिया तथा धन, हाथी, रथ इत्यादि सभी कुछ देदिया ॥ ८ ॥ और वह पुराना धनभी देडाला तथा बहनोई चन्द्रहासको मैंने अपने घरमेंही रखलिया है । उस मदनकी यह बातें सुनकर दुष्टबुद्धिने अपना वह पत्र पढवाया और उस पत्रका मतलब देखकर मंत्री कलेजेमें जलमरा ॥ ९ ॥ तब तो कुलिन्दकी संतापजनित शत्रुताको घर आँगन, विवाहकी वेदी, घरमें और वास स्थानमें स्मरण करताहुआ तथा इधर उधर घूमताहुआ और पूर्वमें किये खोटे कामोंको विचारताहुआ विह्वल होगया अर्थात् उसके मनमें बडीही घबराहट उत्पन्न होगई ॥ १० ॥ नारदजी बोले हे अर्जुन ! इस प्रकार उस दुष्टने पुत्रको समझा बुझाकर दंभसे उस चन्द्रहासकी पूजा करी । फिर चौथा दिन आनेपर चतुर्थीकर्म करनेका समय प्राप्त हुआ । तब चतुर्थी कर्मसे निबटकर वह दुष्टबुद्धि छलसहित चिंता करनेलगा ॥ ११ ॥ कि यह चन्द्रहास विशेष प्रकारसे मेरे वंशका नाश करडालेगा, क्योंकि मैं प्रथम इसके पिताको पीडित करचुकाहूँ और उनकी प्रजाकोभी दंड देचुकाहूँ ॥ १२ ॥ मैंने इसके नगरको भग्न किया अर्थात् सारी वस्तीको लूटा और धनभी बहुत सारा ले आया, अतएव जिस समय चन्द्रहास इस बातको सुनेगा, तब वह हमारा वंशसमेत मलिया मेट करडालेगा । १३। इस कारण मुझको उचित है कि विष खवाकर इसको शीघ्रही मारडालूं ! ऐसा होनेपर मेरी बेटी विषया चाहे भलेही रांड होजावे, किन्तु उन मुनियोंकी बातको

तो झूँठा करसकूँगा ॥ १४ ॥ इस तरह अपने जीमें सोच समझ कर चाण्डालों (जल्लादों) को बुलाया, फिर उस पापात्मा दुष्टबुद्धिने सूने स्थानमें बैठकर उनको धीरे धीरे आज्ञा दी ॥ १५ ॥ रे रे जल्लादो ! मेरी बात सुनो। प्रथम तुम सब लोगोंने निडर होकर मुझको छललिया अर्थात् मैंने जो तुम्हें बालकके कतल करनेको भेजा था, सो तुमने उस वैरीका कतल नहीं किया ॥ १६ ॥ अत एव बालभावसेही उस बालकने इस समय इस सारी भूमिपर अपना कब्जा करलियाहै, इतनेपरभी मैंने तुमको गँवार और दुर्बल (गरीब) समझकर वध नहीं किया ॥ १७ ॥ जो हो अब तुम लोगोंको शीघ्रही मेरी आज्ञा (यथावत्) पालन करनी चाहिये। अर्थात् नगरके बाहर सुंदर बगीचीमें देवी चण्डिकाके भवनमें ॥ १८ ॥ सब जने हाथोंमें तलवार लिये हुए चण्डिकाके मन्दिरमें बैठो, फिर रात्रिकालमें जो आदमी वहाँ आवे उसको तुमलोग मारडालो ॥ १९ ॥ पापी दुष्टबुद्धिकी यह बात सुनकर गुप्तवेष बनाये हथियारोंसमेत काले रंगके कपडे पहरे वे जल्लाद चण्डिकाके भवनको गये ॥ २० ॥ अनंतर उन चाण्डालोंके चलेजानेपर वह मंत्री दुष्टबुद्धि शीघ्रता सहित अपने घरको चलागया और वहाँ पहुँचकर विनयपूर्वक चंद्रहाससे बोला ॥ २१ ॥ मंत्रीने कहा—हे चंद्रहास ! हमारे वंशमें सदासे चण्डिका देवीकी पूजा होती आई है, इसमें संदेह नहीं, अत एव विवाह होजाने पर अब आपभी उन चंडिका देवीकी पूजा कीजिये ॥ २२ ॥ आप आधीरातके समय अकेलेही चंडिकाके भवनमें जाकर यथाविधि उनकी पूजा कीजिये और फिर अपने घरको लौट आइये ॥ २३ ॥ हे अर्जुन ! इसी बीचमें उधर बुद्धिमान् कुन्तलराजने अपने गालवनामक पुरोहितको बुलाकर उनसे देवचेष्टा (सुपना) कही ॥ २४ ॥ हे स्वामिन् गालवजी ! भूलोकमें बेखटके राज्य करतेहुए मेरा मुख अल्पकान्तियुक्त है, अत एव मस्तकहीन देहकी परछाँइको देखताहूँ॥ २५ ॥ इस कारण अब मेरा अन्तकाल आपहुँचाहै, इस बातमें संशय नहीं समझना। अब मुझे आप अदृष्टाध्याय सुनाइये जिसके द्वारा मेरा मन परम निवृत्तिको प्राप्त हो ॥ २६ ॥

उनकी यह बात सुनकर पुरोहित गालवजीने अदृष्टाध्यायकी कथा वर्णन करी। जिसके सुननेपर वे कुन्तलाधिपति परम निवृत्तिको प्राप्त हुए॥ २७॥ फिर पास बैठे हुए मदनको बुलाकर इस प्रकार कहा, राजा बोले—हे मदन! आप घर जाकर चन्द्रहासको बुलालाइये॥ २८॥ उसको मैं जमाई बनाकर राज्य दूँगा, इसमें सन्देह नहीं। उनकी यह बात सुनकर मदन परम संतुष्ट हुआ॥ २९॥ तब मदन ज्योंहि घरको चला कि, उसी समय इसने अपने सामने बाँसके पात्रवाले हाथमें चन्दन और फूल लिये चन्द्रहासको देखा॥ ३०॥ तब मदन वैष्णव चन्द्रहासको महाराजके पास भेजकर आप चण्डिकाके मन्दिरकी तरफ चलदिया॥ ३१॥ और चन्द्रहास शीघ्रतासहित महाराजके पास पहुँचा, उसको देखकर महाराज कुन्तलने चंपकमालिनी नामवाली अपनी कन्या समर्पण करदी॥ ३२॥ अनन्तर महाराज कुन्तल राज्यसमेत कन्यादान करके आप शिवकी बाराणसी (काशी) पुरीको चले गये। इसी बीचमें मदन हाथमें फूल लिये हुए चण्डीभवनको॥ ३३॥ जैसेही जानेलगा कि उसी समय उन दुष्ट चाण्डालोंने उसको मारगिराया। तब वह गिरताहुआ मदनभी चण्डिकासे कहनेलगा॥ ३४॥ हे चण्डिके! मैंने अपना यह मस्तक वैष्णव चन्द्रहासके निमित्त अर्पण कियाहै, इस प्रकार कहकर फिर मदन मृत्युको प्राप्त होगया. यह बात देखकर वे चाण्डाल अचंभेमें होगये॥ ३५॥ इसी बीचमें चन्द्रहास साधु महात्मा और राजकन्यासे युक्त होकर अति उत्तम मतवाले हाथीपर सवार हुआ॥ ३६॥ और विवाह विषयक श्रेणीमें जानेलगा, देव बाजोंसे युक्त और दीपमालासे प्रकाशमान तथा चारण किन्नरों द्वारा स्तुतिको प्राप्त होताहुआ॥ ३७॥ उस चन्द्रहासका इस भाँति दर्शन करके सब लोग आनन्दित हुए और मन्त्री दुष्टबुद्धिकी बडाई करते हुए कहने लगे कि, हे मन्त्रिवर! नृपोत्तम चन्द्रहास॥ ३८॥ आपके और महाराज कुन्तलके जमाई आरहेहैं, उनकी यह बात सुनकर मन्त्री दुष्टबुद्धिने क्रोधित होकर कहा॥ ३९॥ हे लोगो! मैं तुम पापात्माओंकी जीभ जडसे काट

डालूँगा । मंत्री यह कहता ही था कि उसी समय उसने चन्द्रहासको देखा ॥ ४० ॥ कि, राजकन्यासमेत उसपर चँवर ढुलरहेहैं, चन्द्रहासको इस तरह देखकर दुष्टबुद्धि विकलतासे आकुल होगया ॥ ४१ ॥ और फिर जब यह सुना कि, देवीके मंदिरमें मेरा बेटा मदन गयाहै, तब तो मूर्छित होगया तन वदनकी कुछ खबर न रही फिर चेत होनेपर वह मंत्री अपने घरसे आधी रातके समय चण्डिकाके भवनको गया ॥ ४२ ॥ वहाँ शिर कटेहुए बेटे अपने मदनको देखा, तब मंत्री दुष्टबुद्धि भांति भाँतिसे विलाप करनेलगा ॥ ४३ ॥ और फिर करपत्र (करौत) को उठाकर अपनी छातीमें मारा । हे महाराज ! उस समय उन दोनोंकीही मृत्यु हुई ॥ ४४ ॥ हे अर्जुन ! दुष्टबुद्धि और उसके पुत्रके मरनेपर वहाँके रहनेवाले आदमियोंने आकर चंद्रहाससे सारा हाल कहसुनाया ॥ ४५ ॥ यह सुनकर चंद्रहास चण्डिकाके मंदिरको गया और वहाँ तप्तकुंड बनाकर हव्य सामग्रीसे होम किया ॥ ४६॥ फिर अपने शरीरका मांस काटकर सूक्तको जपते जपते होमनेलगा और फिर जैसेही अपना शिर काटकर होमनेको तैयार हुआ कि, त्योंही देवीने संतुष्ट होकर कहा ॥ ४७ ॥ देवी बोली—हे महाराज ! जो आपके मनको अच्छा लगे वही वर माँगलीजिये। चन्द्रहासने उत्तर दिया-हे मइया ! यदि आप संतुष्ट होगई हैं, तो यह बाप बेटे जीवित होजाँय ॥ ४८ ॥ तथा मुझको सौख्य प्रदान कीजिये और हम सब ससुर सालोंमें परस्पर अटूट प्रेम प्रदान कीजिये और इनके सिवाय हे माता ! भगवान् श्रीहरिके प्रति चिरकाल तक मेरी भक्ति रहे, यह वरदान दीजिये आपको प्रणाम है ॥ ४९ ॥ तब वह देवी 'एवमस्तु' अर्थात् यही होगा कहकर अन्तर्धान होगई । इसके पीछे पिता पुत्र खडेहोकर आपसमें मिले ॥ ५० ॥ और फिर चन्द्रहासभी उन दोनों बाप बेटोंको अपने घर लेआया । श्रीनारदजी बोले कि, हे अर्जुन ! हे महाबाहो ! अब उधर कुलिन्दने जो कुछ किया, सो सुनिये ॥ ५१ ॥ अर्थात् चन्द्रहासके चलेजानेपर दुष्टबुद्धिके सतायेहुये महाराज कुलिन्दने अपना सारा धन धाम ब्राह्मणको दान करदिया

और फिर आप अग्निमें प्रवेश करके भस्म होनेलगे ॥५२॥ फिर जब यह बात दुष्टबुद्धिने सुनी, तब वह कुलिन्दराजको सेवाकों समेत कुन्तलनगरीमें लेगया ॥५३॥ अनन्तर मंत्री दुष्टधुद्धिसमेत यह महाराज कुलिन्द उन सब जनोंको समझा बुझाकर कुलिन्द चन्द्रहासपुत्र समेत दुष्टबुद्धि उस जगह टिका-रहा ॥५४॥ हे महाराज ! वहाँ रहकर सब जने मुदित हुए और चन्द्रहासने बहुत सेवकों समेत संसारके आत्मा भगवान् श्रीहरिको सन्तुष्ट किया॥५५॥ भगवान् श्रीहरिको महाराज चन्द्रहासने कुन्तलपुरमें नित्य प्रसन्न किया इस प्रकार कुन्तलनगरमें तीनसौ वर्षतक चन्द्रहासने राज्य शासन किया ॥५६॥ तव विषयाने बढौतरीको प्राप्तहोकर मकरध्वज नामक पुत्र उत्पन्न किया और दूसरी रानी चम्पकमालिनीने पद्माख्य नामक महाशूर पुत्रको उत्पन्न किया ॥ ५७ ॥ हे अर्जुन । इस तरह यह चन्द्रहास पूर्वकालमें बालक था सो शालिग्राम शिलाके संसर्ग द्वारा संसार सागरसे पार होगया ॥ ५८ ॥

चौपाई ।

शिला महातम उत्तम अहही । शालिग्राम निरञ्जन लहही ॥
मृत्यु समय चरणोदक पावै । पापी तारि वैकुंठ सिधावै ॥
निरमाल्य जो भक्षत कोई । देव पितृ संतोषित होई ॥
दानी दाता द्वीपन राऊ । चन्दन लेपन मुक्ति उपाऊ ॥

दोहा–शालिग्राम जहाँ रहैं, देव पितृ सब ताहिं ।
सर्व तीर्थ जल पुण्य तौ, चरणामृतके माहिं ॥

श्लोक–तस्मात्संपूजयेन्नित्यं शालग्रामशिलां नरः ।
शालग्रामशिलाचक्रं द्वारकासंभवं तथा ।
कलिकाले विशेषेण न जहाति जनार्दनः ॥ ५९ ॥

इस कारण मनुष्योंको नित्य शालिग्रामशिलाकी पूजा करना चाहिये क्योंकि जो मनुष्य शालिग्रामशिला और द्वारकामें प्रकटहुए चक्रकी पूजा किया करते हैं,उनको भगवान् जनार्दन कलिकालमें कभी नहीं त्यागते हैं ५९

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि भाषायां चन्द्रहासकृष्ण-समागमो नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः ९५.

पञ्चनवतितमेऽध्याये राजसूये हरिः स्वयम् ।
धर्मस्य किं किं कृतवान्विस्तरेण तदुच्यते ॥ १ ॥

इस पिचानवें अध्यायमें भगवान् श्रीहरि (श्रीकृष्ण) ने धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें स्वयं क्या काम किया ? वही कथा विस्तारपूर्वक वर्णन करीजाती है ॥ १ ॥

जनमेजय उवाच ।

दधार चन्द्रहासस्तु वाजिनौ नैव वा मुने ।
एतत्सर्वं समाख्याहि मया पृष्टोऽसि वै मुने ॥ १ ॥

जनमेजय बोले—हे मुनिसत्तम ! उस चन्द्रहासने घोडोंको पकडा या नहीं ? यह बात मैं पूछताहूँ, सो आप मुझसे सब वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ वैशम्पायनजीने उत्तर दिया, हे महाराज जनमेजय ! उस बुद्धिमान् चन्द्रहासने उन घोडोंको नहीं पकडा बरन् श्रीकृष्णको अर्जुनसमेत देख उनके चरणोंमें जाकर नमस्कार किया ॥ २ ॥ तदनन्तर पुत्रको युवराजपदमें प्रतिष्ठित कर माधव भगवान् श्रीकृष्णको तीनरात्रितक अपनी नगरीमें टिकालिया फिर श्रीकृष्ण तथा घोडोंसमेत आपभी गया ॥ ३ ॥ हे नृपोत्तम ! इसके पीछे यज्ञीय घोडा जिस जिस स्थानमें पहुँचा, वहा वहाँके नरेशोंने डरके मारे प्रणाम करके उसको छोडदिया, किसीनेभी नहीं पकडा ॥४॥ तदनन्तर हे महाराज ! घोडा समुद्रकी दिशामें गमन करते करते समुद्रके अगाध जलमें घुसगया ॥ ५ ॥ तब अर्जुन इत्यादि सारे योधा दुःखको प्राप्त होकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहनेलगे । हे भगवन् ! इस समय हमको क्या करना चाहिये जिससे वह घोडे मिलजाँय ? ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णने उत्तर दिया । हे भाइयो ! वे घोडे केवल पांच योधाओंके हंसके समान जलको तरनेवाले हैं, जिस प्रकार हंसकेतुके तथा पार्थके और बभ्रुवाहनके तथा मेरे ॥७॥ और मयूरध्वजके यह पांचोंरथ सर्वत्र गमन कर सकतेहैं, इस तरह कहनेपर भग-

वान् श्रीकृष्ण और उन महारथियोंने समुद्रमें प्रवेश किया ॥ ८ ॥ वहाँ जीर्ण क्षुधित और शतशः छिद्रयुक्त द्वीपपर पडे बडके पत्तोंको हाथद्वारा मस्तक पर धरे हुए और लताओंके मंदिरसे मंडित ॥ ९ ॥ तथा आँखें मूँदे बैठे हुए महाभागवाले मुनिवर बकदाल्भ्यके समीप पहुँच कर प्रणाम पूर्वक वे सब जने सम्मुख बैठगये ॥ १० ॥ अनन्तर ज्योंही मुनिवर बकदाल्भ्य-जीने आँखें खोलीं कि वैसेही सामने श्रीकृष्णादिकोंका दर्शन किया। तब अर्जुनने उन मुनिका आदर सत्कार किया। मुनिने कहा ॥ ११ ॥ मुनि बोले–हे अर्जुन ! आप मेरी स्तुति नहीं कीजिये क्योंकि आपके स्तुति करनेसे मुझे गर्व नहीं होता है, हे अर्जुन ! प्रथम मुझे गर्व हुआथा, उस काल मैंने अचंभा देखा ॥ १२ ॥ चार मुखवाले आठ मुख वाले और फिर सोलह मुखवाले तथा बत्तीस मुखवाले और फिर चौंसठ मुखवाले ब्रह्माओंका अंडके अंतमें दर्शन किया ॥ १३ ॥ हे विभो। ऐसी स्वल्प आयुसे मैंने अपने मस्तकपर बडके पत्तोंको धरालिया है हे स्वामिन् ! मेरे देखते २ बीस ब्रह्मा बीतचुके हैं ॥ १४ ॥ हे पार्थ ! इसके पीछे फिर जो मैंने दारपरिग्रह अर्थात् विवाह नहीं किया उसका भी कारण वर्णन करताहूँ, आप श्रवण कीजिये ॥ १५ ॥ बकदाल्भ्य बोले–हे अर्जुन ! यह दारपरिग्रह अर्थात् भार्याका ग्रहण करना महान् क्लेशदायक और पापका उत्पन्न करनेवाला है, और पापसे निःसंदेह अधोगति अर्थात् नरक प्राप्त होता है और उसका पोषण करनेके कारण कार्य अकार्यका सारा विचाररूपी धर्म नष्ट होजाता है ॥ १६ ॥ फिर वह धर्मका विचार नष्ट होनेपर मोक्ष कहाँ ? क्योंकि फिर तो आदमीको तृष्णा अत्यन्तही चिपटती है, हे वत्स ! इस भाँति चिन्ता करे कि मेरे सब कोई शीघ्रतासहित मृत्युको प्राप्त होगये ऐसा विचार करे और वृद्धिको प्राप्त हो तब वह क्लेश पानेवाला होवे ॥ १७ ॥ इसी प्रकार किशोर अवस्थायुक्त बहुत सारे बेटोंको मैं देखूँगा, और मैंने अनगिन्त बेटोंको उत्पन्न कियाहै, अब पोते किस तरहसे होवें और किस प्रकार वे वेदान्त शास्त्र अध्ययन करेंगे ? ॥ १८ ॥ तथा इनका विवाह

किस भाँति होगा ? मुझे बेटेका सुख देखनेको कब मिलेगा ? गृहस्थ पुरुष इस प्रकार नारीकी फाँसीमें बँधाहुआ निरन्तर चिन्ता करतारहता है और धर्ममार्गका विचार बिलकुल नहीं करता । इसी कारण मैंने विवाह करके भार्या ग्रहण नहीं करीहै और अपनी आयु थोडी होनेसे पर्णशाला (कुटी) भी नहीं बनाई है ॥ १९ ॥ उन मुनिकी यह बात सुनकर अर्जुनको बडा अचंभा हुआ और फिर बकदाल्भ्य मुनिको आगे कर और शिबिका (पालकी) में चढायकर निकले ॥ २० ॥ और शीघ्रतासहित दोनों घोडोंको पीछे जयद्रथके नगरकी तरफ लेकर निकले, वहाँ रानी दुःशलाका कालक-नामवाला बेटा सिंहासनपर बैठाहुआ था, और मंत्री तथा सभापतियोंद्वारा सेवित था, यह दोनों घोडे उसी स्थानमें जापहुँचे ॥ २१ ॥ उसने जयद्र-थका वध करनेवाले अर्जुनको आयाहुआ सुना तब उसका शरीर रोमाञ्चित होगया और वह थरथर काँपने लगा ॥ २२ ॥ और जिस तरह सिंहको देखकर हाथी अपने प्राणत्यागको तइयार होजायाकरतेहैं, उसी प्रकार वह दुःशलाका बेटाभी अपने प्राण छोडनेको तैयार होगया, तब भगवान् श्रीकृ-ष्णने उस बालकको उठाकर समझाया बुझाया और ढाढस बँधाया ॥ २३ ॥ और फिर घोडोंको लेकर हस्तिनापुरमें चलेगये । तब सेनाको बाहर ही टिकाकर केशव श्रीकृष्णने कहा ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे महाशयो ! धर्मराज महाराज युधिष्ठिरकी नगरीमें आगे मैंही जाताहूँ और वहाँ अर्जुन आदि राजाओंकी उनसे कुशल कहूँगा ॥ २५ ॥ यह कहकर प्रथम भगवान् श्रीकृष्णही धर्मराजके पास गये और उनसे कुशल समाचार कहे कि, दोनों घोडे कुशल क्षेमसे लौटआयेहैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार कहकर हे जनमेजय ! जिस समय अर्जुन सेनासमेत आरहेथे तब श्रीकृष्णने सेनाको मोहित कर-नेवाली अपनी माया रची ॥ २७ ॥ तब इस प्रकार आपसमें सारे राजा मिल और महाआनन्दयुक्त मन हो नारियाँभी नारियोंके साथ मिलीं ॥ २८ ॥ और उस स्थानमें जो अपनी भार्याओंसमेत ब्रह्मर्षि आनकर प्राप्त हुए थे, वे सब उन बकदाल्भ्यमुनिको प्रणाम करके उनके आगे खडे

होगये ॥ २९ ॥ तदनन्तर हलों द्वारा यज्ञक्षेत्रको शुद्ध कराकर सुन्दर मध्यम अंगवाली रानी द्रौपदी और नृपोत्तम युधिष्ठिर उन सारी औषधियोंको लेकर दीक्षित हुए ॥ ३० ॥ उस काल ब्रह्मवादी ब्राह्मण मंत्रपाठ करनेलगे और उस स्थानमें होमकुंड बनाकर वे महाराज युधिष्ठिर हव्यसामग्रीको होमनेलगे ॥ ३१ ॥ तपसे प्रकाशमान ऋत्विक् और प्रकाशमान तेजवाले ऋषि वामदेव, गौतम, अत्रि, पराशर ॥ ३२ ॥ भरद्वाज, जमदग्निनन्दन परशुराम, कुहाँड, भासुरि, रैभ्य, सुमन्तु, कौण्डिन्य, जातूकर्ण और गालव इत्यादि ॥ ३३ ॥ यह सब तथा इनके अतिरिक्त औरभी अनेक उत्तम ज्ञानी मुनिजन आनकर उपस्थित हुए । तब महाराज युधिष्ठिरने यज्ञ करके उन सबकी पूजा करी ॥ ३४ ॥ तब वहाँ भगवान् श्रीवेदव्यासजीने धर्मनन्दन युधिष्ठिरसे कहा । व्यासजी बोले—हे युधिष्ठिर ! गंगा जल लेनेके निमित्त चौसठ नारी भर्त्तासमेत गंगाके सुन्दर किनारेपर जावें ॥ ३५ ॥ यह मैंने आपसे यथायोग्य कारण कहा है कि गंगाका जल लाओ, सो इसको कीजिये । अपनी भार्यासमेत अत्रिऋषि, अपनी भार्या अरुन्धतीसमेत वशिष्ठऋषि ॥ ३६ ॥ रुक्मिणीसमेत श्रीकृष्ण, सुभद्रासमेत अर्जुन और मायावती समेत वीर प्रद्युम्न यह सब अभी विना विलम्ब चलेजावें ॥ ३७ ॥ यह सब जने हाथमें कलशी उठालें, और अनिरुद्धसहित रोचना, हिडिम्बासहित भीमसेन और भद्रासहित वृषकेतु ॥ ३८ ॥ सत्यवतीके सहित हँसकेतु, धमिल्लाके सहित अनुशाल्व यह सब जने भार्याओंसमेत गंगाजलको लेने चले जावें ॥ ३९ ॥ तब उन सबने हाथ जोड कर श्रीव्यासजीके वचनानुसार सारा काम किया । वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय ! वे सब कृष्ण अर्जुन इत्यादि नौकरोंकी तरह उपस्थित हुए ॥ ४० ॥ फिर सुन्दर जलसे राजा और राजपत्नीको स्नान कराया अथवा राजा और राजमाहिषियोंने पवित्र जलसे महाराज युधिष्ठिरको स्नान कराया तब तो यह हाल देखकर युधिष्ठिरको महान् गर्व हुआ ॥ ४१ ॥ अनन्तर अपने भक्तोंका पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको गर्वित देखकर उनका गर्व

तोडनेके निमित्त नौलेको दिखाया ॥ ४२ ॥ जिस स्थानमें वेदकी ध्वनि होरहीथी और जहाँ मांगलिक तुरही बजरहीथी तथा जहाँ और भी महामहिमा होरहीथी उसी स्थानमें वह नौला आपहुँचा ॥ ४३ ॥ जिसका आधा अंग तो सुवर्णमय था और आधा अंग असली नौलेका था,तब उस चित्ररूपी नौलेको देख कर सबजने अचंभेमें होगये ॥ ४४ ॥ युधिष्ठिर बोले हे कृष्ण ! कृष्ण ! हे अप्रमेय आत्मावाले ! इस अतिउत्तम नौलेको तो देखिये ।इस प्रकारके सुवर्णमय शरीर और विचित्र रूपवाला नौला किसीने कहीं भी नहीं देखाहोगा ॥ ४५ ॥ नौलेने कहा—मेरा जो यह आधा अंग सुवर्णमय है, सो इसका कारण सुनिये । हे महाराज ! पूर्वकालमें तपोवनके बीच सक्तुप्रस्थ नामक बडे ब्राह्मण ॥ ४६ ॥ उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मण और धर्मात्मा छैमासमें एक समय पारण (भोजन) करतेथे । हे स्वामिन् ! एक दिन वे ब्राह्मण देवता पारण करतेथे ॥ ४७ ॥ कि त्योंही वैश्वदैविक कालमें एक अभ्यागत आपहुँचा तब ब्राह्मणने प्रसन्न होकर अपना भाग उस अभ्यागतको समर्पण करदिया ॥ ४८ ॥ किन्तु उसके द्वारा जब वह योगी तृप्त न हुआ, तब ब्राह्मणने अपनी स्त्रीका भागभी उसको देदिया । फिरभी वह तृप्त न हुआ तब ब्राह्मणने अपने बेटेका भागभी उसके अर्पण करदिया ॥ ४९ ॥ किन्तु इतनेपरभी वह अतिथी तृप्त न हुआ, तब पुत्रकी बहुने अपना भाग देदिया । इस तरह अर्पण करके उन्होंने हाथ धोडाला ॥५०॥ जब हाथ धोनेसे वहाँ गिरेहुए लेशमात्र जलसे मैंने अपने देहको क्षालित किया, तो उस जलके प्रभावसेही मेरे देहका अर्द्धभाग सुवर्णमय होगयाहै ॥५१॥अब मुझको मालूम हुआ है कि, पुण्य देनेवाले महाराज युधिष्ठिर यज्ञ करके गंगाजलद्वारा अवभृथ स्नान करते हैं सो मैं वहाँ जाऊँगा ॥ ५२ ॥ और यह जो आधा शरीर नौलेका रहगया है, उसको उस स्नानके जलसे धोऊंगा क्योंकि ऐसा करनेपर यह मेरा आधा शरीरभी सुवर्णमय होजायगा । यही सोच विचार मैंने इस विमल गंगाजलमें आकर स्नान किया है ॥ ५३ ॥ तथापि हे विभो ! मेरा वह आधा शरीर सुवर्णमय नहीं हुआ ! अत एव

हे महाराज ! यह आपका महत्पुण्य उस ब्राह्मणके पुण्यकी बराबर तो कदापि नहीं है ॥ ५४ ॥ उस नौलेकी यह बात सुनकर सब किसीको बडा अचंभा हुआ और धर्मराज युधिष्ठिरकाभी गर्व जाता रहा. तब वह नौलाभी अन्तर्धान होगया ॥ ५५॥ तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने यज्ञके अंतमें ब्राह्मणोंकी पूजा करी। वे ब्राह्मण भोजनसे संतुष्ट होनेपर वस्त्रोंद्वारा आच्छादित कियेगये और सब गहनोंसे सुशोभित हुए ॥ ५६ ॥ तदनंतर वे सब ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके अपने अपने घरोंको चले गये तथा और भी जितने नरेश आये थे, उन सबने भी अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥ ५७ ॥ हे नृपोत्तम ! इसी बीचमें श्रीकृष्ण तथा अन्यान्य भूपाल गणोंसे युक्त होकर वे महाराज युधिष्ठिर यज्ञेश्वरकी तरह शोभा पानेलगे ॥ ५८ ॥

(आश्रमवासिपर्व १६.)

उसी समय आपसमें झगडा करते हुए दो ब्राह्मण आये। उनको देखकर महाराज युधिष्ठिरने कहा कि, हे ब्राह्मणो ! तुम दोनोंमें किस बातपर झगडा उत्पन्न हुआ है ? ॥ ५९ ॥ तब उनमेंसे एक ब्राह्मणने उत्तर दिया। हे महाराज ! मैंने हलसे इस ब्राह्मणका खेत जोताथा, सो उसमेंसे कुछ धन निकल आयाहै जिसको मैं नहीं लेना चाहता ॥ ६० ॥ और यह ब्राह्मण भी उसको नहीं लेता, तब यह धन किसका समझाजावे ? सो आप धर्मानुसार इसका निर्णय करदीजिये। जब इस तरह उन दोनों ब्राह्मणोंमें बहुत झगडा हुआ तब भगवान् श्रीकृष्णने दोमहीनेतक ॥ ६१ ॥ उस धनको अपने पास घरमें रक्खा और वे ब्राह्मण अपने घरको चलेगये। तब धर्मराज युधिष्ठरने कहा-हे जगन्नाथ ! आप सर्वज्ञ अर्थात् सारी गुप्त बातोंके जाननेवाले हैं, तब फिर आपने अभी इन ब्राह्मणोंका झगडा क्यों नहीं मिटा दिया ? ॥ ६२ ॥ श्रीकृष्णने उत्तर दिया कि, हे धर्मराज ! अब दोमहीनेके पीछे यह द्वापरयुग बीतजावेगा, और महान् कलि आनकर उपस्थित होगा, जिसमें सारे काम विपरीत हुआकरेंगे ॥ ६३ ॥ जिस समय कलि आ

घुसेगा, तब धर्म विशेष प्रकार दग्ध (जल) हो जावेगा, तपस्या विचलित होजावेगी, सत्य दूर भागजायगा, भूमि मंदफलयुक्त होगी, राजा लोग छल फरेब किया करेंगे, लोग नारीके वश होंगे, स्त्रियोंमें चपलता आ घुसेगी, बेटे बापसे वैर किया करेंगे, साधु महात्मा दुःखको प्राप्त होंगे, दुष्टोंको सुख मिलेगा इस तरह सारा धर्म लोप होजायगा ॥ ६४ ॥ फिर एक समय महाराज धृतराष्ट्रने भीमसेनको आलिंगन करनेकी रुचि प्रगट करी । उनका अभिप्राय यह था कि, भीमको इतने बलसे हृदय लगावैं कि उसकी हड्डी पसली चकनाचूर होकर प्राण निकलजाँय । तब श्रीकृष्णने उनका यह छल समझकर लोहेका भीम तइयार किया ॥ ६५ ॥ तदनंतर भगवान् श्रीकृष्णने उसी लोहेके भीमको धृतराष्ट्रसे मिलाया तब उस दुष्टबुद्धिने उस लोहेके भीमको मसलकर भंजनकर डाला ॥ ६६ ॥ तब भीमसेनने उस दिनसे सदाके लिये धृतराष्ट्रको अपमानित किया और वह धृतराष्ट्रभी महात्मा विदुरजीके उपदेश देनेपर प्रज्ञाचक्षु अर्थात् ज्ञानदृष्टिवाले होगये ॥ ६७ ॥ फिर वे धृतराष्ट्र अपनी भार्या गान्धारी समेत तपोवनमें जाने लगे, तब यह जानकर भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णने उन पांडवोंसे आज्ञा ली ॥ ६८ ॥ और फिर हे राजन् ! वे यदुवंशियों (यादवों) समेत द्वारकापुरीकी ओर चले गये तब भगवान् श्रीकृष्णके चलेजानेपर धर्मराज युधिष्ठिर उनके उत्कट वियोगसे अत्यंत कातर हो गये ॥ ६९ ॥

व्यासं प्रष्टुमना राजन्गतो व्यासनिकेतनम् ।
भ्रातृभिः सहितो राजंस्तं ददर्श महामुनिम् ॥ ७० ॥

हे राजन् जनमेजय ! इसके पीछे भगवान् श्रीवेदव्यासजीसे पूछनेकी इच्छावाले महाराज युधिष्ठिर भ्राताओंसमेत उनके घर गये और वहाँ उन महामुनिका दर्शन किया ॥ ७० ॥

चौपाई ।

वैशम्पायन कहैं बखानी । अश्वमेध है पुण्य कहानी ॥
दुखी सुनैं दारिद्र पराई । रोगी रोग तुरत क्षय पाई ॥

निःपुत्री सुनते सुत पावे। पुरुषन सुनत ज्ञान उपजावे ॥
सहसन धेनु देइ जो दाना। सर्वतीर्थ करते असनाना ॥
पर्व अठारह सुन फल होई। अश्वमेध जानो फल सोई ॥
यह चरित्र जो सुनु मनलाई। यमके दूत निकट नहिं जाई ॥
कथा सुनत देते जो दाना। तिनकहँ सम्पत्ति और कल्याना॥
पाण्डव विजय कहै अनुसारा। यह संक्षेप करै विस्तारा ॥
अश्वमेध मख पातक हरता। राजा सुनो श्रीपती करता ॥
कर श्रद्धा नर सुनै पुराना। तापर रहँ प्रसन्न भगवाना ॥

दोहा-पाण्डव विजय कथा यह, पुण्य श्लोक बखान।
अश्वमेध सम्पूरण, सुनु राजा सज्ञान ॥
भारत गाथा हिय धरे, होत पुण्य परवेश।
मनमहँ भक्ति न जासुके, सो नहिं फल उपदेश ॥
पग नूपुर कटि किंकिणी, गल फूलनके हार।
मिश्र कन्हैयालाल पहँ, द्रवहु सो नन्दकुमार ॥

इति श्रीभारतसारे अश्वमेधपर्वणि (आश्रमवासिपर्व) मुरादाबादनगरनिवासिपंडित-कन्हैयालालमिश्रकृतभाषायां पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥ ९५॥

इति श्रीभाषाभारतसारे अश्वमेधपर्व समाप्तम् ॥



श्रीकृष्णाय नमः ।

भारतसार-भाषा ।

मौसलपर्व १७.

षण्णवतितमोऽध्यायः ९६.

दोहा-आनन्दनिधि ऋधि सिधि भवन, गिरिजासुवन गणेश ।
मंगलसुत मंगल करहु, काटहु कठिन कलेश ॥
नन्दनँदन गोपन सखा, जय व्रजेश व्रजचन्द ।
सुखासीन सुखके भवन, सुख दीजे सुखकन्द ॥
मोर मुकुट शिरपर धरे, कुण्डल झलकत कान ।
अधरन पहँ वंशी धरे, गावत मीठी तान ॥
सुन्यो चहत मन मोर यह, मुरलीकी ध्वनि घोर ।
करहु मनोरथ पूर्ण प्रभु, नागर नन्दकिशोर ॥
जय जय जय नँदलाडिले, व्रजजनजीवनप्रान ।
मिश्र कन्हैयालाल कहँ, देहु भक्ति वरदान ॥

श्लोक-षण्णवतितमेऽध्याये वृष्णीनां विप्रशापजः ।
कुलक्षयः कृष्णमतस्तत्सर्वमिह चोच्यते ॥ १ ॥

इस छियानवें अध्यायमें श्रीकृष्णके मतानुसार विप्रशापसे उत्पन्न यदुकुलका नाश होना यह सारी कथा कहीजाती है ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

तमागतं समालोक्य धर्मं बन्धुसमन्वितम् ।
अर्घ्यादिकं ततः कृत्वा ब्रह्मवार्त्तां प्रचक्रतुः ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले-हे जनमेजय ! तब भाइयोंसमेत उन धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिरको आयाहुआ देखकर भगवान् श्रीवेदव्यासजीने उनको अर्घ्य

इत्यादि दिया फिर मुनि व राजा दोनोंजने आपसमें ब्रह्मवार्त्ता (वेद-सम्मत कथोपकथन) करनेलगे ॥ १ ॥ व्यासजीने पूछा—हे राजन् ! आपकी सबतरहसे कुशल तो है ? आपके यहाँ आनेका कारण क्या है ? उनकी यह बात सुनकर महाराज युधिष्ठिरने उत्तर दिया ॥ २ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे स्वामिन् ! मुझको एक डर होरहा है कि, कलियुगमें मैं क्या करूँगा ? क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने मुझसे कहा है कि,कलियुग परम दारुण है ॥ ३ ॥ व्यासजीने उत्तर दिया, हे महाराज ! जिसका श्रीकृष्ण पालन करनेवाले हैं उनको किसका डर होसकता है ? क्योंकि महाविष्णु भगवान् श्रीकृष्ण तो आपको माता और भाइयोंसमेत कलियुगमेंभी वैकुंठमें लेजाँयगे यह मेरी निश्चित बात है । युधिष्ठिरने कहा—हे महाब्रह्मन् ! भगवान् श्रीकृष्णकी जिस गतिको ब्रह्मादिदेवताभी नहीं जानते ॥४॥५॥ हे स्वामिन् ! उसको मैं किस तरह जान सकूँगा ? और वे मधुदैत्यके मारनेवाले श्रीकृष्णभी दूर हैं । व्यासजीने कहा—हे धर्मराज ! अपना हितकारी मेरा कहना कीजिये ॥ ६ ॥ इस प्रकार मुनिवर श्रीवेदव्यासजीकी कहीहुई बात सुनकर महाराज युधिष्ठिर अपने मनमें बहुत संतुष्ट हुए । तब उनसे आज्ञा लेकर युधिष्ठिर हस्तिनापुरमें लौट आये ॥ ७ ॥ फिर तहाँ आकर अर्जुनको द्वारकापुरीमें भेजा । तब अर्जुन प्रसन्नतापूर्वक शीघ्रही द्वारकापुरीमें गये ॥ ८ ॥ वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय ! उधर भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकानगरीमें पहुँचकर सब जनोंको अपनी सभामें बुलाया और फिर उनसे अश्वमेधयज्ञमें आयेहुए सारे राजाओंकी कथा वर्णन करी ॥ ९ ॥ तथा ऋषि ऋषिपत्नी और विशेषकर पांडवोंकी कथा वर्णन करी कि पांडवोंने चराचर सारे संसारको विजय किया॥ १०॥ जो हो महाराज उग्रसेन, वसुदेव और बलरामजीके प्रसादसे अब भूमि कंटकहीन होगई है और महाराज युधिष्ठिरको राज्यसिंहासनपर बैठालदिया है ॥ ११॥ इस तरह सब किसीसे कह अपने मंदिरको चलेगये और हे राजन् ! अपने मंदिरमें पहुँचकर भगवान् श्रीहरि स्वयं विचार करनेलगे ॥ १२ ॥ मेरे सहारेवाले ऐश्वर्यके द्वारा निरंतर अत्यंत वृद्धिको प्राप्त इस यदुवंशका अन्य किसीसेभी नाश नहीं हो

सकेगा, अतएव मैं बाँसके गुच्छेकी आगके समान यदुवंशके भीतर नाश-रूपी कलह उत्पन्न करके फिर आप शान्तिधामको प्राप्त हूँगा ॥ १३ ॥ हे महाराज जनमेजय ! सत्यसंकल्प और समर्थ ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णने इस तरह सोच विचार करके विप्रशापके बहानेसे अपने कुलको हरण किया अर्थात् उसका मलियामेट कराय दिया ॥ १४ ॥ क्योंकि श्रीकृष्णने सोचा कि जबतक यह कंटकस्वरूप यदुकुल विद्यमान रहेगा, तबतक पृथ्वीको दुःख देनेवाले इस भारी भारका उतरना नहीं समझा जायगा ॥ १५ ॥ तद-नन्तर पतिव्रता गाँधारीकी बातको स्मरण करके कि, उसने स्वीयवंश नाशके निमित्त जो शाप दिया है, भगवान् श्रीकृष्णने उस सारे कारणको मनमें विचारकर निश्चय किया कि ॥ १६ ॥ मुझे विप्रशापके कारण यदुवंशका नाश करादेना चाहिये, इसमें संशय नहीं है । श्रीकृष्णने ऐसी मति करके कुमारोंको ऋषियोंके निकटजानेकी प्रेरणारूपी आज्ञा दी ॥ १७ ॥

चौपाई ।

पियो सुरा सब यादव बालक । भये मस्त हरि इच्छा पालक ॥
बांधि साम्ब हिय काढि सुहावन । मूशर राखि मध्याहिय रावन ॥
सुभग नारि गर्भिणी बनाई । केशमूल गहना पहराई ॥
गेंदनके तहां दोउ कुच कीन्हे । सिन्दुर दे शिर मेंदी दीन्हे ॥
बिछुआ आदि अभूषण जेते । कहांलो कहौं किये सब तेते ॥
जाय बन्दि मुनिवर दुर्वासा । बैठि वचन अस कीन्ह प्रकाशा ॥
हे मुनिवर सर्वज्ञ निधाना । पुत्री पुत्र जात नहिं जाना ॥
जो कृपालु है तुरत बतावो । अति शुभ सुयश जगतमें पावो ॥
ध्यान धरी मुनिवर तहँ देखे । छल समुझे कछु और न पेखे ॥
क्रोधित मुनिवर बोले बैना । सुत सुख देख्यो यह कुल नैना ॥

दोहा—बोले मुनिवर कोप करि, होय सत्य यह बैन ।
याही सुतके होतही, मरै कृष्ण सह सैन ॥

तब वे सारे बालक साम्बको नारीवेष बनाय ऋषियोंके सामने जाकर बोले, हे ऋषियो ! आप सब महात्मा, ज्ञानी और जितेन्द्रिय हैं ॥ १८ ॥

अत एव बताइये कि, यह लुगाई बेटा जनेगी या बेटी ? इस प्रकार कहनेपर उन मुनियोंने क्रोधपूर्वक उनको शाप दिया ॥ १९ ॥ हे मन्दबुद्धियो ! यह लुगाई वंशका नाश करनेवाला मूशल जनेगी । उन मुनियोंका यह शाप सुनकर जैसेही वे बालक सामने देखनेलगे ॥ २० ॥ कि वैसेही उन्होंने महाघोर कुलका घात करनेवाले मूशलको देखा, तब वे सारे बालक उस साम्बके उदरसे निकलेहुए मूशलको लेकर भागे ॥ २१ ॥ तब जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण यादवों समेत सभामें बैठेथे, वहाँ उन सब बालकोंको आयाहुआ देखकर श्रीकृष्णने कहा ॥ २२ ॥ हे यादवो ! आप सब जने देखिये कि; इन पापकर्मकारी बालकोंने केवल वंशका क्षय करनेके निमित्त उन मुनियोंको क्रोधयुक्त कियाहै, इसमें संदेह नहीं ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार कहतेही थे कि, उसी समय उन बालकोंने वहाँ पहुँचकर ऋषियोंका कियाहुआ सारा समाचार कहसुनाया और फिर उनके संमुख वह मूशल भी दिखाया ॥ २४ ॥ तब उस मूशलको देखकर श्रीकृष्णने कहा कि, आप सब लोग देवके किये होनहारको तो देखिये कि, ब्राह्मणोंके शापसे वंशका निःसंदेह नाश होजायगा सो जानलीजिये ॥ २५ ॥ अब उस मूशलको लेकर समुद्रके किनारे जाइये और वहाँ वाज्रिणीके तटपर पहुँचकर शिलापर मूशलको परिश्रमसे रेतो ॥ २६ ॥ और रेतते रेतते जो थोडा बाकी रहजाय, उसको समुद्रमें डालदो । इसतरह भगवान् श्रीकृष्णने संमुख बैठेहुए उन सारे यादवोंको आज्ञा देकर सीख दी ॥ २७ ॥ कि, आप लोग सब धर्म कीजिये । क्योंकि धर्म कुलकी वृद्धि कियाकरताहै । इसप्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्णने वैकुंठ जानेकी इच्छा करी ॥ २८ ॥ और हे मारिष ! सबको प्रभासतीर्थमें भेजा । इसके पीछे केशवने द्वारकापुरीमें महान् उत्पातोंको देखकर हे राजेन्द्र ! यादवोंसे हितकारी वचन कहे ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णने कहा हे यादवो ! आप सब मेरी बात सुनिये । अब यहाँ बडे बडे उत्पात दिखाई देतेहैं जो अत एव मैं समझताहूँ कि, आजसे सातवें दिन यह द्वारकापुरी समुद्रमें डूबजायगी ॥ ३० ॥

गन्तव्यं तु प्रभासं वै सर्वथा निश्चयो मम ।
इति कृष्णवचः श्रुत्वा गमने त्वरितास्तदा ॥ ३१ ॥

इस कारण आप सबजनोंको उचित है कि, प्रभासतीर्थमें चले जाओ यह मेरा सर्वथा निश्चय है। भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर वे सब जने तुरन्तही जानेके लिये तैयार होगये ॥ ३१ ॥

इति श्रीभारतसारे मौसलपर्वणि भाषायां षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः ९७.

सप्तनवतितमेऽध्याये प्रभासे श्रीहरिः स्वयम् ।
त्यक्त्वा कलेवरं योगी गतो वैकुण्ठमर्यिते ॥ १ ॥

इस सत्तानवें अध्यायमें योगीश्वर भगवान् श्रीकृष्णका स्वयंभी शरीर त्यागकर वैकुण्ठको चलाजाना यह कथा वर्णन करीजायगी ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच ।

उद्धवः कृष्णमालोक्य गमनाय कृतोद्यमम् ।
आमन्त्र्य चार्जुनं तत्र स्थापयित्वा तु वज्रकम् ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय ! अनन्तर उद्धवजीने भगवान् श्रीकृष्णको तहाँ मथुरामें वज्रको स्थापनपूर्वक उसके सहित अर्जुनको शिक्षा दे गोलोक जानेके निमित्त उद्यम करताहुआ देखकर ॥ १ ॥ सूने स्थानमें बैठेहुए अपने स्वामी श्रीकृष्णसे कहा, उद्धवजी बोले—हे प्रभो आप जिस स्थानमें जानेकी इच्छा कररहेहैं वहाँ अपने संग मुझको भी लेचलिये ॥ २ ॥ क्योंकि मैं आपका बालक और टहलुआ हूँ, अत एव आपको छोडकर यहाँ नहीं ठहर सकूँगा और हे नाथ ! यदि आप मुझको छोडकर चले-जाँयगे तो मैं निःसन्देह अपने प्राण त्यागदूँगा ॥ ३ ॥ इस प्रकार उद्धवजी तरह तरहकी बातें कह कहकर विह्वल होगये तब उन बोलतेहुए उद्धवजीसे श्रीकृष्णने कहा ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे उद्धवजी ! मुझको योग नहीं रोकसकता, सांख्य तथा धर्मसेभी मैं नहीं रुक सकता, विद्याभ्यासभी रोक-नेको समर्थ नहीं है, संन्यासभी नहीं रोकसकता और न मैं इष्टापूर्त अर्थात् मंदिर प्रतिष्ठादि कर्म तथा वापी कूप तडागादि प्रतिष्ठाकर्मसेभी रुकसकताहूँ और दक्षिणाभी मुझको नहीं रोकसकती ॥ ५ ॥ व्रत, यज्ञ, छन्द, तीर्थ, नियम, यम इन सबके द्वाराभी मैं नहीं रुक सकता, कि जैसा सर्वसंगहीन

सत्संग मुझको रोक सकताहै इस तरहसे दूसरा कोई कामभी मेरे रोकनेको समर्थ नहीं है ॥ ६ ॥ क्योंकि सत्संगके द्वारा दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, पशुजाति, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण और गुह्यक ॥ ७ ॥ विद्याधर, मनुष्य, वैश्य, शूद्र, नारियाँ, चाण्डाल तथा औरभी रजोगुणी व तमोगुणी स्वभाववाले प्राणियोंने युगयुगमें ॥ ८ ॥ बहुत मेरे पदोंको पाया है। वृत्रासुर, प्रह्लादादि, वृषपर्वा, बालि, बाणासुर और भइया रावणका नाश करानेवाला विभीषण ॥ ९ ॥ सुग्रीव, हनुमान्, रीछ जाम्बवान्, गज, गीध (जटायु), वणिक्पथ, व्याध, कुब्जा और ब्रजकी गोपियाँ ऐसेही यज्ञकर्त्ता चौबोंकी पत्नियाँ और दूसरे भी ॥ १० ॥ उन लोगोंने वेदोंको नहीं पढा और न उनका सेवनही किया, साधु महात्माओंकी सेवाभी नहीं करी और न व्रतही किये, इस प्रकारके उन लोगोंने मुझको सत्संगसेही पालिया है ॥ ११ ॥ मुझको केवलमात्र भक्तिभावके द्वाराही गोपी, गौवें, पक्षी, वृक्ष, पशुजाति, मृग तथा अपरापर जडबुद्धि युक्त मूर्खगोपालोंने प्राप्त कर लिया है ॥ १२ ॥ इस कारण हे उद्धवजी महाराज ! आप प्रेरणा प्रेमकी फाँसी, प्रवृत्ति, निवृत्ति, सुनने योग्य और शास्त्र इन सबको छोडकर ॥ १३ ॥ शरीरधारियोंके केवल एकही शरणरूपी मुझको अन्तःकरणके भावसे प्राप्त होजाइये। तब फिर आप मेरे द्वारा निर्भय होजाँयगे ॥ १४ ॥ मुझमें मन लगाकर आप इस पृथ्वी मण्डलपर विचरिये और बद्रिकाश्रममें पहुँचकर दुष्टसंगसे रहित होनेपर ॥ १५ ॥ सत्संगसे एक भावद्वारा परम अर्थसे मेरा भजन करतेहुए आप अल्पसमयमेंही मुझको पालेगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ दाशार्ह भगवान् श्रीकृष्णने भक्तशिरोमणि उद्धवजीको इस तरह आज्ञा प्रदान करी और फिर माधव श्रीकृष्णने करुणारूपी वचनोंके द्वारा उन रोतेहुए उद्धवजीको निवारण किया ॥ १७ ॥ तब उद्धवजीभी अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णजीकी पादुका लेकर उनको अपने मस्तकपर चढाकर दुःखित चित्त हो उत्तर दिशाको चलेगये ॥ १८ ॥ वैशंपायनजी बोले हे जनमेजय ! उद्धवजीके चलेजानेपर पृथ्वी, स्वर्ग और आकाशमें बडे बडे उत्पात उठखडेहुए, उनको देखकर सुधर्मा सभामें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णने सब यादवोंसे इस तरह कहा ॥ १९ ॥ अब द्वारावतीनगरीमें अनेक

दारुण घोर उपद्रव होते हैं, इस कारण हे यदुनंदनो ! अब आप सब जनोंको यहाँ एक मुहूर्त्त मात्रभी नहीं टिकना चाहिये ॥ २० ॥ नारियाँ, बालक, बूढे यहाँसे शंखोद्धारको चलेजाँय और हम सब लोग उस प्रभासक्षेत्रको चलेजाँयगे कि, जिस स्थानमें प्राची सरस्वती है ॥ २१ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी बात सुनकर उसको बूढे यादवोंने मानलिया. फिर नावोंद्वारा सागर उतरकर रथोंमें बैठकर प्रभासक्षेत्र जापहुँचे ॥ २२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार प्रभासक्षेत्रमें निश्चिन्तहुए यादवोंने पुण्य किया और गायें, भूमि, कपडे, तरह तरहके रत्न ॥ २३ ॥ और बहुत गुणकारी अन्न वहाँ श्रीकृष्णने ब्राह्मणोंको दान किया । फिर यादवोंने भोजन करके मधुपान किया जिससे वे अचेत होगये और तनकी भी सुधि न रही ॥ २४ ॥ तब श्रीकृष्णने उनकी बुद्धि भ्रष्ट करदी, इस कारण वे यादव भ्रष्टबुद्धिवाले होगये, मधुपान करनेपर मत्त होगये । तदनंतर वीर और गर्वित मनवाले ॥ २५ ॥ तथा भगवान् श्रीकृष्णकी मायाद्वारा मूढ उन यादवोंका आपसमें दारुण संग्राम हुआ । इस प्रकार अपने सारे वंशका नाश होजानेपर केशवने सोचा ॥ २६ ॥ कि, अब मैं इस भूमिके शेष भारको उतार चुका । इस प्रकार श्रीकृष्णने समझ लिया । तदनन्तर कालरूपधारी श्रीकृष्णने बलरामजीको आया हुआ देखकर कहा ॥ २७ ॥ हे शेष ! आप पातालको चलेजाइये क्योंकि मैं अब वैकुंठ जानेकी इच्छा कररहाहूँ इस प्रकार श्रीकृष्णकी आज्ञा पाय बलरामजी शीघ्रतासहित समुद्रके किनारेपर पहुँचे और वहाँ योगावलम्बन करके ॥ २८ ॥ अपने आत्माको शेषरूपमें मिलाय उस नरदेहको छोडदिया । तब देवकीनंदन श्रीकृष्ण बलरामजीके इस तरह निर्याणको देखकर ॥ २९ ॥ चुप चाप पीपलके नीचे भूमिपर विराजमान होगये और प्रकाशमान तेजयुक्त वे महाविष्णु चतुर्भुजरूप धारणपूर्वक ॥ ३० ॥ धुँएहीन अग्निके तुल्य दिशाओंको प्रकाशमान करतेहुए और दाहिनी जंघापर कमल सरीखा बाँया पैर रखकर तर्कमुद्रा करके बैठे ॥ ३१ ॥

चौपाई ।

धरि जानूपर चरण कृपाला । ताहि समय आयो प्रभु काला ॥
जान्यो नयन मृगाको सोहत । लैके धनुष बाण मनमोहत ॥

वालिनाम वानर त्रेताकर। धीमर रूप छाँडि दीन्हो शर ॥
चरण मध्य चमकतजहां जानी। आयो लैन शिकार गिल्यानी ॥
देखि कृपालु कृष्ण भगवाना। वन्दि चरण तब ऐंच्यो बाना ॥
कह कृपालु बदला तुम लीन्हो। रथहि चढाय परमपद दीन्हो ॥
दारुक पास कही अस बाता। ले रथ जाहु अबे तुम ताता ॥

दोहा-ऐसे कहते कहत हरि, गहगह हने विशान।
चले ब्रह्मपुर आप प्रभु, किंकिणिनाद बिमान ॥
गये धाम निज निज सुनहु, इहि विधि कृष्ण कृपालु।
अर्जुनसौं सब यो कह्यो, दारुक जाय उताल ॥

उसी समय जिस जरानामक व्याधने घिसने (रेतने) से बचे हुए उस मूशलके टुकडेद्वारा अपने बाणका फोंक बनाया था उसेन आय श्रीकृष्णके चरणको मृगकी शंका करके वींधडाला ॥ ३२ ॥ किन्तु तैसेही एक चार भुजावाले पुरुषको देखकर उस पापी व्याधने कहा हे मधुसूदन ! मैंने विना जाने यह काम किया हे ॥ ३३ ॥ इस कारण हे उत्तमश्लोक ! हे पापरहित ! आप मुझ पापात्माका अपराध क्षमा करदीजिये ! बरन् मुझ पापी और मृगहन्ताको आप वैकुण्ठलोकमें लेचलिये ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा-हे जरे ! आप अपने मनमें बिलकुल मत डरिये और आप उठखडे हूजिये क्योंकि यह काम मैंनेही कियाहै अर्थात् मेरी ही इच्छासे हुआहै, अतएव आप मेरी आज्ञासे पुण्यवान् पुरुषोंके परमपद वैकुंठ लोकको चलेजाइये॥ ३५॥ जब इच्छारूपी शरीरवाले भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार आज्ञा दी तब जरानामक व्याधा उन श्रीकृष्णकी तीनवार प्रदक्षिण (परिक्रमा) कर और नमस्कार करके विमानमें सवार हो स्वर्गलोकको सिधार गया ॥ ३६ ॥ उसी समय रथसे उतरकर दारुकनामक सारथीभी सामने स्थित अमित तेजस्वी उन भगवान् श्रीकृष्णके पैरोंमें गिरपडा और फिर वह सारथी बोला-हे प्रभो ! मैं इस समय क्या करूँ सो आज्ञा दीजिये ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्णने उत्तर दिया हे सारथे ! आप द्वारकापुरीको चलेजाइये और आपसमें लडकर जो ज्ञाति बाँधवोंका नाश

हुआहै तथा संकर्षणका अपने धामको जाना और मेरी दशा सब बाँधवोंसे कहदीजिये ॥ ३८ ॥ इसके सिवाय यहभी जतलादेना कि अब आपको बन्धु बाधवोंसमेत द्वारकापुरीमें कदापि नहीं रहना चाहिये, क्योंकि मुझसे त्यागीहुई यदुपुरी द्वारावतीको समुद्र तत्काल डुबोदेगा ॥ ३९ ॥ अर्जुन भी मेरी नारियाँ और वंशके बीजस्वरूप वज्रनाभको साथ लेकर मनोवाँछित इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) को चले जावें ॥ ४० ॥ और फिर महाराज युधिष्ठिरसेभी जो कि सबमें एक ब्रह्मरूपी मनवाले है, आप मेरी बात कहदेना कि आप सब जनोंको हिमालयपहाड पर चलाजाना चाहिये इसमें संशय नहीं कीजिये ॥ ४१ ॥ क्योंकि यदि आप लोग वहाँ नहीं जाँयगे तो आप सबको कलिसे व्याप्त होकर नरकमें जाना पडेगा और कलिसे पीडित होगे इस बातमें जराभी संदेह न समझना ॥ ४२ ॥ और आप मेरी भक्तिसे युक्त होकर श्रेष्ठ गति लाभ करेंगे । जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा तब वह दारुक सारथी उनकी परिक्रमा करके उदास मनसे द्वारकानगरीमें चलागया ॥ ४३ ॥ तदनन्तर ब्रह्मादिक देवता सब तपोधन मुनि और सब महर्षि यह सबजने भगवान् श्रीकृष्णका निर्याण देखनेके निमित्त वहाँ आनकर उपस्थित हुए ॥ ४४ ॥ तब विभु भगवान् श्रीकृष्णने उन अपनी विभूतियोंको देखकर अपने गोलोकस्थित आत्मामें इस आत्माको मिलाया और फिर (सदाके लिये) अपनी कमलसी आंखोंको मूँदलिया ॥ ४५ ॥

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलाम् ।
योगधारणयाग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत्स्वकम् ॥ ४६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने लोकानन्ददायक और धारणा करके ध्यानमें कल्याणकारक अपने शरीरको योगधारण स्वरूप अग्निद्वारा दग्ध न करके शरीरसमेतही अपने गोलोकधाममें प्रवेश किया ॥ ४६ ॥

इति श्रीभारतसारे मौसलपर्वणि मुरादाबादनिवासिपण्डितकन्हैयालालमिश्रकृतभाषायां श्रीकृष्णगोलोकनिर्याणं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

इति श्रीभाषाभारतसारे मौसलपर्व समाप्तम् ॥

श्रीकृष्णाय नमः ।

भारतसार-भाषा ।

स्वर्गारोहणपर्व १८.

अष्टनवतितमोऽध्यायः ९८.

दोहा-श्रीराधावर सांवरे, कुञ्ज विहारी नाम ।
व्रज भूषण दूषण हरण, देहु मोहि विश्राम ॥
जय जगमाता शारदा, शोभागुणकी खान ।
तुम शक्ति भ्रम मातु हो, दीजे विद्या दान ॥
जान राममय सबनको, विनय करौं करजोर ।
करहु कृपा मुझ अधमपर, देख आपुनी ओर ॥
सीता लक्ष्मण सहित प्रभु, धनुष बाणलिय हाथ ।
मिश्र कन्हैयालालके, हृदय बसहु रघुनाथ ॥

श्लोक-अष्टनवीततमे तु संवादः कुन्तिधर्मयोः ।
श्रीकृष्णविरहाद्दुःखं यत्तत्संक्षिप्य वर्ण्यते ॥ १ ॥

इस अट्ठानवें अध्यायमें कुन्ती और धर्मराज युधिष्ठिरका संवाद और भगवान् श्रीकृष्णके वियोगमें उनका दुःखी होना यह कथा संक्षेपसे वर्णन करी जातीहै ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

कृष्णोक्तं वचनं सर्वं दारुकेण निवेदितम् ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य यथोक्तं चक्रुरादरात् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! तब भगवान् श्रीकृष्णजीके कहे सँदेशेको दारुक सारथीने द्वारकापुरीमें जाकर कहदिया। तब उस सँदेशेको आदरसे सुनकर उन सब यादवोंने तदनुसारही काम किया ॥ १ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णकी रुक्मिणी आदि आठ पटरानियोंने और बलरामजीकी रेवती आदि रानी इन सबने प्रभासक्षेत्रमें पहुँचकर अग्निमें प्रवेश किया ॥२॥ और फिर जिस समय देवकी और वसुदेवजीने प्रभासक्षेत्रमें प्राणत्याग किया तब वहाँ द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णके वियोग दुःखसे महाराज उग्रसेन भी मृत्युको प्राप्त होगये ॥ ३ ॥ तब अर्जुनभी दुःखार्त्त हो रुदन करताहुआ हस्तिनापुरको चलागया. फिर भगवान् श्रीकृष्णकी सारी रानियाँ मार्गमें नाशको प्राप्त होगईं ॥ ४ ॥ तदनन्तर अर्जुन वज्रनाभसमेत महाराज युधिष्ठिरके पास पहुँचे तब उन अर्जुनको खेदसहित आयाहुआ देखकर युधिष्ठिरने कहा ॥ ५ ॥ धर्मराज बोले—हे अर्जुन ! आप महावीरहैं. क्या अब आप अपने स्वामी श्रीकृष्णसे निश्चय त्यागेगयेहो ? क्या भगवान् श्रीकृष्ण मुझको दुःखसागरमें डालकर वैकुण्ठको चलेगये ? ॥ ६ ॥ इस प्रकार कहतेहुए महाराज युधिष्ठिरसे मिलकर अर्जुनने रोते रोते कहा। अर्जुन बोले, अपने स्वामी कि जिन्होंने हमारा पालन कियाथा अवश्य गोलोकको प्राप्त होगये ॥ ७ ॥ उन्होंने वनमें मुनिवर दुर्वासाजीके शापसे हमको बचाया, द्रौपदीको वस्त्रदान करके पालन किया और हे महाराज ! कौरवोंका नाश करके तथा अश्वमेधयज्ञमें सर्वत्र हमारा पालनही किया है ॥ ८ ॥ और अब उन्हीं श्रीकृष्णने हमलोगोंको यह आज्ञा दी है कि यदि आप स्वर्गधाम वैकुंठ जानेकी अभिलाषा करते हो तो आप लोगोंको हिमाचलमें पहुँचजाना चाहिये ॥ ९ ॥ और जो आप वहाँ नहीं जाना चाहें तो लीलापूर्वक राज्य कीजिये। अर्जुनकी यह बात सुनतेही धर्मराज युधिष्ठिरने अपने कपडोंको दूर फैंकदिया ॥ १० ॥ और फिर उन्होंने खुलेबाल हो विमलस्नान पूर्वक भगवान् श्रीकृष्णको जपकरते बावले तथा मूकव्यक्ति और जडकी तरह विचरतेहुए कहा ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर बोले—हे अर्जुन ! जब

कि भगवान् श्रीकृष्ण इस समय अपने स्थान (गोलोक) को चले गयेहैं, तब आप सब जनोंकोभी मेरे साथ हिमालय पहाडपर चलना चाहिये ॥ १२॥ इस प्रकार कहकर धर्मराज युधिष्ठिरने अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्‌को हस्तिनापुरमें युवराजपदपर प्रतिष्ठित किया ॥ १३ ॥ फिर वज्रनामको बुद्धिमान् युधिष्ठिरने मथुरानगरीमें प्रतिष्ठित किया तब समर्थ वह राजा वज्रनाम प्रसन्नमनसे मथुरादेशोंमें राज्यशासन करने लगा ॥ १४ ॥ तद-नन्तर नृपोत्तम महाराज युधिष्ठिरने वस्त्र, सुवर्ण, रत्न तथा अन्यान्य अनेक पदार्थ दान किये फिर पृथ्वीदान उत्तमोत्तम अनेक ग्राम दान करके ॥१५॥ अपने सेवक बन्धु राजा और वैश्य इनका विशेषप्रकारसे आदर सत्कार करके महाराज युधिष्ठिर वहाँ पहुँचे, जहाँ इनकी जननी कुन्ती विद्यमान थी ॥ १६ ॥ तब मइयाके चरणोंमें शिरसे प्रणाम करके युधिष्ठिरने कहा हे जननी ! हे अम्ब ! आप घर रहिये और मैं स्वर्गको जाताहूँ ॥ १७ ॥ वहाँ दुर्गम और घोर पहाड हैं और हिमालय पहाडभी दुर्गम है, रास्तेभी दुर्गम हैं और वहाँकी सारी नदियांभी दुर्गम हैं ॥ १८ ॥ शीत पवन धूप इनके द्वारा बडा कष्ट होताहै, उस तीक्ष्णमार्गमें बहुत काँटे पडते हैं और हे मइया ! उस हिमाचलका सिलसिला भी दूर दूरके देशों तक चलागया है और उस रास्तेमें भूँख प्यासभी बहुतही उत्पन्न होती है ॥ १९॥ पुत्र युधि-ष्ठिरकी यह बातें सुनकर माताने कहा अर्थात् पुत्रकी बात सुनकर कुंती पुत्रोंके पास आई और फिर युधिष्ठिर तथा माद्रीके बेटे नकुल सहदेव और भीमसेनसे कहने लगी ॥ २०॥ कुंती बोली—हे राजन् ! हे युधिष्ठिर ! यहाँ आप सब जने वैकुंठको नहीं जासकते हैं, क्योंकि पुत्रस्नेहकी समान दूसरा स्नेह नहीं है और भ्रातृबलकी समान दूसरा बलभी नहीं है ॥ २१ ॥ पुत्रके समान दूसरा सुख नहीं है और प्राणोंकी समान दूसरा कोई प्यारा नहीं है, इसी प्रकार भीमसेन और अर्जुनकी समान पृथ्वीपर दूसरा वीरभी कोई नहीं दीखता ॥ २२ ॥ बेटा बापके दुःखको सहाकरताहै, और मइयाके दुःखकोभी विशेषभावसे सहताहै और मैंने अत्यंत दुःख और ताप सहकर

अति उत्तम बेटे पाये हैं ॥२३॥ पाँच लोकपालोंने संतुष्ट होकर वरदानद्वारा आपको प्रदान कियाहै। हे नराधिपति ! आपने बारह वर्षतक राज्यके निमित्त दुःख झेला है ॥२४॥ तब फिर ऐसे दुःखसे उपार्जन किये राज्यको छोडकर आप किस प्रकार स्वर्गको जाते हैं ? हे बेटों ! मैं आपके विरहमें नहीं जीसकूँगी ॥ २५ ॥

यूयं महापथे वीरा मां त्यक्त्वा वै नराधिप ।
सपद्यवहिताः सर्वे कथं राज्यं विराजते ॥ २६ ॥

हे वीरों ! हे नराधिपों ! जब कि आप सब जने मुझको शीघ्रतासहित महाप्रस्थानके लिये तय्यार होगये हैं, तब फिर यह राज्य किस तरहसे विराजित रहेगा ? ॥ २६ ॥

इति श्रीभारतसारे स्वर्गारोहणपर्वणि भाषायां कुन्तीयुधिष्ठिर संवादो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

एकोनशततमोऽध्यायः ९९.

एकोनशततमेऽध्याये स्वर्गारोहणवर्णनम् ।
नगरात्पाण्डवानाञ्च विनाशश्चेपि वर्ण्यते ॥ १ ॥

इस ९९ अध्यायमें पांडवोंका स्वर्गारोहणवर्णन और नगरसे पाण्डवोंका निकलना यह कथा कहीजातीहै ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

केशवेन यथोक्तं हि शृणु वक्ष्यामि मातृके ।
अस्मिन्कलौ युगे घोरे राज्यं कर्त्तुं न शक्यते ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे मइया ! मुझसे भगवान् केशवने जिस प्रकार कहा है सो मैं आपसे वर्णन करताहूँ, सुनिये। उन्होंने कहला भेजा है कि अब आप इस दारुण कलिकालमें राज्य नहीं करसकेंगे ॥ १ ॥ इसी कारण मैं अपने भ्राताओंसमेत महाप्रस्थानमें जारहाहूँ, आप विशेष दुःख नहीं कीजिये। और आनन्दितचित्तसे हमको बिदा करदीजिये ॥ २ ॥क्योंकि इस कलि-

युगमें भइया भइयेको नहीं मानेगा, बेटा बापको नहीं मानेगा, मइयाको नहीं मानेगा, केवल सब धनकेही लालची होजाँयगे इसी कारण मैं स्वर्ग जानेके लिये प्रस्तुत हुआहूँ ॥ ३ ॥ हे मइया ! यदि मैं आपके कहनेसे हार रहजाऊँगा तो परस्पर आपका और भाइयोंका प्रेम अवश्य नाश होजा-यगा ॥ ४ ॥ धर्मराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर मइयाने कहा । माता बोली—हे पुत्र युधिष्ठिर ! यदि आपसे भगवान् श्रीकृष्णनेही इस प्रकार कहा है ॥ ५ ॥ तो हे वीर ! आप सब जने चलेजाइये किन्तु आपकी जो परस्पर प्रीति है, सो वह नष्ट नहीं चाहिये । मइयाकी यह बात सुनकर वे पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरादि अत्यन्त हर्षित हुए ॥ ६ ॥ तब उन पाँचों बेटोंने नम्रतासे मइयाकी परिक्रमा करके उनको प्रणाम किया और फिर द्रौपदीभी कुन्तीके पैरोंमें गिरी और सासकी प्रदक्षिणा करके ॥ ७ ॥ कहने लगी कि, हे देवि ! यदि मैंने मन, वचन, कर्मसे आपका दुर्नय कियाहो तो वह आपको क्षमा करदेना चाहिये । क्योंकि मैं अब पतियोंके संग जातीहूँ ॥ ८ ॥ आपही माता हैं, आपही जाननेलायक हैं, आपही गुरु हैं और आपही पतिव्रता हैं अत एव हे देवि ! आप अपने बेटोंको सीख दीजिये कि, जो पाण्डव भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करेंगे ॥ ९ ॥ जब द्रौपदीने इस तरह कहा तब कुन्ती पांडवोंको सीख देतीहुई बोली—हे भद्रे ! आप चार भुजावाले और अपने दासोंको सुख देनेवाले भगवान् जनार्दनका दर्शन कीजिये ॥ १० ॥ जो भगवान् श्रीहरि मेरुके शिखरके अग्रभागपर वैकु-ण्ठमें देवताओंसे परिवेष्टित हैं । मइयाके यह वचन सुनकर सन्तुष्ट चित्त-वाले॥ ११॥ द्रौपदी और पांडुनन्दन युधिष्ठिर इत्यादि नगरसे बाहर निकले। तब उस काल पुरवासी और व्यापारी लोग रोने पीटनेलगे ॥ १२ ॥ हे महाराज ! और जो उत्तम ब्राह्मण थे सो रोनेलगे, वनमें पशु रोनेलगे और अन्यान्य इतर जनभी रोनेलगे ॥ १३ ॥ नदीके तट और पहाडकी गुफामें स्थित ऋषि रोनेलगे, सब लोग रोनेलगे, विशेष क्या कहें ? उस समय महान् हाहाकार मचगया ॥ १४ ॥ और सब कोई महात्मा पांडुपुत्रोंके

पवित्र चरित्रको स्मरण करके कहनेलगे कि, महाराज युधिष्ठिरके समान दूसरा सत्यवादी नहीं है और न कोई दूसरा युधिष्ठिरके समान दयावान् ही है ॥ १५ ॥ न धर्मराजकी समान दूसरा दाता(दानी)है और न उनकी समान रणमें कोई योधाही है और न उनकी समान दूसरा योगीही कहीं दिखाई देता है ॥ १६ ॥ क्षान्ति अर्थात् सहनशीलता, दया, सत्य, धैर्य, सम्पदा और दमन अर्थात् इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखना यह छः बातें पांडवोंके संगही चलीगईं ॥ १७ ॥ जिस समय पांडव जानेलगे तब उस काल भूमि अल्प अन्नवाली होगई, गायें थोडे दूधवाली होगईं और वृक्ष कम फलवाले होगये ॥ १८ ॥ विप्रगण अल्पसत्त्ववाले और अल्प बलवीर्यवाले होगये तब फिर उसी अवसरमें वे पाँचों पांडुपुत्र शीघ्रतासे घर छोडकर निकले॥१९॥ अनन्तर भूमिको देखनेके निमित्त बहुत रास्तोंसे गमन करने लगे तब नगर व ग्रामोंसे युक्त और तडाग व बगीचोंसे सुशोभित ॥ २० ॥ भाँति भाँतिके जनपदों (कस्बों) से परिपूर्ण हस्तिनापुरको छोडकर सब पांडव श्रीगंगाजीके सुन्दर किनारेपर आपहुँचे ॥ २१ ॥ तदन्तर परम पवित्र और पापनाशक हरिद्वारमें स्नान करके तथा शुभतीर्थोंमें स्नान और जनार्दन भगवान्को प्रणाम करके ॥ २२ ॥ तब महाराज युधिष्ठिरने अपने भाइयोंसे कहा । युधिष्ठिर बोले—अहो भीम ! आप मेरी बात सुनिये । हे धनुर्धर अर्जुन ! आपभी सुनिये ॥२३॥ और हे नकुल ! सहदेव ! व द्रौपदी मैं जो कहताहूँ उसको सुनलो । यह आगे जो महापहाड दिखाई देरहाहै सो हिमकी कीचडसे दुर्गम है अर्थात् बर्फकी बहुतायतसे इसपर कोई जा नहीं सकताहै ॥ २४ ॥ यह सिंह भेडियें और हाथियोंसे भराहुआ तथा सांप व गैंडोंसे सेवित और वानर, सुअर तथा वनैले भैंसोंसे सेवित ॥ २५ ॥ वनमानुष, गधे, श्यालकी तरह मुखवाले प्राणी शूकर और कुत्ते इत्यादि नानारूप जीव तथा भयंकर रूपवाले जीवोंसे सुशोभित॥२६॥ म्लेच्छ किरात और भीलोंसे बहुत भररहाहै सो ऐसे महाघोर दुर्गम पहाडपर आप लोग नहीं जासकेंगे ॥ २७ ॥ अत एव मैं आपके हितकी काम-

नासे कहताहूँ कि हे महावीर वृकोदर ! हे महावीरों ! आप सब जने लौट-जाओ और भाइयों समेत राज्य करो ॥ २८ ॥ और मुझकोभी वहां जाना चाहिये कि जहां माधव भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं। अत एव आप छोटे भ्राताओंसमेत पीछा लौटजाइये और अर्जुनभी द्रौपदीको लेकर चले-जांय ॥ २९ ॥ और वहां जाकर भाई और मन्त्रियोंसमेत अकण्टक (शत्रु-हीन) राज्य कीजिये। धर्मराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर भीमसेनने कहा ॥ ३० ॥ भीमसेन बोले–हे महाराज ! मुझको राज्यसे कुछ प्रयोजन नहीं और न मैं मरनेसेही डरताहूँ, मैं तो आपके संग वहीं जाऊंगा जहाँ भगवान् केशवदेव हैं ॥ ३१ ॥ भीमकी बात सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने कहा। युधिष्ठिर बोले–सब भ्राताओंसमेत आपको अवश्यही जाना है ॥ ३२ ॥ तो पिशाच राक्षस और दानव बाधा (दुःख) देंगें। इस प्रकारका कलह करना उचित नहीं क्योंकि मार्गमें चुपचाप चलना चाहिये ॥ ३३ ॥ मौन रहना सब तरहसे उत्तम है अत एव मौनका ही व्रत अवलम्बन करो। हे कौंतेय ! शोकके द्वारा अत्यन्त दृढ तपस्याभी सूखजाती है ॥ ३४ ॥ क्रोध सारे अनर्थोंकी जड है, इस लिये क्रोध त्याग देना चाहिये। क्योंकि जिसके देहमें दया, सत्य, सहनशीलता और इन्द्रियनिग्रह है वही उत्तम साधक महाप्रस्थान मार्गमें जासकता है ॥ ३५ ॥

भीम उवाच।

यो मह्यं ह्यग्रतो याति दानवो राक्षसोपि वा।
वज्रहस्तेन राजेन्द्र चूर्णयामि च तत्क्षणात् ॥ ३६ ॥

भीमसेनने कहा मेरे अगाडी जो दानव अथवा राक्षस आजायगा हे राजेन्द्र ! उसको मैं वज्रहाथसे तत्काल चूरा करडालूँगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीभारतसारे स्वर्गारोहणपर्वणि भाषायां युधिष्ठिरभीमसंवादो नाम एकोनंशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

शततमोऽध्यायः १००.

पूर्णेशततमेऽध्याये पाञ्चाल्याः पुण्यसंचयात् ।
स्वर्गारोहे विनाशश्च वर्ण्यते सुरदुष्करः ॥ १ ॥

इस सौवें अध्यायमें पुण्य नष्ट होनेके कारण स्वर्गारोहणमें देवताओंके पक्षमें दुर्लभ ऐसी पांचाली द्रौपदीकी मृत्यु वर्णन करीजातीहै ॥ १ ॥

तावत्प्रोचुः समागत्य विद्याधरकुमारिकाः ।
रूपयौवनसम्पन्नाः शृणु राजन्युधिष्ठिर ॥ १ ॥

तवतक रूप यौवन सम्पन्न विद्याधरकी कुमारियोंने आनकर कहा कि हे महाराज युधिष्ठिर ! सुनिये । हम आपका अपना पति बनाना चाहती हैं ॥ १ ॥ महाराज युधिष्ठिरने मार्गमें वरनेके लिये आई हुई विद्याधरोंकी कन्याओंसे कहा कि, अब मृत्युलोकमें मुझको शत्रुहीन राज्य करना नहीं है और रूप तथा तरुण अवस्थावाली अनेक कन्याओंको मैं त्याग चलाहूँ ॥ २ ॥ क्योंकि मैंने महाप्रस्थानकी कामनासे सारी भूमिको छोड दियाहै, जबतक सर्वदेवनमस्कृत सुमेरुपर्वतका मैं दर्शन नहीं करूँगा ॥ ३ ॥ तबतक मैं यहाँ नहीं ठहरसकता, धर्मराज युधिष्ठिरकी बात सुनकर वे सब कन्या चलीगईं ॥ ४ ॥ तदनन्तर जो विद्याधर नामक पहाड बडे बडे शिखरोंद्वारा सुशोभित है और जो हिमपंक (पालेकी कीचड) तथा मेघमाला द्वारा उज्ज्वल वर्णयुक्त है ॥ ५ ॥ जिस स्थानमें यह पांडुर पर्वत विद्यमान है, वहाँ उत्तम स्थानको पहुँचे । तहाँ दिनरात मेघमाला वर्षती है और उस पहाडपर बादल निरन्तर घिरे रहते हैं, कभी उसको नहीं छोडा करते ॥ ६ ॥ वहाँ भयंकर बादल दिनरात गर्जते रहतेहैं, बिजलीके स्फुरणके वेगद्वारा भयंकर और प्राणनाशक बादल गर्जते हैं और वहाँ मार्गके सामने दीर्घनामवाला पहाड अवस्थित होरहाहै ॥ ७ ॥ उसके द्वारा स्वर्गमें जाना नहीं होसकता इस कारण पांडव अचंभेमें होगये । तदनन्तर महाराज

युधिष्ठिरने रास्तेको रुकाहुआ जानकर भीमको चिताया ॥ ८ ॥ हे भीम ! आप इस पहाडको भेदन कीजिये जिससे मनुष्यके (आने जानेका) रास्ता होजाय । धर्मराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर भीमसेनने उस पर्वतको अपने वज्रकी समान हाथसे ताडित किया ॥ ९ ॥ ऐसा होनेपर वह पहाड बीचमें टूटफूटगया और बडा पूरा रास्ता होगया । तब वे पांडव उत्तर दिशाके सम्मुख हुए ॥ १० ॥ तदनन्तर त्रैलोक्यविख्यात भद्रकाल नामवाले पहाड पर जापहुँचे जो कि नारंगी, दाडिमी, जँभेरी, केतकी ॥ ११ ॥ द्राक्षा, मातुलिंग, बिजौरा, खजूर, खैर, दाख, केला, रञ्जन, भ्रमरंजन ॥ १२ ॥ लालचन्दन, श्रीखंड, मालती, महाकेतकी इन सब पेडोंसे युक्त है और तीनों लोकमें जो पेड हैं वे सबही वहाँ विद्यमान हैं ॥ १३ ॥ उन कामनादायक वृक्षोंका देव, दानव सेवन करतेहैं और उसी पहाडपर महापवित्र एक अति उत्तम सुवर्णनगरी है ॥ १४ ॥ मैं उस परम मनोहर नगरीका शृंग (शिखर) देखरहाहूँ और गीतोंद्वारा मनोरम ऐसी बाँसकी बीन और मृदंगद्वारा वहाँ भद्रकालीके गण उत्तमोत्तम गीत गारहेहैं । तब वे पांडव जैसेही उस पहाडके पास पहुँचे ॥१५॥१६॥ फिर वैसेही महारानी वीणावती नामवाली कन्या एकलाख कन्याओं समेत मतवाले हाथीपर चढीहुई आपहुँची ॥ १७ ॥ वह पांडवके लिये पहाड छोडकर पृथ्वीतलपर उतरी । वीणावती बोली-हे वीर ! आपका स्वागत हो आपने अति उत्तम किया अर्थात् भाइयोंके सहित अति उत्तम आगमन किया ॥ १८ ॥ आपका दर्शन करनेके लिये हम सारी कन्या राज्य छोडकर यहाँ आई हैं । उनकी यह बात सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने कहा ॥ १९ ॥ हे देवि ! हम सभी पर्वतपरसे उतरेहुए और नहीं त्यागनेयोग्य दारुण कामादिको त्यागकर स्वर्गके मार्गमें टिकेहैं ॥ २० ॥ वीणावती बोली । हे युधिष्ठिर ! जिस कामके द्वारा मेरा काम है, उससे भोगैश्वर्ययुक्त होकर आप भद्रकाली नामक सुन्दर नगरीमें राज्य कीजिये ॥ २१ ॥ युधिष्ठिरने उत्तर दिया-हे देवेश्वरी ! मैं तो उस स्थानमें जाऊँगा कि, जहां ईश्वर श्रीहरि विराजमान हैं । हे भद्रे ! मुझको भ्राताओं

समेत जाना है इस कारण इस पर्वतपर मैं नहीं ठहरसकताहूँ॥ २२॥तब महाराज युधिष्ठिरका यह निश्चय जानकर वे सब सुन्दर कन्या चलीगईं और पिर निराहार तथा पवनकी समान वेगयुक्त वे पांडवभी उत्तर दिशाको चल दिये ॥ २३ ॥ तब जहां स्वर्गसे आनेवाली और पवित्र मन्दकिनी नामक गंगा बहती हैं, यह सब पांडव जातीपुष्पोंसे शोभित उसी उत्तम स्थानपर पहुँचे ॥२४॥ जो गंगा हंस कारण्डवोंसे आकीर्ण होरही है तथा पक्षी चक्रवाकों द्वारा सुशोभित होरहीहै और वहाँ पद्मरागोंसे शोभित एक हजार देवद्रोण हैं ॥२५॥ सुवर्णके पिंड और रत्नोंद्वारा चारों ओरसे वह मन्दाकिनी शोभायमान होरहीहै, वह प्रसन्न होनेपर वर और क्रोधित होनेपर शाप प्रदान कियाकरती है ॥ २६ ॥ पराशरमुनिके बेटे श्रीवेदव्यासजी महाराज और उनके बेटे महायोगी श्रीशुकदेवजी हैं पूर्वसमय उन्हीं श्रीशुकदेवजीने शुकवनमें तप तपाथा॥ २७॥ उन्हीं श्रीशुकदेवजीने लिंगकी स्थापना की है और प्रासाद निर्मित कियेहैं, चन्दन, पारिजात,पुन्नाग और नागकेशरके द्वारा शोभायमान हैं ॥ २८ ॥ अपनी अपनी नारियोंसमेत वहाँ किन्नर और गन्धर्व क्रीडा किया करतेहैं, कितनेही हँसते और अन्यान्य किन्नरोंके संग गान करतेहैं ॥ २९ ॥ वहाँ नदीके किनारे पहाडकी जडमें महारानी द्रौपदीजी गिरपडी और नदी तथा पहाडकी मूलमें तत्काल उनके प्राण छूटगये॥ ३०॥ तब द्रौपदीको गिराहुआ देखकर भीमसेनने कहा कि जिसके लिये प्रथम हमने कौरव तथा दानव और राक्षसोंका नाश किया ॥ ३१॥ बारह वर्षकी संख्या करके महाराज विराटके घरमें कष्टसे वसे और फिर अग्निकी लपटोंसे युक्त कठिन अग्निके समूहमें दुःखित हुए ॥ ३२ ॥ और जिसको महान् कष्टसे मत्स्यबेध करके अर्जुनने प्राप्त किया था, इस समय वही तीनोंलोकमें विख्यात द्रौपदी गिरगई ॥ ३३ ॥

कन्यां साक्षाद्गृहीत्वाहं गतोऽस्मि यत्र तत्पुरः ।
मातुर्वाक्येन पञ्चानां भार्या चैव समायता ॥ ३४ ॥

और उस साक्षात् कन्या द्रौपदीको लेकर अपनी मइयाके सामने पहुँचे। तब वब मइयाके कहनेसे हम पाँचों भ्राताओंकी पत्नी बनी ॥ ३४ ॥

इति श्रीभारतसारे स्वर्गारोहणपर्वणिभाषायांद्रौपदीनिर्याणंनाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः १०१.

एकाधिकशताध्याये कृतपुण्यस्य संक्षयात्।
पतनं सहदेवस्य वर्ण्यते दुःसहं नृणाम् ॥ १ ॥

इस एकसौ एक अध्यायमें कियेहुये पुण्यका क्षय होनेके कारण सहदेवका पतन हुआ जो कि मनुष्यके पक्षमें सहनेयोग्य नहीं है, वही कथा वर्णन करीजतीहै ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच।

तां चैवं मृत्युसंप्राप्तां न शोचामि वृकोदर।
कालेनैव हता भीम पापा मृत्युवशं गता ॥ १ ॥

युधिष्ठिरने कहा—हे भीम ! हम मरीहुई द्रौपदीका सोच नहीं करते, क्योंकि, वह पापिनी कालके द्वारा नष्ट होकर मृत्युके वशमें पडगई है॥ १ ॥ भीमसेनने कहा—हे राजन् ! उस द्रौपदीने कौनसा पाप कियाथा ? सो आप कहिये कि, वह किस कर्मके फलसे मृत्युको प्राप्त हुई ? और स्वर्गमें नहीं पहुँचसकी ॥ २ ॥ युधिष्ठिरने उत्तर दिया—हे वृकोदर ! यह रानी द्रौपदी अर्जुनको (परम) स्नेहसे भोगाकरतीथी, इसकी वैसी प्रीति नकुल सहदेवमें, आपमें और मुझ युधिष्ठिरमें नहीं थी ॥ ३ ॥ उसी दोषसे यह पांचाली मरगई और स्वर्गमें नहीं जासकी, तब महाराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर उन पांडवोंने दुःख छोडदिया और आगे बढे ॥४॥ तब चार कोस मात्र प्रसिद्ध एक गौरनामवाला पहाड है, वह मस्तकपर कूर्मपृष्ठ अर्थात् कछुएकी पीठकी तरह सफा होरहाहै और उसपर पेड नहीं हैं ॥५॥ और वह चौतर्फा सुवर्णचर्चित शिखरोंसमेत ताम्रद्वारा बँधाहुआ है, वहाँ मध्याह्न कालमें रुद्रकी कन्या नित्य आयाकरतीहैं॥ ६ ॥ वे वरांगना उस मनोहर पहाडके शिखरपर

नाचाकरतीहैं। फिर नाचनेपर अतिउत्तम कन्या जहाँ श्रीमहादेवजी विराजमान रहते हैं, वहाँ कैलासपर्वतपर गमन किया करतीहैं॥७॥ और जो भूमिपर उत्तम कर्म हैं वे सबही वहाँ निर्मित हुएहैं और क्रौंचवनमें गुणोंकरके पांडवोंकी तरह प्रसिद्ध॥८॥ऐसे मुनियोंमें उत्तम क्रौञ्चपाद नामवाले मुनि हैं और उन्हीं मुनिने उस वनको पालन कियाहै और देवद्रोणनामक महावनमें स्वयं क्रौञ्चपादनामक मुनिदेव निवास करतेहैं ॥९॥ वहां सुवर्ण व रत्नोंद्वारा पूजित तथा प्रकाशित वैडूर्यमणिद्वारा निर्मित प्रासाद (महल) दिखाईदेताहै वह सूर्यकी किरणोंके सदृश तेजवान् है ॥ १० ॥ तब पाण्डवोंने उस शिवनिर्मित महलमें प्रवेश किया और वे जैसेही श्रीमहादेवजीकी स्तुति करनेको तैयार हुए कि त्योंही वहां कन्या आपहुँची ॥ ११ ॥ तब वे क्रौंचपादमुनि उन सौम्य पाण्डवोंको देखकर हर्षित हुए । क्रौञ्चपाद बोले—हे महाराज! आप राज्यको छोडकर स्वर्गके मार्गमें कैसे स्थित हुए हैं? ॥ १२ ॥ हे प्रभो! आप मेरे इस पहाडपर जो कि स्वर्गके स्थानसेभी अधिक मनोहर है भाइयोंसमेत सुखपूर्वक निरन्तर राज्य कीजिये ॥ १३ ॥ धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—हे मुने! महाभारतका युद्ध समाप्त होनेपर अब घोर कलिकाल उपस्थित होगा, इस कारण भाइयोंको साथ लिये मैं शीघ्रतासहित स्वर्गको जारहाहूँ ॥ १४ ॥ क्रौञ्चपादने कहा—हे राजेन्द्र! हे भारत! आपकी समान योगशील, पराक्रमी, सत्यवादी, पवित्र, तपस्वी, सहनशील और दानी दूसरा कोई नहीं है ॥ १५॥ युधिष्ठिरने कहा—मैं अकण्टक राज्य छोडकर मार्गमें स्थित हुआहूँ इस प्रकार कहकर महात्मा क्रौंचपाद और श्रीमहादेवजीको प्रणाम किया ॥ १६ ॥ और फिर वे पांडुनन्दन उत्तराभिमुख होकर गमन करनेलगे, तब गंगाके तटपर महापुण्यदायक बद्रिकाश्रममें जापहुँचे ॥ १७ ॥ जहाँ सारी अभिलाषाओंके पूर्ण करनेवाले अमृतकी सदृश बेरोंके पेड हैं और वह बेर पद्मरागरत्नोंकी तरह प्रकाशमान दिखाई दिया करतेहैं ॥ १८ ॥ पूर्वकालमें मुनिसत्तम दुर्वासाने श्रेष्ठ जरा (बुढापा) और मृत्युनाशक तथा बडेबडे प्राकारसे घिरेहुए कंचनके महल निर्माण

कियेथे ॥ १९ ॥ वे कंचनके फूल और कमलफूलके द्वारा पूजित और प्रकाशमान होरहेहैं और बडे सुन्दर कंचन व रत्नोंद्वारा तथा कंचन कमल और फूलोंसे अर्चित होरहेहैं ॥ २० ॥ हीरोंकी चमकके सदृश कान्तिमान् शिवलिंग हैं, और कंचनमय चर्चित पिंडियां हैं। इस स्थानके रहनेवाले पुरुष उन भक्तवत्सलकी प्रात मध्याह्न और संध्या तीनोंकालमें पूजा किया करतेहैं ॥ २१ ॥ और ध्यानरूपमें निरन्तर निरत सबसे अधिक ध्यान करनेलायक दयामय जगदीश्वरका ध्यान कियाकरतेहैं। मुनिवर दुर्वासा, माण्डव्य, याज्ञवल्क्य और बृहस्पति ॥ २२ ॥ उद्दालक, नाचिकेत, पिप्पलाद, विश्वामित्र, दक्ष, तृणबिन्दु, गौतम ॥ २३ ॥ कौशिक, विशाल, कण्व, कात्यायन, मुनिश्रेष्ठ धूम, ऋष्यशृंग, गालव ॥ २४ ॥ स्वयंदेव, त्रिशंकु, भृगु, अत्रि, ऋषिध्वज, आपस्तम्ब, महावित्त, वशिष्ठ, मुनिवर अंगिरा ॥ २५ ॥ विश्वज्ञन, त्रिक व औरभी तपस्यारूपी धनवाले ऋषि कहनेलगे। तपोधन ऋषि बोले—हे महाराज! आप राज्य छोडकर भ्राताओं समेत कैसे आयेहैं? ॥ ॥ २६ ॥ क्योंकि आप इस दुर्गम (कठिन) और शीतलपथ (रास्ते) में नहीं जासकेंगे, अतएव सब भाइयोंसमेत यहाँ मनोहारिणी कन्याओंको ग्रहण करो अर्थात् उनसे विवाह करलो ॥ २७ ॥ और फिर यहाँ आप सब भाई स्वेदगन्ध अर्थात् पसीनेकी गंधरहित होकर निवास कीजिये. उनकी यह बात सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने उत्तर दिया ॥ २८ ॥ हे ऋषिगण! मैं जब तक सर्वदेवनमस्कृत मेरुपर्वतको नहीं देखूँगा और जबतक जहाँ भगवान् माधव श्रीकृष्णजी विराजमान हैं, उस स्थानका दर्शन नहीं करूँगा तबतक किसी लोकको नहीं देखूंगा ॥ २९ ॥ मैं भगवान् माधव और आप ऋषियोंके प्रसादसे संसारके स्वामी जगन्नाथ नारायणका दर्शन करूँगा ॥ ३० ॥ तब उन ऋषियोंने धर्मराज युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर उनको बिदा किया. अनन्तर आगे जो मन्दाकिनीके रमणीक किनारेपर कैरात नामवाला पहाड है ॥ ३१ ॥ तब वे महाबलवान् वायुकी समान वेगवान् सब पांडव वहाँ जापहुँचे। वह पर्वतोत्तम कैरात उत्तमोत्तम तरह तरहके

पेडोंसे सुहावना होरहा है॥ ३२ ॥ उन पेडोंमें सदाही फूल खिले रहतेहैं और उनमें सर्व कामनादायक फल लगतेहैं और वे ऊँचे तथा बहुत सुन्दर पेड देवदानवोंको दुर्लभ है ॥ ३३ ॥ इस प्रकार उस मनोहर गिरिराजपर नरोत्तम पांडवोंने उन पेडोंको देखा; उसी समय उन पांडुके पुत्रोंको भीलोंकी सेनाने आकर चारों तरफसे घेरलिया ॥ ३४ ॥ वे बादलोंकी समान काले काले सब भील भुजाओंको फटकारते और गर्जतेहुए क्रोधित हुए और हाथोंसे हाथको चटकाकर ॥ ३५ ॥ काले हिरनके चमडेकी समान शरीर-वाले बर्बर (असभ्य) बाल बढाये, मणि तथा चमकीले कपडे पहरे ऐसे शूकर जनकी तरह विकरालरूपवाले वे भील बोले ॥ ३६ ॥ हे भीम ! यदि आपमें पौरुष हो तो हमको युद्ध दो । इस तरह कहते पैरोंसे भूमिको खोदते और परिक्रमा करनेकी तरह चारों ओर घूमते ॥३७॥ और महान् शब्द करके पहाडकी कन्दरामें गर्जनेलगे तब उनका यह हाल देखकर भीम-सेन कालकी समान क्रोधित हुए ॥ ३८ ॥ और तब उन भीमसेनने सिंहकी समान ऐसी गर्जना करी जिसको देवता और दानवभी नहीं सहसकें, तब वह सारे भील नष्ट होकर दशों दिशाओंमें भागगये ॥ ३९ ॥ और भीमकी गर्जनाका शब्द सुनकर बडे अचंभेमें हुए तथा पांचों पांडव हर्षित होकर हंसते हुए कहनेलगे कि, यह भील लोग जैसे आये थे वैसेही पीछे लौट गये ॥४०॥ इस प्रकार कहकर वे पांडुनन्दन आगेको चलदिये और उस पहाड-पर इन भीलोंने संग्राम किया तब वे पांडव कैरातकेश्वर नामवाले श्रीमहा-देवजीके पास पहुँचे ॥ ४१ ॥ जहाँपर शतशः मनोहर देवद्रोणोंको अतिक्रम (उल्लंघन) कर पद्मरागनिर्मित अनेक लिंग और कंचनकी सुन्दर पिंडियाँ विद्यमान हैं ॥ ४२ ॥ तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने भाइयोंसमेत कैरातके-श्वरके मन्दिरमें प्रवेश करके परम कारण देव श्रीमहादेवजीको शिरसे प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ और कहा। हे महादेव ! आपकी समान दूसरा देवता कोई नहीं है, आप तीनों लोकके स्वामी हैं आपको प्रणाम है आपही सांसारिक सुख और भक्ति और मुक्तिके देनेवाले हैं ॥ ४४ ॥

छन्द—जय शिवशंकर शरण भय हरण व्यापक रूप अनूपा ।
पाणि त्रिशूल दरिद्रदमन प्रभुजय कृपालु सुररूपा ॥
सुरमुनि पालक खलकुलघालक कृपासिंधु वृषकेतु ।
जय त्रिपुरारी प्रभु कामारी जासु नाम भवसेतु ॥
अंग विभूति अभूषण सोहै लखि सुर नर मुनि मोहैं ।
कंठै शेष गरलकृत भूषण गंगजटा शिर सोहैं ॥
हमहिं कृतारथ करनहेतु अब दर्शन देहु कृपाला ।
धर्मराज पुनि पुनि नृप विनवै जय जय दीन दयाला ॥
जय शिव लायक सब जगनायक गंजन विपति समूहा ।
अवगाह थाह नहिं पावत गावत सब सुर व्यूहा ॥

नमामि ईश ईश्वरं । सुपाहि मे प्रमेश्वरम् ।
नमामि आशु तोषणम् । समस्त लोक पोषणम् ॥
अनेक रूप धारणम् । विभज्ञलोक कारणम् ।
गिरीश रूप आगरम् । त्रिलोकमें उजागरम् ॥
कपाल माल शोभितम् । शरण शरण शरण नितम् ।
नमामि गंगधारणम् । अनेक भयनिवारणम् ॥
सव्यापकं विभुं प्रभो । गुणाकरं कृपालु भो ।
दयालु दीननायकम् । सुसन्तसुःख दायकम् ॥
करालकालभक्षकम् । स्वभक्त दीन रक्षकम् ।
हिमेशपुत्रि नायकम् । सुसर्वसिद्धि दायकम् ॥
निरंकाररूप नाथ । अर्थ चाहि प्रभो हाथ ।
शैलनाथ शिवानाथ । नागेश्वर रामनाथ ॥
शीश गंगचन्द्रभाल । कण्ठमाँहि नाग माल ।
दरश दियो जानि दीन । मैं तो सर्वज्ञ हीन ।
बार बार हाथ जोरि । राखो अभिलाष मोरि ॥

दोहा--धर्मराज करजोरि तहँ, इहि विधि अस्तुति कीन्ह ।
कृपासिंधु भूतेशने, तब निज दर्शन दीन्ह ॥
विनय कीन्ह महिमाथ धरि, परशि किरात भुआल ।
प्रभु मोहि पार लगाइये, जय जय शंभु कृपाल ॥
बार बार विनती करी, भूप दण्डवत कीन्ह ।
मन वांछित बर पायो, शंभु आशिषहि दीन्ह ॥

महाराज युधिष्ठिर इसप्रकार श्रीमहादेवजीकी विनती और बारंबार उनको प्रणाम करके जैसेही मन्दिरसे निकलकर पृथिवीपर जानेलगे ॥ ४५ ॥

कनिष्ठः पतितस्तावज्ज्योतिर्ज्ञानविशारदः ।
सहदेवं मृतं दृष्ट्वा भीमो वचनमब्रवीत् ॥ ४६ ॥

कि त्योंही ज्योतिषशास्त्रके ज्ञानमें पण्डित छोटे भाई सहदेवजी गिरगये । तब सहदेवजीको मराहुआ देखकर भीमसेनने कहा ॥ ४६ ॥

इति श्रीभारतसारे स्वर्गारोहणपर्वणि भाषायां सहदेवपतनं नाम एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः १०२.

द्व्यधिकशततमेऽध्याये कैलासे गमनं तथा ।
चतुर्णां पाण्डवानां च वर्ण्यते सुरदुष्करम् ॥ १ ॥

इस एकसौ दो अध्यायमें चारों पाण्डवों (युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम और नकुल) का देवदुर्लभ कैलासमें जाना, यह कथा वर्णन करीजातीहै ॥ १ ॥

भीम उवाच ।

कनिष्ठः पतितो राजन्प्राणैर्मुक्तस्तु तत्क्षणात् ।
भीमस्य वचनं श्रुत्वा धर्मो यावन्निरैक्षयत् ॥ १ ॥

भीमसेनने कहा–हे महाराज युधिष्ठिर ! छोटे भाई सहदेवजी गिरपडे और तत्कालही उनके प्राणभी छुटगये । धर्मराज युधिष्ठिर भीमकी यह बात सुनकर जैसेही देखनेलगे ॥ १ ॥ तैसेही वे सूने घरकी नांई दिखाई दिये यह

सहदेवजी ज्योतिषियोंमें प्रधान थे। महाराज युधिष्ठिर विलाप करने लगे हे सहदेव! प्रथम आपने युद्धमें भगवान् जनार्दनको जीत लियाथा ॥ २ ॥

चौपाई।

कीन्ह भीम तहँ अति अपघाता। बुद्धिवन्त नहिं देखिय ताता ॥
कह्यो भीम भा बन्धु बिछोहू। यह सुनि नृपहि भयो अति कोहू॥
ज्योतिष शास्त्र विशारद भाई। सकल शास्त्र मति वरनि न जाई ॥
वेद निधान सकल गुण मूरे। क्षत्री धर्म अस्त्रके पूरे ॥
अहह बन्धु गत भये केहि पापा। सुमिरि भीम अति कीन्ह विलापा॥
धर्म युधिष्ठिर तब समुझाये। कूर्मशिलापर पुनि चढि आये ॥

उसी तरह आपने मायाकरके भगवान् केशवको संतुष्ट किया था, अब आपकी वह माया कैसे और कहाँ चली गई? जो आप कालके वशीभूत होगये? ॥ ३ ॥ हे प्राज्ञ! आपका भूत भविष्य वर्तमानका सारा ज्ञान इस समय कहां चलागया? क्योंकि आप तो इन तीनों कालकी सब बातोंके जाननेवाले थे अत एव आप कैसे कालके वशीभूत होगये? ॥ ४ ॥ इस तरह सोचते और सहदेवके कर्णमूलमें शब्द करतेहुए बैठगये और शोकसंतप्त सब भाइयोंसे कहनेलगे ॥ ५ ॥ हे भीम! हमलोग यहाँ वृथा क्यों पडे हुए हैं? क्योंकि इस पापोंद्वारा मरेहुए सहदेवका सोच करना ठीक नहीं है. युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर भीमसेनने कहा–हे नराधिप! इन सहदेवजीने कौनसा पाप किया है? सो बताइये ॥ ६ ॥ भीमकी बात सुनकर महाराज युधिष्ठिर सहदेवका पाप कहनेलगे कि, हे भीम! त्रैलोक्यमें जितना ज्ञान था, यह सहदेव जानताथा। किन्तु इसने स्वभावसेही अपनी तथा दूसरेकी रक्षा करनेको वह ज्ञान प्रकाशित नहीं किया अर्थात् दूसरे किसी व्यक्तिको नहीं बताया ॥ ७ ॥ हे भीम! इसीसे मृत्युके सामने स्थितहुआ जिस समय लाखके घरमें अग्नि प्रज्वलित हुई, तब सहदेवने अपनी इच्छानुसार रास्ता नहीं बताया था ॥ ८ ॥ फिर देखो वैरीसे मोहित हुए हम लोगोंको दुर्यो-

धनने हरादिया किन्तु इस सहदेवने वहाँ बैठेहुए आपको कहकर नहीं रोका ॥ ९ ॥ इस घोर पापसे यह मरे और स्वर्गमें नहीं जासके। उन पांडवोंने इस प्रकारकी निःसह बात सुनकर दुःख छोडदिया और आगे चले ॥ १०॥ तदनन्तर वे निर्दय पांडव उत्तरदिशाके संमुख गये और फिर वहाँसे पवनकी समान वेगशाली निराहार पांडव मानससरोवरपर जापहुँचे ॥ ११ ॥ वहाँ एक हाथी निकला जो कि चारसौ कोश लम्बे शरीरवाला और चारसौ कोशही विस्तारवाला था, वह अति श्रेष्ठ मानससरोवर ॥ १२ ॥ शतपत्र कमलों और रुपहली कीचडके द्वारा शोभायमान होरहा था, उस सरोवरके पश्चिमी हिस्सेमें चन्द्रकान्तनामसे विख्यात एक महानद है ॥ १३ ॥ वहाँ चन्द्रकान्तसमान रुद्रोंद्वारा अर्थात् रुद्र जिस प्रकार लिंगकरके शुक्लपक्षमें उसी प्रकार कृष्णमें जल टपकाते हैं । क्योंकि उस जगह चन्द्रमाका प्रभाव नहीं है ॥ १४ ॥ चन्द्रमा ग्रह अपनी सोलह कलाओंद्वारा सुखसे भूमिपर प्रकाशित होता है, चन्द्रकान्तिरूप सब चन्द्रकान्तमणि प्रकाशित होरहे हैं ॥१५॥वहाँ निरंतर भस्म करके प्रकाशित रत्नोंके दीवे जलते रहते हैं। इन पांडवोंने उस मनोहर पहाडको उलाँघकर श्रीमहादेवजीके मन्दिरका दर्शन किया॥१६॥ तब यह जैसेही श्रीमहादेवजीकी स्तुति करनेलगे कि, वैसेही तत्काल तीन आँख और दश हाथवाली सुन्दर कन्या आपहुँचीं ॥१७॥

वदन्ति पाण्डवैः सार्द्धं वाक्यैश्चैव मनोरमैः ।

कन्या ऊचुः ।

रथमारुह्य राजेन्द्र कैलासे गम्यतां ध्रुवम् ।
शङ्करेण समं तत्र भुंक्ष्व भोगान्मनोरमान् ॥ १८ ॥

तब वह कन्या अत्यन्त मनोहर वचनोंद्वारा पाण्डवोंसे कहने लगीं. कन्या बोलीं कि, हे राजेन्द्र ! आप रथपर सवार होकर निःसन्देह कैलासको चलिये और वहाँ श्रीमहादेवजीके समान मनोरम भोगोंको भोगिये ॥ १८ ॥

इति श्रीभारतसारे स्वर्गारोहणपर्वणि भाषायां द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः १०३.

त्र्यधिकशततमेऽध्याये नकुलार्जुनयोस्तथा ।
पतनं हिमशृङ्गाच्च संक्षेपाच्च तदुच्यते ॥ १ ॥

इस एकसौ तीसरे अध्यायमें हिमशृंग (हिमाचलकी चोटी) से अर्जुन और नकुलका गिरना अर्थात् मरण होना, यह कथा संक्षेपसे कहीजाती है ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

पूर्वमेव प्रतिज्ञातः केशवश्चाग्रतो मया ।
गन्तव्यं माधवो यत्र गम्यः परमकारणम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे रुद्रकन्याओं ! इस कैलासको मैं प्रथमही जानचुकाहूँ, किन्तु मुझको तो अगाडी जिस स्थानमें लक्ष्मीकान्त माधव भगवान् श्रीकृष्ण परमकारण विराजमान हैं, वहाँ जाना है ॥ १ ॥ वे रुद्रकन्या महाराज युधिष्ठिरका यह निश्चय जानकर चलीगईं । तब पहाडसे नीचे उतरकर पांडव जैसेही पृथ्वीतलपर आये ॥ २ ॥ कि त्योंही नकुल गिरपडे और तत्कालही उनके प्राण छूटगये । तब भीमका प्रश्न सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने उत्तर दिया ॥ ३ ॥ यह (रावणकी) लंकापुरीमें जानेवाले नकुल यज्ञमें बहुत सारा सोना लेआये । जिस समय यह लंकानगरीमें जाय वहाँ निडर होकर घुसे ॥ ४ ॥ लंकाधिपति विभीषणने उनके महान् कौतुकको देखतेही घबराकर बहुतसा सुवर्ण भेजदिया ॥ ५ ॥ हे भीम ! जिन नकुलमें इस तरहका बल था सो वेभी कालसे कैसे जीतेगये ? किन्तु यमराजने उनको निहत किया और वे पापके द्वारा मृत्युके वशीभूत होगये ॥ ६ ॥ भीमसेनने पूछा—हे महाराज ! नकुलने ऐसा क्या पाप कियाथा, जिससे वे स्वर्गको नहीं जासके ? युधिष्ठिरने उत्तर दिया—हे भीम ! तपका लाञ्छन करनेवाले और अनेक रूपवाले नकुलको स्वर्ग नहीं मिला ॥ ७ ॥ क्या अपनी मति भ्रमहीन भावको प्राप्त हुईहै ? और क्या हमलोगोंने रक्षा करके अपने अंगको सुखी किया है ? अहो ! संग्राममें नकुलके बराबर

दूसरा कोई वीर विद्यमान नहीं था ? ॥ ८ ॥ हे पवननन्दन ! यह अचंभा है, अत एव हे वृकोदर भीम ! इन नकुलका सोच नहीं करना चाहिये। धर्मराज युधिष्ठिरकी यह बातें सुनकर सबने दुःख छोड दिया और वहांसे आगे चलदिये ॥ ९ ॥ तदनन्तर यह पांडव तीनों लोकमें विख्यात और प्रकाशमान नन्दघोष नामवाले पहाडपर जापहुँचे यह पहाड वैदूर्य और पद्म-राग मणियेंसे सर्वत्र विभूषित था ॥ १० ॥ सुवर्ण रत्नोंद्वारा और पहाडों-द्वारा वैसे शिखरोंसे शोभायमान होरहाहै और उसकी चोटी पर एक हजार देवद्रोण अवस्थित हैं॥ ११ ॥ वह दूधकी सदृश कमलोंके द्वारा नित्य तीनों कालमें अर्चित होरहाहै, जहाँ भगवान् श्रीमहादेवजी अवस्थित हैं, रुद्रक-न्यायें उन महादेवजीकी पूजा करके कैलासपर जाया करतीहैं ॥ १२ ॥ फिर जिस समय वे पांडव जनोंको सुखी करनेवाले नन्दघोषेश्वरके पास पहुँचे तब जैसे ही उनकी स्तुति करके महाराज युधिष्ठिर भीमार्जुन समेत किंचित् दूर स्थानको जाते थे ॥ १३ ॥ कि उसी समय अर्जुन पद्मराग रत्नोंकी शिलापर गिरपडे. भइया अर्जुनको गिराहुआ देखकर भीमसेनने कहा॥ १४॥ हे महाराज ! ज्योंही हम नन्दघोषेश्वरसे निकले कि देवदानवोंसे अजीत अर्जुन गिरगये। भीमकी यह बात सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने कहा ॥ १५॥ समरमें अर्जुनके अगाडी दूसरा कोई योधा खडा नहीं रह सकताथा और इन अर्जुनके डरके मारे राजा लोग इस तरह भाग जाया करतेथे, जिस तरह सिंहको देखकर हाथी भागजाया करतेहैं ॥ १६॥ और गरुडजी जिस तरह सर्पोंको विचालित करतेहैं, ऐसे ही समरमें इन अर्जुनने भी अपने शर-जालसे भीष्म, द्रोण, कर्णको मारकर सारे कौरवोंको विचलित करडालाथा ॥ १७ ॥ इन अर्जुननेही वज्रकी समान शरीरवाले सारे योधाओंका नाश किया। अब उन्हीं अर्जुनको कालने नष्ट कियाहै। हे भीम! यह पाप करके मृत्युके वशीभूत हुएहैं ॥ १८ ॥ भीमसेनने पूछा । हे नराधिप ! अर्जुनने ऐसा क्या पाप किया था, जिससे यह मृत्युके वशीभूत हुए ? वह मैं सुनना चाहताहूं क्योंकि इसका मुझको बडा अचंभा होरहाहै ॥ १९ ॥

निमिषार्द्धार्द्धभागेन भारते ये समागताः ।
तेन ह्यष्टादशाहानि क्लेशिता ननु विग्रहाः ।
तेन पापेन संयुक्तः पार्थो मृत्युवशंगतः ॥ २० ॥

महाराज युधिष्ठिरने उत्तर दिया कि, हे भीम ! एक पलके चतुर्थांश समयमें संहार करडालनेवाले इन अर्जुनने भारत संग्राममें आयेहुए वैरियोंको अठारह दिनतक क्लेश दिया, उसी पापसे युक्त होकर अर्जुन मृत्युके वशीभूत हुएहैं ॥ २० ॥

इति श्रीभारतसारे स्वर्गारोहणपर्वणि भाषायां अर्जुनपतनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमोऽध्यायः १०४.

वेदाग्रशतकेध्याये भीमदेहः पपात ह ।
विललाप तदा धर्मस्तद्वर्णितमनेकधा ॥ १ ॥

इस एकसौ चौथे अध्यायमें भीमके शरीरका पतन और उनके मरनेपर धर्मराज युधिष्ठिरका अनेक प्रकारसे विलाप करना यह कथा वर्णन करीजातीहै ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

वाक्यं तु निःस्पृहं श्रुत्वा दुःखक्लेशगतावुभौ ।
नन्दघोषमतिक्रम्य वटं दृष्ट्वा च पाण्डवौ ॥ १ ॥

वैशंपायनजी बोले–हे महाराज जनमेजय ! राजा युधिष्ठिरको यह निःस्पृह (निर्मोह) बात सुनकर दोनों दुःख छोड आगेचले, तब इन दोनों जनोंने नन्दघोषको उलाँघकर वडके पेडका दर्शन किया ॥ १ ॥ यह बडका पेड बीसकोस विस्तारवाला और अस्सीकोस ऊँचा सुवर्ण और पद्मरागमणियोंद्वारा उसकी जड चारों ओरसे बँधीहुई है ॥ २ ॥ तब युधिष्ठिर व भीम दोनोंजने उसकी छायामें विश्राम करके उत्तरके सम्मुख चले तब मोटी वैजयन्तीनामवाली नदीपर जापहुँचे ॥ ३ ॥ उसके बीचकी

भूमि सुवर्णमयी और मछली तथा कुछओंसे युक्त है और दोनों किनारोंपर वनोंकी छाया तथा मनोहर बगीचे विद्यमान हैं ॥ ४ ॥ उस पवित्र नदीके संमुख पहुँचकर वहाँ भगवान् श्रीमहादेवजीकी पूजा करी और फिर दोनों जने उस स्वर्गवाहिनी नदीको उतरे ॥ ५ ॥ उस स्थानमें गन्धर्वोंकी अनेक कन्यायें गीत गारहीहैं, तब वे दोनों पांडव हर्षित होकर शिवालयमें प्रविष्ट हुए ॥ ६ ॥ कन्याने कहा हे युधिष्ठिर ! आप दोनों जनोंको मृत्युलोकसे मनोहर सोम (चन्द्र) लोकमें पहुँचना चाहिये क्योंकि चन्द्रलोक बहुत मनोरम है उस स्थानमें आप कन्याओंको भोग कीजिये ॥ ७ ॥ युधिष्ठिरने उत्तर दिया—हे कन्या ! आप मेरे मार्गमें विघ्न नहीं कीजिये क्योंकि मुझको वहाँ पहुँच जाना है, जिस स्थानमें भगवान् केशव श्रीकृष्ण विराजित हैं। इस प्रकार कह भूमिपर प्रसिद्ध सोमेश्वर महादेवजीको प्रणाम करके निकले ॥ ८ ॥ कि त्योंही सारे वैरियोंके मर्दन करनेवाले महाबली भीम वहाँ सहसा पद्मरागशिलातलपर गिरपडे ॥ ९ ॥ उस काल बडा भारी शब्द हुआ और भीमके प्राण छूटगये । तहाँ वृक्ष गिरपडे और नदीके दोनों किनारे बिखरगये ॥ १० ॥ यहाँ भीमसेनने मार्ग रोकने द्वारा मनुष्य और जलचरोंको नष्ट किया सारे सर्पोंको विचलित किया और सूर्य चन्द्रमाकोभी विचलित करडाला ॥ ११ ॥ सारे साँप काँपगये । पृथ्वी काँपगई । शिखरोंपर गंधर्व काँपगये । भूत और राक्षस घबरागये ॥ १२ ॥ भीमसेनको गिराहुआ देखकर महाराज युधिष्ठिर मूर्च्छित होगये और भाईके शोकसमुद्रमें डूबकर दुःखसागरमें पतित हुए ॥ १३ ॥ फिर आँखोंमें आँसू भर दीनमन हो अन्तःकरणके दुःखसे कहनेलगे । हा भीम ! हा नरशार्दूल ! मनुष्यके शब्दसे हीन इस स्वर्गके मार्गमें आप किस प्रकार मृत्युको प्राप्त होगये ? ॥ १४ ॥ हे भीम ! हे भाई ! आप भाईयोंकी क्रिया करके मुझको स्वर्ग लोकमें भगवान् श्रीकृष्णके निकट लेजानेका वचन दीजिये और सिंह भेडियोंसे भयाकुल महाकठिन पार्वतीय मार्गमें॥ १५॥ हे भीम ! मुझको छोडकर क्या आप शिवालय (कैलास) में चले गये ?

हे भीम ! इस वनैले कठिन मार्गमें आपने हमको किसे सौंपाहै ? ॥ १६ ॥
आपने महान् संग्राम करके तुंडिकनाम दैत्यको वध किया और महावीर्यवान्
हिडम्ब नामक दैत्यका वध किया । हे भइया भीम ! आपने दुर्योधनकी भी
महासेनाका नाश किया ॥ १७ ॥ जिस प्रकार श्रीगंगामहारानी तीनों लोक
प्रति अधिक होकर वर्त्तती हैं, उसी तरह बन्दर भेडिये हाथी इनसे आप
अधिक होकर वर्त्ततेथे और नारियोंके हरण कालमें आप बाहुयुद्ध किया
करतेथे ॥ १८ ॥ आपने रणांगनमें गयासुर नामक दैत्यके संग संग्राम किया
तथा द्रोण और भीष्मको वध किया सो वह आप अब कैसे मृत्युके वशी-
भूत होगये ?॥ १९॥ हे भीम ! आपने जहर मिलेहुए अनेक लड्डू भोजन
किये और पचागये तो अब आप मृत्युके वश कैसे होगये ?तब दूसरा
कौन आदमी जीवित रहनेकी कामना करसकताहै ? ॥ २० ॥ वैशंपायनजी
बोले-हे जयमेजय ! भइया भीमके भूतलशायी होनेपर उस काल महाराज
युधिष्ठिर और भी सब भाइयोंका सोच करनेलगे कि, संग्राममें भगवान् श्रीकृ-
ष्णके सदृश पराक्रमी भइया अर्जुनभी गिरगये ॥ २१ ॥ वही अर्जुन इस
समय व्याघ्र, शूकर सेवित दारुण वनमें शयन करगये जिन्होंने सुभद्राके
हरणकालमें क्रोधित यादवोंके स्थानमें घुसकर ॥ २२ ॥ सबको तिनकेकी
नाईं करदिया था, वेही मृत्युके वशीभूत होगये । ऐसे बल पराक्रमवाले
अर्जुन कैसे मृत्युके वशीभूत होगये ? ॥ २३॥ उसी प्रकार उन्होंने खाण्डव
वन जलानेके समय उसपर शरजालद्वारा मण्डप छादिया और बादलोंकी
वर्षाको रोका वनको नहीं भीजनेदिया ॥ २४ ॥ फिर वनमें किरातरूपी
श्रीमहादेवजीको संग्रामके बीच संतुष्ट किया और उनका पराक्रम रुद्रकी
समानही था उनको कालने कैसे हत (नाश) किया ? ॥ २५ ॥ जब कि,
ऐसे अर्जुनभी मृत्युको प्राप्त होगये, तब फिर दूसरा कौन व्यक्ति पृथ्वीपर
जीवित रहसकताहै ? और अपने पतियोंका अतीव हितकरनेवाली महारानी
द्रौपदीभी कालके कराल गालमें जापडी ॥ २६ ॥ मुझको इस समय भाइ-
योंने इस पहाडकी दारुण कन्दरामें छोड दियाहै । और इसपरभी अभीतक

मैंने शंख चक्र गदा पद्मधारी भगवान् नारायणका दर्शन नहीं कियाहै ॥ २७॥ मैं इस समय भाइयोंसे त्यागाहुआ शोकसागरमें गिरकर सात द्वीपवाली इस सारी पृथ्वीको सूना देखरहाहूँ ॥ २८ ॥ मैं राजा युधिष्ठिर भगवान् केशव श्रीकृष्णके आगे पहुँचकर क्या बात कहूँगा ? हे दामोदर ! हे हरे ! हे विष्णो ! मैं जो कहताहूँ उसको आप सुनलीजिये॥२९॥ कि हे मधुसूदन ! मेरे सब भ्राता मृत्युको प्राप्त होगये उन्होंने मुझे छोडदिया, अत एव मैं महान् पहाडोंसे युक्त और पवित्र सब तीर्थ स्थानोंमें ॥ ३० ॥ प्राण त्याग करूँगा क्योंकि अब जीवित रहनेसे क्या काम है ? जनमेजयने कहा । उन शोकसंतप्तमनवाले महाराज युधिष्ठिरने क्या किया ? इसको मैं यथार्थ सुनना चाहताहूँ ॥ ३१ ॥ अत एव यह मुझसे आप प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कीजिये कि उन महाराजने भ्राताओंका दुःख पानेपर फिर क्या किया ? हे वेदविदांवर ! यह आप मेरे प्रति वर्णन कीजिये ॥ ३२ ॥ वैशम्पायनजीने उत्तर दिया कि, हे जनमेजय ! हिमाचल तथा विन्ध्याचलकी उत्तरीय बगलमें अति उत्तम पीठके शिखर हैं वहाँ सर्वपापनाशक वैतरणी नामवाली नदी बहतीहै ॥ ३३ ॥ वह नदी देवकन्या तथा सिद्ध, गंधर्व और किन्नरोंद्वारा शोभायमान होरहीहै, उसी नदीके किनारे पर चन्द्रकान्त मणिकी नाई तेजशालिनी एक मनोहर शिला है ॥ ३४ ॥ भाइयोंके शोकमें भरेहुए वे महाराज युधिष्ठिर उसी शिलापर जापहुँचे तब वहाँके निवासियोंने कहा। हे महाराज ! आप खडेहुए बारबार किस बातका सोच कररहेहैं ?॥ ३५ ॥ इस प्रकार वे पूछनेलगे । तथापि महादुःखमें मग्न महाराज युधिष्ठिर करुणा करके विलाप करतेहुए रोनेलगे। तब आँसू भरी आँखोंवाले और दीन युधिष्ठिरको देखकर विद्याधरियोंने कहा ॥ ३६॥ विद्याधरीं बोलीं—हे नरसिंह ! आप रोइये मत, क्योंकि जन्मेहुए व्यक्तिकी मृत्यु अवश्यही हुआ करती है, हे युधिष्ठिर ! यह काल सारे संसारको अपनी फांसीमें खेंचलियाकरता है ॥ ३७ ॥ अथवा आपने क्या मौत नहीं देखी या नहीं सुनी ? जो इस मृत्युलोकमें जन्मेहैं वे सबही मृत्युके वशीभूत हुएहैं ॥३८॥ हे महापण्डित !

प्रस्थानके सिद्ध करनेवाले दामोदर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और जिस व्यक्तिकी नारायणमें भक्ति विद्यमान है, लोकसे फिर उसका क्या मतलब है? ॥ ३९ ॥ आपने उत्तमोत्तम अठासीहजार ब्राह्मणोंको तर्पित (तृप्त) किया है, अत एव हे महाराज ! उनके प्रसादसे आप अपने मृत भ्राताओंका दर्शन करेंगे ॥ ४० ॥ तदनन्तर महाराज युधिष्ठिरके चरणोंमें इन्द्रने स्वयं ही स्वस्ति करी और इन्द्रने स्वस्ति करके सुन्दर वाणीसे कहा ॥ ४१ ॥

शक्र उवाच ।

ब्रूहि राजन्महाप्राज्ञ किमर्थं रुदते भवान् ।
स्वर्गे दुःखं न कर्त्तव्यं नृपैश्चैव विशेषतः ।
ये मृता हेमशृंगाग्रे गतास्ते परमां गतिम् ॥ ४२ ॥

इन्द्र बोले—हे महाराज ! हे महापण्डित ! बताइये आप किसलिये रोरहेहैं ? क्योंकि स्वर्गमें विशेषभावसे दुःख करना उचित नहीं है और जिन लोगोंने हिमाचलके शिखरके अग्रभागमें प्राण त्याग दिया है उन सबको परमोत्तम गति मिलगई है ॥ ४२ ॥

इति श्रीभारतसारे स्वर्गारोहणपर्वणि भाषायां युधिष्ठिरशक्रसंवादे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः १०५.

पञ्चाधिकशतेऽध्याये भीष्मादीनां च दर्शनम् ।
धर्मस्य विष्णुलोके च सम्वाद उपवर्णितः ॥ १ ॥

इस एकसौ पांचवें अध्यायमें विष्णुलोकमें भीष्मादिकोंका दर्शन और विष्णु तथा धर्मराज युधिष्ठिरका सम्वाद यह कथा कही जाती है ॥ १ ॥

शक्र उवाच ।

इमां वैतरणीं पुण्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
अवगाह्य जलं दिव्यं मा दुःखं कुरु सुव्रत ॥ १ ॥

इन्द्र बोले—हे सुव्रत युधिष्ठिर ! आप सर्वपापनाशिनी और पवित्र इस

वैतरणी नदीके जलमें उतरकर स्नान कीजिये। दुःख नहीं कीजिये ॥ १ ॥ इन्द्रकी यह बात सुनकर महाराज युधिष्ठिर नदीमें स्नान करनेको गये और केवलमात्र उसमें स्नान करतेही उनका दिव्यरूप होगया ॥ २ ॥ वहां भाइयोंको जलदान करके भोजन दिया। तदनन्तर सब रत्नोंसे विभूषित दिव्य रथमें सवार होकर ॥ ३ ॥ दिव्यहारधारी दिव्य वस्त्र और दिव्य कुण्डल धारी महाराज युधिष्ठिरकी देवराज इन्द्रने स्तुति करी और फिर उनको गहने प्रदान किये ॥ ४ ॥ फिर दियेहुए कटिसूत्रको इन्द्रसे लेकर पांडव युधिष्ठिर ज्योंही ग्रहण करतेथे, इसी समय उनकी पीठपर स्थित होकर एक कुत्ता रोनेलगा ॥ ५ ॥ उसको रोताहुआ देखकर इन्द्रने महान् कोप किया और महान् क्रोधसे उस कुत्तेको ताडित किया उस प्रहारसे वह कुत्ता औरभी दारुणशब्दसे रोनेलगा ॥ ६ ॥ और फिर कहा—हे नरसिंह! मुझको देवराज इन्द्रने ताड़ित किया है। अत एव आप मेरी रक्षा कीजिये। हे कौन्तेय! आप मुझ भूमिमें पडेहुएको पालन कीजिये ॥ ७ ॥ वैशंपायनजी बोले—हे जनमेजय! जब उस कुत्तेने ऐसा कहा तब महाराज युधिष्ठिर बोले, हे श्वान! आप शोकसे मत रोओ मैं पृथ्वीमें गिरेहुए आपकी रक्षा करूँगा ॥ ८ ॥ कुत्तेसे यह कहकर फिर इन्द्रसे कहा मैं पैदलही स्वर्गको चलूँगा और यह कुत्ता रथमें चले। महाराज इसतरह कहतेही थे कि उसी समय धर्मराज अपने रूपको प्रवृत्त करनेलगे ॥ ९ ॥ अनन्तर महामहिम और धर्मरूप करके भैंसेपर सवार हुए धर्मराजने महाराज युधिष्ठिरसे कहा कि, आप तपोवनमें अच्छे आये अच्छे आये! ॥ १० ॥ फिर धर्मराजने संतुष्ट होकर राजा युधिष्ठिरसे कहा कि, आप निरन्तर सत्यवादी सदा योग्य हो बरन् आप सत्यके स्वरूपही हो ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र! मैं आपसे सन्तुष्ट होगयाहूँ अत एव आप रथमें सवार होकर गमन कीजिये। अनन्तर वे इन्द्रलोकके सम्मुख चलनेलगे और आधे पलमें ॥ १२ ॥ सिद्ध गंधर्वसेवित अमरावती अत्यन्त मनोहर नगरी है और यह विचित्र इन्द्रलोक है, इसमें शतशः अप्सराओंके गण निवास कियाकरतेहैं। हे राजेन्द्र! युधि-

ष्ठिरको आया हुआ जानकर ॥ १३ ॥ देवतालोग शृंगारसहित नगरीसे निकले और शीघ्र युधिष्ठिरके पास आये तब देवताओंने उन युधिष्ठिरको अनेक पदार्थ और अर्घ्य अर्पण किया ॥ १४ ॥ और इन्द्रलोकमें जो कन्या निवास कियाकरतीथीं वे सब युधिष्ठिरके आगे खडीं होकर नाचने लगीं। उस काल देवराज इन्द्रने अपने हाथसे महाराजपर चमर ढुलाया और यमराजने छत्र धारण किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर महाराज युधिष्ठिर इन्द्रलोकको उलांघकर ब्रह्मलोकमें गये । जो ब्रह्मलोक, महाविभवविस्तार और गंधर्वोंके मंगलदायक शब्दोंसे युक्त है ॥ १६ ॥ तथा शंखादि बाजोंके शब्दोंसे शब्दायमान उस ब्रह्मलोकको पहुँचे । हे जनमेजय ! तदनन्तर ब्रह्मलोकमें जो वरांगना (सुन्दर शरीरवाली) कन्याथीं वे सब सम्मुख आपहुँचीं ॥ १७ ॥ उन्होंने संतुष्ट होकर महाराज युधिष्ठिरको अर्घ्य प्रदान किया, देवोत्तम ब्रह्माजीके पार्षदभी संतुष्ट हुए और उन्होंनेभी अर्घ्य दिया और ब्रह्मलोकमें प्राप्त हुए महाराज युधिष्ठिरपर ब्रह्माजी संतुष्ट हुए ॥ १८ ॥ और अनेक आशीर्वादोंसे उनका स्वागत करतेहुए कहा । हे राजेन्द्र ! अब आप यहाँ मनोरम भोग भोगिये ॥ १९ ॥ हे युधिष्ठिर ! जब तक मैं ब्रह्मा स्वर्गमें रहूँ तब तक आप यहां निवास कीजिये । युधिष्ठिरने उत्तर दिया—हे ब्रह्मन् ! मैं विष्णुलोकमें जाकर वहाँ जनार्दन भगवान्का दर्शन करूँगा ॥ २० ॥ भ्राताओं समेत भगवान् विष्णुको प्रत्यक्ष देखूँगा । ब्रह्माजी बोले—जिस स्थानमें आपकी रुचि हो हे नराधिप ! आप वहीं सुखसे निवास कीजिये ॥ २१ ॥ और जब कि, आप ब्रह्मलोकमें जानेकी रुचि प्रकट करतेहैं तो आप ब्रह्मलोकको चले जाइये । तब महाराज युधिष्ठिर पितामह ब्रह्माजीको बारम्बार प्रणाम करके और स्तुति करके निकले ॥ २२ ॥ उसकाल धर्मराजने छत्र धारण किया, इन्द्र उनके सारथी बने, तदनन्तर वे मेरुपर्वतके शिखर पर स्थित और सुखदायक विष्णुलोकमें जापहुँचे ॥ २३ ॥ तब महाराज युधिष्ठिरको आया हुआ जानकर भगवान् निकलकर तत्काल सामने आये और फिर पांडव युधिष्ठिरको अर्घ्यपात्रद्वारा सब रानियोंने अर्घ्य दिया ॥ २४ ॥

चौपाई

विष्णुलोकमहँ भूपति आये। श्रीनिवासके दर्शन पाये ॥
देखि भूप दोनों कर जोरी। जय कृपालु राखेउ रुचि मोरी ॥
जय सच्चिदानन्द घनश्यामा। यह सुनि आप उठे श्रीरामा ॥
क्षीर निवास हृदय महँ लाये। गहिभुज अपने ढिग बैठाये ॥
नृप वैकुण्ठ विराज्यो जाई। देखहु भाग्य विभव बहुताई ॥
धन्य युधिष्ठिर देवन कहेऊ। सुरतरु सुमन वृष्टि नभ कियऊ॥
हरिपुर नृपहि जाय सुखपाई। तहां विलोकेउ चारों भाई ॥
सहित द्रौपदी रूप अनूपा। द्रोणाचार्य सहित सब भूपा ॥
देवरूप तहँ भीष्मपितामह। कर्णसहित राजहिं हरिधामह ॥
दुर्योधन आदिक बलवाना। जिन जिन मरत युद्ध रणठाना ॥
कुरुक्षेत्र पर जूझे जेते। हरिपुर मध्य बिराजहिं तेते ॥
गान्धारी माता तहँ देखा। माद्री सहित धरे शुभ भेखा ॥

दोहा-भारतमहँ जे जूझे, स्वर्ग निवासहि झारि।
विविध भाँति सुख पायो, धर्मराजसहित निहारि ॥

तब महाराज युधिष्ठिरने जनार्दन भगवान् विष्णुको अनेक दण्डवत प्रणाम करके कहा। युधिष्ठिर बोले-हे प्रभो! मेरे सब भाई पांचाली द्रौपदी मरगई है ॥ २५ ॥ इसकारण हे देव! मैं बन्धुहीन होकर यहाँ अकेलाही आयाहूँ आपने मुझे छोडकर मेरे भाइयोंको मृत्युका रक्षक कियाहै ॥ २६ ॥ हे देव! मुझ पापात्माने भ्राताओंका क्षय (नाश) करडालाहै। हे केशव! मैंने क्रोधलोभके द्वारा सारे बलवान् भ्राताओंको नष्ट किया है ॥ २७ ॥ तो अब भ्रातृहीन होकर मेरे जीनेका क्या प्रयोजन है? श्रीभगवान्ने कहा-हे महाराज! अब आप अपने आत्मामें सोच मत कीजिये। मैं आपके निमित्त आपके भाइयोंका दर्शन कराताहूँ ॥ २८ ॥ भगवान् विष्णुने इस तरह कहाही था कि उसी अवसरमें महाराज युधिष्ठिरने पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर और मामा शकुनिको देखा ॥ २९ ॥

वैसेही महात्माने शीघ्रतासे दुर्योधनका दर्शन किया, जो कि दुःशासन इत्यादि महावीर भाइयोंसे घिराहुआ था ॥ ३० ॥ फिर जयद्रथ, कर्ण, धृतराष्ट्र, संजयकी देखा और उसीतरह कृतवर्मा और विष्वक्सेन ॥ ३१ ॥ तथा धृतराष्ट्रके सारे बेटे दोनों पैरोंमें प्रणाम करतेहुए स्थित हुए । उसी समयमें भीम, अर्जुन और अर्जुननन्दन अभिमन्यु ॥ ३२ ॥ नकुल और सहदेव सब भाइयोंको देखा और बर्बरीक समेत घटोत्कचको देखा ॥ ३३ ॥ अधिक क्या ? कुरुक्षेत्रके युद्धमें जो लोग निहत हुएथे, वे वहाँ वैकुण्ठमें सब अवस्थान कररहेहैं, उनको देखकर महाराज युधिष्ठिर परमोत्तम वाणीसे बोले ॥ ३४ ॥ आज मेरा जन्म सफल हुआ और आज मेरी तपस्या सफल हुई । आज मेरा स्वर्ग सफल हुआ और आज मेरी गति सफल हुई ॥ ३५ ॥ क्योंकि इस विष्णुलोकमें मन्त्रियोंसमेत मेरे भ्राता और पिता इत्यादि सब सुखपूर्वक अवस्थान कररहेहैं ॥ ३६ ॥ तब भगवान् विष्णु श्रीकृष्णने कहा—हे महाराज युधिष्ठिर ! जिस समयतक स्वर्गमें मेरा निवास रहे, तबतक आपभी यहाँ रहकर अपने भाइयोंसमेत विपुल भोगोंको भोगिये ॥ ३७ ॥ हे जनमेजय ! जो नरोत्तम पुरुष पांडवोंके इस स्वर्गारोहणकी कथा सुनाकरतेहैं वा सुनेंगे वे सारे पापोंसे हीन होकर स्वर्गमें जाँयगे ॥ ३८ ॥ जो व्यक्ति एकादशी अमावास्या अथवा चन्द्र सूर्यके ग्रहण तथा अन्यान्य पवित्र दिनमें स्वर्गारोहणकी कथा सुनतेहैं उनके सारे पाप मिटजातेहैं ॥ ३९ ॥ और विशेषतः श्राद्धकालमें यह पवित्र स्वर्गारोहण पर्व पितरोंको मुक्तिदायक है, तथा यह उत्तम पर्व लिखाजाकर जिस घरमें रक्खा रहता है ॥ ४० ॥ उसके मृत्युलोकमें वैवस्वत (यमराज) का डर नहीं रहता, योगरत्नके द्वारा जिसकी प्राप्ति हुआ करतीहै और श्रीगंगामहारानीके तटपर श्राद्ध करनेसे जो फल मिलाकरताहै ॥ ४१ ॥ गोदावरी, कावेरी, गौतमी, नर्मदा प्रभासक्षेत्र और प्रयागराजके बीच जो फल मनुष्यको छः मासमें मिलाकरताहै ॥ ४२ ॥

तत्फलं पुण्यवाक्येन शृण्वन्ति श्रद्धयान्विताः ॥
व्यासश्च पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालंकारधेनुभिः ॥
गवां च दीयते दानं विष्णलोके महीयते ॥ ४३ ॥

वही फल जो व्यक्ति श्रद्धासमेत स्वर्गारोहणपर्वको श्रवण करतेहैं वह इस स्वर्गारोहणके पवित्र वाक्योंद्वारा पालेतेहैं, फिर कथा सुननेपर कथा-वाचक श्रीव्यासजीमहाराजकी वस्त्र गहने और गायोंद्वारा भक्तिसहित पूजा करनी चाहिये और फिर गोदान करना उचित है. ऐसा करनेपर वह मनुष्य विष्णुलोकमें पूजित हुआ करताहै ॥ ४३ ॥

चौपाई ।

यह तनु त्याग पाण्डवन केरा । सुनि छुटै चौरासी फेरा ॥
व्यासदेव भारतमहँ भाखी । यहिके चारि निगम हैं साखी ॥
जो कोउ सुनै कपट करि दूरी । दाइहि सिद्ध सकल सुख भूरी ॥
जो नर याकहँ जूटँ विचारी । होइहि अधम नरक अधिकारी ॥
क्षत्री सुनत समर जय पावै । जो विश्वास मानि यह गावै ॥
ब्राह्मण पढै सुनै छल त्यागी । वेद निधान होयँ बडभागी ॥
जे नर नारि सुनै मनलाई । तिनकर पाप सकल मिटि जाई ॥
अन्तकाल निर्भय हरि लोका । जाय वसै तजिकै यमशोका ॥
काशी प्राग गया सुस्नाना । तस फल यह सुनि व्यास बखाना ॥
दान अनेक देइ जो कोई । तस फल होय सुनै यह सोई ॥

दोहा—चारिहु वेद सहस्र षट्, शंकर शारद शेश ।
भजु हरिचरण विहाय छल, सबकर अस उपदेश ॥
पढहिं सुनहिं सुख पावहिं, सन्तत लहहिं अनन्द ।
कृपा करहिं तिनपर सदा, कृष्णचन्द नँदनन्द ॥
इष्टदेव भगवानके, चरण कमल मन लाय ।
प्रतिपदको टीका कियो, पढहि सुजन हरषाय ॥

वसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद ।
भजन करत हरिको तहां, द्विज ज्वालाप्रसाद ॥
तिनको मैं लघुभ्रात हूँ, मिश्र कन्हैयालाल ।
जगहित शुभटीका लिख्यो, भाषामञ्जु रसाल ॥
गुणग्राहक परहित करन, अवनि अखण्ड प्रताप ।
अंकित है सब जग महँ, जिनके यशकी छाप ॥
श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज मतिमान ।
तिनकहँ कीन्हों भेंट यह, याहि न छापैं आन ॥
पुत्र पौत्र ऐश्वर्ययुत, जीवहु कोटि वरीश ।
मिश्र कन्हैयालाल यह, निश दिन देत अशीश ॥

इति श्रीवेदव्यासकृते-भारतसारे-स्वर्गारोहणपर्वणि-मुरादाबादनगरनिवासि-कान्यकुब्जवंशावतंसभुवनविख्यातस्वर्गीय-सुखानन्दमिश्रात्मज-विद्यावारिधि-पण्डित-ज्वालाप्रसादमिश्र-कनिष्ठ-सोदर पंडित कन्हैयालाल मिश्र विरचितभाषायां पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

इति श्रीभाषाभारतसारे स्वर्गारोहणपर्व समाप्तम् ॥

इति भाषाभारतसार संपूर्ण ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस,
कल्याण-बम्बई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी-बम्बई.